ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(पञ्चम खण्ड)

भाष्यकार
श्री पं. जयदेव शर्मा
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

प्रकाशक
आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर

आवरण सज्जा – मोक्षराज

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(पञ्चम खण्ड)



—:**:—

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ, विद्यामार्तण्ड

—:**:—

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर.

—:**:—

तृतीयावृत्ति	सन् १९८० संवत् २०३७ वि०	मूल्य ३०) रुपये

मुद्रक—
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

प्रथमावृत्ति संवत् १९९२ वि०
द्वितीयावृत्ति संवत् २०१५ वि०
तृतीयावृत्ति संवत् २०३७ वि०



॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय-सूची

पञ्चमाष्टके पञ्चमोध्यायः

सप्तमो मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः

(एकषष्टितमसूक्तादारभ्य)

सू० [६१]—मित्र और वरुण। परस्पर वरण करने वाली स्त्री-पुरुषों को उपदेश। उनके प्रति सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (२) उत्तम जीवन व्यतीत करने का उपदेश। (३) राज्य में प्रजा-पालक, दुष्टवारक मित्र, वरुण दोनों वर्गों के कर्त्तव्य। (४) मित्र, वरुण का महान् सामर्थ्य। (५) दोनों विद्वानों के वचन, उत्तम ज्ञान से पूर्ण हों। (पृ० १-४)

सू० [६२]—(१-३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। सबका भार अपने पर ले, समान रूप से देखे, उत्तम कर्म करे। किरणोंवत् सज्जनों सहित उदय को प्राप्त हो। (३) विद्वान्, स्नेही, शासक जन, प्रजाओं को नाना सुखजनक सम्पदाओं से पूर्ण करें। (४) आकाश-भूमिवत् माता पिता का कर्त्तव्य। प्रजा का हित। (५) बाहुओंवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (६) विद्वान् शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ४-६)

सू० [६३]—(१-५) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। (२) यन्त्रचक्र में लगे अश्व या एंजिनवत् वा राशिचक्र के बीच स्थित सूर्यवत् विद्वान् का सर्वसञ्चालन। (४) सर्वप्रेरक सूर्यवत् ज्ञानी से प्रेरित

जनों की सदर्थ-प्राप्ति। (५) सूर्यवत् सन्मार्ग में गति, मित्र और वरुण का आदर। (पृ० ६-१०)

सू० [६४]—सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (२) राजा रानी, राजा सेनापति के कर्त्तव्य। (३) वायु मेघवत् राजाओं के प्रजापतिवत् कर्त्तव्य। (५) वायुवत् श्रेष्ठ जन का कर्त्तव्य। (पृ० १०—१२)

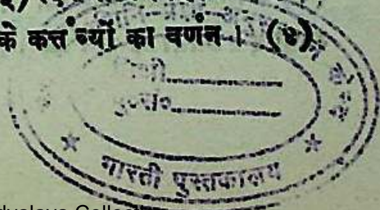
सू० [६५]—मित्र और वरुण, राजा-प्रजा वर्ग के कर्त्तव्य। (२) उनके गृहपति-गृहपत्नीवत् कर्त्तव्य। (पृ० १२—१४)

सू० [६६] (१-३)—मित्र, वरुण, स्त्री-पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। (४ १३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य। (१२-१३) उनसे ज्ञानैश्वर्य की याचना। (१४) सूर्यवत् तेजस्वी शासक का वर्णन, उसके कर्त्तव्य। (१७-१९) उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० १४—२०)

सू० [६७]—दो अश्वी, राजा-रानीवत् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) सूर्य-उषा दृष्टान्त से गुरु-शिष्य के कर्त्तव्य। अध्यात्म में आत्मा और बुद्धि का वर्णन। (३) जितेन्द्रिय नर-नारियों के कर्त्तव्य। (४) उनका आचार्य के अधीन वास, भैक्ष्य, मधुकरी वृत्ति। (५) अश्वी, जितेन्द्रिय शिष्य-शिष्या जनों का गुरु से ज्ञान-याचना का कर्त्तव्य। उनके उद्देश्य और कर्त्तव्य। विद्याध्ययनशील जनों का उपदेश। (पृ० २०—२४)

सू० [६८]—अश्वी, रथी-सारथीवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। शिष्य-शिष्याओं के कर्त्तव्य। (७) दुर्मित्रों से त्यक्त, निःसहायों का सहाय करना कर्त्तव्य है। अश्वियों का भुज्यु को समुद्र से पार करने का रहस्य। (८) स्त्रियों, कन्याओं की रक्षा का कर्त्तव्य। (९) विद्वान् का कर्त्तव्य उपदेश करना, ज्ञान बढ़ाना। (पृ० २४—२८)

सू० [६९]—दो अश्वी, (१) राजा और विद्वान्, गृहस्थ के कर्त्तव्य। रथवत् गृहस्थाश्रम। (२) रथि-सारथिवत् पति-पत्नी के कर्त्तव्य। (३) राजा-प्रजा आदि सहयोगी जनों को उपदेश। मधुमान् निधि



सौभाग्यवान् पुरुषों का लक्षण। (५) सत्पुरुष विदुषी स्त्री को उपदेश। (७) उसके कर्त्तव्य। (पृ० ४७–५१)

सू० [७७]—सूर्य, उषा के विज्ञान के साथ २ परमेश्वर का वर्णन और गृहपत्नी युवति के कर्त्तव्य। (२) दिनों की नायिका उषावत् परमेश्वरी शक्ति और उत्तम युवति, नायिका के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) सौभाग्यवती का लक्षण। (४) स्त्री और राजशक्ति का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (६) गृहपत्नी के कर्त्तव्य। (पृ० ५१–५४)

सू० [७८]—उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी के कर्त्तव्य। (२) अग्नि-उषा व विद्वान्-विदुषी के कर्त्तव्य। स्त्रियों का सत्-आचार। (४) सौभाग्यवती का वर्णन। (५) उनका स्नेहयुक्त होने का कर्त्तव्य। (पृ० ५४–५६)

सू० [७९]—उषावत् गुणप्रकाशक वधू के कर्त्तव्य। (२) नव-वधुओं के उज्ज्वल दीपकों और सूर्यकिरणों के तुल्य कर्त्तव्य। पति-पत्नी का शरीर में दो बाहुओं के तुल्य कर्त्तव्य। (३) पत्नी घर की रानी। (४) मेघ-विद्युत् वत् पुरुष-स्त्री की स्थिति। (५) स्त्री को उत्तम ज्ञान और वचन वाली होने का उपदेश। (पृ० ५६–५८)

सू० [८०]—उषावत् वधू के कर्त्तव्य। गर्भिणी के गर्भ पर उत्तम संस्कार डालने का उपदेश। साथ ही सृष्ट्युन्मुख प्रकृति का वर्णन। (२) पत्नी के गृहोचित शिष्टाचारों का वर्णन। पाक्षान्तर में उषा, सेना का वर्णन। (पृ० ५९–६०)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८१]—उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी विदुषी के कर्त्तव्य। (२) उषावत् तेजस्विनी स्त्री का रानी-स्वरूप। (४) विदुषी स्त्री का मातृपद। माता के कर्त्तव्य। (पृ० ६०–६३)

सू० [८२]—इन्द्र-वरुण, शत्रुहन्ता, श्रेष्ठ पुरुष का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (२) इन्द्र-वरुण का स्वरूप एक वसुपति दूसरा प्रजापति । सम्राट् और साम्राज्य । (३) उनके कर्त्तव्य । नाना मार्ग निर्माण और प्रजा की समृद्धि-वृद्धि । (५) आधिदैविक दृष्टान्त से इन्द्र-वरुण का रहस्य । सूर्य-मेघवत् कोश और दण्ड के अध्यक्षों के कर्त्तव्य । (६) इन्द्र, वरुण, दण्डकर्त्ता और दण्डपति । (७) पाप, दुराचार, पीड़ा, संताप से रहित उनका शासन । (८) दोनों प्रजा के बन्धु हों । (९) दोनों अग्रयोद्धा । (१०) और प्रजा को उत्तम बलदाता हों । (पृ० ६३–६८)

सू० [८३]—इन्द्र, वरुण, वायु, विद्युत्वत् शत्रुहन्ता और शत्रु-वारक अध्यक्षों के कर्त्तव्य । कृपकोंवत् सैन्यों के कर्त्तव्य । (२) संग्राम के दो नायक इन्द्र, वरुण । (३) युद्ध आदि संकट के विकट अवसरों में उनके कर्त्तव्य । (४) भेदनीति और सदुपाव का उपदेश । (५) प्रजा की त्राण की प्रार्थना । उन दोनों का महान् सामर्थ्य । दश राजा, सुदास, तृत्सु उनका रहस्य, सभा-सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य । (पृ० ६८–७२)

सू० [८४]—स्त्री पुरुषवत् प्रजा और राजा का परस्पर सम्बन्ध । (२) सम्पन्न राष्ट्र में प्रजा का कर्त्तव्य । उत्तम शासकों के कर्त्तव्य । (पृ० ७२–७४)

सू० [८५]—इन्द्र, वरुण–उत्तम शासक तथा वायु जल और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन । इन्द्र, वरुण राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ७४–७६)

सू० [८६]—वरुण, परमेश्वर का वर्णन । परमेश्वर की भक्ति-पूर्वक प्रार्थनोपासना । (३) बन्धन की जिज्ञासा । मोक्ष की प्रार्थना । (४) पाप मोचन की प्रार्थना । (५) बन्धन-मोचन की प्रार्थना । (६) दुःख मार्ग में जाने के कारणों की विवेचना । (७) सन्मार्ग पर नायक प्रभु । (पृ० ७६–७९)

सू० [८७]—वरुण परमेश्वर के महान् दर्शनीय कार्य । प्रभु परमेश्वर का व्यवस्थित शासन । (४) प्रभु की व्यवस्था में विद्वान् का कर्त्तव्य । (५) जगत्स्रष्टा की अद्भुत सृष्टि । (६) परमेश्वर का वर्णन । (७) दयालु प्रभु । (पृ० ८०-८३)

सू० [८८]—वरुण परमेश्वर का वर्णन । निष्पक्षपात प्रभु । (२) श्लेष से जलवत् प्रभु का वर्णन । (३) शिष्य-गुरु, भक्त-उपास्य के स्नेह की पति-पत्नी के स्नेह से समता । (४) वाणी रूप प्रभु का निष्ठ भक्त को तारना । शिष्य के लिये तीर्थ गुरु किस प्रकार है । (५) भक्त-उपास्य का सखाभाव । (६) हम पापी होकर ईश्वर के दिये धन का भोग न करें । (७) कर्म-बन्धन को काटने हारा प्रभु । कर्म-बन्धन के छेदन का प्रकार । (पृ० ८३-८६)

सू० [८९]—देह-बन्धन से मुक्ति की प्रार्थना । (२) दुःखी जीव की विनीत प्रार्थना । (४) भवतृष्णा से मोचन की प्रार्थना । (पृ० ८६-८८)

सू० [९०]—बलवान् सेनापति के कर्त्तव्य । (३) सभापति के कर्त्तव्य । प्रजाजन स्त्री-पुरुषों के भव्य कर्त्तव्य । (४) विद्वानों के कर्त्तव्य । (५) स्वामियों, शासकों के कर्त्तव्य । (६) ब्रह्मचारियों के कर्त्तव्य । (पृ० ८८-९१)

सू० [९१]—बलवान् का स्थापन । बलवानों के कर्त्तव्य । (४-६) विद्युत्-वायुवत् दो नायकों के कर्त्तव्य । (पृ० ९१-९४)

सू० [९२]—वायुवत्, विवेकी विद्वान्-निर्णायक के कर्त्तव्य । (२) उत्तम शासक के कर्त्तव्य । (३) विवेकी वीर जनों के कर्त्तव्य । (पृ० ९४-९६)

सू० [९३]—इन्द्र अग्नि माता-पितृवत् ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी जनों के कर्त्तव्य । (३) विद्युत् और अग्नि के तुल्य अध्यापक, आचार्य और

सभापति, सेनापति के पद। अग्रणी नायकों, वीरों के कर्त्तव्य। (७) शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ९६-९९)

सू० [९४]—इन्द्र-अग्नि, विद्वान्, गुरु, शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) नायक नायिका जनों के कर्त्तव्य। (१२) दुष्टाचारी को उचित दण्ड। (पृ० ९९-१०२)

सू० [९५]—सरस्वती। नदीवत् पत्नी या स्त्री के कर्त्तव्य। श्लेषमय वेद का अपूर्व चमत्कार। (३) सरस्वान् नरश्रेष्ठ का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (४-६) स्त्री को उपदेश। (पृ० १०२-१०५)

सू० [९६]—(१-३) वेदवाणी सरस्वती का वर्णन। (४-६) ज्ञानवान् प्रभु सरस्वान् से प्रार्थना। (पृ० १०५-१०७)

सू० [९७]—प्रभु की उपासना। प्रार्थना स्तुति। बृहस्पति प्रभु। (पृ० १०७-१११)

सू० [९८]—मनुष्यों को यज्ञ का उपदेश। (२) उत्तम राजा के कर्त्तव्य। (३) विजीगीषु राजा के कर्त्तव्य। (४) वीर जनों के कर्त्तव्य। (५) राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्रभु की उपासना। (पृ० ११२-११४)

सू० [९९]—सर्वव्यापी प्रभु की महिमा का वर्णन। (४) इन्द्र, विष्णु, विद्युत् पवनवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) राजा-सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० ११४-११७)

सू० [१००]—विष्णु, व्यापक प्रभु की स्तुति-उपासना। (पृ० ११७-१२०)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१०१]—पर्जन्य। मेघवत्-विद्वान् के कर्त्तव्य। उसका शिष्य को वत्सवत् ज्ञान रस से वर्धन। (२) मेघ सूर्यवत् जगत् के स्वामी से वेदमय ज्ञान और सुखद देह की प्रार्थना। त्रिवर्त्तु ज्योति

और त्रिधातु शरण का रहस्य। (३) मेघ के अप्रसूता और प्रसूता गौ के तुल्य रूप। उसके साथ सम्बद्ध भूमि सूर्यवत् प्रभु के दो रूप और प्रकृति पुरुप के विज्ञान का स्पष्टीकरण। (४) मेघविज्ञान। प्रकृति-परमाणुओं की तीन प्रकार की गति। तीन कोशों का वर्णन, अध्यात्म तत्त्व। (६) गौ वृषभ के दृष्टान्त से जगत्-स्रष्टा के आधार पर समस्त जगत्। (पृ० १२०-१२३)

सू० [१०२ [—पर्जन्य। मेघवत् सर्वोत्पादक प्रभु के गुणों का वर्णन। अग्निहोत्र-यज्ञ से प्रभु की प्रार्थना और मेघोत्पत्ति। (पृ० १२३-१२४)

सू० [१०३]—मण्डूकों के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञानी, तपस्वी और नाना विद्याओं के कर्त्तव्यों का वर्णन। (पृ० १२४-१२९)

सू० [१०४]—दुष्टों का दमन। राजा और पुरोहित के कर्त्तव्य। दण्डविधान का आदेश। (४) दुष्टों के दमन के नाना साधनों का उपदेश। (५) दण्ड योग्य अपराधियों का निर्देश। (१२) सत्यासत्य का विवेक करने का उपदेश। (१३-१४) सत्यवादी को दण्ड न देकर पापी को दण्ड देने का उपदेश। (१५) पीडादायियों को दण्ड। असत्यारोपी को दण्ड। (१७) दुष्ट स्त्रियों को दण्ड। (१८-१९) दुष्टों को कठोर दण्ड। दण्ड के लिये आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग। (२१-२४) कुटिलाचारी जनों पर दण्डपात। (२५) इन्द्र, सोम, राजा और न्याय-पति के कर्त्तव्य। (पृ० १२९-१३९)

अष्टमं मण्डलम्

सू०] १]—एक मात्र उपास्य प्रभु का वर्णन। उसके अनेक गुण। (५) उपास्य को धन के लिये न त्यागें। (६) ईश्वर का मातृसम पद। (८) पुरन्दर ईश्वर बन्धनमोचक। वीर सेनापति से तुलना। (१०) प्रभु की दुधार गौ से तुलना। (११) सेनापतिवत् प्रभु की

स्तुति। (१२) अद्भुत कारीगर प्रभु। (१३-१६) प्रभु से उत्तम २ प्रार्थनाएं। (१७) उत्तम कर्त्तव्योपदेश। (१८-२४) प्रभु से प्रार्थनाएं। (२५) सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२६) प्रभु से प्रार्थनाएं। सत्पुरुषों के कर्त्तव्य। (३२-३४) आसङ्ग प्रायोगि का रहस्य। (पृ० ३४०-१५२)

सू० [२] – प्रजापति, राजा और गृहपति के कर्त्तव्य। (२) राजा के प्रति प्रजाओं के कर्त्तव्य। (४) अद्वितीय स्वामी इन्द्र। (६) उस की उपासना। (७) प्रभु की राजा से समानता। (९) अभिषेक का अभिप्राय। (१०) आश्रय-याचना। (११-१७) राजा के कर्त्तव्य। प्रजा की प्रार्थना। प्रभु के प्रति भक्त की याचनाएं और कर्त्तव्य। (१८-३६) प्रभु परमेश्वर से बल ऐश्वर्य की याचना। (३७) स्तुत्य प्रभु। उससे प्रार्थनाएं (पृ० १५२-१६५)

सू० [३]—प्रभु से प्रार्थना और उसकी स्तुति। पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १६५-१७३)

सू० [४]—इन्द्र, प्रभु परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) आत्मा का वर्णन। (८) राजा प्रजा का गृहस्थवत् व्यवहार। राजा के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। (पृ० १७४-१८२)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [५]– उषा और अश्वियुगल। गृहलक्ष्मी उषा देवी। जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को गृहस्थोचित उपदेश। वीर विद्वान् एवं राजा और अमात्य-राजावत् युगल जनों के कर्त्तव्य। (३७, ३८, ३९) वैद्य प्रभु के दान और उसकी अध्यात्म व्याख्या। (पृ० १८२-१९४)

सू० [६]—पर्जन्यवत् ज्ञानप्रद प्रभु की उपासना। (२) विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) वीर पुरुषवत् ईश्वर का अद्भुत कर्म। (६) सूर्य, वायु, विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य। (७-९) विद्वानों के गुण और

कर्त्तव्य । (१०) प्रभु से प्रार्थनाएं । (१२-१३) गुरुवत् प्रभु । (१४) पापनिवारणार्थं दण्ड-प्रयोग का उपदेश । (१५) अपरिमेय सबसे बड़ा प्रभु । (१६) प्रसुप्त प्रकृति का ईश्वर से सम्बन्ध । (१७) तम दूर करने की सूर्यवत् प्रभु से प्रार्थना । (१९) गौओं के तुल्य ऋषियों का प्रभु के प्रति भाव । (२०) सर्व-शक्तिप्रद प्रभु । (२१) पिता प्रभु । प्रभु और राजा से अनेक स्तुति-प्रार्थनाएं । (४६) सर्वोत्तम सुख प्रभु का है । 'तिरिन्दिर' का रहस्य । (४७) समदर्शी को बड़ा लाभ । (पृ० १९४-२०९)

सू० [७]—मरुद्गण । वायुओं के तुल्य बलवान् वीरों और विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश । (३-७) मेघ और वृष्टि लाने वाले वायुगण का वर्णन । उनकी तुलना से सज्जनों, वीरों के कर्त्तव्य । (पृ० २०९-२२२)

सू० [८]—अश्वी अर्थात् जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । राष्ट्र में राजा और सचिव जनों के कर्त्तव्य । (६-१५) ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी जनों के कर्त्तव्य । (पृ० २२२-२३०)

सू० [९]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में (१०) राजा और सेनापति के कर्त्तव्य । (१६-१८) उत्तम देवी विदुषी के गुण और कर्त्तव्यों का वर्णन । शिक्षा, आतिथ्य और ज्ञानप्राप्ति सम्बन्धी अनेक उपदेश । (पृ० २३१-२३८)

सू० [१०]—जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । वेग से जाने वाले साधनों से सम्पन्न पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० २३८-२४१)

सू० [११]—व्रतपा अग्नि । राजा, विद्वान् व अग्रणी नायक आचार्य के कर्त्तव्य । सर्वशासक तेजोमय प्रभु का वर्णन । (पृ० २४१-२४३)

षष्ठोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

सू० [१२]—विश्वस्रष्टा की स्तुति । (२) राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (पृ० २४४-२५४)

सू० [१३]—परमेश्वर की स्तुति । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्यों का निदर्शन । (पृ० २५४-२६४)

सू० [१४]—ईश्वर से ऐश्वर्यादि की प्रार्थनाएं । (२) गोपति होने की प्रार्थना । (३) सर्व सम्पदा के दाता प्रभु । यज्ञमय प्रभु की महिमा । (७) उदारचेता प्रभु । (८) गुरुवत् प्रभु । (९) प्रभु के स्थायी कार्य । (१०) आनन्द-सागर प्रभु । (११) मङ्गलकारी प्रभु । (१३) 'अपां-फेन' से नमुचि के नाश का रहस्य । (१३-१५) दुष्टों के नाश का उपदेश । (पृ० २६५-२६९)

सू० [१५]—सर्वशक्तिमान् ईश्वर की उपासना । (२) सर्व-धारक प्रभु । (३) जगत् का एक अद्वितीय शासक । (४) सर्वशक्ति-मान् जगत-कर्त्ता । (५) प्रकाशों का दाता । (७) बुद्धिमय प्रभु का बल, ऐश्वर्य और ज्ञान । (८) उसका महान् ऐश्वर्य । (१०) उत्पादक, पालक प्रभु । (११) सर्वविघ्नहारी प्रभु । (१४) सर्वोपरि सर्वोपास्य । (पृ० २६९-२७२)

सू० [१६]—परमेश्वर का स्तवन । (३) ज्येष्ठराज प्रभु । (५) सर्वाध्यक्ष का वर्णन । (६) सर्वैश्वर्य स्वामी का वर्णन । स्तुतियोग्य प्रभु के गुणों का वर्णन । (पृ० २७३-२७६)

सू० [१७]—प्रभु की स्तुति । उसका हृदय में आह्वान और धारण । (९) गुरु का शिष्य को दीक्षित करना । उसको वेदोपदेश ।

आचार्य शिष्य के कर्त्तव्य । वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन । विघ्नविनाशक परमेश्वर । (९) जगत् का स्वामी । (१०-१५) उपास्य उपासक में गुरु शिष्य का सा भाव । (१२) शक्तिशाली प्रभुवत् राजा । (१४) वास्तोष्पति शासक इन्द्र । (पृ० २७६-२८१)

सू० [१८]—विद्वानों से उत्तम ज्ञान की याचना । आदित्य विद्वानों का वर्णन । (४-७) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (८) चिकित्सकों के कर्त्तव्य । (८-९) रोगनाशक पदार्थ अग्नि वायु और सूर्य । (१०) विद्वानों से अज्ञान और पापनाश की प्रार्थना । (२०-२२) विद्वानों से नाना कल्याण-प्रार्थनाएं । (पृ० २८१-२८७)

सू० [१९]—प्रभु-स्तुति का उपदेश । (२) अग्निवत् ज्ञान प्रकाशक की स्तुति और आदर करो । अग्नि के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन । (५-६) उपासक यज्ञकर्त्ता को सत्फल की प्राप्ति । (७) सेनापति के कर्त्तव्य । प्रकारान्तर से स्वामी, राजा और प्रभु का वर्णन । (१०) अग्रणी वीर नायक के कर्त्तव्य । (११) विद्वान् का वर्णन । उसके संस्कार का विधान । (१४) नेता के कर्त्तव्य । (१८) यज्ञ आदि द्वारा उपासकों को उत्तम फल । (१९) दान आदि का फल । (२०) नायक वा प्रभु से प्रार्थना । (२१) प्रभु की स्तुति । (२२) आहुत अग्निवत् विद्वान् का रूप । (२३) अग्नि विद्युत् वा सूर्य के तुल्य नायक, विद्वान् प्रभु का रूप और उसके कर्त्तव्य । उत्तम यज्ञकर्त्ता का सदाचारमय लक्षण । (२५) उपास्य-उपासक की अनन्यता की भावना । (२६) पाप के निमित्त भगवान् का परित्याग न हो, स्तोता वा शास्ता मूर्ख और पापी न हो । (२७) पितावत् प्रभु । भगवान् की भक्ति । (३०) सखा प्रभु । (३१) प्रभु के अग्निरूप की व्याख्या । (३२) सम्राट् प्रभु । (३३) परम अग्नि प्रभु । (३४) आदित्य विद्वानों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (३६-३७) पौरुकुत्स्य का दान । पुरुकुत्स सेनापति । उसका वर्णन । अध्यात्म रहस्य । (पृ० २८७-३०१)

सू० [२०]—मरुतों अर्थात् वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य । वायु और जल लाने वाले वायु-प्रवाहों के वर्णन । (२२) उत्तम अध्यक्ष मरुद्-गण । (२५) देह में मरुद्गण प्राणगण । (पृ० ३०१-३१२)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२१]—स्वामी के अद्भुत गुणों का वर्णन । आत्मा, प्रभु और विद्वान् का वर्णन । (४) बन्धुमान् प्रभु की शरण । (५) आश्रय वृक्षवत् प्रभु का आश्रय । (६) ईश-विनय के प्रयोजन । सर्वप्रद प्रभु । (१०) प्रभु का परमैश्वर्य । (११) सदा सहयोगी और सहायक प्रभु । (१२) प्रभु या राजा की सहायता से दुष्टों का दण्डित करने का संकल्प । (१४) व्यसनी, धनाभिमानी का प्रभु मित्र नहीं । भक्तों का पिता प्रभु । (१५) भक्तों की चरम इच्छा । (१६) न्यायप्रद प्रभु । (१७) प्रभु का सरस्वती-रूप । (१८) मेघवत् दाता, महाराज प्रभु । (पृ० ३१२-३१८)

सू० [२२]—सेनापति और वैद्यवत् स्त्री-पुरुषों का वर्णन । (२) गृहस्थ रथ का वर्णन । (४) गृहस्थ-रथ के दो चक्र । (५) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (६) कृपकवत् उत्तम गृहपति और गृहपत्नी के कर्त्तव्य । कृपि का उपदेश । (६) उत्तम नायक की स्थापना । (९) वेगवान् यान आदि साधन सम्पन्नों के कर्त्तव्य । (१०) रोगी की सेवा का उपदेश । (११-१२) अन्यान्य नाना कर्त्तव्य । (पृ० ३१८-३२५)

सू० [२३]—अग्नि उपासना के साथ २ अध्यात्म उपासना । प्रभु परमेश्वर की अग्निवत् स्तुति । पक्षान्तर में अग्निवत् राजा और विद्वानों का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । उसके प्रति प्रजाजनों का कर्त्तव्य । अग्नि तुल्य गुणों वाले प्रभु से प्रार्थनाएं । (पृ० ३२५-३३५)

सू० [२४]—सर्वशक्तिमान् प्रभु के गुणों का वर्णन । (२)

दुष्टहन्ता प्रभु । (४) ऐश्वर्यप्रद प्रभु । (६) परम शरण प्रभु । (७) शास्ता प्रभु । (९) सर्वसंचालक प्रभु । (१०) उसकी नाना प्रकार से उपासनाएं वा भक्ति-प्रदर्शन और स्तुति । (२४) सर्वज्ञ प्रभु की स्तुतियां । (२५-२७) दुष्टों के नाश की प्रार्थना । (२८) सत्पात्रों में दान देने वाले को प्रभु भी देता है । (२९) सत्पात्र में दान का उपदेश । सबसे परे अगम्य प्रभु । (पृ० ३३५-३४४)

सू० [२५]—उत्तम, आदरणीय, स्त्री-पुरुषों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । उत्तम माता पिता से रक्षा की प्रार्थना । (१२-१५) उत्तम पुरुषों के कर्त्तव्य । विश्वपति राजा के प्रभु और सूर्यवत् कर्त्तव्य । (१७-१८) महान् सम्राट् । विश्वपति वरुण, प्रकाशस्वरूप ईश्वर । (२१-२२) प्रभु की स्तुति । (२२-२५) सत्पुरुषों से प्रार्थना । (पृ० ३४४-३५१)

सू० [२६]—उत्तम नायक, राजा प्रजा, वा पति-पत्नी जनों के गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन । राजा-सचिव । (४) माता-पिता, गुरु जनों के कर्त्तव्य । (५) सैन्य-सैन्यपति के कर्त्तव्य ऐश्वर्ययुक्त सत्य-वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य । (१३) दिन-रात्रिवत् । पति-पत्नी जनों के कर्त्तव्य । (२१-२२) भावी जामाता के प्रति आदर । (२२-२७) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना । (पृ० ३५१-३६०)

सू० [२७]—ज्ञानी पुरुष का पुरोहित पद पर स्थापन । विद्वान् से ज्ञान की याचना । नाना प्रकार के उत्तम वीर विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (११) राजा के कर्त्तव्य । (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य । (१८) राष्ट्र के प्रति उनके कर्त्तव्य । (पृ० ३६०-३६७)

सू० [२८]—३३ देवगण । राष्ट्र के ३३ प्रमुख शासक । (२) वरुण, मित्र, अर्यमा । तीन प्रधान पद । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ३६८-३६९)

सू० [२९]—विश्व के एक अद्वितीय अध्यक्ष का वर्णन। उसके महान् अद्भुत कर्म। (८–९) जीव और प्रभु का प्रकृति के साथ वर्णन। (पृ० ३६९-३७२)

सू० [३०]—राष्ट्र में प्रजा जनों के सदृश जीवों का वर्णन। (२-४) राष्ट्र-शासक रूप ३३ देवों का वर्णन। उनसे रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ३७२–३७३)

सू० [३१]—यज्ञ और यजमान की प्रशंसा। उसके कर्त्तव्य। (२–७) पक्षान्तर में राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) प्रजावती स्त्री की अग्नि से तुलना। (५) पति-पत्नी के कर्त्तव्य। (१०–११) पूषा परमेश्वर से प्रार्थना। (१२-१४) विद्वानों से प्रार्थना। (१५-१८) उत्तम प्रभु भक्त का प्रभाव। यज्ञशील का वैभव, बल और सामर्थ्य। (पृ० ३७३–३७९)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [३२]—विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य का उपदेश। (२) शासक के गुण। (३) विद्युत्वत् सेनापति वा राजा के कर्त्तव्य। शत्रु-विजय का आदेश। (६) व्यापार का उपदेश। राजा प्रजा को समृद्ध करे। पक्षान्तर में आचार्य और आत्मा का वर्णन। (१२) माता के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। बड़े भारी पालक प्रभु की स्तुति। (१३–१५) नियन्ता सर्वविजयी सखा। बड़ा दानी है। (१६) उऋण जन। (१७) उपास्य का स्तवन। (१८) स्तुति योग्य के लक्षण। बन्धन-मोचक प्रभु। (१९–२०) जीव को कर्मफल भोग का उपदेश। (२१) राजा को वा उत्साही को आदेश उपदेश। (२६–२९) बलवान् इन्द्र के लक्षण। (२७–३०) विद्वानों को उपदेश। (पृ० ३७९–३८८)

सू० [३३]—उत्तम प्रजाओं के जलधारावत् कर्त्तव्य। (२) प्रभु ईश्वर की उपासना। (३) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्यों का

२ प.

सू० [३९]—अग्नि, ज्ञानी और अग्रणी नेता पुरुष के कर्त्तव्य। उसके ज्ञान-प्रकाश द्वारा क्रम से विघ्नों और दुष्टों का नाश। (९-१०) देहाग्निवत् विद्वान् के कर्त्तव्य। (पृ० ४१७–४२३)

सू० [४०]—इन्द्र, अग्नि, वायु, आग के समान विद्वानों के ज्ञान और तेजस्वी नायक के तेज, पराक्रम से दुष्टों का नाश। (३) इन्द्र और अग्नि दो अध्यक्षों का वर्णन। उनके आदर का उपदेश। (५) विद्युत् और अग्नितत्त्वों को वश करने का उपदेश। (६) दुष्ट के धनादान और वश करने की आज्ञा। (७) दुष्टों के नाश का उपदेश। (८) सूर्य, अग्निवत व्रतपालकों के कर्त्तव्य। (१०-१२) सूर्यादि के तेज से रोगों के तुल्य दुष्टों का नाश। (पृ० ४२३–४२८)

सू० [४१]—श्रेष्ठ पुरुषों के आदर का उपदेश। राजा के कर्त्तव्य। (२) राजा के नाशार्थ उद्योग, पालक पुरुषों का नियोजन। (३) राजा का सैन्य-रक्षण। राष्ट्रस्थापन। (४) देह में प्राणों वा राजा का प्रजाओं को पालन करने का कर्त्तव्य। (५) सूर्यवत् लोकधारण के तुल्य राष्ट्रधारण। (६) चक्र में नाभि के तुल्य प्रभु वा विद्वान् के कर्त्तव्य। गोशाला में पशुओं के तुल्य इन्द्रियों का संयम। (७) सर्वोपरि वरुण। (८) समुद्रवत् राजा। (९) त्रिलोकाधिपति वरुण परमेश्वर। राजा के सात अश्वोंवत् प्रभु का सब स्थावर जंगमों पर शासन। (१०) सर्वशासक की अद्भुत शक्तियां (पृ० ४२८–४३३)

सू० [४२]—वरुण परमेश्वर का वर्णन। सर्वोपास्य प्रभु। नौकावत् वेदवाणी का आश्रय लेने का उपदेश। (४-६) स्त्री पुरुषों को उपदेश। (पृ० ४३३-४३५)

सू० [४३]—प्रभु की वेदवाणियों द्वारा स्तुति। (३) सर्व पापनाशन प्रभु, अग्नि। (४) अग्निवत् प्रभु की विभूतियां। इसी प्रकार स्वतन्त्र जीवगण की सत्ता का वर्णन। (५) नाना स्वतन्त्र जीवों का

अग्नियों के तुल्य निरूपण। (६) साधक जीव के मार्ग की बाधाएं (७) अग्नि से जीवनधारी आत्मा की तुलना। (८) पुनः उत्पन्न होने वाले जीव की अग्नि से तुलना। (९) अग्निवत् जीव का जन्म। (१०) अग्नि-ज्वाला के तुल्य गर्भ में स्थिर जीव की वृद्धि। (११) जीव और परम-आत्मा का स्वरूप। (१२) प्रकाशमय, दुःखनाशन, पापनिवारक प्रभु की उपासना। (१४) उसके प्रकाशित होने का प्रकार। (१५) सहस्र-ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (१६) भ्रातृवत् शुद्धहृदय प्रभु। (१७) मातृवत् प्रभु का वरण। (१८) मुख्य प्राणवत् प्रभु। (१९) सर्वाध्यक्ष प्रभु। (२०-२१) समदर्शी प्रभु। (२२) प्रकाशस्वरूप प्रभु। (२३) द्वेषनाशक प्रभु। (२४) साक्षी, अध्यक्ष प्रभु। (२५) सबको भयप्रद सर्वसञ्चालक प्रभु। (२६) दण्ड दाता प्रभु। (२७) अग्निवत् प्रभु। (२८) आत्मा के तीन रूप। (३२) बलवान् दुष्टनाशक प्रभु। (३३) अविनाशी ऐश्वर्य का स्वामी प्रभु। (पृ० ४३५–४४५)

सू० [४४]—अग्नि-परिचर्या के तुल्य गुरु और प्रभु की उपासना। (४) अग्नि और सूर्यवत् ऊर्ध्व रेता तेजस्वी का वर्णन। अग्नि की प्रभु से श्लिष्ट समताएं। (६-७) स्तुत्य अग्नि, विद्वान् और प्रभु। (८) यज्ञ का नेता अग्नि। (११) विजिगीषु तेजस्वी नायक अग्नि। (१२) विद्वान् अग्नि। (१३-१४) नायक अग्नि। (१५-१६) ब्रह्मचारी विद्वान् अग्नि। (१७-२१) ज्ञानी, स्तुतियोग्य प्रभु। (२३) भक्त की अनन्यता उपास्यमयता। (२४) सर्वपालक प्रभु। (२५-२७) स्तुत्य प्रभु। (२८) उपास्य में लय। (२९) ब्रह्माण्डदीपक प्रभु। (३०) मोक्ष की प्रार्थना। (पृ० ४४५–४५३)

सू० [४५]—इन्द्र अग्नि। प्रभु के उपासकों का महान् ऐश्वर्य। (४) राजा का भूमि-माता के प्रति कर्त्तव्य। (५) बलवान् यशस्वी नेता अग्नि। (६-७) महारथी अग्नि, उसके कर्त्तव्य। (९-११) उत्तम

सेनापति अग्नि। इसके कर्त्तव्य। (१२) दानशील। गृहपतिवत् अग्नि प्रभु। (१४) ऐश्वर्यवान् प्रभु। उससे नाना प्रार्थनाएं, शरण-याचना। (२३) उत्तम नेताओं के कर्त्तव्य। (३०-४२) श्रेष्ठ राजा, उससे प्रजा की न्यायानुकूल नाना अभिलाषाएं। (पृ० ४५३-४६४)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [४६]—उत्तम शासक, नेता, स्वामी शासक के कर्त्तव्य। प्रभु का वर्णन। उससे अनेक प्रार्थनाएं। (२८) स्वराष्ट्र-शासक। उसका वैभव। (पृ० ४६५-४७५)

सू० [४७]—आदित्यां, मासों के तुल्य विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य। (२-३) चूजों पर पक्षीवत् उनकी प्रजा पर पक्षच्छाया। (७) उनकी उत्तम रक्षा का आदर्श। (८) कवचवत् रक्षकों का स्वरूप। (९) रक्षा शान्तिप्रद हो। (१०) देह से गृह और राष्ट्र की तुलना। (११-१८) उनके निष्पाप सुखदायी रक्षा-कार्यों का विवरण। (पृ० ४७५-४८१)

सू० [४८]—सोम। उत्तम अन्न, ओषधि-सेवनवत् परमानन्दमय प्रभु का सेवन। (२) सोम शिष्य, उपासक के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्वान् और देह में वीर्य का वर्णन। (३-५) सोम, ओषधि-रस के पान के समान ऐश्वर्य, वीर्य, पुत्र, शिष्यादि का पालन। (६) विद्वान् सोम से ज्ञान की प्रार्थना। सोम तेजस्वी प्रभु से दीर्घ जीवन की याचना। (९) सोम का व्रत पालन। (१०) सोम, राजा से प्रार्थना। (११) सोम अभिषिक्त राजा। (१२) सोम, व्यापक प्रभु की परिचर्या। (१४) विद्वानों से प्रार्थना। (पृ० ४८१-४८७)

बालखिल्यम्

सू० [४९]—ज्ञानप्रद, सर्वदाता, सर्वरक्षक प्रभु की स्तुति। (२) मेघ वा पर्वत से झरते जलों के तुल्य प्रभु के ऐश्वर्य। (३)

जलाशय के जलों के तुल्य उसके पूरक ऐश्वर्य। (४) मधुवत् उसके मधुर सुख। (५) गोरसों के तुल्य सुखद उसके दान। ऐसे प्रभु की उपासना का उपदेश। (७) राजा से प्रजा की प्रार्थनाएं। (पृ० ४८७-४९०)

सू० [५०]—इन्द्र परमेश्वर की स्तुति का उपदेश। प्रभु का अपार ऐश्वर्य। (३) प्रभु और उपासक जन। (पृ० ४९१-४९४)

सू० [५१]—उत्तम राजा का वर्णन। (३-४) ज्ञानमय प्रभु एवं उपदेश से ज्ञान की याचना। (४) इन्द्र-प्रभु विषयक उपदेश। सप्त-शीर्षा अश्व। (५) प्रभु का ज्ञान। इस एक जन्म में करने की प्रार्थना। (६-८) दाता प्रभु से याचना। सर्वस्वामी और स्तुत्य प्रभु। (पृ० ४९४-४९८)

सू० [५२] शक्तिशाली, राजा, विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन। (३) इन्द्र का स्वरूप। महान् शासक परमेश्वर इन्द्र। उसकी स्तुति प्रार्थनाएं। (पृ० ४९८-५०२)

सू० [५३]—राजा, परमेश्वर। (२) अतिथिग्व, विद्वान। (३) मधुरस-आसेचन। (४) द्वेष नाशन। (५) ईश्वर का सामीप्य। (६) अधिकार योग्य व्यक्ति। (७) उत्तम याचना। (पृ० ५०२-५०४)

सू० [५४]—परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनाएं। (पृ० ५०४-५०७)

सू० [५५]—प्रस्कण्व की दानस्तुति। परमेश्वर के जीव जनों पर अपार दान। (पृ० ५०७-५०९)

सू० [५६]—तेजस्वी परम पुरुष का विशाल बल और ऐश्वर्य। (२) वेदज्ञान का दाता प्रभु। विद्वानों को अनेकविध दान। (पृ० ५०९-५१०)

सू० [५७]—सदाचारी स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। जीवन का तृतीय सवन। (पृ० ५११-५१२)

सू० [५८]—यजमान और ऋत्विजों के कर्त्तव्य । (२) सूर्य, अग्नि, उषावत् सर्वप्रकाशक प्रभु । (३) विराट् रथ का वर्णन । (पृ० ५१२-५१४)

सू० [५९]—विद्युत्, जल, मित्र, वरुण । उनके समान सेनापति और राजा के कर्त्तव्य । (४) गुरु और आचार्य के कर्त्तव्य । (पृ० ५१४-५१७) इति बालखिल्यस् ।

सू० [६०]—प्रकाशस्वरूप, उत्तम अग्नि तुल्य, नायक प्रभु की प्रार्थना । अग्निवत् परमेश्वर के गुणों का वर्णन । (९) ज्ञानी व गुरु का वर्णन । (१०) रक्षोघ्न राजा के कर्त्तव्य । (११) पावन प्रभु का वर्णन । (१३-१४) राजा का पराक्रम । (१५) अरणियों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी की प्रजाओं में स्थिति । (१६) यज्ञाग्निवत् सात प्रकृति वाले राजा का स्वरूप । उसके कर्त्तव्य । (पृ० ५१७-५२४)

सू० [६१]—सत्य-निर्णायक न्यायाधिकारी के कर्त्तव्य । (२) धिषणा नाम दो सभाओं को अपना रक्षक चुनने का अधिकार । (३) राजा के कर्त्तव्य । (४) राजा के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य । (५) ऐश्वर्यवान् प्रभु का पद; उसका कर्म । परमेश्वर के ध्यान ज्ञान से कर्म करने वाला पवित्र हृदय होता है । (१२) उत्तम रथीवत् प्रभु की उपासना । (१३-१८) प्रभु से अभय की याचना । (पृ० ५२५-५३१)

सू० [६२]—ईश्वर की स्तुति । प्रभु के मङ्गलकारी दान । (२) एक अद्वितीय, अविनाशी । (३) सर्वजीवन प्रद है । प्रभु के दिये अनेक सुखकारी दान । (७) विश्व का पालक प्रभु । (८) प्रभु का आदर्श बल । (९) युगल का घटक प्रभु । (१०-१२) उपास्य के प्रति भक्तिपूर्ण भाव । (पृ० ५३१-५३५)

सू० [६३]—शासक, विद्वान्, ज्ञानी के माता पितावत् कर्त्तव्य । प्रभु वा शासक का सर्वोपरि पद । (३) सर्वोपरि ज्ञानप्रद गुरु,

परमेश्वर । (६) सर्वाश्रय परमेश्वर । (७) सर्वपूज्य स्वामी ईश्वर । (८) जगत् का प्रवर्त्तक ईश्वर । (९) सुखार्थी जीव का प्रभु के आनन्द की ओर झुकाव । (१२) त्यागी जनों से प्रार्थना । (पृ० ५३५-५३९)

सू० [६४]— परमेश्वर की स्तुति । (२) महान् प्रभु । (३) सर्व-प्रभु राजा । (४) सर्वोपरि ईश्वर । (५) विद्वान् के कर्त्तव्य । (७) सर्वोपास्य, अज्ञेय प्रभु । (८-१०) प्रभु के विरल भक्त । (११-१२) राजा का अभिषेक-रहस्य । (पृ० ५३९-५४२)

सू० [६५]—सर्वव्यापक प्रभु की स्तुति और उपासना । (पृ० ५४२-५४५)

सू० [६६]—परमेश्वर की स्तुति । (२) सर्वोपरि बलशाली प्रभु । (३) गोरूप वाणियों के आवरण को दूर करने वाला इन्द्र प्रभु । (४) सन्मार्ग-प्रवर्त्तक जगन्निर्माता प्रभु । (६) सर्वोत्तम दाता प्रभु । (७) नित्य । (८) सिंहवत् वा चन्द्रवत् प्रभु और राजा का वर्णन । (९) प्रकृति से जगत् का स्रष्टा सर्वोपरि श्रवणीय है । (१०) अपार बली प्रभु । (११) भोजनवत् नियमानुसार भक्ति का विधान । (१२) सर्वोपरि दयालु प्रभु । (१३-१४) मोक्ष की याचना । (१५) अभय- आश्वासन । (पृ० ५४५-५५१)

सू० [६७]—आदित्य सदृश तेजस्वी, धनवान् बलशाली लोगों के कर्त्तव्य । (२) वे प्रजा को पाप से मुक्त करें और प्रजा का पालन करें । (७) उत्तम शासक स्वयं अपराध से रहित हों । (९) प्रजा को नाश होने से बचावें । (१०-११) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (१२) उग्रपुत्रा माता भूमि । (१३) उरुव्रजा, उरुची वैश्य सभा । (१३-२१) तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ५५१-५५६)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [६८]—ईश्वराधना, उसकी स्तुति और प्रार्थना । सृष्टिकर्त्ता का पुनः पुनः मनन । (२) विश्व का विस्तारक परमेश्वर । (३)

बलशाली। (४-५) राजा का वर्णन। (६) सर्वलोक-पति प्रभु। (७) प्रजाओं का स्वामी प्रभु। (८) अपार शक्तिशाली प्रभु। (९-१३) उसकी स्तुति और प्रार्थनाएं। (१४) आत्मा के ६ नर, ६ इन्द्रिय गण। (१५) अश्वमेध-राष्ट्र-शासनवत् देहव्यवस्था। (१६) राष्ट्र में उत्तम वीरों की नियुक्ति। ६ सेनापतियों की नियुक्ति। वधूमान् अश्वों का रहस्य। अध्यात्म व्याख्या। देह में वाणीवत् राष्ट्र में राजसभा का रूप। (१९) नियुक्त जनों को उपदेश कि कोई भी निन्दनीय कर्म न करें। (पृ० ५५७–५६२)

सू० [६९]—राष्ट्र के प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (३-४) प्रजाओं द्वारा उत्तम शासन की स्थापना। (६) वेदवाणियों द्वारा प्रतिपादित परमेश्वर मधुर रसवत् रूप। प्राप्त पद सखावत् प्रभु का मोक्ष सुख का पद। सखा प्रभु। (८) प्रभु की अर्चना का उपदेश। (९) विद्वान् का प्रजाजनों को उपदेश। (१०) गौओंवत् प्रजाओं का रूप। राजा का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। वरण योग्य राजा वरण। (१२) वरुण आचार्य-वत्। उत्तम नायकवत् भवबन्धन मोचक प्रभु। (१४) पक्व ओदन के तुल्य शिष्य का गुरु से ज्ञान ग्रहण। राजकुमार के रथारोहणवत्। राष्ट्रशासन पद का आरोहण और जीव का ब्रह्मपद-आरोहण। (१६) गृहपति का गृहस्थ रथ पर आरोहण। राजा-राष्ट्र का 'दम्पति भाव'। (१७) राजतन्त्रवत् अध्यात्मस्वराट् की उपासना। खेती करने के तुल्य देह से कर्मफल प्राप्ति। (पृ० ५६२-५६९)

सू० [७०]—सर्वोपरि नायक शासक का वर्णन। प्रभु परमेश्वर की गुण-स्तुति। (५) पक्षान्तर में वीर पराक्रमी शासक का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (१०) पितावत् प्रभु। दुष्टदमनकारी वा राजा। (१२) (१२) राजा के कर्त्तव्य और बन्धनमोचक प्रभु। (१५) सेनावशकारी राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ५६९–५७५)

सू० [७१]—तेजस्वी अग्रणी नायक के कर्त्तव्य । उसके आव-श्यक गुणों का वर्णन । (११) नायक के दो प्रकार के रूप । (१२-१५) देहवत् पूज्य अग्नि परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ५७५–५७९)

सू० [७२]—यज्ञ प्रतिपादन । ब्रह्मयज्ञ । अध्ययन-अध्यापन का प्रकार । (२) गुरु का सप्रेम शासन । (३) विद्युत्वत् जिह्वा का स्वरूप । (४-५) विद्युत् का रथयान में प्रयोग । तद्वत् देह में आत्माग्नि का संयोग । (७) देह का अद्भुत यन्त्र । (८) अन्तरिक्ष रचनावत् देह-रचना का चमत्कार । (९) त्रिगुणात्मक देह की रचना । उसमें यज्ञ । (१०) क्षेत्रसेचक कूप-टंकी यन्त्र से देह की रचना का आश्चर्यकारी वर्णन । इसी प्रकार राजतन्त्र का वर्णन । मेघ के तुल्य राजतन्त्र के कर्त्तव्य । (१२) प्रजा का योग्य पालक का आश्रय ग्रहण । (१३) अभिषेक योग्य व्यक्ति के लक्षण । (१४) प्रजाओं के परस्पर योग्य व्यवहार । (१५) देह के तुल्य राष्ट्र की स्थिति । देह में वीर्यवत् राजा की स्थिति । वायुवत् स्वामी का कर्त्तव्य । (१८) अग्निवत् नायक विद्वान् का कर्त्तव्य । (पृ० ५७९–५८४)

सू० [७३]—विद्वान् जितेन्द्रिय सत्पुरुषों के कर्त्तव्य । स्त्री-पुरुषों को उत्तम उपदेश । (पृ० ५८४–५८९)

सू० [७४]—विद्वान् का आदर करने का उपदेश । उत्तम विद्वान् के लक्षण, उसकी उपासना । पक्षान्तर में परमेश्वर की उपासना का उपदेश । परमेश्वर का स्वरूप, उससे नाना प्रार्थनाएं । (१३-१५) उत्तम राजा की दान स्तुति । राजा का कर्त्तव्य । ज्ञानसेवियों का पालन । राजा की बलवती सेना 'परुष्णी' का वर्णन । (पृ० ५८९-५९३)

सू० [७५]—रथ में अश्व के तुल्य उत्तम विद्वान् कर्मकर्त्ताओं की नियुक्ति । प्रधान शासक के कर्त्तव्य । ज्ञान बल और धन का त्रिविध पति अग्नि । (५) चक्र धारा के तुल्य राष्ट्रचक्र-नीति को वश करने का उपदेश । (६) प्रभु की स्तुति के लिये नित्य वाणी का प्रयोग ।

(७-८) नायक के प्रति अधीन प्रजाओं का कर्त्तव्य। (९) बुरे लोगों का पापसंग हमें पीड़ित न करे। (१०) राजा को शत्रुपीड़न का उपदेश। (११) उससे धन-सम्पदा की प्रार्थना। (१२) संकट में भी राजा प्रजा का साथ न छोड़े। (१३) सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० ५९३–५९७)

सू० [७६]—उत्तम सेना नायक के कर्त्तव्य। उसकी सूर्य से तुलना। (४) विजयी स्तुत्य सेनापति। पक्षान्तर में परमेश्वर का निर्देश। महान् शासक के गुण। (६) प्रभु की प्रार्थना। (७) नाना वीरों के नायक का राष्ट्र-पालन का कर्त्तव्य। अध्यात्म में आत्मा मरुत्वान् का वर्णन। (८) विद्वानों, बलवानों का आदर। पराक्रमी के कर्त्तव्य। (१०) तृप्त राजा। (११) शास्य-शासक दोनों बलवान् होते हैं। (१२) अष्टापदी वाणी का वर्णन। (पृ०५९८–६०१)

सू० [७७]—राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) चन्द्र सूर्य-वत् राजा के व्यवहार का वर्णन (५) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (६) मेघ-छेदन-भेदन वत् शत्रु पर भेद नीति का कार्य। (७) राजा का सहायक शस्त्रबल। (८) प्रजा के सुख के प्रति राजा का ध्यानाकर्षण। वायु-मेघ के व्यवहारों के समान राजा और राजपुरुषों के कर्त्तव्य। (११) शस्त्रबल। (९) राजा वा प्रभु के अनेक बल, उनकी श्लिष्ट तुलना कैसे हो। (पृ० ६०१-६०६)

सू० [७८]—ऐश्वर्यवान् प्रभु और स्वामी के कर्त्तव्य। उनसे भोजन, वस्त्र, आभूषणादि की प्रार्थना। राजा, विद्वान् तत्वदर्शी का वर्णन। इन्द्र-पद। (६) उसका अविनाशी पद। (७) सर्वैश्वर्य स्वामी प्रभु। (९) प्रभु और राजा के लिये प्रजा के प्रति नाना कर्म। (पृ० ६०६-६०९)

सू० [७९]—जगत्कर्त्ता और सञ्चालक प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में शासक राजा के कर्त्तव्य। उनके अद्भुत कर्म। (३) विशाल

सप्तमोऽध्यायः

सू० [९९]—राजा प्रजा के व्यवहारों के साथ परमेश्वर के गुणों का वर्णन । (पृ० ६८३–६८६)

सू० [१००]—जीवों के कर्मफल-भोगार्थ परमेश्वर की शरणं प्राप्ति । (४) परमेश्वर का साक्षात् स्वरूप वर्णन । (६) परमेश्वर का ज्ञानी जनों के प्रति अनुग्रह । भक्तों के प्रति उपदेश । (७) जीवों को प्रभु ने स्वतन्त्र क्यों किया । (८) ज्ञानी को आयसी नगरीवत् देह-बन्धनों से मुक्ति । (९-१०) प्रभु वाणी का वर्णन । (पृ० ६८६-६९१)

सू० [१०१]—(१) शमसाधना । (२) दो नायकोंवत् मेघ और वायु । राष्ट्र के न्याय और सैन्य-विभाग के अध्यक्षों का वर्णन । प्रजा की राजा से विशेष याचनाएं । (६) शासकों के कर्त्तव्य । (७) विद्याभिलाषी जनों के कर्त्तव्य । (११-१४) महान् प्रभु का वर्णन । (१४-१६) गौ, वाणी और भूमि की महिमा का वर्णन । (पृ० ६९१-६९७)

सू० [१०२]—गृहस्वामी के कर्त्तव्य । अग्नि आचार्य का वर्णन । अग्नि परमेश्वर का वर्णन । उसकी स्तुति, सर्वरक्षक, सर्वकर्त्ता शिल्पी के तुल्य प्रभु । सर्वप्रकाशक, परम सुखदायक प्रभु की स्तुति, भक्ति और उपासना । (पृ० ६९७-७०४)

सू० [१०३]—परम गुरु की उपासना । सूर्य, पृथ्वी और परमेश्वर-प्रकृति के कार्यों का वर्णन । (३) कृषि-फलवत् प्राप्ति । (४) भक्तों पर प्रभु की कृपा । (११) सर्वशासक प्रभु का वर्णन । वही सर्वोपास्य । (पृ० ७०४-७०८)

इत्यष्टमं मण्डलम्

तृतीय संस्करण :—चैत्र

२०३७ वैक्रमाब्दे



॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

—:***:—

अथ पञ्चमेऽष्टके पञ्चमेऽध्याये तृतीयो वर्गः ।

सप्तमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके ।

[६१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । २, ४ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) सबसे वरणीय श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (सूर्यः चक्षुः ततन्वान्) सूर्य जैसे आंख की शक्ति को बढ़ाता है वैसे (सूर्यः) ज्ञान-प्रकाशक ईश्वर और विद्वान् (देवयोः) ज्ञान के इच्छुक (वां) आप दोनों के (प्रतीकं) ज्ञानदाता (चक्षुः) प्रज्ञानेत्र को (ततन्वान्) विस्तृत करता हुआ आपको (एति) प्राप्त हो । (यः) जो (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों को (अभि चष्टे) प्रकाशित करता, सब पदार्थों का उपदेश करता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में (मन्युम्) मननीय ज्ञान भी (आ चिकेत) प्रदान करता है । परमेश्वर-तुल्य विद्वान् भी मनुष्यों में ज्ञान-दान करे ।

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) स्नेही और वरणीय स्त्री पुरुषो ! (यस्य) जिसके (ब्रह्माणि) ज्ञानों और धनों की आप दोनों (सु-क्रतू) उत्तम कर्मवान् होकर (अवाथ) रक्षा करते हो और (यत्) जिसके (क्रत्वा न) कर्म और ज्ञान-सामर्थ्य से (शरदः पूर्णैथे) जीवन के वर्षों को सुखपूर्वक बिताते हो (सः विप्रः) वह विद्वान् (ऋतावा) न्याय और सत्य से युक्त और (दीर्घ-श्रुत्) दीर्घ काल तक वेदादि सत्य शास्त्रों का श्रोता (वां) आप के प्रति (मन्मानि) मननीय ज्ञानों का (इयर्त्ति) उपदेश करे । *

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) 'मित्र', प्रजा के मृत्यु आदि कष्टों से रक्षक और 'वरुण' दुखों के दूर कर्ता दोनों वर्गो ! हे (सुदानू) उत्तम ज्ञान दाता आप दोनों (उरोः पृथिव्याः) विशाल पृथिवी और (बृहतः) बड़े भारी (ऋष्वात्) महान् (दिवः) प्रकाशयुक्त सूर्य से (स्पशः) ग्रहण-योग्य पदार्थों को (प्र प्र दधाथे) प्राप्त करो । (ओषधीषु) ओषधियों और (विक्षु) प्रजाओं में (अनिमिषं) विना प्रमाद के, (ऋधक्) सत्य के बल से (रक्षमाणा) प्रजा रक्षण करते हुए भी (यतः) यत्नशील (स्पशः प्र दधाथे) गुप्तचरों और अध्यक्षों को नियुक्त करो ।

शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (मित्रस्य) शान्तिदायक और (वरुणस्य) दुःखों के वारणकर्ता जन के (धाम) तेज और स्थान की (शंस)

---

* अत्रयावन्महर्षिदयानन्दभाष्यमुपलभ्यते ।

प्रशंसा करो। जिसके (महित्वा) सामर्थ्य से (शुष्मः) बलवान् पुरुष, या जिसका महान् सामर्थ्य (रोदसी बद्धधे) आकाश-पृथिवीवत् दुष्टों को रुलाने वाली सेना और राष्ट्र-सभा दोनों को व्यवस्थित करता है। (अयज्वनाम्) यज्ञ आदि से रहित लोगों के (मासाः) महीनों पर महीने (अवीराः) वीर पुत्रादि रहित, वा विना ज्ञान-प्राप्ति के (अयन्) व्यतीत होते हैं और (यज्ञमन्मा) पूज्य प्रभु को मनन, आचार्य और राजादि के मान्य सत्संगादि से ज्ञान प्राप्त करने वाला जन (वृजनं) अपने ज्ञान और बल को (प्र तिराते) बढ़ाने में समर्थ होता है।

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम्।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥५॥

भा०—हे (अमूरा) अमूढ़, मोह में न पड़ने वालो ! हे (विश्वा) विद्याओं में प्रवेश करने हारो ! हे (वृषणौ) सुख-वर्षक मेघ-सूर्यवत् उपकारी स्त्री-पुरुषो ! (इमाः) ये (वां) आप की ऐसी उत्तम वाणियां हैं (यासु) जिनमें (चित्रं) अद्भुत और (यक्षम्) स्तुति योग्य (न न ददृशे) कुछ नहीं दिखाई देता ऐसा नहीं, प्रत्युत सर्वत्र अद्भुत और स्तुत्य पदार्थ विद्यमान हैं। (जनानां) मनुष्यों के मध्य (द्रुहः) द्रोही पुरुष ही (अनृता) असत्य बातों को (सचन्ते) सेवन करते हैं। वस्तुत (वां) आप लोगों के (निण्यानि) छुपे मर्म (अचिते न अभूवन्) अज्ञानी पुरुष को नहीं प्रकट होते।

समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सर्वस्नेही वरणीय स्त्री-पुरुषो ! (स बाधः) अज्ञानादि बाधा वा पीड़ा से युक्त होकर (वां यज्ञं) आप के सत्संग की मैं (नमोभिः) विनम्र वचनों से (महयम्) स्तुति करता हूँ और (वां हुवे) आप दोनों की स्तुति करता हूँ। (वाम्) आप लोगों के

(नवानि) नये से नये (कृतानि) सम्पादित किये (इमानि ब्रह्म) ये नाना अन्नादि, धन और उपदिष्ट (मन्मानि) मननीय ज्ञानादि को लोग (ऋचसे) सेवन के लिये (जुजुषन्) प्राप्त करें।

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥३

भा०—व्याख्या देखो सू० ६० । मं० १२ ॥ इति तृतीयो वर्गः ॥

[६२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–३ सूर्यः । ३–६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम्।
समो दिवो ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥

भा०—(बृहत् सूर्यः पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्) महान् सूर्य जैसे बहुत तेजों को अपने में धारण करता है वैसे ही (सूर्यः) तेजस्वी पुरुष (बृहत्) महान् होकर (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (विश्वा जनिम) समस्त संघों को (उत् अश्रेत्) अपने पर धारण करे, और (पुरु अर्चींषि) बहुत सत्कारों को भी (उत् अश्रेत्) प्राप्त करे। वह सूर्यवत् (रोचमानः) तेजस्वी एवं सबको प्रिय लगता हुआ (दिवा) व्यवहार आदि से (समः) सबके प्रति समान (ददृशे) देखे। वह (क्रत्वा) बुद्धि से (कृतः) सम्पन्न होकर (कर्तृभिः) कार्यकर्त्ताओं द्वारा (सु-कृतः) उत्तम कार्यों में समर्थ (भूत्) हो।

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥ २ ॥

भा०—हे (सूर्य) तेजस्विन्! जैसे, (एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः पुरः प्रति उद्गच्छति) सूर्य शुक्ल किरण समूहों से पूर्व दिशा में प्राप्त दिन

उदय होता है वैसे ही राजन्! विद्वान्! तू भी (एतशेभिः) अश्वों से (एभिः स्तोमैः) इन स्तुत्य जन-संघों सहित वा (एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः) ज्ञानदायक, स्तुत्य मन्त्रसमूहों सहित (प्रति) प्रतिदिन (नः पुरः) हमारे समक्ष (उद् गाः) उदय हो। और (नः) हमारे में से (मित्राय) स्नेहवान् (वरुणाय) दुःखों के वारक, (अर्यम्णे) न्यायकारी, और (अग्नये) अग्रणी नेता जन के हित (नः) हम (अनागसः) निरपराध जनों को (प्र वोचः) उपदेश कर।

वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥३॥

भा०— (वरुणः) श्रेष्ठ जन, (मित्रः) स्नेहवान् पुरुष, (अग्निः) ज्ञानप्रकाशक विद्वान् ये सब (ऋतावानः) सत्य, ज्ञान और ऐश्वर्य-धारक (सहस्रं शुरुधः) हजारों शोक दुःखादि के रोकने वाली सुख-सम्पदाओं को (नः) हमें (वि रदन्तु) विशेषतया प्रदान करें। वे (चन्द्राः) आह्लादकारी जन (नः) हमें (उपमं) उत्तम (अर्कं) ज्ञान और अन्न (यच्छन्तु) प्रदान करें। वे (स्तवानाः) उपदेश करते हुए, (नः कामं) हमारी अभिलाषा (पूपुरन्तु) पूर्ण करें।

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥४॥

भा०—हे (द्यावाभूमी) आकाश और पृथिवी के समान ज्ञान-प्रकाश और आश्रयदाता (अदिते) माता-पिता जनो! आप दोनों (नः त्रासीथाम्) हमारी रक्षा करो। हे (ऋष्वे) गुणों में महान् आप दोनों (ये) जो (सु-जनिमानः) उत्तम जन्म प्राप्त होकर (वां) तुम दोनों को (जज्ञुः) पूज्य जानते हैं वे आप दोनों हमारी रक्षा करें। हम लोग (वरुणस्य हेडे मा भूम) श्रेष्ठ पुरुष के क्रोध या अनादर के पात्र न हों। (नृणाम्) साधारण मनुष्यों, (प्रियतमस्य मित्रस्य) प्रियतम

मित्र और (वायोः) वायु के समान उपकारक पुरुष के भी (हेडे मा भूम) क्रोध या अनादर में न रहें।

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥५॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सूर्य वा जल के समान उपकारक स्त्री-पुरुषो ! आप लोग (बाहवा) दो बाहुओं के समान (नः जीवसे) हमारे जीवन-सुख के लिये (प्र सिसृतम्) आगे बढ़ो (नः गव्यूतिम्) हमारे मार्ग को (घृतेन) जल से (आ उक्षतम्) सींचो। (युवाना) आप दोनों युवक (नः) हमें (जने) मनुष्यों (आ श्रवयतम्) प्रसिद्ध करो। (मे इमा हवा) मेरे ये वचन (श्रुतं) सुनो।

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।४

भा०—(नु) अवश्य, शीघ्र ही (मित्रः) स्नेहवान् और सर्वमित्र विद्वान् (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष और (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः) हमारे (त्मने) अपने लिये (नः तोकाय) हमारे पुत्र के लिये भी (वरिवः) उत्तम धन (दधन्तु) दें जिससे (नः) हमारे (विश्वा) सब कार्य (सुगा) सुगम और (सु-पथानि) उत्तम मार्ग युक्त (सन्तु) हों। हे विद्वान् जनो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप हमारी सदा कल्याण-साधनों से रक्षा करें। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—५ सूर्यः। ५, ६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि ॥ १ ॥

भा०—जैसे (सूर्यः) सूर्य (देवः) प्रकाशयुक्त होकर (तमांसि चर्म

इव) अन्धकारों को चर्म के समान (सम् अविव्यक्) एक साथ छिन्न-भिन्न करता है और (मानुषाणां साधारणः) मनुष्यों के प्रति एक समान प्रकाशित होकर (विश्व-चक्षाः उद् एति उ) सबको दिखाता हुआ उदित होता है और (मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः) मित्र, दिन और वरुण, रात्रि दोनों का प्रकाशक होता है वैसे ही (सु-भगः) उत्तम ऐश्वर्यवान् (सूर्यः) सूर्य-समान तेजस्वी, (मानुषाणां साधारणः) मनुष्यों के प्रति एक समान और (विश्व-चक्षाः) सबका मार्गदर्शी विद्वान् वा राजा भी (मित्रस्य) अपने स्नेही और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष का भी (चक्षुः) नेत्र के समान मार्गदर्शक हो। वह (देवः) विद्वान् (तमांसि) अज्ञान अन्धकारों को (चर्म इव सम् अविव्यक्) चर्म के समान एक साथ छिन्न भिन्न करे।

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥

भा०—जैसे (एतशः) वेगवान् अश्व वा यन्त्र (धूर्षु युक्तः) यन्त्रों के धुराओं में जुड़ा हुआ (समानं चक्रम्) सब यन्त्राङ्गों में समान रूप से गतिदाता चक्र को (परि आववृत्सन्) घुमाता है और जैसे (एतशः) तेजोयुक्त सूर्य (धूर्षुयुक्तः सन्) नाना ग्रहों के धारक केन्द्र में स्थित होकर (समानं चक्रं परि आ ववृत्सन्) ग्रह-चक्र को समान नीति से अपने गिर्द घुमाता है और जैसे (जनानां महान् केतुः) सब जन्तुओं का ज्ञापक, (सूर्यस्य=सूर्यः स्यः) वह सूर्य (अर्णवः) जल का दाता है (जनानां प्रसवीता) सबका प्रेरक होकर (उद् एति उ) नियम से उदय होता है वैसे ही (एतशः) ज्ञानी पुरुष भी (धूर्षु युक्तः) कार्य-भारों के धारण पदों पर नियुक्त होकर (वहति) कार्य-भार को उठावे और (समानं चक्रं) एक समान राजचक्र को भी (परि आ ववृत्सन्) यथार्थ रीति से चलावे। (स्य सूर्य) वह सूर्य के समान

वा (अर्णवः) समुद्र के समान तेजस्वी, गम्भीर और (जनानां) मनुष्यों के बीच में (केतुः) ध्वजातुल्य ऊंचा, (महान्) गुणों में बड़ा और (केतुः) स्वयं ज्ञानी वह (प्रसवीता) उत्तम मार्ग में चलाने हारा पुरुष (उत् एति उ) उत्तम पद को प्राप्त हो । वैसे ही प्रभु स्वप्रकाशक होने से 'एतश', सर्वप्रकाशक होने से 'सूर्य' है, वह समस्त ब्रह्माण्ड-काल-चक्र को चलाता, सबका उत्पादक, ज्ञानवान्, महान् है । (सूर्यस्य) सूर्यः । विभक्तिव्यत्यय इति सायणः । सूर्यः स्यः इति वा पदच्छेदः । विभक्तेर्लुक् ।

वि॒भ्राज॑मान उ॒षसा॑मु॒पस्था॑द्रे॒भैरुदे॑त्यनु॒मद्य॑मानः ।
ए॒ष मे॑ दे॒वः स॑वि॒ता च॑च्छन्द॒ यः स॑मा॒नं न प्र॑मि॒नाति॒ धाम॑ ॥३॥

भा०—जैसे (देवः सविता) प्रकाशमान् सूर्य, (उषसाम् उपस्थात्) उषाओं में से (विभ्राजमानः) विशेष चमकता हुआ, (रेभैः) स्तुतिकर्त्ता जीवों से (अनुमद्यमानः) स्तुत होकर (उदेति) उदय होता है वह (समानं धाम न प्रमिनाति प्रको प्राप्त तेज को नष्ट नहीं करता है, वैसे ही (यः) जो महापुरुष, (समानं धाम) अपने एक समान, अनुरूप तेज, नाम, स्थान पद को (न प्र-मिनाति) नष्ट नहीं करता तो भी (उषसाम्) प्रभात-वेलाओं के समान उत्तम अनुराग-युक्त प्रजाओं (रेभैः) विद्वानों द्वारा (अनु-मद्यमानः) स्तुति एवं उपदेश किया जाकर (उद् एति) विद्या-प्रकाश तथा बल-दीप्ति से उदय को प्राप्त होता, उन्नत पद प्राप्त करता है, (एषः) वह (मे) मेरा (देवः) ज्ञानदाता पुरुष वा ऐश्वर्यप्रद राजा (सविता) उत्पादक पितावत् (चच्छन्द) गृहवत् शरण दे ।

दि॒वो रु॒क्म उ॑रु॒चक्षा॒ उदे॑ति दू॒रेअ॑र्थस्त॒रणि॒र्भ्राज॑मानः ।
नू॒नं जनाः॒ सूर्ये॑ण॒ प्रसू॑ता॒ अय॒न्नर्था॑नि कृ॒णव॒न्नपां॑सि ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जैसे (दिवः रुक्म) आकाश में सुवर्ण-आभरण तुल्य

देदीप्यमान (उरु-चक्षाः) विशाल आकाश और लोकों का प्रकाशक (तरणिः) आकाश पार करने वाला, (भ्राजमानः) चमकता हुआ (दूरे-अर्थः) दूर २ तक स्वयं प्रकाश फैलाता हुआ (उदेति) उदय होता है और (जनाः) मनुष्य, जन्तुगण (सूर्येण प्रसूताः) सूर्य द्वारा प्रेरित होकर (अर्थानि अयन्) पदार्थ प्राप्त करते और (अपांसि कृणवन्) कर्म करते हैं। वैसे ही (तरणिः) नौका-तुल्य जीवों को दुःखों से पार करने वाला, (भ्राजमानः) तेजस्वी, (दूरे-अर्थः) दूर २ तक जाने वाला, दूर से भी धन प्राप्त करने वाला, (उरु-चक्षाः) बहुदर्शी पुरुष (दिवः रुक्म) कामनावान् प्रजा के बीच सुशोभित, उनको प्रिय होता है और (जनाः) सब जन, ऐसे (सूर्येण) सूर्यवत् ज्ञान और तेज से युक्त पुरुष से (प्रसूताः) प्रेरित और शिक्षित होकर (अर्थानि प्रयन्) अपने प्राप्य पदार्थों को प्राप्त हों और (अपांसि कृण्वन्) नाना कर्म करें।

यत्रा॑ च॒क्रुर॒मृता॑ गा॒तुम॑स्मै श्ये॒नो न दीय॒न्नन्वे॑ति॒ पाथः॑ ।
प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते विधेम॒ नमो॑भिर्मित्रावरु॒णोत ह॒व्यैः ॥ ५ ॥

भा०—पूर्व आधी ऋचा का सूर्य देवता है। (दीयन् श्येनः न) वेग से गति करता हुआ बाज पक्षी जैसे (पाथः अन्वेति) आकाश मार्ग में शिकार के पीछे जाता है वैसे ही (श्येनः) प्रशस्त मार्ग से जाने वाला विद्वान् पुरुष (दीयन्) सन्मार्ग पर चलता हुआ उस (पाथः) सन्मार्ग का (अनु एति) अनुगमन करे, (यत्र) जिससे जाते हुए (अमृताः) अमर आत्मा, दीर्घायु जन (अस्मै) इसको (गातुं चक्रुः) ज्ञान का उपदेश करते हैं।

उत्तरार्ध ऋचा के देवता मित्र और वरुण हैं। हे (मित्रावरुणा) श्रेष्ठ गुरुजनो ! (सूरे उदिते) सूर्य के उदय होने पर (हव्यैः नमोभिः) स्वीकार-योग्य अन्नों और विनय-वचनों से (वां) आप दोनों की (प्रति विधेम) प्रति दिन सेवा करें।

नू मित्रा वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥५

भा०—व्याख्या देखो सू० ६२। मं० ६ ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप्
५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥१॥

भा०—(अर्यमा) सूर्य जैसे (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में रहते हुए मेघों और सूर्य की किरण (घृतस्य निर्णिजः) जल और तेज के नाना शुद्ध रूपों को (प्र ददीरन्) अच्छी प्रकार से देते हैं, वैसे ही (दिवि) ज्ञान और व्यवहार में विद्यमान (रजसः) प्रजाजनों और (पृथिव्यां क्षयन्ता) ऐश्वर्यवान् पृथ्वीवासी (मित्रावरुणा) स्नेही एवं श्रेष्ठ जनो ! (वां) आप लोगों को (निः-निजः रजसः) शुद्ध पवित्र आत्मा वाले उत्तम जन (घृतस्य प्र ददीरन्) ज्ञानप्रकाश दें। (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, (सु-जातः) उत्तम पद पर प्रसिद्ध, (राजा) देदीप्यमान, (सु-क्षत्रः वरुणः) उत्तम बल का स्वामी, स्वयं वरणीय राजा ये सब (नः हव्यं) हमारा दिया पदार्थ (जुषन्त) सेवन करें।

राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥

भा०—हे (राजाना) राजा-रानी, वा राजा-सेनापति तुल्य प्रजाओं में प्रकाशित (महः ऋतस्य गोपा) बड़े धनैश्वर्य और ज्ञान के रक्षक,

(सिन्धु-पती) वेगवान् अश्वों, समुद्रवत् विशाल प्रजाजनों, सैन्यों तथा प्राणों के पालक, (क्षत्रिया) बलशाली होकर तुम दोनों (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो। हे (जीर-दानू) मेघ और वायु तुल्य संसार को वेग, जीवन और प्राण देने वाले! (मित्रावरुणा) स्नेहयुक्त और वरणीय श्रेष्ठ जनो! जैसे वायु और मेघ, वा विद्युत् और सूर्य दोनों (दिवः वृष्टिम् इन्वतः) आकाश से वृष्टि लाते हैं और (दिवः इडाम् इन्वतम्) भूमि से अन्न को उत्पन्न करते हैं वैसे ही आप दोनों (दिवः) व्यापार आदि से (वृष्टिम् अव इन्वतम्) समृद्धि की वृष्टि प्राप्त कराओ (उत) और (नः) हमें (इडां अव इन्वतम्) उत्तम वाणी और अन्न-सम्पदा प्राप्त कराओ।

मित्रस्तन्नो वरु॑णो दे॒वो अ॒र्यः प्र साधि॑ष्ठेभिः प॒थिभि॑र्नयन्तु।
ब्रव॒द्यथा॑ न॒ आ॒ दु॒रिः सु॒दास॑ इ॒षा म॑देम स॒ह दे॒वगो॑पाः ॥ ३ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेहवान् (वरुणः) वरणीय (देवः) दानशील (अर्यः) स्वामी, (नः) हमें (तत्) वे सब जन (साधिष्ठेभिः पथिभिः) अति उत्तम मार्गों से (प्र यन्तु) अच्छी प्रकार ले जावें। (आत्) अनन्तर (यथा) यथोचित रीति से (नः) हममें से (सु-दासे) उत्तम दानशील के हितार्थ (अरिः) स्वामी राजा (नः ब्रवत्) हमें उपदेश करे। हम सब (देव-गोपाः) विद्वानों से सुरक्षित होकर (इषा मदेम) अन्न से तृप्त-प्रसन्न हों।

यो वां॒ गर्तं॒ मन॑सा तक्ष॑दे॒तमू॒र्ध्वां धी॒तिं कृ॒णव॑द्धा॒रय॑च्च।
उ॒क्षेथां॑ मित्रावरु॒णा घृ॒तेन॒ ता रा॑जाना सुक्षि॒तीस्त॑र्पयेथाम् ॥४॥

भा०—(मित्रावरुणा राजाना घृतेन उक्षेथां) मित्र, वरुण, वा विद्युत् और सूर्य दोनों जैसे दीप्त होकर जल और तेज का वर्षण करते और (सु-क्षितीः तर्पयेथाम्) उत्तम भूमियों को तृप्त करते हैं वैसे हे (मित्रावरुणा) स्नेहवान् और दुःखवारक (राजाना) राजा जनो!

आप दोनों (घृतेन) जल और तेज से (सु-क्षितीः) उत्तम भूमियों, प्रजाओं को (उक्षेथाम्) सींचो, पुष्ट करो। (ता) वे आप दोनों प्रजाजनों को (तर्पयेथाम्) तृप्त करें और (यः) जो प्रजाजन (वां गर्त्तं) आप दोनों के रथ, सभाभवन और कृषि, स्तुति, उपदेश आदि भी (मनसा तक्षत्) ज्ञानपूर्वक करे, (ऊर्ध्वाम्) उन्नत (धीतिम्) कर्म (कृणवत्) करे, (धारयत् च) वहां ही स्थापित करे, आप दोनों (एतम्) उसको (तर्पयेथाम्) प्रसन्न करो।

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।६॥

भा०—(वायवे शुक्रः न) वायु को जैसे शीघ्र काम करने का सामर्थ्य प्राप्त है, वैसे हे (वरुण) श्रेष्ठजन ! हे (मित्र) स्नेहयुक्त जन (तुभ्यम्) तेरे लिये (एषः) यह (स्तोमः) स्तुति और (सोमः) यह ऐश्वर्य (शुक्रः) कान्तियुक्त होकर तेरी वृद्धि को (अयामि) प्राप्त हो। आप दोनों (धियः अविष्टं) सु-कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) बहुत से ज्ञान धारण करने वाली बुद्धियों, ज्ञानों का उपदेश करो। (यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः) आप हमें सदा उत्तम उपायों से पालन करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥ १ ॥

भा०—(ययोः) जिनका (अक्षितम्) अविनाशी, (असुर्यम्) प्राणों में रमण करने वाले, 'असुर' अर्थात् जीवों के हितकारक, (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ बल (विश्वस्य) सबको (जिगत्नु) जीतने वाला है वे दोनों (यामन्) राज्यप्रबन्ध के कार्य में (आचिता) आदर

प्राप्त करने योग्य हों। (सूरे उदिते) सूर्य तुल्य तेजस्वी पुरुष के उदय होने, वा सर्वोपरि पद प्राप्त कर लेने पर मैं प्रजाजन (वाम्) आप दोनों नर-नारी और राजा-प्रजा-वर्गों में से (पूतदक्षं) पवित्र बल और आचारवान् (मित्रं) सर्व स्नेही और (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (प्रति हुवे) प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करूं।

ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र या देह में, हे (मित्रा वरुणा) प्रजा के स्नेही, प्राणवत् प्रिय और वरणीय स्त्री पुरुषो! (द्यावा) सूर्य और भूमिवत् विद्वान् और अविद्वान् जन और (अहा च) दिन-रात्रिवत् स्त्री-पुरुष सभी (वां पीपयन्) आप दोनों को पुष्ट करते हैं, उसी देश में हम भी (अश्याम) सुख-समृद्धि प्राप्त करें। वे मित्र और वरुण दोनों ही (देवानाम्) विद्वान् मनुष्यों के बीच, प्राणों में प्राण उदान के समान (असुरा) बलवान् जीवनधारक, (तौ अर्या) वे दोनों ही स्वामी स्वामिनी के समान गृहपालक और (ता) वे दोनों ही (नः क्षितीः) हमारी भूमियों और मानव प्रजाओं को (ऊर्जयन्तीः) उत्तम अन्न और बल के सम्पादक (करतम्) बनावें।

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) परस्पर स्नेही, वरणीय राजा-प्रजा, स्त्री-पुरुषो! (ता) वे आप दोनों (भूरि पाशा) बहुत बन्धनों से बद्ध होकर (अनृतस्य) असत्याचरण को पार करने के लिये (सेतू) पुल के समान होओ और (रिपवे मर्त्याय) शत्रुभूत पापी पुरुष के नाश के लिये आप दोनों (दुर-अत्येतू) दुःख से अतिक्रमण-योग्य, अलंघनीय-शासन होओ। (वाम्) आप दोनों के (ऋतस्य पथा) सत्य के

मार्ग से चलकर हम भी (नावा आपः न) नाव से जलों के समान (दुरिता तरेम) सब दुःखों को पार करें ।

आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रावरुणा) सूर्य-मेघ वा वायु-मेघ के समान सर्वप्रिय जनो ! आप दोनों (नः) हमारे (हव्य-जुष्टिं) प्रेम से स्वीकार-योग्य अन्न आदि को स्वीकार करो । (घृतैः गव्यूतिम्) जलों से भूमि भाग के समान (इडाभिः) उत्तम वाणियों से वाणी के उत्तम पात्रों को (उक्षतम्) सेचन करो । आप दोनों (वाम्) अपने (दिव्यस्य) ज्ञान से पूर्ण (चारोः) उत्तम (उद्नः) जलवत् शान्तिदायक वचन का (वरम्) श्रेष्ठ प्रयोग (जनाय) समस्त जन के हितार्थ (प्रति) प्रति-दिन (आ पृणीतम्) करो ।

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ६४ मं० ५ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[६६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३, १७—१९ मित्रावरुणौ । ४—१३ आदित्याः । १४—१६ सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ९ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ५, ६, ७, १८, १९ आर्षी गायत्री । १७ पादनिचृद् गायत्री । ८ स्वराड् गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ स्वराड् बृहती । १२, १५ आर्षी भुरिग् बृहती । १४ आर्षी विराड् बृहती । १६ पुर उष्णिक् ॥ एकोनविंशति ऋचं सूक्तम् ॥

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः ।
नमस्वान्तुविजातयोः ॥ १ ॥

भा०—(तुवि-जातयोः) बहुत-सी विद्याओं में प्रवीण, (मित्रयोः) परस्पर स्नेही और (वरुणयोः) गुरु-शिष्य रूप से वरण करने वाले दोनों का (नमस्वान्) विनययुक्त व्यवहार वाला, (शूष्यः) सुख-

कारी, (स्तोमः) स्तुति-योग्य उपदेश (नः एतु) हमें प्राप्त हो।

या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा। असुर्याय प्रमहसा ॥२॥

भा०—(देवाः) विद्वान् मनुष्य (या) जिन दो को (धारयन्त) व्रत धारण कराते हैं वे आप दोनों (सु-दक्षा) उत्तम कर्मकुशल (दक्ष-पितरा) बल वीर्य के पालक, (प्र-महसा) उत्तम तेजस्वी होकर (असुर्याय) बलवान् पुरुषों में श्रेष्ठ पद के योग्य होते हैं।

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम्। मित्र साधयतं धियः ॥३॥

भा०—(ता) वे दोनों (नः) हमारे (स्तिपा) संघों के रक्षक और (तनूपा) शरीरों के रक्षक हों। हे (वरुण) श्रेष्ठ जन! हे (मित्र) स्नेह-वन्! विद्वन् आप लोग (जरितॄणाम्) उपदेष्टा पुरुषों की (धियः) बुद्धियों और विचारों को (साधयतम्) सफल करो।

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥४॥

भा०—(उदिते सूरे) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उदय होने पर (यत्) जो (अनागाः) अपराधादि से रहित (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी, (सविता) सर्व प्रेरक, शासक और (भगः) ऐश्वर्यवान् है वह (अद्य) आज के समान सदा (सुवाति) शासन करे।

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमें (अंहः) पाप कर्म से (अतिपिप्रति) पार करते हैं ऐसे (सु-दानवः) उत्तम उपदेशक, विद्वान् पुरुषो! आप लोगों से प्रार्थना है कि (यामन्) राज्य के नियन्त्रण और शत्रु पर चढ़ाई के कार्य में (सः) वह (क्षयः) शत्रुओं का नाशक पुरुष (नु) निश्चय से (क्षयः) गृह के समान (सुप्रावीः अस्तु नु) उत्तम रीति से रक्षक हो। (यामन्) विवाह-बन्धन का कार्य हो चुकने पर (सः क्षयः) वह ऐश्वर्य-युक्त, नव गृहपति (सु-प्रावीः प्र अस्तु) उत्तम गृहरक्षक हो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते ॥६

भा०—(स्व-राजः) स्वयं प्रकाशित, (स्व-राजः) धनैश्वर्य से चमकने वाले, प्रजाजनों के राजा और (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्री सभा वा तेजस्वी पुरुष, (ये) जो (अदब्धस्य) अखण्डित (व्रतस्य) कर्म करने में (ईशते) समर्थ हैं वे (महः-राजानः) बड़े ऐश्वर्य के राजा, स्वामी हैं।

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम् ॥७

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों में से (सूरे प्रति उदिते) सूर्य तुल्य तेजस्वी होकर उत्तम पद पर प्राप्त हो जाने पर मैं (मित्रम्) प्रत्येक स्नेही, (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (अर्यमणम्) न्यायपूर्वक स्वामिवत् नियन्ता और (रिशादसम्) दुष्टनाशक कह-कर (गृणाषे) स्तुति करूं।

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे। इयं विप्रा मेधसातये ॥८

भा०—हे (विप्राः) विद्वान् लोगो ! (अवृकाय) निश्छल और जिसको ज्ञान-प्रकाश प्राप्त नहीं ऐसे पुरुष के लिये उसके (शवसे) ज्ञान, बल वृद्धि हेतु (राया) ऐश्वर्य के साथ २ (हिरण्यया) हित और रमणीय (इयं मतिः) यह उत्तम बुद्धि, वा ज्ञान (मेध-सातये) उत्तम अन्न, यज्ञ फलादि प्राप्त करने के लिये सदा रहो।

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि ९

भा०—हे (देव वरुण) सुखदाता सर्व दुःखवारक ! हे (मित्र) सर्वप्रिय ! हम (ते स्याम) तेरे होकर रहें। (सूरिभिः सह) विद्वानों के साथ (ते) तेरी (इषं) इच्छा और (स्वः च) ज्ञान, आनन्द को (धीमहि) धारण करें।

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥१०॥९॥

भा०—(ये) जो (त्रीणि विदथानि) तीनों प्रकार के ज्ञान, कर्म,

यज्ञ और प्राप्तव्य पदार्थों और तीनों प्रकार के ज्ञातव्य वेदों और (विश्वानि) तीनों विश्वों को (धीतिभिः) कर्मों, बुद्धियों, वाणियों और अध्ययन आदि द्वारा और (परिभूतिभिः) उत्तम सामर्थ्यों से (येमुः) वश करते हैं वे (बहवः) बहुत से (सूर-चक्षसः) सूर्य तुल्य सब पदार्थों के ज्ञानोपदेष्टा, (अग्निजिह्वाः) अग्नि के समान ज्ञान-वाणी के वक्ता (ऋतावृधः) सत्य-ज्ञान के वर्धक हों। इति नवमो वर्गः ॥

वि ये द॒धुः श॒रदं॒ मास॒मादह॑र्य॒ज्ञम॒क्तुं चादृच॑म् ।
अ॒ना॒प्यं वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा क्ष॒त्रं राजा॑न आशत ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (शरदं) वर्ष, (मासम्) मास और (अहः अक्तुम्) दिन रात्र, (आत्) भी (ऋचं यज्ञम्) वेद मन्त्रों से स्तुत्य परमेश्वर, वा यज्ञ अथवा (यज्ञम् ऋचं) यज्ञयोग्य, उपास्य, वेद वेद्य प्रभु की (वि दधुः) विविध प्रकार से उपासना करते, वेद को धारण करते हैं वे (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) सर्वस्नेही (अर्यमा) न्यायकारी जन (राजानः) तेजस्वी राजा होकर (अनाप्यं) अन्यों से प्राप्त न होने वा बन्धु जनों से न बांटने योग्य (क्षत्रं) धन, ज्ञानमय वेद को (आशत) प्राप्त करते हैं ।

तद्वो॑ अ॒द्य म॑नामहे सू॒क्तैः सूर॒ उदि॑ते ।
यदोह॑ते॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा यू॒यमृ॒तस्य॑ रथ्यः ॥ १२ ॥

भा०—(वरुणः) वरणीय, (मित्रः) स्नेही (अर्यमा) स्वामिवत् हे विद्व जनो ! (यूयम्) आप (ऋतस्य) सत्य-ज्ञान के (रथ्यः) महारथियों के तुल्य होकर (यत्) जिस को (ओहते) धारते हो हम (उदिते सूरे) सूर्योदय होने पर (वः तत्) आपके उस ज्ञानैश्वर्य को (अद्य) आज (मनामहे) याचना करते हैं ।

ऋ॒तावा॑न ऋ॒तजा॑ता ऋ॒ता॒वृधो॑ घो॒रासो॑ अनृत॒द्विषः॑ ।
तेषां॑ वः सु॒म्ने सु॑च्छ॒र्दिष्ट॑मे॒ नरः॒ स्याम॒ ये च॒ सूर॑यः ॥१३॥

भा०—(ये च) और जो (सूरयः) विद्वान् लोग (ऋत-वानः) सत्य-ज्ञान का सेवन करने-कराने वाले (ऋतजाताः) सत्य-ज्ञान में प्रसिद्ध (ऋत-वृधः) सत्य वर्धक, (घोरासः) तेजस्वी, (अनृत-द्विषः) असत्य के द्वेषी हैं, हे (नरः) नायकवत् पुरुषो! (तेषां वः) उन आपके (सुच्छर्दिस्तमे) उत्तम रक्षा-गृह से युक्त (सुम्ने) सुखद शरण में सदा (स्याम) रहें।

उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥१४॥

भा०—जैसे (दिवः प्रतिह्वरे) आकाश में प्रत्यक्ष वक्र, वृत्त मार्ग में (त्यत् दर्शतं वपुः उत् एति उ) वह दर्शनीय रूप वाला सूर्य उदय होता है और (यत्) जो (ईम्) सब तरफ से (आशुः) वेग से गतिमान् (देवः) प्रकाशप्रद, (एतशः) शुक्ल वर्ण होकर (विश्वस्मै चक्षसे अरं) समस्त संसार को दिखाने के लिये है वैसे ही (त्यत्) वह (दर्शतं वपुः) दर्शनीय शरीर वाला पुरुष (प्रतिह्वरे) प्रत्येक कुटिल व्यवहार के ऊपर (दिवः) अपने तेज के कारण (उत् एति उ) उत्तम होकर शासन करता है, (यत्) जो (ईम्) सब ओर (आशुः) शीघ्रकारी, (देवः) विद्वान् (एतशः) शुक्लकर्मा, सदाचारी होकर (विश्वस्मै चक्षसे) सबको ज्ञान-मार्ग दिखाने और सत् उपदेश करने के लिये (अरं वहति) अधिक ज्ञान और बल को, रथ को अश्व के समान चलाने में समर्थ होता है।

शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥१५॥१०॥

भा०—(जगतः तस्थुषः) जंगम और स्थावर (शीर्ष्णः-शीर्ष्णः) प्रत्येक शिर के (पतिम्) पालक (सूर्यम्) प्रेरक को (विश्वं रजः समया) समस्त संसार के बीच (सप्त हरितः) सातों दिशाओं के वासी प्रजाजन (स्वसारः) उत्तम भगिनियों के तुल्य स्वयं शरण आकर

(रथे वहन्ति) रथ पर बैठाकर ले जाते हैं, जिससे वह (सुवितार) उत्तम मार्ग से ले चले। ऐसे ही सातों (स्वसारः सु-असारः) उत्तम रीति से शस्त्रास्त्र चालक (हरितः) वीर-सेनाएं तेजस्वी को सन्मार्ग पर चलने के लिये स्थावर, जंगम, अर्थात् स्थिर चल-सम्पदा और प्रजा के स्वामी को बीच रथ में जुड़े अश्वों के समान धारण करती हैं।

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥१६॥

भा०—(तत्) वह (देव-हितं) विद्वानों, प्राणों के बीच विद्यमान, कल्याणकारी (शुक्रम्) सूर्यवत् तेजस्वी (उत्-चरत्) उत्तम पद को प्राप्त करे और हम उसकी कृपा से (शरदः शतं पश्येम) सौ बरस तक देखें, (शरदः शतं जीवेम) सौ बरस तक जीवें। इति दशमो वर्गः॥

काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत्। मित्रश्च सोमपीतये ॥१७॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ जन! और (मित्रः च) सर्वस्नेही, आप दोनों (सोमपीतये) ओषधि-रसवत् राष्ट्र की रक्षा और उपभोग के लिये (काव्येभिः) कविजनों की वाणियों द्वारा (अदाभ्या) अहिंसा-व्रतचारी होकर (आयातं) आओ और (द्युमत्) ऐश्वर्यपूर्ण देश को (यातम्) प्राप्त करो।

दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा। पिबतं सोममातुजी १८

भा०—हे (वरुणः मित्रः च) वरुण और मित्र, रात्रि दिन के तुल्य, स्त्री-पुरुषो! आप (अद्रुहा) परस्पर द्रोह न करते हुए (आतुजी) शत्रुओं का नाश और प्रजाओं का पालन करते हुए (दिवः धामभिः) सूर्य के प्रकाशमय तेजों से प्रभावित होकर (सोमं पिबतु) ऐश्वर्य को प्राप्त हों।

आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा।
पातं सोममृतावृधा ॥ १९ ॥ ११ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) दिन-रात्रि वा सदा परस्पर स्नेही और वरण करने वाले (ऋत-वृधा) सत्य से बढ़ने बढ़ाने वाले होकर

(सोमम् पातम्) प्रजा और शिष्यवर्ग को (पातं) पालन करो और आप दोनों (नरा) स्त्री पुरुष (आहुतिम् जुषाणा) आदर से दिये दान को स्वीकार करते हुए, (आ यातम्) प्राप्त हों । इत्येकादशो वर्गः ॥

[६७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आर्षी त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥१॥

भा०—हे (नृपती) राजा रानी के समान मनुष्यों के पालक, हे (धिष्ण्यौ) स्तुति-योग्य ! उत्तम बुद्धि-सम्पन्न स्त्री-पुरुषो ! (यः) जो (दूतः न) दूत के समान (वां) आप दोनों को (अजीगः) सचेत करता, ज्ञान देकर प्रबुद्ध करता है, वह मैं विद्वान् (वां प्रति) आप दोनों के प्रति (हविष्मता) उत्तम ग्रहण योग्य भावों से युक्त, (यज्ञियेन) सत्संग योग्य (मनसा) मन वा ज्ञान से (जरध्यै) उपदेश करने के लिये (सूनुः पितरा न) माता पिता के प्रति पुत्र तुल्य (रथम्) रमणीय वचन और उत्तम व्यवहार का (अच्छ विवक्मि) उपदेश करता हूँ ।

अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २॥

भा०—(समिधानः) अच्छी प्रकार दीप्त (अग्निः) यज्ञाग्नि, ज्ञानाग्नि, सूर्य एवं अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् (अस्मे अशोचि) हमारे हितार्थ चमके । (तमसः अन्ताः चित) अन्धकार अज्ञान के परले सिरे तक (उपो अदृश्रन्) स्पष्ट दिखाई दे । (दिवः दुहितुः उषसः) दीप्त सूर्य-कन्या के समान उषा से ही (पुरस्तात् श्रिये) पूर्व दिशा की शोभा के लिये जैसे सूर्य उत्पन्न होता है वैसे ही (दिवः दुहितुः) ज्ञानप्रकाश का दोहन करने वाले, (उषसः) पापों और अज्ञान के नाशक मातृवत् गुरु

से (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ शिष्यरूप पुत्र (पुरस्तात्) आगे शोभा के लिये ही (केतुः अचेति) पूर्ण ज्ञानवान् होकर प्रबुद्ध होता है।

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान्।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व रूप इन्द्रियों के स्वामी, नर-नारी वर्गों ! हे (नासत्या) कभी असत्य व्यवहार न करने वाले वा (न-असत्-यौ) कभी असत्, कुमार्ग पर न जाने वाले जनो ! (सुहोता) उत्तम ज्ञानदाता (वि वक्वान्) विविध विद्याओं का उपदेष्टा पुरुष (स्तोमैः) वेद मन्त्रों और उपदेशों से (नूनम्) अवश्य (वां) तुम दोनों को (अभि सिषक्ति) अपने साथ एक सूत्र में बांधता है, आप दोनों (वसुमता रथेन) धन, अन्नादि सम्पन्न रथ से यात्री जैसे सुख से देशान्तर चला जाता है वैसे ही (वसु-मता) शिष्यों से युक्त, (रथेन) स्थिर भाव के विद्यमान, (स्वर्विदा) ज्ञान के प्रकाश को स्वयं प्राप्त और अन्यों को प्राप्त कराने वाले आचार्य की सहायता से (पूर्वीभिः) पूर्व विद्वानों से उपदिष्ट, (पथ्याभिः) हितकारी मार्गों से (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो।

अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ४

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो ! (नूनम्) अवश्य मैं (युवाकुः) तुम को हृदय से चाहता हुआ, (वसूयुः) शिष्य-ब्रह्मचारियों की कामना करता हुआ आचार्य (सुते) उत्तम ज्ञानैश्वर्य के निमित्त (अवोः) ब्रह्मचर्यादि-पालक आप दोनों में से (वां) तुम दोनों को (माध्वी) ऋग्वेद, मधु-विद्या, उपनिषद्-ज्ञान और 'मधु' आनन्द-प्रद अन्नादि के योग्य जानकर (हुवे) प्राप्त करूं। (स्थविरासः) ज्ञान-वृद्ध (अश्वाः) विद्या-विचक्षण पुरुष (वां) तुम दोनों को (आ वहन्तु)

सन्मार्ग पर ले चलें। आप लोग (अस्मे) हमारे (सु-सुता) उत्तम रीति से बनाये, (मधूनि) ज्ञानों और अन्नों का (पिबाथः) उपभोग और पालन करो। ज्ञानवृद्धों के सत्संग से एकत्र करने योग्य होने से ज्ञान और गृहस्थों से भिक्षा-रूप में संग्रह करने योग्य अन्न 'मधु' है। उसका संग्रह करना 'मधुकरी' वृत्ति है।

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम्। विश्वां अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥५॥१२

भा०—हे (देवा अश्विना) विद्याभिलाषी शिष्य-शिष्याजनो! आप दोनों (मे) मेरी (प्राचीं) ज्ञानयुक्त, पूज्य (अमृध्राम्) अविनाशी और (वसूयुं) धनैश्वर्य युक्त (धियं) बुद्धि और कर्म को (सातये) प्राप्त करने के लिये (कृतम्) यत्न करो। वैसे ही हे (देवा अश्विना) जितेन्द्रिय, ज्ञानदाता गुरु-गुरुपत्नी जनो! आप दोनों (वाज-सातये) मुझ शिष्य को ज्ञान देने के लिये (प्राचीम्) अति उत्कृष्ट, (वसू-युं) शिष्य को प्राप्त होने वाली (अमृध्रां) अविनाशी, शिष्य को कष्ट न देने वाली (धियं) बुद्धि और वाणी का (कृतम्) उपदेश करो। आप दोनों (वाजे) संग्राम और ज्ञान प्राप्ति के समय (विश्वाः पुरन्धीः) बहुत ज्ञानधारक बुद्धियों, वाणियों की (आ अविष्टं) रक्षा करो। आप दोनों (शची-पती) वाणी और शक्ति के पालक होकर (नः) हमें (शचीभिः) वाणियों से (ताः) नाना बुद्धियें देकर (शक्तं) हमें शक्तियुक्त करो। इति द्वादशो वर्गः॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! आप (आसु धीषु) इन कर्मों और बुद्धियों के बीच, (नः अविष्टं) हमारी रक्षा करो और (नः) हमारा (रेतः) वीर्य, (प्रजावत्) प्रजा-उत्पादक और (अह्रयम्) नष्ट न होने वाला (अस्तु) हो। हम (तोके तनये) पुत्र-पौत्रादि के लिए

(वां) आप की (तूतुजानाः) रक्षा करते हुए, (सु-रत्नासः) उत्तम ऐश्वर्य-युक्त होकर (देव-वीतिं) विद्वानों की संगति को (आ गमेम) प्राप्त हों।

एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥

भा०—हे (माध्वी) अन्न वा ज्ञान के मधुवत् संग्राहक और सेवा करने वाले जनो! (एषः स्यः) यह वह (निधिः) ज्ञानैश्वर्यों का खजाना, विद्याओं का सागर गुरुजन (पूर्वगत्वा इव) पूर्वगामी आदर्श पुरुष तुल्य (वां सख्ये) आप दोनों के मित्र भाव में (हितः) स्थित है, वह (अस्मे) हम प्रजा के हितार्थ (रातः) दिया गया है। आप लोग (मानुषीषु विक्षु) मनुष्य-प्रजाओं में (हव्यं अश्नन्ता) उत्तम अन्नादि को भोगते हुए (अहेडता मनसा) क्रोध और अपमान-रहित चित्त होकर (अर्वाक् यातम्) हमारे पास आया करें।

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात्।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे (भुरणा) प्रजाओं के पोषक जितेन्द्रिय नर नारियो! (एकस्मिन् समाने) एक समान आदर युक्त (योगे) परस्पर मिलने पर (वां रथः) आप दोनों के रथ के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारा उपदेष्टा पुरुष (सप्त स्रवतः) प्रवाह से निकलने वाली सात छन्दोमय वाणियों को (परि गात्) प्राप्त करे, करावे। (ये) जो (वां) आप दोनों के (धूर्षु) धुराओं में लगे, धुरन्धर विद्वान् (तरणयः) वेगवान् अश्व तुल्य वेग से संकटों से पार उतारने वाले विद्वान् (वां वहन्ति) आप दोनों को सन्मार्ग पर ले जाते हैं (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान् (देव-युक्ताः) विद्वानों से नियुक्त होकर (न वायन्ति) सत्पथ से विचलित नहीं होते।

असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥९॥

भा०—हे नर-नारियो! (ये) जो (राया) ऐश्वर्य बल से (मघ-देयं) दातव्य ऐश्वर्य (जुनन्ति) देते हैं उन (मघवद्भ्यः) ज्ञान-धन-शाली पुरुषों के उपकार हेतु आप लोग (असश्चता हि भूतम्) दुर्व्यसनों में असक्त रहो। (ये) जो लोग (अश्व्या) अश्वयुक्त और (गव्या) गौवों से समृद्ध (मघानि) धनों को (पृञ्चन्तः) प्राप्त करते हुए (सूनृताभिः) उत्तम वाणियों और अन्नों से (बन्धुं) बन्धुजन को (प्र तिरन्ते) अच्छी प्रकार बढ़ाते हैं उनके लिये आप विषयादि में न फंसकर सेवा में तत्पर रहो।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥१३

भा०—हे (अश्विना) जिज्ञासु स्त्री-पुरुषो! आप (युवाना) युवा-युवति होकर (मे) मुझ विद्वान् के (हवम् आ शृणुतम्) उपदेश को आदर से सुनो। आप लोग (इरावत् वर्त्तिः) जल अन्नयुक्त मार्ग के समान, उत्तम प्रेरणा-युक्त व्यवहार को (आ यासिष्टं नु) अवश्य प्राप्त होओ। (रत्नानि धत्तम्) रत्नतुल्य श्रेष्ठ गुणों को धारण करो। (सुरीन्) विद्वान् पुरुषों को (जरतं च) प्राप्त होकर विद्या-लाभ करो। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करें। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[६८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ६, ८ साम्नी त्रिष्टुप्। २, ३, ५ साम्नी निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ७ साम्नी भुरिगासुरी विराट् त्रिष्टुप्। निचृत् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः॥ १॥

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रियों पर वशी स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (दस्रा) दुखनाश में तत्पर होकर (युवाकोः) तुम दोनों को चाहने वाले

युक्त विद्वान् की (गिरः) उपदेश वाणियों को (जुजुषाणा) सेवन करते हुए (शुभ्रा) उत्तम गुणों, आभरणों से शोभित और (सु-अश्वा) उत्तम अश्वारूढ़ वीरवत्, उत्तम विद्या में गतिशील होकर (आ यातम्) आओ। (नः) हमारे (प्रति-भृता) बदले में दिये भरण पोषणार्थ (हव्यानि) उत्तम अन्नों का (वीतम्) भोजन करो।

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान्, स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों के लिये (मद्यानि) आनन्दप्रद (अन्धांसि) जीवन-धारक उत्तम अन्न (प्र अस्थुः) अच्छी प्रकार रक्खे हैं आप दोनों (मे) मेरे (हविषः) उत्तम अन्न को (वीतये) खाने के लिये (अरं गन्तं) अवश्य आइये। (अर्यः) शत्रु के (हवनानि) आह्वानों को (तिरः) तिरस्कार करके (नः हवनानि) हमारे उत्तम वचनों को (श्रुतं) श्रवण करो।

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (रथः) उपदेश (मनो-जवाः) मन को प्रेरणा करने वाला (शत-ऊतिः) सैकड़ों ज्ञानों से युक्त और सैकड़ों संकटों से रक्षक होकर (वां) आप दोनों के (रजांसि) तेज को सूर्य के समान, राजस आवरणों को (तिरः इयर्त्ति) दूर करता है। हे (सूर्यावसू) सूर्य के समान तेजस्वी गुरुजनो, विद्या-प्रकाशक गुरु के अधीन ब्रह्मचर्य से बसने वाले ब्रह्मचारी- ब्रह्मचारिणी जनो ! वह सदा (अस्मभ्यं इयानः) हमारे हितार्थ आता हुआ (रजांसि) राजस आवरणों को (तिरः) दूर करे।

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्याम्।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥

भा०—(देवया) विद्वानों को अन्नों और ज्ञानों का दाता, उनका सत्कारक पुरुष (अयं ह) वह है (यत्) जो (अद्रिः) मेघ तुल्य उदार होकर (सोम-सुत्) उत्तम अन्न ओषधियों के रसवत् ज्ञानदाता होकर (ऊर्ध्वः) उत्तम पद पर स्थित होकर (युवभ्याम्) तुम दोनों के लाभ के लिये (विवक्ति) विविध उपदेश कहे। (विप्रः) विद्वान् पुरुष (वल्गू) उत्तम वाणी बोलने वाले आप दोनों का (हव्यैः) दान योग्य उत्तम ज्ञानों और अन्नादि से (वहृतीत) सत्कार करे।

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम्।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (वाम्) आप दोनों का (प्रियः सन्) प्रिय होकर (महिष्वन्तं) उत्तम परिणाम-जनक (ओमानं) ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य (दधते) स्वयं धारता और आपको धारण कराता है, उस (अत्रये) त्रिविध ताप रहित, तीन ऋणों से मुक्त विद्वान् के लिये (यद् वा चित्रं भोजनं नु अस्ति) जो आपका नाना प्रकार का भोजन है वह (नि युयोतम्) अवश्य पृथक् करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे।
अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् रथों, यन्त्रों के स्वामी स्त्री-पुरुषो! आप लोग (हविर्दे) अन्न, भूमि और उत्तम साधनों के दाता (जुरते) वृद्ध, मान्य (च्यवानाय) जाने को उद्यत पुरुष हितार्थ (प्रतीत्यम्) प्रत्येक देश में पहुँचने योग्य (इतः-ऊति) इधर उधर से रक्षायुक्त, (वर्पः) उत्तम रूपयुक्त रथादि (अधि धत्थः) प्रदान करते रहो। (वां त्यत्) आप दोनों का वही (प्रतीत्यं भूत्) प्रसिद्धकर कर्म है।

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् रथी सारथीवत् साधनयुक्त जनो! (दुरेवासः) दुष्ट कामनायुक्त (सखायः) मित्र लोग जिसको (मध्ये समुद्रे) कष्टों के बीच समुद्र में (जहुः) छोड़ देते हैं (भुज्यम्) भुजा का सहारा चाहने वाले (त्यं) उस पुरुष को आप लोग (निः पर्षद् ईं) अवश्य पार करो (यः) जो (आराव) बिचारा, नीरव, मूक और (युवाकुः) तुम दोनों को चाहता, पुकारता और सहायता की याचना करता हो।

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः॥ ८॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों और यन्त्रों की विद्या जानने वाले स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (जसमानाय) प्रजानाश करने वाले, (वृकाय) चोर दम्भी पुरुष के दमन के लिये (चित्) अवश्य (शक्तम्) समर्थ बनो। और (हूयमाना) आदर से बुलाये गये आप दोनों (शयवे) सुखेच्छु पुरुष के हितार्थ (श्रुतम्) उसकी प्रार्थनादि श्रवण करो। (यौ) जो आप दोनों (शक्ती) शक्ति और (शचीभिः) वाणियों द्वारा (अपः न) जल जैसे नदी को पूर्ण करते वैसे (स्तर्यं) आच्छादन, भरण, पोषण और आश्रय देने और (अघ्न्याम्) न मारने योग्य गौ के समान कन्या, स्त्री भूमि और प्रजा को (अपिन्वतम्) पुष्ट करो।

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥९॥१५॥

भा०—हे उत्तम स्त्री-पुरुषो! (उषसां अग्रे, यथा सु-मन्मा कारुः जरते) प्रभात वेलाओं के आगमन के पूर्व जैसे उत्तम विचारवान् पुरुष स्तुति करता है वैसे (सु-मन्मा) उत्तम ज्ञानवान्, (बुधानः) स्वयं बोधवान् अन्यों को बोध कराता हुआ (कारुः) मन्त्रों का व्याख्याता विद्वान् (एषः स्यः) वही है जो (सूक्तैः) उत्तम मन्त्र गणों से (उषसाम् अग्रे) ज्ञान-कामना वाले शिष्यों के समक्ष (जरते) विद्या का उपदेश

करता है। (अघ्न्या पयोभिः) गौ जैसे दुग्धों से पालक को बढ़ाती है वैसे ही 'अघ्न्या' अविनाशी वेदवाणी, प्रभुशक्ति वा आत्मशक्ति (तं) उसको (इषा वर्धत्) इच्छा शक्ति से बढ़ाती है। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[६९]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ७ त्रिष्टुप्। ३ आर्षी स्वराड् त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान्॥१॥

भा०—जैसे (रथः हिरण्ययः) लोह-सुवर्णादि धातु का बना रथ (वृषभिः अश्वैः याति) बलवान् अश्वों वा बैलों से चलता है, वह (घृत-वर्तनिः) जल से सिंचे मार्ग पर चलने हारा और (पविभिः रुचानः) चक्रधाराओं से सुशोभित और (इषां वोढा) इष्ट अन्नादि का वहन करने वाला और (वाजिनीवान्) बलवती शक्ति से युक्त होकर (नृ-पतिः) मनुष्यों का रक्षक होता है वैसे ही (वाजिनीवान्) बलवती सेना, ज्ञानसम्पन्न वाणी और भूमि का स्वामी, (नृ-पतिः) प्रजा पालक राजा, (रथः) रमणीय-स्वभाव, उत्तम विद्या का उपदेष्टा, प्रजा को रमाने हारा (हिरण्ययः) हितैषी और सुखप्रद (बद्बधानः) दुष्टों को बाधा और बन्धनादि करता हुआ, (वृषभिः अश्वैः) विद्याओं में पारंगत वीर पुरुषों सहित (रोदसी वां) सूर्य-भूमिवत् सम्बद्ध आप दोनों राजा-प्रजावर्गों और गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को (आ यातु) प्राप्त हो। वह (घृत-वर्त्तनिः) स्निग्ध मार्ग से जाने वाला, उत्तम व्यवहारवान् और (पविभिः रुचानः) पवित्र आचरणयुक्त, उत्तम हथियारों से सुशोभित गृहस्थ (इषां वोढा) अभिलषित दार से विवाह करने हारा हो और राजा

(इषां वोढा) सेनाओं को अपने जिम्मे लेकर चलने हारा हो।

स पंप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥२॥

भा०—जैसे रथ (त्रि-बन्धुरः) सारथि आदि के बैठने के योग्य तीन स्थानों से युक्त होता है जिनसे (कुत्र चित् यामं दधाता) कहीं भी जाना चाहते हुए रथी सारथी जाते हैं वैसे ही हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! (सः) वह विद्वान् और वीर पुरुष (भूमा) महान् सामर्थ्य से युक्त, (पञ्च अभि) पांचों जनों के समक्ष ज्ञान और बल का विस्तार करता हुआ (त्रि-बन्धुरः) तीनों वेदों का धारक और तीन प्रकार के बल का आश्रय होकर, (मनसा) ज्ञान और प्रबल चित्त से युक्त होकर (अभि यातु) आगे आवे। (येन) जिसकी सहायता से आप दोनों स्त्री-पुरुष, राजा-रानी, (देवयन्तीः विशः) कामनायुक्त प्रजाओं को (गच्छथः) प्राप्त होते और (कुत्र चित्) जहां चाहे कहीं भी (यामं दधानां) गमन, परस्पर वैवाहिक बन्धन और राज्य-प्रबन्ध को धारण करते हुए (गच्छथः) प्राप्त होते हो।

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः।
वि वां रथो वध्वा३यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥३॥

भा०—जैसे (रथः वर्त्तनिभ्यां दिवः अन्तान् बाधते) रथ चक्र-धाराओं से भूमि के प्रान्त भागों को पीड़ित करता है वैसे ही हे स्त्री-पुरुषो! राज-प्रजाजनो! (वां) आप दोनों में (रथः) रम्य व्यवहार-वान्, वा स्थिर, दृढ़ पुरुष (वध्वा) सहयोगिनी वधू वा कार्य-भार की वाहक शक्ति के साथ (यादमानः) यत्नवान् होता हुआ (वर्त्तनिभ्याम्) ऐहिक और परमार्थिक व्यवहारों या देवयान पितृयाण मार्गों से (दिवः अन्तान् बाधते) ज्ञान-सिद्धान्तों का अवगाहन करे। हे (स्वश्वा) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों से युक्त! हे (दस्रा) अज्ञानादि-नाशक जनो! आप दोनों (यशसा) यश के साथ (अर्वाग् यातम्) आगे बढ़ो और

(मधुमन्तं निधिं) मधुर ज्ञानों से युक्त, वेद-निधि या खजाने का (पिबाथः) पालन और उपभोग करो ।

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों में (सूरः दुहिता) सूर्य की कान्ति वाली उषा के समान सुन्दरी (योषा) पुरुष की प्रेमपूर्वक अभिलाषा वाली स्त्री (परि-तक्म्यायाम्) कामाग्नि-युक्त, यौवन दशा में, (श्रियं) आश्रय-योग्य, सेवनीय पुरुष को (परि वृणीत) स्वीकार करे । आप दोनों (शचीभिः) उत्तम कर्मों और वाणियों से (देवयन्तम्) प्रिय कामनावान् सहयोगी को (अवथः) प्राप्त हुआ करो और (वां घ्रंसम्) आप दोनों में तेजस्वी पुरुष को (ओमना) रक्षण-योग्य बल सहित (वयः) उत्तम, दीर्घायु, अन्न बलादि (परि गात्) प्राप्त हो ।

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥५॥

भा०—हे (रथिरा) रथ पर स्थित रथी सारथी के समान सहयोगी स्त्री-पुरुषो ! (वां) आप दोनों में से (यः) जो प्रत्येक (रथः) स्थिर भाव से रहने और गृहस्थ में रमने वाला हो वह (उस्राः वस्ते) किरणों को सूर्य के समान, उज्ज्वल वस्त्रों को धारण करे । वह (युजानः) उड़े रथ तुल्य स्वयं (युजानः) संयुक्त होकर, ग्रन्थि जोड़कर (वर्त्तिः परियाति) गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हो । (उषसः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती कन्या की (व्युष्टौ) विशेष विवाह की कामना होने पर (तेन) उस पुरुष से ही (नः) हमें (शं योः) शान्ति और सुख प्राप्त हो । हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ अर्थात् परस्पर संगति और दान-प्रतिदानमय सद्-व्यवहार में आप दोनों (नि वहतम्) एक दूसरे को धारण करो, विवाहित होकर रहो ।

नरा॑ गौ॒रेव॑ वि॒द्युतं॑ तृषा॒णास्माक॑म॒द्य सव॒नोप॑ यातम् ।
पु॒रु॒त्रा हि वां॑ म॒तिभि॒र्हव॑न्ते॒ मा वा॑म॒न्ये नि य॑मन्देव॒यन्तः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(गौरा इव तृषाणा सवना) जैसे प्यासे दो मृग जलों को प्राप्त करते हैं वैसे हे (नरा) स्त्री-पुरुषो ! (अस्माकं) हम में से (गौरा) विद्या वाणी में निष्णात होकर (विद्युतम् उप यातम्) विशेष कान्ति को प्राप्त करो और (तृषाणा) कामनावान् या अति उत्सुक होकर (अद्य) आज (सवना) यज्ञों, ऐश्वर्यों और पुत्र-प्रसवादि गृहोचित कार्यों को (उप यातम्) प्राप्त होओ । विद्वान् पुरुष (वां) आप दोनों की (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों में (हवन्ते हि) स्तुति करते हैं । (अन्ये) दूसरे शत्रुजन (देवयन्तः) द्यूतक्रीड़ा आदि व्यवहार करते हुए (वाम् मा नियमन्) आप दोनों को न फंसालें ।

यु॒वं भु॒ज्युमव॑विद्धं समु॒द्र उदू॑हथु॒रर्ण॑सो॒ अस्रि॑धानैः ।
प॒त॒त्रिभि॑रश्र॒मैर॑व्य॒थिभि॑र्दं॒सना॑भिरश्विना पा॒रय॑न्ता ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रे अवविद्धं भुज्युम् यथा अश्विना अस्रिधानैः पतत्रिभिः अर्णसः पारयतः) समुद्र में फंसे भोग्य ऐश्वर्य की कामना वाले व्यापारी को जैसे वेगयुक्त नौका यन्त्रादि के अध्यक्ष जन पतवारों द्वारा पार करते हैं वैसे हे (अश्विना) जितेन्द्रिय उत्तम शिष्यो ! एवं रथी-सारथि-वत् गृहस्थ-रथ में स्थित स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (समुद्रे अवविद्धं) कामनामय समुद्र में अवपीड़ित, (भुज्युम्) एक दूसरे का सहारा चाहने वाले या सांसारिक भोग वा संसार में रक्षा चाहने वाले सहचर को (अर्णसः) पितृऋण से (अस्रिधानैः) नष्ट न होने वाले (अश्रमैः) न थकने वाले, (अव्यथिभिः) पीड़ित न होने और अन्यों को पीड़ा न देने वाले (पतत्रिभिः) गमन योग्य तीन आश्रमों से और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों से (पारयन्ता) पार करते हुए (उद् ऊहथुः) उत्तम मार्ग से ले जाओ ।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥१६॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ६७ । मन्त्र १० ॥ इति षोडशो वर्गः ॥

[७०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥१॥

भा०—हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे वरणीय उत्तम स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (नः) हमारे (आगतम्) पास आओ । (वां) आप दोनों का (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (तत् स्थानम्) गृहस्थाश्रम (प्र अवाचि) उत्तम कहा है, (यत्) जिसमें (वाजी) बलवान् पुरुष (शुन-पृष्ठः) सुखद पीठ वाले अश्व के समान सुखों का आश्रय होकर (अस्थात्) रहता है । आप पति-पत्नी (ध्रुवसे) स्थिरता के लिये (योनिम् सेदथुः) एक गृह में विराजते हो ।

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥२॥

भा०—(दुरोणे घर्मः) जहां कोई चढ़ नहीं सकता ऐसे ऊंचे आकाश में सूर्य के समान (मनुषः) मनुष्य (दुरोणे) घर में और राजा राष्ट्र में उच्च पद पर विराज कर (अतापि) तप करे । ऐसे ही ब्रह्मचारी (घर्मः) ज्ञान-बल से सिक्त-स्नातक होकर (मनुषः दुरोणे) मननशील आचार्य के गृह में (अतापि) तप करे, उस समय (वां) तुम दोनों को (चनिष्ठा) श्रेष्ठ व गुरुवचनमय (सुमतिः) शुभमति (सिषक्ति) प्राप्त हो । (एतग्वा चित्) अश्व के समान गृहस्थ-रथ में नियुक्त आप दोनों (सुयुजा) उत्तम सहयोगी जनों को (युजानः) जोड़ता हुआ, सत्कर्म में नियुक्त करता

हुआ (यः) जो (समुद्रान् सरितः) समुद्रों को नदियों के समान (पिपर्त्ति) पूर्ण करे वह उत्तम ज्ञानी गुरु सूर्यवत् तेजस्वी हो।

यानि स्थानान्यश्विना दुधाथे दिवो युह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री पुरुषो! (दिवः ओषधीषु) सूर्य-ताप को धारण करने वाली (विक्षु) प्रजाओं में दिन-रात्रि के समान आप दोनों भी (दिवः) इस पृथिवी की (यह्वीषु) बड़ी २ (ओषधीषु) शत्रु-सन्तापक तेज की धारक सेनाओं और (यह्वीषु विक्षु) 'यहु' अर्थात् सन्तानवत् पालन-योग्य प्रजाओं के बीच में (यानि) जितने भी (स्थानानि) आदर के पद हैं उन सब पर आप लोग (पर्वतस्य मूर्धनि) पर्वत के शिरोभाग में सूर्यवत् तेजस्वी होकर (सदन्ता) विराजते हुए, (दाशुषे जनाय) करादि व वस्त्राभूषणादि देने वाले (जनाय) प्रजाजन की वृद्धि के लिये (वहन्ता) कार्य-भार को अपने कन्धों पर लेते हुए (दधाथे) धारण करो।

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम्।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४ ॥

भा०—हे (देवा) तेजस्वी स्त्री-पुरुषो! (ओषधीषु) ओषधियों में और (अप्सु) जलों में (यत्) जो औषधियां और जलवत् द्रव पदार्थ, (ऋषीणां योग्या) मन्त्रद्रष्टा ऋषियों वा प्राणों के पोषण-योग्य हों उनकी ही आप दोनों (चनिष्टं) कामना करो और उनको ही (अश्नवैथे) खाया-पिया करो। आप दोनों (पुरूणि रत्ना) बहुत से रत्न और रम्य गुणों को (दधतौ) धारण करते हुए (अस्मे) हमारे आगे (पूर्वाणि) पूर्व के प्रसिद्ध (युगानि) पति-पत्नी के अनुकरणीय जोड़े का (अनु) अनुकरण (नि चख्यथुः) आदर्श-रूप होकर बतलाओ।

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (चित्) ही (ऋषीणां) मन्त्रद्रष्टा पुरुषों के साक्षात् किये (पुरूणि) बहुत (ब्रह्माणि) वेद-मन्त्रों को (शुश्रुवांसा) श्रवण करते हुए (अभि चक्षाथे) उनके तत्त्व-ज्ञान को प्राप्त करो । आप लोग (जनाय) मनुष्य के उपकारार्थ (वरम्) उत्तम उद्देश्य को (प्रति यातम्) लक्ष्य करके चलो । (वरम् प्र यातम्) उत्तम ज्ञान प्राप्त करो, (वरम् आ यातम्) वरण-योग्य श्रेष्ठ पुरुष और स्थान को ही आओ । (अस्मे) हमारे लिये (वाम्) आप दोनों की (चनिष्ठा) प्रशंसनीय (सुमतिः अस्तु) शुभमति हो ।

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो३भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! (यः) जो (यज्ञः) पूजा-सत्संग-योग्य (हविष्मान्) उत्तम ज्ञान अन्न से सम्पन्न (कृत-ब्रह्मा) वेदाध्यन में कृतश्रम और धनादि में समृद्ध (वां) आप दोनों के प्रति (समर्यः) नाना पुरुषों-सहित (भवति) होता है आप दोनों ऐसे वरण-योग्य (वसिष्टं) सर्वोत्तम 'वसु', विद्वान् वा राजा को (उप आ यातम्) प्राप्त होओ, हे स्त्री-पुरुषो ! (युवभ्याम्) आप दोनों के हितार्थ ही (इमा ब्रह्माणि) ये वेदोक्त ज्ञान, अन्न, धन (ऋच्यन्ते) ऋचाओं के रूप में प्रकट होते और प्रस्तुत किये जाते हैं ।

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।७।१७।४

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (इयं) यह (मनीषा) मन की उत्तम इच्छा और (इयं गीः) यह उत्तम वाणी है । आप दोनों (इमां) इस (सु-वृक्तिं) उत्तम वाणी को (वृषणा) बलवान् होकर

(जुषेथाम्) सेवन करें। (इमा ब्रह्माणि) ये वेद-वचन (युवयूनि) आप के हितार्थ हैं। (यूयं) हे विद्वान् लोगो ! आप (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करो। इति सप्तदशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[७१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१,५ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड्डृचं सूक्तम् ॥

अप॒ स्वसु॑रु॒षसो॒ नग्जि॑हीते रि॒णक्ति॑ कृ॒ष्णीर॑रु॒षाय॒ पन्था॑म् ।
अश्वा॑मघा॒ गोम॑घा वां हुवेम॒ दिवा॒ नक्तं॒ शरु॑म॒स्मद्यु॑योतम् ॥१॥

भा०—(नक् उषसः अप जिहीते) जैसे उषाकाल से रात्रि दूर चली जाती है वैसे ही (उषसः) प्रभात-वेला-तुल्य कान्तियुक्त, पति की याचना करने वाली (स्वसु=स्व-सुः) स्वयं वरणीय पति को प्राप्त करने वाली वरवर्णिनी कन्या से (नक्) सम्बन्धी जन उसके माता, पिता, भाई आदि (अप जिहीते) दूर हो जाते हैं। वह माता-पिता से छूटकर पति की हो रहती है। (कृष्णीः) कृष्णवर्णा रात्रि जैसे (अरुषाय पन्थाम् ऋणक्ति) तेजस्वी सूर्य के लिये मार्ग छोड़ती है वैसे ही (कृष्णीः) हृदय को आकर्षण करने वाली स्त्री (अरुषाय) तेजस्वी पुरुष के लिये (पन्थाम्) मार्ग (रिणक्ति) रिक्त करती है। आप आगे २ और पीछे पति को लेकर चलती है। (अश्वामघा गोमघा) अश्वों और गौओं आदि धन-संपन्न स्त्री-पुरुषो ! हम लोग (वाम् हुवेम) आप लोगों से प्रार्थना करते हैं कि आप (अस्मत्) हमसे (शरुम्) हिंसक को (युयोतम्) दूर करो।

उ॒पाया॑तं दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य॒ रथे॑न वा॒मम॑श्विना॒ वह॑न्ता ।
यु॒यु॒तम॒स्मदनि॑रा॒ममी॑वां॒ दिवा॒ नक्तं॑ माध्वी॒ त्रासी॑थां नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! एवं गुरुजनो ! आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) अपने को आप के प्रति समर्पण कर देने वाले के

हितार्थं (उप आयातम्) समीप आइये और (रथेन वामम् वहन्ता) गाड़ी आदि से जैसे उत्तम धन-सम्पदा लाई जाती है वैसे ही आप लोग (रथेन) उत्तम उपदेश से (वामम्) सुन्दर श्रवण योग्य ज्ञान को (वहन्ता) प्राप्त कराते हुए (अस्मत्) हमसे (अनिराम्) अन्नादि के दारिद्र्य और 'इरा' अर्थात् विद्योपदेशमय वाणी के अभाव को तथा (अमीवाम्) रोग-जनक दशा को (युयुताम्) दूर करो और (दिवा-नक्तम्) दिन रात (माध्वी) प्रसन्न चित्त वा 'मधु' अन्न जल वा ज्ञान से युक्त होकर (नः त्रासीथाम्) हमारी रक्षा करो।

आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे रथ को बलवान् अश्व चलाते हैं और (ऋतयुग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्तिं, वसुमन्तं रथं वहन्ति) ज्ञान-पूर्वक लगे अश्वों से, सिली रासों वाले और धनादि-सम्पन्न रथ को ले जाते हैं वैसे ही हे (अश्विना) विद्या में व्यापक विद्वान् स्त्री-पुरुषों के स्वामी जनो ! (वां) आप के (रथं) गृहस्थोचित कर्त्तव्य आदि को (अवमस्यां व्युष्टौ) आगामी प्रभात वेला में (सुम्नायवः) सुखाभिलाषी (वृषणः) बलवान् पुरुष (वर्त्तयन्तु) सम्पादित करें और आप दोनों (स्यूमगभस्तिम्) सुखकारी रश्मियों या रासों से युक्त (वसुमन्तं रथं) बसने वाले, वा वसु ब्रह्म-चारियों वा सुखैश्वर्य-युक्त गृहस्थाश्रम-रूप रथ को (ऋतयुग्भिः) सत्य से जुड़े हुए, (अश्वैः) विद्वानों की सहायता से (वहेथाम्) धारण करो।

यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिबन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥ ४ ॥

भा०—हे (नृपती) मनुष्य पति पत्नी ! विवाहित स्त्री पुरुषो ! जैसे (रथः वोढा, त्रि-बन्धुरः) रथ मनुष्यों को उठाकर ले जाने से 'वोढा' और तीन दण्डों से बने पीढ़ से युक्त होता है, वैसे ही (यः) जो पुरुष

(वां) आप दोनों में से (रथः) रम्यस्वभाव का, वा स्थिर होकर (वोढा) गृहस्थ-भार सहने वाला, (त्रि-बन्धुरः) तीन ऋणों से बद्ध, (वसुमान्) ऐश्वर्यवान्, (उस्रयामा) सूर्यवत् तेजस्वी होकर जाने हारा है और (यत् वां) जो तुम दोनों में से (विश्व-प्स्न्यः) विशेष रूपवान् होकर (अधि जिगाति) प्राप्त होता है, हे (नासत्या) असत्य धारण न करने हारे स्त्री-पुरुषो ! (एना) उस व्यक्ति के बल से ही (नः आ उपयातम्) हमें प्राप्त होओ।

युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥५॥

भा०—हे वेग युक्त रथों, अश्वों, वाहनों और विद्यावान् पुरुषों के स्वामी स्त्री-पुरुषो! सभा-सेनापतियो ! (युवं) आप दोनों (च्यवानं) सन्मार्गगामी पुरुष को (जरसः) वृद्धावस्था वा आयु के नाश से (अमुमुक्तम्) दूर करो। (पेदवे) दूर देश-गामी के लिये (आशुम् अश्वम्) शीघ्रगामी अश्वतुल्य साधन को (नि ऊहथुः) निरन्तर चलाओ और (अत्रिम्) तीनों दोषों से रहित पुरुष को (अंहसः) पाप और (तमसः)अज्ञान-अन्धकार से (निः स्पर्तम्) पार करो, (जाहुषम्) त्यागी, पुरुष को (शिथिरे) शिथिल राष्ट्र में (अन्तः नि धातम्) भीतर केन्द्र स्थान पर नियुक्त करो।

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥१८॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ७० ॥ मं० ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम्।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना १

भा०—हे विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! हे (नासत्या) नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजने वाले प्रतिष्ठित जनो ! आप दोनों (गोमता) उत्तम बैलों वाले वा (अश्ववता) घोड़ों वाले (पुरु-चन्द्रेण) बहुतों के आह्लादक (रथेन) रथ से (आ यातम्) आओ। (विश्वा निश्रुतः) सब उत्तम प्रजाएं वा सेनाएं (वाम् अभि सचन्ते) आप दोनों की ही सेवा करती हैं। आप दोनों (स्पार्हया) स्पृहा-योग्य, मनोहर (श्रिया) शोभा और (तन्वा) स्वस्थ शरीर से (शुभाना) शोभित होकर हमें प्राप्त होओ।

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ यातम॒र्वाक् स॒जोष॑सा नासत्या॒ रथे॑न।
यु॒वोर्हि नः॑ स॒ख्या पित्र्या॑णि समा॒नो बन्धु॑रु॒त तस्य॑ वित्तम् ॥२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने हारे स्त्री-पुरुषो ! आप (देवेभिः) विद्वान् पुरुषों के साथ (स-जोषसा) प्रीति से सेवने योग्य, (रथेन) रथ से, (नः आयातम्) हमें प्राप्त होओ। (युवोः हि नः) आप दोनों के (पित्र्याणि सख्या) पिता पितामहादि से आये सौहार्द भाव हमारे साथ बने रहें। (युवोः नः बन्धुः समानः) हमारे और तुम्हारे बन्धु भी समान हों (उत) और आप दोनों (तस्य) उस बन्धु को (वित्तम्) भली प्रकार जानें।

उदु॒ स्तोमा॑सो अ॒श्विनो॑रबुध्रञ्जा॒मि ब्रह्मा॑ण्यु॒षस॑श्च दे॒वीः।
आ॒विवा॑स॒न्रोद॑सी॒ धिष्ण्ये॒मे अच्छा॒ विप्रो॒ नास॑त्या विवक्ति ॥३॥

भा०—(स्तोमासः) वेद के सूक्त और (अश्विनोः स्तोमासः) विद्वान् स्त्रियों, पुरुषों, उपदेशकों के उपदेश और (ब्रह्माणि) वेद के मन्त्र (जामि) बन्धुवत् (उषसः) उत्तम प्रकाश-युक्त (देवीः) दानशील, विद्याभिलाषी प्रजाओं को (उत्-अबुध्रन्) ज्ञानयुक्त करें। (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नासत्या अच्छ) सत्याश्रयी स्त्री-पुरुषों की (आविवासन्) सेवा करता हुआ (इमे) इन दोनों को (रोदसी) सूर्य-चन्द्रवत्, माता-पितावत् (धिष्ण्ये) उत्तम-बुद्धि-युक्त, और योग्य भी (विवक्ति) कहता है।

वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥४॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! (चेत्) जैसे (उपासः) प्रभात वेलाएं (वि उच्छन्ति) विशेष रूप से प्रकाश करें तब (कारवः) स्तोता विद्वान् (ब्रह्माणि) स्तुति-मन्त्र (प्र भरन्ते) उच्चारण करते हैं और जब (सविता देवः) प्रकाशमान सूर्य (ऊर्ध्वं) ऊपर (भानुम् अश्रेत्) कान्ति धारण करे तो (अग्नयः) यज्ञाग्नियें (समिधा) उत्तम समिधा-सहित होकर (बृहत्) अच्छी प्रकार (जरन्ते) स्तुति को प्राप्त होते हैं, अर्थात् यज्ञ किये जाते हैं, वैसे ही जब (उपसः) कमनीय कान्ति से युक्त विदुषी स्त्रियें और प्रजाएं (वि उच्छन्ति) विविध अभिलाषाएं प्रकट करती हैं तब (कारवः) विद्वान् पुरुष (वां) वर-वधू एवं राजा-रानी दोनों को लक्ष्य कर (ब्रह्माणि) वेद-मन्त्रों और नाना ऐश्वर्यों को (प्र जरन्ते) प्रकट करें । (देवः सविता) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (ऊर्ध्वं-भानुं) सर्वोपरि कान्ति को (अश्रेत्) धारण करता है और (अग्नयः) विद्वान् (समिधा) अति तेज से (बृहत्) वृद्धिकारी, आशीर्वाद-वचन का (जरन्ते) उपदेश करते हैं ।

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥१९

भा०—हे (नासत्या अश्विना) कभी असत्य व्यवहार न करने हारे जनो ! (पश्चातात् पुरस्तात् अधरात् उदक्तात्) पश्चिम, पूर्व, उत्तर और दक्षिण से भी आप लोग (पाञ्चजन्येन राया) पांचों जनों के हितकारी धन-सहित (विश्वतः आ यातम्) सभी ओर आया-जाया करो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[७३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुरजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग (देवयन्तः) विद्वानों और शुभ गुणों को चाहते हुए, (स्तोमं) स्तुत्य कार्य को (प्रति दधानाः) प्रत्येक दिन धारण करते हुए (अस्य) इस (तमसः) अज्ञान, दुःख के (पारम् अतारिष्म) पार हों । हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (गीः) विद्वान् पुरुष (पुरु-दंसा) बहुत कर्मों के कर्ता, (पुरु-तमा) बहुतों में उत्तम, (पुरु-जा) सब के आगे चलने वाले, (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से विशेष आप दोनों की (हवते) प्रशंसा करता है।

न्युं प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् २

भा०—हे (नासत्या) सत्यनिष्ठ, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (यः) जो (प्रियः) प्रिय (मनुषः) मननशील, (होता) ज्ञानदाता पुरुष (यजते) यज्ञ करता, (वन्दते च) भगवान् की स्तुति करता, या उप-देशादि करता है और जो (विदथेषु) यज्ञों में (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (वाम् आ वोचे) तुम दोनों की अभ्यर्थना करता है, आप उसके (उपाके) समीप (मध्वः अश्नीतं) ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करो।

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (यज्ञम् उराणाः) यज्ञ करते हुए (पथाम्) जीवन-मार्गों की (अहेम) वृद्धि करें ! हे (वृषणा) बलवान् स्त्री-पुरुषो ! आप लोग इस (सुवृक्तिम्) सुमति का (जुषेथाम्) सेवन करो। (जर-

माणः वसिष्ठः) उपदेश करने हारा, वसु, ब्रह्मचारी पुरुष (स्तोमैः) उपदेश-योग्य वचनों से (प्रेषितः श्रुष्टीवा इव) भेजे दूत के समान, (प्रेषितः) उत्तम इच्छा से युक्त (श्रुष्टीवा) श्रुति-वचनों का ज्ञाता होकर (वाम् प्रति अबोधि) आप दोनों को ज्ञानवान् करे ।

उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा सम्भृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! (रक्षोहणा) दुष्ट पुरुषों का नाशक, (संभृता) परिपुष्ट, (वीडुपाणी) बलवान् हाथों वाले होकर (त्या) वे दोनों आप (वह्नी) गृहस्थ को उठाने में अश्वों के समान दृढ़, अग्नियों के समान तेजस्वी एवं विवाहित होकर (नः विशं उप गमतः) हमारे प्रजा-वर्ग में प्राप्त होवो । (नः) हमारे (मत्सराणि) तृप्तिकारक (अन्धांसि) अन्नों को (सम अग्मत) प्राप्त करो । (शिवेन) कल्याणकारक, सुखप्रद रूप से (नः आगतं) हमें प्राप्त होवो, (नः मा मर्धिष्टं) हमें पीड़ा मत दो ।

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् । आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥२०॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ७२ । मं० ५ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

[७४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् बृहती । २, ४, ६ आर्षी भुरिग् बृहती । ५ आर्षी बृहती । षडृचं सूक्तम् ॥

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र और अश्वादिसैन्य के स्वामी, सेनापति-सभापति जनो ! आप दोनों (उस्रा) उत्तम पदार्थों को देने एवं गृह और राष्ट्र में स्वयं बसने और अन्यों को बसाने वाले, तेजस्वी (वां) आप दोनों को (इमा दिविष्टयः) ये उत्तम ज्ञान और कान्ति

चाहने वाली प्रजाएं (हवन्ते) बुलाती हैं और (अयं) यह विद्वान् वर्ग भी, हे (शचीवसू) शक्ति और वाणी के धनी युगलो! (वां) आप दोनों को (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (अह्वे) पुकारता है, आप दोनों (विशं विशं हि) प्रत्येक प्रजावर्ग में (गच्छथः) जाया करो।

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायक जनो, उत्तम स्त्री पुरुषो! (युवं) आप दोनों (सूनृतावते) उत्तम सत्यवाणी से युक्त मनुष्य के हितार्थ (चित्रं) आश्चर्यकारक और नाना (भोजनं) पालन-सामर्थ्य और भोग-योग्य उत्तम ऐश्वर्य (ददथुः) प्रदान करो और (अर्वाक् रथं चोदेथां) अपने रमणीय व्यवहार को रथ के समान आगे प्रेरित करो, उसको (समनसा नियच्छतम्) एक चित्त होकर नियम में रक्खो और (सोम्यं मधु) 'सोम' अर्थात् ओषधिरस से मिले मधु के समान अति गुणकारी, रोगनाशक अन्न के समान पुष्टिकारक, सोम अर्थात् राजपद के योग्य, ऐश्वर्यानुरूप मधुर भोग, मधुर सुख का (पिबतम्) उपभोग करो।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! हे (जेन्यावसू) बसने वाले प्रजा-वर्गो, आप लोग (आ यातम्) आदर पूर्वक आइये। (उप भूषतम्) समीप विराजिये (मध्वः पिबतं) गुरुगृह में मधुमय ज्ञानरस का (दुग्धं पयः) दुहे हुए दूध के समान (पिबतम्) पान करिये। हे (वृषणा) मेघ के समान ज्ञान-सुखों के वर्षक पुरुषो! (नः मा मर्धिष्टम्) हमारा नाश न करो।

अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना देवा यातमस्मयू ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वानों के स्वामी जनो ! हे (नरा) नायक-वत् स्त्री-पुरुषवर्गो ! (ये) जो (वाम्) आप लोगों के (अश्वासः) अश्व, वेग से जाने वाले साधन वा विद्यावान् पुरुष (युवां बिभ्रतः) आप दोनों को धारण करते हुए, (दाशुषः गृहं) उस देने वाले प्रभु के घर तक (दीयन्ति) पहुँचा देते हैं उनही (मक्षूयुभिः हवेभिः) शीघ्रकारी अश्वों, साधनों वा विद्वानों से (देवा) हे स्त्री-पुरुषो ! हे (नरा) नायक जनो ! आप (अस्मयू) हमें चाहते हुए (यातम्) आओ-जाओ ।

अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥५॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री-पुरुष तथा विद्वान् और सामान्य जनो ! (अध ह) निश्चय से (यन्तः सूरयः) आगे बढ़ते हुए, विद्वान्, परि-व्राजक जन (पृक्षः सचन्त) सर्वत्र अन्न और स्नेह-सम्पर्क प्राप्त करते हैं। हे (नासत्या) कभी असत्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मभ्यम् मघवद्भ्यः) हम ज्ञान वाले पुरुषों को ध्रुवं) स्थिर (यशः) यश और अन्न (छर्दिः) आवास के लिये घर (यंसतः) प्रदान करो ।

प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥६॥२१॥

भा०—(ये) जो (अवृकासः) चोर-स्वभाव से रहित, निश्छल (रथाः) रथों के समान (स्वेन शवसा) अपने ज्ञान-सामर्थ्य और पराक्रम से (प्र ययुः) आगे जाते हैं और जो (नरः) नेता जन (शूशुवुः) खूब उन्नति को प्राप्त होते हैं (उत) और (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि को (क्षियन्ति) प्राप्त कर उसमें रहते हैं वे ही (जनानां नृपातारः) सब मनुष्यों को पालने में समर्थ 'नृपति' होते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[७५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २,४,५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

व्यु१॒षा आ॑वो दिवि॒जा ऋ॒तेना॑विष्कृण्वा॒ना म॑हि॒मान॒मागा॑त् ।
अप॑ द्रु॒हस्तम॑ आव॒रजु॑ष्ट॒मङ्गि॑रस्तमा प॒थ्या॑ अजीगः ॥ १ ॥

भा०—(दिविजाः उषाः) सूर्य के आश्रय प्रकट होने वाली प्रभात वेला जैसे (आवः) विशेषरूप से खिलती, (ऋतेन महिमानम् आविष्कृण्वाना आगात्) तेज से स्वरूप को प्रकट करती हुई आती है, (तमः अप आवः) अन्धकार को दूर करती और (पथ्याः अजीगः) मार्गवर्त्ती प्रजाओं को जगाती है, वैसे ही (दिविजाः) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के अधीन जन्म-लाभ करके (उषाः) कान्तियुक्त युवती (वि आवः) विविध गुणों को प्रकट करे, वह (ऋतेन) सत्य ज्ञान से (महिमानम्) मातृ-सामर्थ्य को (आविः कृण्वाना) प्रकट करती हुई, (आगात्) आवे । (अजुष्टम्) न सेवने योग्य (तमः) अज्ञान को अन्धकारवत् और (द्रुहः) अप्रीति भावों को (अप आवः) दूर करे । वह (अङ्गिरस्तमा) प्राणवत् प्रियतमा वा ज्ञानवती विदुषी होकर (पथ्याः) उत्तम हित-कारी, शिष्टाचारों को (अजीगः) जागृत करे ।

म॒हे नो॑ अ॒द्य सु॑वि॒ताय॑ बोध्युषो॑ म॒हे सौभ॑गाय॒ प्र य॑न्धि ।
चि॒त्रं र॒यिं य॒शस॑ धेह्य॒स्मे देवि॒ मर्ते॑षु मानुषि श्रव॒स्युम् ॥ २ ॥

भा०—हे (मानुषि देवि) मानवोचित शुभ गुणों से युक्त स्त्रि ! तू (नः) हमें (अद्य) आज, (महे सुविताय) बड़े सुख की प्राप्ति के लिये (बोधि) हो । हे (उषः) प्रभात-वेलावत् कान्तियुक्त, स्त्रि ! तू भी (महे सौभगाय) बड़े सौभाग्य प्राप्त करने के लिये (प्र यन्धि) उत्तम रीति से विवाह के बन्धन में बंध । (अस्मे) हमारे लिये (चित्रं रयिं) आश्चर्य-

कर ऐश्वर्य और (मर्तेषु) मनुष्यों के बीच (यशसं) यशस्वी (श्रवस्युम्) ज्ञानी पुत्र (धेहि) धारण कर।

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥३॥

भा०—(दर्शताः उषसः भानवः) दर्शनीय उषा वेला के किरण जैसे आते हैं, वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः अन्तरिक्षा वि तिष्ठन्ति) देव, सूर्य वा किरणों के योग्य प्रकाशादि कार्यों को करते हुए अन्तरिक्ष में विराजते हैं, वैसे ही (दर्शतायाः) रूप-गुणादि में दर्शनीय (उषसः) पति की कामना वाली, कान्तिमती कन्या वा विदुषी स्त्री से ही (त्ये) ये नाना (एते) ये (अमृतासः भानवः) कभी नाश न होने वाले, दीर्घायु, (चित्राः) आश्चर्यकारी बलवान् वीर्यवान् होकर (आगुः) हमें प्राप्त होते हैं। वे (दैव्यानि) विद्वान् पुरुषों से करने योग्य (व्रतानि) कर्मों को (जनयन्तः) प्रकट करते हुए, (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष में वायु के समान (आ पृणन्तः) सबको तृप्त करते हुए (वि अस्थुः) विविध रूपों में विराजें।

एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

भा०—(एषा) यह (स्या) वह (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् उषा के समान तेजस्वी पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ (पराकात् युजाना) दूर देश से विवाह-बन्धन में संयुक्त होकर विदुषी स्त्री, शासक-शक्ति के समान (सद्यः) अति शीघ्र गुणों से (पञ्चक्षितीः) पांचों प्रकार के निवासियों को (परि जिगाति) वश करती है। वह (जनानां) प्रजाओं के (वयुना) ज्ञानों और कर्मों को (अभिपश्यन्ती) देखती हुई और (भुवनस्य) भुवन, जन समूह का (पत्नी) पालन करने वाली हो।

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥

भा०—(सूर्यस्य) जैसे सूर्य की (योषा) स्त्री (उषा) प्रभात-वेला (वह्निभिः) यज्ञाग्नियों से (गृणाना) स्तुति की जाती हुई, (जरयन्ती) रात्री का नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों की भगवत्-स्तुति से युक्त होती है, वैसे ही (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की (योषा) स्त्री, (उषा) कान्ति-युक्त होकर (वह्निभिः) विवाह-योग्य उत्सुक पुरुषों द्वारा (गृणाना) स्तुति की जाती है। वह (मघोनी) उषावत् पूज्य धन से युक्त, (वाजिनीवती) बलयुक्त और ज्ञानयुक्त क्रिया करने वाली (जरयन्ती) गुणों से अवगुणों, अज्ञान, शोक, मोहादि को नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों द्वारा उपदेश प्राप्त कर (उच्छति) गुणों का प्रकाश करे ।

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥६॥

भा०—(अश्वाः) अश्वसमान बलवान् अंग वाले, (चित्राः) आश्चर्य-जनक बल और गुणों से सम्पन्न, (अरुषासः) रोषरहित, सौम्य-स्वभाव, (उषसः) स्वयं उत्तम पदार्थों के इच्छुक पुरुष (द्युतानां) कान्तिमती, (उषसम्) कामनावान् उत्तम वधू को (वहन्तः) विवाह द्वारा ग्रहण करते हुए (प्रति अदृश्रन्) देखे जावें। वह वधू (शुभ्रा) शुभगुणों से सुभूषित, (विश्वपिशा) नाना-रूप सुन्दर (रथेन) रथ से (याति) जावे और (विधते जनाय) विशेष प्रेम के धारक पुरुष के लिये (रत्नं दधाति) उत्तम रत्न, उत्तम धन, उत्तम व्यवहार, उत्तम गुण और उत्तम पुत्र-रत्न (दधाति) धारण करे ।

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि ददद्दुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥

भा०—वह (सत्येभिः) सत्य व्यवहारवान् (महद्भिः) बड़े, गुणवानों से (महती) पूज्य, (देवेभिः) उत्तम गुणों, विद्वानों और (यजत्रैः) दानशील पुरुषों के साथ (सत्या) सत्य शीलवती, सभ्य, (महती) गुणों में महान्, (यजत्रा) दानशील (देवी) विदुषी कन्या सत्संग लाभ करे। वह (दृढ़ानि) दृढ़ संकटों को भी (रुजत) नाश करती हुई (ददद्) सुख देवे। (गावः) वृषभ, जैसे (उस्रियाणां मध्ये उषसं वावशन्त) गौवों के बीच में से कामनावती कपिला गौ को ही चाहते हैं वैसे ही (गावः) विद्वान् एवं बलवान् जन भी (उस्रियाणाम्) घर बसाने की इच्छुक कन्याओं में से (उषसं) विशेष कामनावान् वधू के (प्रति वावशन्त) प्रति कामना करें।

नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।२२

भा०—हे (उषः) कान्तिमति, कामना वाली, विदुषि ! वधू ! तू (नः) हमारे (गोमत्) गौओं से युक्त, (वीरवत्) वीर पुत्रों से युक्त (रत्नं) उत्तम धन, व्यवहार, पतिसंगादि गृहस्थोचित कर्म (धेहि) धारण कर। तू (अस्मे) हमारे हितार्थ, (अश्वावत्) अश्वों से युक्त और (पुरु-भोजः) बहुतों से भोगने योग्य ऐश्वर्य को भी (धेहि) धारण कर। (नः बर्हिः) हमारा यज्ञ और वृद्धिशील राष्ट्र,पद (Position) आदि (पुरुषता) पुरुषों में (निदे मा कः) निन्दा-योग्य मत बना। हे विद्वान् पुरुषो ! आप (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो। उषा-सूक्तों के प्रायः सब मन्त्र राजशक्ति और विशोका प्रज्ञा, तथा परमेश्वरी शक्ति युक्त पदार्थों में भी लगते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[७६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥

भा०—उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन। (सविता) संसार का उत्पादक, (देवः) सुखों का दाता, लोकों का प्रकाशक, (विश्वानरः) विश्व और समस्त जीवों का नायक, सञ्चालक परमेश्वर (विश्व-जन्यम्) सब जनों में विद्यमान, विश्व के उत्पादक (अमृतं) अविनाशी, (ज्योतिः) परम प्रकाशमय तेज को (उत् अश्रेत् उ) सर्वोपरि धारण करता है। वह अपने (क्रत्वा) कर्म और ज्ञान-सामर्थ्य से (देवानां) समस्त लोकों और विद्वान् पुरुषों के बीच (चक्षुः) सबको आंखवत् देखने वाला (उषाः) पापों का दाहक, उषा-समान कान्तियुक्त, (भुवनं) समस्त भुवनों को (आविः अकः) प्रकट करता है।

प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥

भा०—जैसे उषा के प्रकट होने पर (वसुभिः इष्कृतासः पन्थाः देवयानाः प्र अदृश्रन्) मनुष्य निर्मित और मनुष्यों से चलने योग्य मार्ग दिखाई देते हैं। वह (उषसः केतुः अभूत्) तेजस्वी सूर्य का ज्ञापक होती और (अधि हर्म्येभ्यः पुरस्तात् प्रतीची आ अगात्) बड़े २ महलों के ऊपर से पूर्व से पश्चिम की ओर आती है, वैसे ही वर के लिये वधू और वधू के लिये वर दोनों ही उत्सुक, एवं कामनायुक्त होने से दोनों ही 'उषा' हैं, अतः ऐसे (उषसः) कामना से उत्सुक पुरुष के (पुरस्तात्) आगे (केतुः) ध्वजा-समान गुणों की दर्शक विदुषी वधू (अभूत् उ) होवे। वह (प्रतीची) प्रत्यक्ष में आदृत होती हुई, (हर्म्येभ्यः अधि आगात्) महलों में रहने के लिये अधिष्ठात्री रानी होकर आवे। इसी प्रकार (उषसः) कान्तिमती, कामनावती प्रिय वधू का (केतुः) ध्वजा के समान ज्ञानवान् पुरुष हो, वह भी पूर्व से पश्चिम को आने

वाले सूर्य के समान (हर्म्येभ्यः अधि आगात्) महलों को आये। (वसुभिः) विद्वानों द्वारा (इष्कृतासः) सुशोभित और (देवयानाः) विद्वानों द्वारा चलने योग्य (मे पन्थाः) मेरे धर्ममार्ग, किरणों से प्रकाशित मार्गों के समान मेरे लिये (अमर्धन्तः) पीड़ादायक न होते हुए (मे) मुझे (प्रअदृश्रन्) उत्तम रीति से दृष्टिगोचर हों।

तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥

भा०—(सूर्यस्य या प्राचीनम् उदिता) जैसे सूर्य के पूर्व में उदय होने पर जो प्रकट होते हैं (तानि इत् अहानि) वे दिन कहाते हैं। (उषा जारः इव परि आचरन्ती) उषा भी रात्रि को जारण करने वाले सूर्य के समान ही आचरण करती हुई (न पुनः यती इव ददृक्षे) फिर नहीं लौटती सी दीखती है, वैसे हे (उषः) पति की कामना वाली वधू! (या) जो तू (सूर्यस्य प्राचीनम् इत्) सूर्य-समान तेजस्वी पुरुष के पूर्व भाग में आकर आगे आती है (तानि इत् बहुलानि अहानि) वे ही बहुत दिन उत्तम हैं। (यतः) क्योंकि उन दिनों में तू (जारः इव) तेरी आयु को अपने साथ पूर्ण रूपेण व्यतीत करने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पति के समान ही तू भी (आचरन्ती) धर्माचरण करती हुई (न पुनः यती इव) उसे भविष्य में कभी न त्यागती सी (परि ददृशे) सदा संग दिखाई दे।

त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥४॥

भा०—जो (ऋतावानः) सत्य, वेद, तप आदि का सेवन करने वाले (पूर्व्यासः कवयः) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित, क्रान्तदर्शी पुरुष हैं (ते इत्) वे ही (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (सधमादः आसन्) साथ आनन्द प्राप्त करने वाले होते हैं। वे ही (पितरः) माता-पितावत्

पालक बनकर (गूढं ज्योतिः) भीतर छिपे तेज को (अनु अविन्दन्) प्राप्त करते हैं। जो (सत्य-मन्त्राः) सत्य, मननशील होकर (उषासम् अजनयन्) अज्ञान और पाप को दूर करने वाली 'विशोका' प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

समान ऊर्वे अधि सङ्गतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥५॥

भा०—जो पुरुष (समाने) एक समान (ऊर्वे) समूह या वर्ग में (अधि) अध्यक्ष के अधीन (संगतासः) मिलकर (सजानते) सम्यक् ज्ञान और परिचय करते हैं (ते) वे परस्पर नाश की (न यतन्ते) चेष्टा नहीं करते। (ते) वे (देवानां व्रतानि) विद्वानों के कार्यों का (न मिनन्ति) नाश नहीं करते। वे (वसुभिः) धनों द्वारा (यादमानाः) यत्नवान् होते हुए (अमर्धन्तः) हिंसा न करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥

भा०—हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवति! (तुष्टुवांसः) स्तुतिकर्त्ता, (उषर्बुधः) प्रभात में जागने वाले (वसिष्ठाः) विद्वान् गृहस्थ, ब्रह्मचारी (त्वा) तेरी (स्तोमैः) स्तुत्य वचनों से (इडते) स्तुति करते हैं। हे (उषः) पापनाशिके! तू (वाजयन्ती) ऐश्वर्य और ज्ञान की पालक (गवां नेत्री) गो-तुल्य सौम्य वाणियों को प्रस्तुत करने वाली होकर (नः) हमारे बीच (उच्छ) गुणों का प्रकाश कर। हे (सुजाते) माता-पिता की उत्तम पुत्री! तू (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ गिनी जाकर (जरस्व) प्रिय पुरुष के गुणों का वर्णन कर।

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥२३॥

भा०—(एषा) वह (उषा) कान्तिमती, वधू (राधसः नेत्री) धन प्राप्त कराने वाली और वह (सूनृतानां नेत्री) ज्ञानमय वचनों और सत्य-विद्याओं को प्राप्त कराने वाली (उच्छन्ती) स्वयं उत्तम गुणों की प्रकाशक (वसिष्ठैः) उत्तम ब्रह्मचारियों और सन्तान के उत्तम माता-पिताओं द्वारा (रिभ्यते) स्तुति की जाती है, वह (अस्मे) हमारे (दीर्घ-श्रुतं) दीर्घ काल तक श्रवण-योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को (दधाना) धारण करने वाली हो। हे विद्वान् पुरुषो ! आप (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[७७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवताः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५, निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥

भा०—जैसे (उषा) प्रभात वेला (उप रुरुचे) पतिवत् सूर्य के समीप स्त्रीवत् शोभित होती है। वह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती) समस्त जीव-लोक को निन्द्रा से उठाकर विचरने के लिये प्रेरित करती है। (समिधे) प्रकाश करने के लिये (अग्निः अभूत्) सूर्य-रूप अग्नि प्रकट होता है, (मानुषाणां) मनुष्यों के लिये (तमांसि बाधमाना ज्योतींषि) अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाशों को (अकः) प्रकट करता है, वैसे ही परमेश्वरी शक्ति (युवतिः योषा न) युवती स्त्री के समान (विश्वं जीवं) समस्त विश्व और जीव-संसार को (चरायै प्रसुवन्ती) कर्म-फल-भोग के लिये उत्पन्न करती हुई (उप उ रुरुचे) सर्वत्र शोभा दे, (अग्निः) वह परमेश्वर अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप (समिधे) ज्ञान प्रकाश करने के लिये (अभूत्) हो और वही (मानुषाणाम्)

मनुष्यों के हृदय के (तमांसि) अज्ञानान्धकारों को (बाधमाना) दूर करता हुआ (ज्योतिः) वेदमय ज्ञान प्रकाश को (अकः) उपदेश करता है।

विश्वं प्र॒तीची॑ स॒प्रथा॒ उद॑स्था॒द्रुश॒द्वासो॒ बिभ्र॑ती शु॒क्रम॑श्वैत् ।
हिर॑ण्यवर्णा सु॒दृशी॑कसन्दृ॒ग् गवां॑ मा॒ता ने॒त्र्यह्ना॑मरोचि ॥ २ ॥

भा०—(अह्नां नेत्री) प्रभात वेला जैसे दिनों की प्रारम्भक नायिका, (गवां माता) किरणों को अपने में से माता के समान पैदा करती है, वह (हिरण्य-वर्णा) सुवर्ण-समान चमकती हुई (सुदृशीक-सन्दृग्) आंखों को सब पदार्थ अच्छी प्रकार दिखलाती है, वह (प्रतीची) प्रत्यक्ष होती हुई, (स-प्रथा) विस्तृत होकर (रुशद् वासः बिभ्रती) मानो चमकीला वस्त्र पहने (विश्वं शुक्रम् अश्वैत्) समस्त संसार को दीप्तियुक्त कर चमका देती और बढ़ती है वैसे ही परमेश्वरी शक्ति और नव वधू माता भी (अह्नां) न नाश होने वाले, नित्य जीवों, न मरने योग्य बालक जीवों को (नेत्री) प्राप्त कराने वाली, (गवां) लोकों और गौ आदि पशुओं को भी (माता) माता के समान पालक। (सुदृशीक-संदृग्) सम्यक् दृष्टि से युक्त, रमणीय वर्ण वाली हो। वह (प्रतीची) प्रत्येक की दृष्टि में पूजनीय, (रुशद्-वासः) उज्ज्वल वस्त्रादि (बिभ्रती) धारण करती हुई, (सप्रथा) समान रूप से विख्यात होकर (उत्-अस्थात्) उत्तम स्थिति प्राप्त करे और (शुक्रम् अश्वैत्) शुद्ध आचरण करे।

दे॒वानां॒ चक्षुः॑ सु॒भगा॒ वह॑न्ती श्वे॒तं नय॑न्ती सु॒दृशी॑क॒मश्व॑म् ।
उ॒षा अ॑दर्शि र॒श्मिभि॒र्व्य॑क्ता चि॒त्राम॑घा॒ विश्व॒मनु॒ प्रभू॑ता ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (उषा) प्रभात की सूर्य-कान्ति (रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) किरणों से प्रकाशित दिखाई देती है, वह (चित्रामघा विश्वम् अनु प्रभूता) विश्व में प्रकट चित्र-विचित्र-वर्णयुक्त प्रकाशों से मानों

पूज्य धनयुक्त होती है। वह (सुभगा) उत्तम भद्रवर्ण-युक्त होकर (देवानां चक्षुः) मनुष्यों की आंखों को (श्वेतं वहन्ती) श्वेत प्रकाश देती और (सुदृशीकम् श्वेतं अश्वम् नयन्ती) दर्शनीय, प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त कराती है वैसे ही (उषा) पति-कामना से युक्त नववधू, (सु-भगा) सौभाग्यवती, (देवानां) विद्वान् पुरुषों के बीच (चक्षुः) सौम्य दृष्टि करती हुई और (श्वेतम्) शुद्ध चरित्रवान् (सु-दृशीकम्) उत्तम दर्शनीय, (अश्वम्) अश्ववत् सुदृढ़ शरीर वाले पुरुष के प्रति अपनी (चक्षुः नयन्ती) चक्षु को पहुँचाती हुई, प्रेम से वरण करती हुई, (चित्रा-मघा) नाना धनों से युक्त और (रश्मिभिः व्यक्ता) कान्तियों से सुशोभित, (विश्वम् अनु प्रभूता) सबके समक्ष प्रकट होकर (अदर्शि) दीखे।

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघोनि) धन की स्वामिनि राजशक्ते ! हे विदुषि ! तू (अन्ति-वामा) अपने समीप भोग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों को रखती हुई (अमित्रम् दूरे) शत्रु को दूर करती हुई (उच्छ) स्वयं चमक। तू (उर्वीं) बड़ी भूमि और विशाल (गव्यूतिम्) मार्ग को (नः) हमारे लिये (अभयं कृधि) भय-रहित कर। (द्वेषः यवय) द्वेष-भावों और द्वेषियों को दूर कर। (वसूनि आभर) ऐश्वर्य प्राप्त करा, (गृणते) उपदेष्टा पुरुष को (राधः चोदय) ऐश्वर्य दे।

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः देवि) शुभ गुणों से युक्त विदुषि ! तू (श्रेष्ठेभिः) श्रेष्ठ गुणों से (वि भाहि) विशेष चमक। तू (नः) हमें (आयुः प्रतिरन्ती) दीर्घ जीवन देती हुई और हे (विश्ववारे) विश्व अर्थात् हृदय में

प्रविष्ट पति द्वारा एकमात्र वरणीय ! (नः) हमारी (इषं) अन्न और (गोमत् अश्वावत् रथवत् च) गौओं, अश्वों और रथों से युक्त (राधः) समृद्धि को (दधती) धारण करती हुई, (वि भाहि) विशेष चमक ।

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।२४

भा०—हे (उषः) उषा के समान कान्तिमति ! हे (सुजाते) शुभ गुणों सहित, उत्तम जन्म वाली ! हे (दिवः दुहितः) सूर्यवत् विद्वान् और धीर पुरुष की पुत्रि ! एवं पति-कामनाओं को पूर्ण करने हारि ! (वसिष्ठाः) उत्तम २ वसु, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ, पिता जन (यां त्वा वर्धयन्ति) जिस तुझको बढ़ाते हैं, (सा) वह तू (अस्मासु) हमारे बीच (ऋष्वं) बड़े भारी (बृहन्तं) महान् (रयिम्) ऐश्वर्य को (धाः) धारण कर और हममें भी धारण करा । हे विद्वान् लोगो ! (यूयम् नः सदा स्वस्तिभिः पात) पूर्ववत् । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[७८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥१॥

भा०—(अस्याः) उस विदुषी स्त्री के (प्रथमाः केतवः) श्रेष्ठ गुण रश्मिवत् (प्रति अदृश्रन्) दिखाई दें । (अस्याः) इसके (अञ्जयः) गुण प्रकाशवत् (वि-श्रयन्ते) विविध प्रकार से प्रकट हों । हे (उषः) कान्तिमति ! तू (ज्योतिष्मता) तेजस्वी, ज्ञानी (बृहता) बड़े (अर्वाचा) अश्व से चलने वाले (रथेन) रथ के समान दृढ़, रम्य, पति के साथ मिलकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (वामम्) उत्तम गुणों को (वक्षि) धारण कर ।

प्रति॑ षी॑म॒ग्निर्ज॑रते॒ समि॑द्धः॒ प्रति॒ विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्गृ॒णन्तः॑ ।
उ॒षा या॑ति॒ ज्योति॑षा॒ बाध॑माना॒ विश्वा॒ तमां॑सि दुरि॒ताप॑ दे॒वी ॥२

भा०—(उषा ज्योतिषा विश्वा तमांसि अप बाधमाना याति) उषा अर्थात् प्रभात की सौरी प्रभा जैसे प्रकाश से अन्धकारों को दूर करती हुई व्यापती है वैसे ही (देवी) विदुषी स्त्री (ज्योतिषा) अपने तेजः-प्रभाव से (विश्वा दुरिता) सब दुःखों और दुष्ट आचारों को (अप बाधमाना) दूर करती हुई (याति) प्राप्त होती है। (समिद्धः अग्निः) प्रज्वलित अग्नि के समान विद्वान् (सीम् प्रति जरते) सब प्रकार से सर्वत्र उपदेश करे और (मतिभिः) ज्ञानों से युक्त (विप्रासः) विद्वान् पुरुष (गृणन्तः) उपदेश करते हुए (प्रति जरन्ते) प्रश्न किये जाने पर, उत्तर द्वारा उपदेश करते हैं।

ए॒ता उ॒ त्याः प्रत्य॑दृश्रन् पु॒रस्ता॒ज्ज्योति॒र्यच्छ॑न्तीरु॒षसो॑ विभा॒तीः ।
अजी॑जन॒न्त्सूर्यं॑ य॒ज्ञम॒ग्निम॑पा॒चीनं॒ तमो॑ अगा॒दजु॑ष्टम् ॥ ३ ॥

भा०—(एताः स्याः) ये वे (विभातीः उषसः) चमकती उषाओं के तुल्य उज्ज्वल, (ज्योतिः यच्छन्तीः) कान्ति प्रदान करती हुई नव-वधुएं (प्रति अदृश्रन्) दीखें। वे (सूर्यम्) सूर्य-समान तेजस्वी (यज्ञम्) पूजनीय (अग्निम्) नायक को (अजीजनन्) अपने पीछे आता हुआ प्रकट करती हैं। (अजुष्टम्) न करने योग्य (तमः) शोक आदि (अपाचीनं अगात्) दूर चला जाता है अर्थात् उनके आने पर हर्ष होता है।

अचे॑ति दि॒वो दु॑हि॒ता म॒घोनी॒ विश्वे॑ पश्यन्त्यु॒षसं॑ विभा॒तीम् ।
आस्था॒द्रथं॑ स्व॒धया॑ यु॒ज्यमा॑नमा॒ यमश्वा॑सः सु॒युजो॒ वह॑न्ति ॥४॥

भा०—(दिवः दुहिता) सूर्य-पुत्री के समान कान्तिमती (मघोनी) ऐश्वर्य-स्वामिनी, सौभाग्यवती, सुभगा (अचेति) जानी जाती है। उस (विभातीम्) विविध प्रकार से भासित (उषसम्) प्रभात वेला

के तुल्य ही अनुरागवती को (विश्वे पश्यन्ति) सब देखते हैं। (यम्) जिसको (अश्वासः) विद्या-निष्णात जन अश्वों के तुल्य सहयोगी होकर सन्मार्ग पर ले जाते हैं उस (रथम्) रथवत् सुदृढ़ शरीर वाले और (स्वधया) अपने सर्वस्व को धारण करने वाले, स्त्री के साथ (युज्यमानम्) योग प्राप्त करने वाले (रथम्) रमणकारी पति को (आ अस्थात्) प्राप्त करे।

प्रति॑ त्वा॒द्य सु॒मन॑सो बुधन्ता॒स्माका॑सो म॒घवा॑नो व॒यं च॑ ।
ति॒ल्वि॒ला॒यध्व॑मुषसो विभा॒तीर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ५।२५

भा०—हे विदुषि ! (सु-मनसः) उत्तम चित्त वाले (अस्माकासः) हमारे सम्बन्धी जन और (मघ-वानः) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् और (वयं च) हम लोग सभी (अद्य) आज के दिन (त्वा प्रति बुधन्त) तेरे साथ उत्तम परिचय प्राप्त करें। हे (विभातीः उषसः) चमकने वाली प्रभात-वेलाओं के समान कुलवधुओ ! आप लोग (तिल्विलायध्वम्) तिलों से सुशोभित भूमि के समान स्नेहोत्पादक भूमि के समान होवो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) पूर्ववत्। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[७९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

व्यु१॒षा आ॑वः प॒थ्या॒३ जना॑नां॒ पञ्च॑ क्षि॒तीर्मानु॑षीर्बो॒धय॑न्ती ।
सु॒स॒न्दृग्भि॑रु॒क्षभि॑र्भा॒नुम॑श्रे॒द्वि सूर्यो॒ रोद॑सी॒ चक्ष॑सावः ॥ १ ॥

भा०—(जनानां पथ्या) मनुष्यों को प्रकाश से सत्पथ बतलाने वाली (उषा) प्रभात-वेला के तुल्य (पथ्या) धर्म-पथ बतलाने में हितकारिणी वधू (वि-आवः) विविध गुणों का प्रकाश करे। वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती) मनुष्यों के पांचों प्रकार के प्रजा-

जनों को बोध कराती हुई, (सु-सं-दृग्भिः) उत्तम सम्यग् दर्शन-युक्त, (उक्षभिः) पुरुष-पुंगवों द्वारा (भानुम् अश्रेत्) विशेष दीप्ति धारण करे और (सूर्यः) आकाश और भूमि को प्रकाश से सूर्य के तुल्य पुरुष (रोदसी) माता पिता दोनों के कुलों को (चक्षसा) सम्यग् दृष्टि से, (वि-आवः) विशेष रूप से उज्ज्वल करता है।

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥२॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जैसे (दिवः अन्तेषु) आकाश के प्रान्त भागों में (अक्तून् वि अञ्जते) रात्रि-भागों या प्रकाशों को प्रकट करती हैं वैसे ही (उषसः) कामनायुक्त नववधुएं (अन्तेषु) प्रान्त भागों में विद्यमान (विशः न) प्रजाओं के समान (दिवः अन्तेषु) दिन के अन्त में, (अक्तून्) उज्ज्वल गृह-दीपकों को प्रकाशित करती हैं और (युक्ताः यतन्ते) नियुक्त भृत्यजनों के समान नववधुएं पति की आज्ञा में रह-कर गृह-कार्य करती हैं। हे नववधू ! जैसे (गावः तमः आवर्त्तयन्ति) किरणें अन्धकार दूर करती हैं और (ज्योतिः यच्छन्ति) प्रकाश देती हैं, वे (सूर्यस्य बाहू इव) सूर्य की बाहुओं के समान हैं वैसे ही (ते) तेरी (गावः) वाणियां (तमः सम् आ वर्त्तयन्ति) शोकादि दुःख दूर करें और (ज्योतिः) प्रकाशवत् स्फूर्त्ति दें। हे (उषः) नववधू। तू भी (सविता इव) प्रजोत्पादक पति के तुल्य हो, (बाहू) एक शरीर में दो बाहुओं के तुल्य तुम दोनों मिलकर रहो।

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥३॥

भा०—(उषा) उषा के तुल्य कान्तिमती कन्या (इन्द्र-तमा) ऐश्वर्यवती, रानी के तुल्य और (मघोनी) धनैश्वर्य से युक्त (अभूत) हो। वह (सुविताय) ऐश्वर्य-प्राप्ति करने के लिये (श्रवांसि) यशों

और धनों को (अजीजनत्) उत्पन्न करे। वह (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् प्रभा के तुल्य उज्ज्वल कामनावान् पति के मनोरथों को पूर्ण करने वाली, ज्ञानवती स्त्री (अंगिरस्तमा) अति विदुषी होकर (सुकृते) पुण्यादि की वृद्धि के लिये (वसूनि) ऐश्वर्यों को (दधाति) धारण करे।

तावदु॑षो॒ राधो॑ अ॒स्मभ्यं॑ रास्व॒ याव॑त्स्तो॒तृभ्यो॒ अर॑दो गृणा॒ना।
यां त्वा॑ ज॒ज्ञुर्वृ॑ष॒भस्या॒ रवे॑ण॒ वि दृ॒ळ्हस्य॒ दुरो॒ अद्रे॑रौर्णोः ॥४॥

भा०—जैसे 'उषस्' अर्थात् कान्तियुक्त विद्युत् को (वृषभस्य रवेण) वर्षणशील मेघ के घोर गर्जन के साथ ही (जज्ञुः) जानते हैं और वह (दृढस्य अद्रेः दुरः वि और्णोत्) दृढ़ मेघ पर्वतादि के जलाव-रोधक मार्गों को खोल देती हैं वैसे ही हे विदुषी ! वधू ! (यां त्वा) जिस तुझको (वृषभस्य) उत्तम पुरुष के (रवेण) उपदेश या नाम शब्द से लोग (जज्ञुः) जान लेते हैं वह तू (दृढस्य अद्रेः) दृढ़ 'अद्रि' अर्थात् पर्वतवत् विशाल भवन के (दुरः) नाना द्वारों को (वि और्णोः) उद्-घाटन कर, तू गृहपति की स्वामिनी हो और (यावत्) जितना तू (गृणाना) स्तुतियुक्त होकर (स्तोतृभ्यः अरदः) विद्वानों को देवे (तावत् राधः) उतना ही धन (अस्मभ्यं) हमें प्रदान कर।

दे॒वंदे॑वं॒ राध॑से चो॒दय॑न्त्यस्म॒द्र्य॑क्सू॒नृता॑ ई॒रय॑न्ती।
व्यु॒च्छन्ती॑ नः स॒नये॒ धियो॑ धा यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५।२६

भा०—हे विदुषि ! तू (देवं-देवं) प्रत्येक विद्वान् पुरुष को (राधसे) दान-योग्य धन (चोदयन्ती) स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई और (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति (सूनृता) उत्तम वचन कहती हुई, (वि उच्छन्ती) विशेष गुण प्रकट करती हुई (नः सनये) हमें दान देने के लिये (धियः धाः) लौकिक वैदिक कर्म और शुभ संकल्प कर। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) पूर्ववत्। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[८०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥१॥

भा०—जैसे (रजसी समन्ते) आकाश और भूमि के प्रान्त भागों तक (वि-वर्तयन्तीं) व्यापी हुई और (विश्वा भुवना आविः कृण्वतीं) समस्त पदार्थों को प्रकट करती हुई (प्रति उषसं) प्रत्येक प्रभात वेला को प्राप्त कर (विप्रासः) विद्वान् (स्तोमेभिः गीर्भिः) स्तुतियुक्त मन्त्रों, वाणियों से (अबुध्रन्) ज्ञान प्राप्त करते हैं और अन्यों को कराते हैं वैसे ही (वसिष्ठाः) ब्रह्मचारी वा पितावत् (प्रथमाः) प्रथम कोटि के, उत्तम, विस्तृत ज्ञान वाले (विप्रासः) विद्वान् पुरुष, (समन्ते) समीपस्थ (रजसी) मातृ-पितृपक्ष के बन्धुजनों या अति समीपस्थ (रजसी) गर्भ में प्राप्त शुक्र और रज दोनों के अंशों को (विवर्त्तयन्ती) विविध रूपों में परिणत करती हुई और (विश्वा भुवनानि) गर्भगत भ्रूण के सब रूपों को प्रकट करती हुई उस, सन्तान की इच्छुक माता को (प्रति) लक्ष्य कर (स्तोमेभिः) स्तुति-योग्य वचनों, व्यवहारों और (गीर्भिः) वेद-वाणियों से (अबुध्रन्) ज्ञान प्रदान करें, जिससे सन्तति का पोषण उत्तम और उस पर संस्कार भी उत्तम पड़ें ।

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्रं एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

भा०—जैसे (उषा) प्रभात-वेला, (ज्योतिषा तमः) प्रकाश से अन्धकार को दूर करती, (नव्यम् आयुः दधाना) सब प्राणियों को नया जीवन देती, (अग्रे) सूर्य के आगे आती, फिर सूर्य, यज्ञ और यज्ञाग्नि को प्रबुद्ध कराती है वैसे ही (उषा स्या युवतिः) वह यह युवति,

वधू (नव्यम् आयुः दधाना) नयी आयु धारण करती हुई (ज्योतिषा) कान्ति से (तमः गूढ्वी) गहरे शोक, मोहादि को दूर करके (अबोधि) जागे और पति को जागृत करे। वह (अह्रयाणा) लज्जा वा प्रमाद त्यागकर (युवतिः) नवयुवति गृहिणी, (अग्रे एति) आगे आवे, (सूर्यम्) सूर्यवत् अपने पति को (प्राचिकित्सत्) जगावे, (यज्ञम् अग्निम्) और बाद में वही यज्ञ अर्थात् परमेश्वर और अग्निहोत्र की अग्नि को भी जगावे।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः। घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३।२७।५॥

भा०—(अश्वावतीः) अश्वों अर्थात् विद्यादि में निष्णात उत्तम पुरुषों से युक्त, (गोमतीः) देववाणियों से युक्त, (वीरवतीः) उत्तम पुत्रों से युक्त, (भद्राः) कल्याण देने वाली (उषासः) पति-पुत्रादि को चाहने वाली देवियां (नः सदम् उच्छन्तु) हमारे घरों को सदा प्रकाशित करें। वे (घृतं दुहानाः) घृतवत् स्नेह, जल आदि पुष्टिकारक पदार्थों की वृद्धि करती हुई स्वयं भी (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रपीताः) सन्तुष्ट, हृष्ट-पुष्ट होकर रहें। हे उत्तम देवियो! (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) पूर्ववत्। इति सप्तविंशो वर्गः॥ इति पञ्चमोऽध्यायः॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८१]

वसिष्ठ ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१ विराड् बृहती। २ भुरिग्-बृहती। ३ आर्षी बृहती। ४, ६ आर्षी भुरिग् बृहती, निचृद् बृहती॥ षड्चं सूक्तम्॥

प्रत्यु॑ अदर्श्याय॒त्यु१॒॑च्छन्ती॑ दुहि॒ता दि॒वः।
अपो॒ महिं॑ व्ययति॒ चक्ष॑से॒ तमो॒ ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑ ॥ १ ॥

भा०—जैसे (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान प्रकाश से जगत् को पूर्ण करने वाली उषा (आयती) आती हुई और (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (प्रति अदर्शि उ) स्पष्ट दिखाई देती है, वह (महि तमः) बड़े अन्धकार को (अप व्ययति उ) दूर करती है और (चक्षसे) सबको दिखलाने के लिये (ज्योतिः कृणोति) प्रकाश करती है वैसे ही (सूनरी) उत्तम विदुषी स्त्री, (दिवः दुहिता) सब कामनाओं, व्यवहारों को पूर्ण करने वाली, (आयती) आती हुई, (उच्छन्ती) गुणों को प्रकट करती हुई, (प्रति अदर्शि) प्रतिदिन दिखाई दे। वह (चक्षसे) सम्यग् दर्शन करने और अन्यों को उपदेश करने के लिये (महि तमः अपो व्ययति) बहुत अन्धकार, अज्ञान को दूर करे और (ज्योतिः कृणोति) ज्ञान-प्रकाश करे।

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अर्चिवत्) तेजो-युक्त (नक्षत्रम्) नक्षत्र रूप (सूर्यः) सूर्य (उस्रियाः सचा उत्सृजते) किरणों को एक साथ ऊपर फेंकता है, हे (उषः) उषा! (तव इत् सूर्यस्य उषि) तेरे और सूर्य के उषा काल में जैसे (भक्तेन सं गमेमहि) हम भजन-योग्य प्रभु से संगति लाभ करें, वैसे ही हे (उषः) कान्तिमति, उत्तम विदुषि नववधु! जब (उद्-यत्) उगता हुआ (अर्चिवत्) अन्यों के सत्कार योग्य (नक्षत्रम्) नक्षत्र के समान व्यापक राज्य पालन-सामर्थ्य हो और (सचा) साथ ही (सूर्यः) सूर्य-तुल्य तेजस्वी पुरुष (उस्रियाः) उन्नतिशील प्रजाओं को किरणों के समान (उत्सृजते) उन्नति की ओर ले जाता है, तब (तव इत् विउषि, सूर्यस्य च वि-उषि) तेरी और तेरे पति तेजस्वी पुरुष की विशेष इच्छा और प्रताप होने पर (भक्तेन सं गमेमहि) हम ऐश्वर्यादि लाभ करें।

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी की कामनाएं पूर्ण करने वाली, हे (उषः) तेजस्विनि ! हम लोग (जीराः) शीघ्रकारी होकर (त्वा प्रति) तुझे (अभुत्स्महि) जानते हैं कि हे (वनन्वति) धन की स्वामिनि ! (या) जो तू (पुरु स्पार्हं) बहुत अधिक, चाहने योग्य ऐश्वर्य (वहसि) धारती है, वह तू (रत्नं न) रमणीय रत्नवत् और (मयः) सुखकारी पदार्थ (दाशुषे) दान देने वाले के लिये ही (वहसि) धारती है।

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

भा०—(या) जो तू हे (देवि) दानशीले ! हे (महि) पूजनीये ! जैसे उषा (प्रख्यै) सब पदार्थों को बतलाने और (दृशे) देखने के लिये (स्वः उच्छन्ती) स्वयं प्रकट होती, सूर्य को प्रकट करती है वैसे ही (उच्छन्ती) गुणों का प्रकाश करती हुई (प्रख्यै) उत्तम ख्याति पाने और (दृशे) दर्शन के लिये (मंहना) अपने व्यवहार से (स्वः) आदित्य-वत् तेजस्वी पुरुष, या पुत्र को (कृणोषि) उत्पन्न करती है। (रत्नभाजः) पुत्रादिरत्न को धारण करने वाली तुझसे हम (ईमहे) याचना करें और (वयम्) हम (मातुः सूनवः न) माता के पुत्रों के तुल्य (स्याम) तेरे कृपापात्र बनें।

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) हे विदुषि ! हे प्रभुशक्ते ! तू हमें (तत्) वह (चित्रम्) अद्भुत, सञ्चय-योग्य, (राधः) ऐश्वर्य (आ भर) दे (यत् दीर्घ-श्रुत्तमम्) जो दीर्घ काल तक श्रवण योग्य हो। हे (दिवः दुहितः) सूर्य की पुत्री उषावत् तेजस्वी पिता की कन्ये ! एवं तेजस्वी पुरुष की कामना पूर्ण करने हारी ! (यत् ते मर्त्त-भोजनम्) जो तेरा मनुष्यों

को पालन करने वाला सामर्थ्य है (तत्) वह तू हमें (रास्व) दे, (भुनजामहै) हम उसका भोग करें।

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे (सूनृतावति) ऋत, ज्ञान और धन की स्वामिनि ! तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लिये (अमृतम्) अमृतमय (श्रवः) श्रवणयोग्य ज्ञान, आयुप्रद अन्न, (वसुत्वनं) ऐश्वर्ययुक्त कीर्त्ति और (गोमतः वाजान्) पशु-भूमिसम्पन्न ऐश्वर्य दे। तू (मघोनः) ऐश्वर्य वालों को (चोदयित्री) अपने अधीन चलाती हुई (स्रिधः) हिंसक दुष्टों को (अपः उच्छत्) दूर कर। इति प्रथमो वर्गः ॥

[८२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ९, निचृज्जगती। ३ आर्ची भुरिग् जगती । ४, ५, १० आर्षी विराड् जगती । ८ विराड् जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र, शत्रु के हनन करने हारे ! हे वरणीय सर्वश्रेष्ठ ! (युवम्) आप दोनों (अध्वराय) हिंसा से रहित (नः) हमारे (विशे जनाय) प्रजाजन को (महि शर्म) बड़ा सुख (यच्छतम्) दो। (दीर्घ-प्रयज्युम्) दीर्घ-काल से उत्तम संगति वाले, एवं चिरकाल से कर, वृत्ति आदि देने वाले पुरुष को (यः) जो (वनुष्यति) मर्यादा का अतिक्रमण करके हिंसा करे या उससे अधिकार से अधिक मांगे, उसको और (दूढ्यः) दुष्ट कर्म करने वालों को (वयं) हम (पृतनासु) संग्रामों के बीच (जयेम) विजय करें।

सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥२॥

भा०—इन्द्र और वरुण का स्वरूप । (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र और वरुण दोनों (महान्तौ) गुणों और बलों में महान् सामर्थ्यवान् और दोनों (महावसू) बड़े भारी वसु अर्थात् धन और अधीन बसे प्रजा के स्वामी हैं । एक के पास धनबल, दूसरे के पास जनबल, एक कोशवान् और दूसरा दण्डवान्, एक अर्थपति दूसरा बलाध्यक्ष है । (वाम्) आप दोनों में से (अन्य सम्राट्) एक तो 'सम्राट्' और (अन्यः स्वराट्) दूसरा 'स्वराट्' (उच्यते) कहलाता है । अच्छी प्रकार देदीप्यमान होने से सम्राट् और 'स्व' धन और 'स्व' अपने जन से राजावत् प्रकाशमान होने से 'स्वराट्' है । (वाम्) आप दोनों के (परमे) सर्वोत्कृष्ट (वि-ओमनि) विशेष रक्षण में रहते हुए (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, वीर और व्यवहारवान् मनुष्य (ओजः सं दधुः) पराक्रम या तेज एक साथ धारें और (बलं सं दधुः) अपना बल एक साथ लगावें ।

अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥३॥

भा०—आप दोनों (अपां) प्रजाओं के यातायात के लिये (खानि) जल मार्गों के समान नाना मार्ग (अनु अतृन्तम्) उनके अनुकूल बनाते हो और (दिवि) शासन और व्यवहार में (प्रभुम्) सामर्थ्यवान् (सूर्यम्) सूर्य-समान तेजस्वी पुरुष को (ऐरयतम्) प्रेरित करते हो । (अस्य) इस (मायिनः) प्रजावान् और शिल्पशक्ति के स्वामी के (मदे) सन्तुष्ट रहने पर ही (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण, अर्थ और बल के अध्यक्ष जन (अपितः) अरक्षित प्रजाओं को भी (अपिन्वतम्) बढ़ाते और (धियः पिन्वतम्) नाना कर्मों, शिल्पों को पुष्ट करते हैं ।

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रा वरुणा सुहवा हवामहे ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! हे वरुण, शत्रु-जनों, दुष्टों, और विघ्नों के वारक अध्यक्षो ! (वह्नयः) नाना कार्यों को वहन करने वाले प्रधान पुरुष (युत्सु) युद्धों, (पृतनासु) सेनाओं और प्रजाओं में (युवाम्) तुम दोनों को (हवन्ते) बुलाते हैं और (मित-ज्ञवः) मित ज्ञान वाले, ज्ञानी वा विनय से गोड़े सिकोड़ कर बैठने वाले, सभ्य, वा परिमित कदम वाले जन (क्षेमस्य प्रसवे) अप्राप्त धन को प्राप्त करने के लिये (युवाम्) आप दोनों को याद करते हैं । (कारवः) क्रिया-कुशल, शिल्पी और वेद-मन्त्रों के द्रष्टा हम विद्वान् जन (उभयस्य वस्वः ईशाना) ऐहिक और पारमार्थिक वा चर और अचर दोनों के स्वामी आप दोनों (सु-हवा) सुख से पुकारे जाने योग्य सुख-दाताओं को (हवामहे) पुकारते हैं ।

इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥५॥२॥

भा०—आधिदैविक दृष्टान्तों से इन्द्र-वरुण का रहस्य । जैसे (मित्रः) सबका मित्र सूर्य (वरुणं) आकाश के आच्छादक मेघ को (क्षेमेण दुवस्यति) प्रजा के पालन-सामर्थ्य, अन्न-जलादि से युक्त करता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) प्रबल वायु (मरुद्भिः) मध्यस्थानीय वायुओं से (शुभम् ईयते) जल को प्राप्त कराता है और सूर्य, वायु या विद्युत् दोनों (मज्मना) बल से (भुवनस्य इमा विश्वा जातानि) संसार के इन समस्त प्राणियों को (चक्रथुः) उत्पन्न करते हैं, ऐसे ही (यत् इन्द्रा-वरुणा) जो इन्द्र और वरुण ऐश्वर्य और दण्ड के अध्यक्ष जन (मज्मना) धन और सैन्य-बल से (इमानि विश्वा जातानि) इन समस्त जनों को (चक्रथुः) अपने अधीन और समृद्ध करते हैं । वे कैसे करते हैं ? (मित्रः)

५ प.

सबको मरने या नाश होने से बचाने वाला, ब्राह्मण-वर्ग (वरुणं) दुष्टों के वारक दण्डवान् क्षत्रवर्ग को (क्षेमेण) प्रजा के योग्य क्षेम, रक्षा या प्राप्त धन के सामर्थ्य से (दुवस्यति) युक्त करता है, उसको प्रजा की रक्षा और पालन का अधिकार सौंपता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) शत्रुमारक सुभटों से युक्त होकर (शुभम् ईयते) शोभित पद को प्राप्त करता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

मुहे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम्।
अजामिमुन्यः श्नथयन्तमातिरद्दुभ्रेभिरुन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥६॥

भा०—(अस्य वरुणस्य) इस 'वरुण' की (यत्) जो (ध्रुवम् स्वम्) स्थिर सम्पदा है उस (महे शुल्काय) बड़े ऐश्वर्य और (त्विषे) तेजोवृद्धि के लिये (नु) 'इन्द्र और वरुण' दोनों ही (ओजः) पराक्रम करते हैं। कैसे करते हैं कि—(अन्तः) एक तो (श्नथयन्तम् अजामिम्) हिंसा करने वाले शत्रु को (आ अतिरत्) सब ओर से नष्ट करता है और (अन्यः) दूसरा (दभ्रेभिः) हिंसाकारी शस्त्रों से (भूयसः प्र वृणोति) बहुत शत्रुओं को आच्छादित करता और उनको दूर से ही वारण करता है।

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ७

भा०—हे (देवा) दानशील, विजय-कामना वाले (इन्द्रा-वरुणा) शत्रुहन्ता और विघ्नवारक अध्यक्षो! आप दोनों (यस्य मर्तस्य अध्वरं) जिस राष्ट्र या मनुष्य-वर्ग के 'अध्वर' अर्थात् हिंसा-रहित प्रजा-पालन के कार्य को (गच्छथः) जाते हो और (वीथः) रक्षा करते हो (तम् मर्तम्) उस मनुष्य तक (न अंहः नशते) न पाप पहुँचता है (न दुरितानि) न बुरे फल (कुतः चन न तपः) न किसी से सन्ताप (तं न परिह्वृतिः नशते) और न उसको किसी की कुटिल चाल सताती है।

अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ८

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुवारक! (नरा) नायको! (यदि) यदि आप दोनों (मे जुजोषथः) मुझसे प्रेम करते हो तो (मे हवं शृणुतम्) मेरा वचन सुनो और (दैव्येन) विद्वान्, वीर पुरुषों से बने (अवसा) रक्षा आदि साधन-सहित (अर्वाङ् आगतम्) हमारे पास आओ। (युवोः) आप दोनों की (हि) निश्चय से (यत्) जो (सख्यम्) मित्रता और (मार्डीकम् आप्यम्) सुखकारी बन्धुता है, उसे हमें (नि यच्छतम्) दो।

अस्माकमिन्द्रा वरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद्वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥९॥

भा०—हे (कृष्ट्योजसा इन्द्रावरुणा) 'कृष्टि' अर्थात् शत्रु का कर्षण, पीड़ा करने वाली सेनाओं, पराक्रम वाले इन्द्र और वरुण, शत्रुहन्ता, शत्रुवारक अध्यक्षो! आप दोनों (अस्माकं भरे-भरे) हमारे प्रत्येक संग्राम में (पुरोयोधा भवतम्) आगे रहकर लड़ने वाले होवें। (यत्) जो (नरः) मनुष्य (उभये) सबल, निर्बल दोनों ही (तोकस्य तनयस्य सातिषु) पुत्र-पौत्र तक के सेवन-योग्य स्थिर भूमि आदि को प्राप्त करने हेतु (स्पृधि) आपसी स्पर्धा में (वां हवन्ते) तुम दोनों को प्राप्त करते हैं।

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ।१०।२

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी (वरुणः) मेघवत् उदार, वरणीय, (मित्रः) स्नेही, (अर्यमा) शत्रुओं के नियन्त्रण में कुशल पुरुष (अस्मे) हमें (महि द्युम्नं) बड़ा ऐश्वर्य और (सप्रथः शर्म) विस्तारयुक्त शरण, गृह आदि (यच्छन्तु) प्रदान करें। ये सब (ऋत-वृधः) सत्य, न्याय, धन आदि को बढ़ाने और स्वयं बढ़ने वाले होकर (अदितेः)

अखण्ड शासनकर्त्ता, प्रजा के माता पिता एवं पुत्रवत् पालक के (अवध्रं) न नाश होने वाले (ज्योतिः) ज्ञान और प्रताप का प्रदान करें। हम भी उसी (देवस्य) दाता (सवितुः) प्रभु की (श्लोकं) वाणी-वेद तथा आज्ञा का (मनामहे) मान तथा मनन करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[८३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ९ विराड् जगती । २, ४, ६ निचृज्जगती । ५ आर्ची जगती । ७, ८, १० आर्षी जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१॥

भा०—जैसे (प्राचा) पूर्व दिशा से (आप्यं पश्यमानासः) जलों के लक्षण देखते हुए (गव्यन्तः) भूमि-कर्षणादि के इच्छुक (पृथु-पर्शवः) बड़े हल, फावड़े आदि लेकर भूमि खोदने जाते हैं वैसे ही हे (नरा) नायक जनो ! (प्राचा) सम्मुख से परस्पर (आप्यं) बन्धुभाव वा प्राप्तव्य लक्ष्य को (पश्यमानासः) देखते हुए (गव्यन्तः) भूमि-विजय की कामना वाले (पृथु-पर्शवः) बड़े २ परशु आदि शस्त्रास्त्र लिये (ययुः) आगे बढ़ें। जैसे वायु और विद्युत् दोनों (वृत्रा हतम्) मेघस्थ जलों पर आघात करते हैं वैसे ही (युवां) हे इन्द्र और वरुण ! शत्रु-हनन और शत्रु-वारण करने वालो ! आप दोनों (दासा) विनाशकारी और (आर्याणि) 'अरि' अर्थात् शत्रु-पक्ष के (वृत्रा) बढ़ते हुए सैन्यों को (हतम्) मारो और (दासा च) इत्यादि तथा (आर्याणि) 'आर्य' स्वामी वा वैश्यों के उपयोगी (वृत्रा) नाना धनों को भी (हतम्) प्राप्त करो। हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! तुम दोनों (सु-

दासम्) उत्तम दानशील, धनी, तथा उत्तम भृत्य आदि की भी (अवसा अवतम्) रक्षा साधनों द्वारा रक्षा करो।

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम्।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम में (कृत-ध्वजः नरः) झण्डे हाथ में लिये नायक जन (सम् अयन्त) एक साथ प्रयाण करते हैं और (यस्मिन् आजा) जिस संग्राम में (किं च न प्रियं भवति) शायद कुछ ही प्रिय होता हो, (यत्र) जहां (स्वर्दृशः) सूर्यवत् तीक्ष्ण दृष्टि वाले तेजस्वी पुरुष से (भुवना) समस्त लोक, प्राणी (भयन्ते) भय करते हैं (तत्र) ऐसे संग्रामों में (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र, वरुण नाम पदाधिकारी जन (नः अधि वोचतम्) हमारे अध्यक्ष होकर शासन आदि करें।

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत्।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥ ३ ॥

भा०—जब (भूम्याः अन्ताः) भूमि के प्रान्त भाग (ध्वसिराः सम् अदृक्षन्त) सब नष्ट-भ्रष्ट दिखाई देवें (दिवि: घोषः आरुहत्) आकाश या पृथ्वी में बड़ा कोलाहल गूंज रहा हो और (अरातयः) शत्रु लोग (जनानाम् उप) राष्ट्रवासी मनुष्यों के पास तक और (माम् उप अस्थुः) मुझ प्रजा वर्ग तक आ पहुँचें ऐसी दशा में भी हे (इन्द्रा-वरुणा) शत्रु के नाशक और वारक जनो (हवन-श्रुता) आह्वान पुकार सुनने वाले आप दोनों दयार्द्र होकर (अवसा आगतम्) रक्षा-सामर्थ्य सहित प्राप्त होओ।

इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम्।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रु का हनन और वारण करने वाले वीर वर्गो ! आप दोनों (वधनाभिः) शत्रु को दण्ड देने और नाश करने

वाली नीतियों और सेनाओं से (अप्रति) अप्रत्यक्ष रूप से (भेदं) शत्रु को छिन्न भिन्न (वन्वन्ता) करते हुए, वा (भेदं वन्वन्ता) राष्ट्र-भेदक शत्रु का नाश करते हुए (सु-दासम्) शुभ दानशील भृत्यादि से युक्त राजा की (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करो। (हवीमनि) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा-योग्य संग्राम में (एषां) इन विद्वान् प्रजाजनों के (ब्रह्माणि) ज्ञान-वचनों को (शृणुतं) सुनो। (तृत्सूनां) शत्रुओं को मार गिराने वाले वीर सैन्यों और संशयोच्छेदी विद्वानों की (पुरोहितिः) सबसे आगे स्थिति और अग्रासन पर विराजना (सत्या अभवत्) सफल हो।

इन्द्रावरुणाव॒भ्या त॑पन्ति म॒घान्य॒र्यो व॒नुषा॒मरा॑तयः।
यु॒वं हि वस्व॑ उ॒भय॑स्य॒ राज॒थोऽध॑ स्मा नोऽवतं॒ पार्ये॑ दि॒वि ॥५॥४॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र, शत्रुहन्तः! हे वरुण शत्रुओं के वारक (अर्यः) शत्रु के किये (अघानि) पापाचार और (वनुषाम्) हिंसक जनों वा मांगने वालों में से भी (अरातयः) दूसरों का अधिकार हर कर न देने वाले जन ही (मा) मुझ राष्ट्र-वासी जन को (अभि आ तपन्ति) सताते हैं। (युवं हि) आप दोनों निश्चय से (उभयस्य) मुझ प्रजाजन और मुझे सताने वाले (वस्वः) राष्ट्र में बसने वाले दोनों के ऊपर (राजथः) राजावत् शासन करो, (अध) इसलिये आप दोनों (पार्ये दिवि) पालने वाले शासन व्यवहार के पद पर स्थित होकर (नः अवतं स्म) हमारी रक्षा करो।

यु॒वां ह॑वन्त उ॒भया॑स आ॒जिष्विन्द्रं॑ च॒ वस्वो॒ वरु॑णं च सा॒तये॑।
यत्र॒ राज॑भिर्द॒शभि॒र्निबा॑धितं॒ प्र सु॒दास॒माव॑तं॒ तृत्सु॑भिः स॒ह ॥६॥

भा०—(यत्र) जिन संग्रामों में (दशभिः राजभिः) दसों राजाओं वा तेजस्वी पुरुषों से (नि बाधितम्) अति पीड़ित (सुदासं) उत्तम दानशील पुरुष की (तृत्सुभिः) शत्रु को काटने वाले वीर भटों से (प्र अवतम्) रक्षा करते हो, उन (आजिषु) युद्धों में (इन्द्रं च) ऐश्वर्यवान्

और (वरुणं च) श्रेष्ठ (युवां) आप दोनों को (वस्वः सातये) धनैश्वर्यादि के लाभ के लिये (उभयासः) वादी प्रतिवादी दोनों पक्ष के लोग (हवन्ते) पुकारते हैं।

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥ ७ ॥

भा०—(अयज्यवः) देवपूजा और संगति न करने वाले (दश राजानः) दस तेजस्वी पुरुष भी (सम् इताः) एक साथ आकर (सुदासम् न युयुधुः) उत्तम दानशील तथा शत्रु-नाश में कुशल राजा से नहीं लड़ सकते। (अद्मसदाम्) समान अन्न पर स्थित (नृणाम्) मनुष्यों की (उपस्तुतिं) समीप २ बैठ कर की हुई प्रार्थना भी (सत्या) फलजनक होती है। (एषाम्) इनके (देवहूतिषु) विद्वान् वीरों को आह्वानों, यज्ञों, संग्रामों के अवसरों पर (देवाः) वीर पुरुष (अभवन्) सहायक होते हैं।

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम्।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥ ८ ॥

भा०—(परियत्ताय) सब ओर से नियन्त्रित, (दाश-राज्ञे) दशों राजाओं के बीच प्रबल, (सुदासे) उत्तम दानशील राजा को हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुवारणकारी मनुष्य वर्गो! (अशिक्षतम्) आप दोनों ज्ञान, बल दो (यत्र) जिसके अधीन (श्वित्यञ्चः) उज्ज्वल यश, या समृद्धि को प्राप्त (कपर्दिनः) उत्तम जटाजूट वा उत्तम धन-सम्पन्न और (धीवन्तः) बुद्धिमान्, (तृत्सवः) शत्रुनाशक, त्रिविध ऐश्वर्यों के स्वामी लोग (नमसा) आदर पूर्वक अन्न, वज्र, शस्त्रादि-सहित (असपन्त) समूह बनाकर रहते हैं। [कपर्दिनः—कपर्दः—जटाजूटः अथवा कपर्दः धनम्। कौड़ी इत्युपलक्षणम्। तद्वन्तः] पैसे वाले।

अध्यात्म में—दश प्राण, दश इन्द्रियें दश राजा हैं, वे दस स्थानों पर पृथक् २ विद्यमान हैं। परस्पर उनका कोई सीधा सम्बन्ध न होने से 'अयज्यु' हैं। वे एक ही साथ हमें प्राप्त (सम्-इताः) हैं। आत्मा 'सुदास' है, प्राण अपान इन्द्र-वरुण हैं। सुखप्रद ज्ञानतन्तु 'तृत्सु' हैं। वे सुखपूर्वक होने से 'कपर्दी' हैं। वे 'नमसा, धिया' अन्न और बुद्धि के बल से आत्मा के अधीन हैं।

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥९॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे वरुण! दुष्टों के वारक! आप दोनों में से (अन्यः) एक तो (समिथेषु) संग्राम और यज्ञों में (वृत्राणि जिघ्नते) बढ़ते, विघ्नकारी पुरुषों को दण्ड देता है और (अन्यः) दूसरा विद्वान् आचार्य—(सदा व्रतानि अभि रक्षते) सदा व्रतों की रक्षा करता है। हम लोग (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (वां हवामहे) आप दोनों को बुलाते, अपनाते, धन, मान आदि देते हैं। हे इन्द्र! हे वरुण! सेना-सभाध्यक्षो! (अस्मे) हमें आप दोनों (शर्म यच्छतम्) सुख दो।

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१०॥५

भा०—व्याख्या देखो सू० ८२। मं० १० ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[८४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे सर्वश्रेष्ठ! (राजानौ वां) दीप्तियुक्त आप दोनों को मैं (हव्येभिः नमोभिः) अन्नों, शस्त्रों, उत्तम

वचनों और आदर-युक्त विनय कार्यों से (ववृत्यां) वरण करता हूँ। (विषु-रूपा घृताची) बहुतप्रकार की तेजस्विनी वा स्नेहयुक्त प्रजा (वां) आप दोनों को (बाह्वोः प्रदधाना) बाहुओं के समान शत्रुओं को पीड़ा देने वाले प्रधान पदों पर स्थापित करती हुई, पुरुष को स्त्री के समान (परि जिगाति) सब प्रकार से प्राप्त हो। जैसे स्त्री (वि-सु-रूपा) विशेष सुन्दरी, (घृताची) घृताक्त, अंगप्रत्यंग स्नातानुलिप्त होकर पुरुष को (बाह्वोः प्रदधाना) बाहुपाश में लेती हुई उसे (त्मना) स्वयं (परि जिगाति) अपनाती है वैसे ही प्रजा भी अनुरक्त होकर उक्त इन्द्र-वरुण दोनों को, बाहुवत् सैन्यादि के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर, अपनावे।

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२॥

भा०—(द्यौ) जो आप दोनों (अरज्जुभिः) बिना रस्सियों के (सेतृभिः) बन्धन करने वाले राज-नियमों और व्रत-बन्धनों से (सिनीथः) बांध लेते हो (युवोः) उन आप दोनों का (राष्ट्रम्) राष्ट्र (बृहत्) बड़ा एवं (द्यौः) सूर्य तुल्य देदीप्यमान होकर (इन्वति) सबको प्रसन्न करता है। (वरुणस्य हेडः) श्रेष्ठ जन का हमारे प्रति क्रोध का भाव (नः परि वृज्याः) हम से दूर रहे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा वा सेनापति (नः) हमारे लिये (उरुं लोकं कृणवत्) निवास हेतु विशाल लोक करे, भूमि को बसने योग्य बनावे।

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥३॥

भा०—हे विद्वान्, श्रेष्ठ और दुःख निवारक जनो ! आप दोनों (नः विदथेषु) हमारे गृहों में (चारुं यज्ञं कृतं) उत्तम यज्ञ सम्पादन करो और (सूरिषु) विद्वानों को (प्रशस्ता ब्रह्माणि कृतम्) उत्तम धन-

हो। (नः) हमें (देवजूतः रयिः) विद्वानों से उपदेश और सेवन योग्य ऐश्वर्य (नः उपो एतु) प्राप्त हो। आप दोनों (स्पार्हाभिः) चाहने योग्य उत्तम रक्षाओं द्वारा (प्र तिरेतम्) हमें बढ़ाओ।

अ॒स्मे इ॑न्द्रावरुणा वि॒श्ववा॑रं र॒यिं ध॑त्तं वसु॑मन्तं पुरु॒क्षुम्।
प्र य आ॑दि॒त्यो अनृ॑ता मि॒नात्यमि॑ता शूरो॑ दयते॒ वसू॑नि ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रा-वरुणा) हे ऐश्वर्यवन्! हे वरणीय! आप दोनों (अस्मे) हमें (पुरु-क्षम् वसुमन्तं) बहुत अन्नसम्पदा और सुवर्णादि से युक्त, (विश्ववारं) सबसे वरणीय (रयिं) ऐश्वर्य (धत्तं) दो। (यः) जो (आदित्यः) सूर्य-समान तेजस्वी और 'अदिति' अखण्ड शासन-नीति में कुशल और 'अदिति' भूमि का पुत्रवत् प्रिय वा शासक होकर (अनृता) प्रजा के असत्य व्यवहारों को (प्र मिनाति) नष्ट करता है वह (शूरः) वीर पुरुष (अमिता वसूनि दयते) अमित धन देता है।

इ॒यमिन्द्रं॒ वरु॑णमष्ट मे॒ गीः प्राव॑त्तो॒के तन॑ये॒ तूतु॑जाना।
सु॒रत्ना॑सो दे॒ववी॑तिं गमेम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५॥६॥

भा०—(मे) मेरी (इयं गीः) यह वाणी (इन्द्रं) शत्रुनाशक और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (अष्ट) लक्ष्य करके हो। वह (तूतुजाना) ज्ञान को देती हुई (तनये तोके) पुत्र-पौत्रादि तक को (प्र अवत्) प्राप्त हो। (वयम्) हम (सु-रत्नासः) शुभ रत्नों और रम्य गुणों को धारण करते हुए (देववीतिं गमेम) विद्वानों के ज्ञान-प्रकाश और सत्कामना को (गमेम) प्राप्त करें। हे विद्वान् लोगो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) पूर्ववत्। इति षष्ठो वर्गः ॥

[८५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ आर्षी त्रिष्टुप्। २, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ जन ! मैं (इन्द्राय वरुणाय) इन्द्र और वरुण ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष के लिये (सोमं जुह्वत्) ऐश्वर्य देता हुआ (वाम्) आप दोनों की (अरक्षसं मनीषाम्) दुष्ट-संग-रहित बुद्धि को (पुनीषे) पवित्र करूं। (घृत-प्रतीकाम्) स्नेह से सबको उत्तम लगने वाली, (उषसं देवीं) शत्रु को दग्ध करने और विजय की कामना वाली मन की प्रज्ञा को मैं स्वच्छ करूं। (ता) वे दोनों (अभीके यामन्) युद्ध-प्रयाण-काल में (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें।

स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥

भा०—(अत्र) इस (देव-हूये) मनुष्यों के स्पर्धा-रूप संग्राम में लोग (स्पर्धन्ते उ वा) स्पर्द्धा करते हैं तब (येषु ध्वजेषु) जिन ध्वजाओं पर (दिद्यवः पतन्ति) चमकती बिजलियों के समान वे पड़ते हैं, हे (इन्द्रा-वरुणा) शत्रुहन्तः ! हे शत्रुवारक ! (युवं) तुम दोनों (तान् अमित्रान्) उन शत्रुओं को (हतम्) मारो और (विषूचः पराचः शर्वा) शत्रुओं को हिंसक शस्त्रों से दूर भगाओ।

आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥ ३ ॥

भा०—(स्व-यशसः) अपने धनैश्वर्य से यशस्वी, (देवीः) दान-शील, (देवताः) मानुष-प्रजाएं (सदः सु) सभा-भवनों वा उत्तम पदों पर (इंद्रं वरुणं धुः) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुष को स्थापित करें। उन दोनों में से (एकः) एक इंद्र नाम अध्यक्ष (प्रविक्ताः) अच्छी प्रकार विभक्त (कृष्टीः धारयति) हलाकर्षित भूमियों को मेघ तुल्य प्रजाओं को धारण करे और (अन्यः) दूसरा वरुण, शत्रुवारक अध्यक्ष (अप्र-

तीनि वृत्राणि) छिपे शत्रुओं को दण्डित करें। इंद्र का काम प्रजा को विभक्त कर शासन-व्यवस्था करना और वरुण का काम दुष्टों को दमन है। १. दीवानी, २. फौजदारी।

स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान्।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्वान् ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्याः) अखण्ड राजनीति और भूमि के हितैषी जनो! (यः) जो (होता) दानशील पुरुष (शवसा) स्व बल से तुम दोनों के प्रति (नमस्वान्) अन्नादि सत्कार से युक्त होता है (सः) वह (सु-क्रतुः) शुभ-कर्मकारी और (ऋतचित् अस्तु) सत्य ज्ञान का उपार्जक हो और जो (अवसे) रक्षा के लिये (वां आववर्त्तत्) तुम दोनों को प्राप्त होता है, वह (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (सुविताय इत् आत्) सुख प्राप्त करने में समर्थ, (हविष्मान्) अन्नसम्पन्न हो।

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ५ । ४ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[८६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ६ आर्षी त्रिष्टुप् । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १ ॥

भा०—वरुण परमेश्वर (अस्य महिना) इसके महान् सामर्थ्य से (जनूंषि) जन्मधारी समस्त प्राणी (धीरा) बुद्धि और कर्म द्वारा प्रेरित होते हैं। (यः) जो (चित्) पूजनीय (उर्वी रोदसी) विशाल आकाश और भूमि को (तस्तम्भ) थामे है, वह ही (बृहंतं) बड़े (ऋष्वं) महान्

(नाकम्) सुखस्वरूप परमानंद को (प्र नुनुदे) देता है। वह ही (भूम नक्षत्रं च) बहुत से नक्षत्रों को (पप्रथत्) फैलाता है।

उत स्वया तन्वा३ संवदे तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥२॥

भा०—(उत) और (स्वया तन्वा) मैं अपने इस देह से (तत्) उसका (कदा) कब (संवेद) साक्षात् करूं और (कदा नु) कब मैं (वरुणे अन्तः) उस वरणीय श्रेष्ठ पुरुष के हृदय में (भुवानि) एक हो सकूंगा। वह प्रभु, (अहृणानः) मेरे प्रति कोप-रहित होकर (मे हव्यं) मेरे स्तुतिवचन को (किं जुषेत) क्योंकर प्रेम से स्वीकार करेगा और मैं (कदा) कब (सुमनाः) शुभ-चित्त होकर उस (मृळीकं) आनंदमय को (अभि ख्यम्) साक्षात् करूंगा।

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम्।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ ३ ॥

भा०—हे (वरुण) वरणीय प्रभो! मैं (दिदृक्षु) दर्शनाभिलाषी होकर (तद् एनः पृच्छे) तुझसे वह पाप पूछता हूँ जिसके कारण मैं बंधा हूँ। मैं (उप उ एमि) जिज्ञासु होकर तेरे पास आया हूँ और मैं (चिकितुषः) ज्ञानी पुरुषों से भी (वि पृच्छम्) पूछता रहा हूँ। (कवयः चित् मे समानम् इत् आहुः) विद्वान् मुझे एक समान ही कहते हैं कि (अयं वरुणः) यह वरुण, श्रेष्ठ प्रभु ही (तुभ्यं हृणीते) तुझ पर रुष्ट है।

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम्।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो! (किम् आगः आस) वह क्या अपराध है? (यत्) जिसके कारण (ज्येष्ठं स्तोतारं) बड़े-बड़े स्तुतिकर्त्ता (सखायं) मित्र को भी (जिघांससि) दण्ड देना चाहता है। हे (दूळभ) दुर्लभ! हे अविनाशिन्! हे दूरभ! सदा दूर, विद्यमान! हे (स्वधावः)

अन्नपते, जीवन के स्वामिन्! (मे तत् प्रवोचः) मुझे वह उपाय बतला जिससे (अनेनाः) निष्पाप होकर (नमसा) भक्ति से (तुरः) शीघ्र (त्वा अव इयाम्) तुझ तक पहुँच जाऊं।

अव॑ द्रु॒ग्धानि॒ पित्र्या॑ सृजा॒ नोऽव॒ या व॒यं च॑कृ॒मा त॒नूभिः॑ ।
अव॑ राजन्पशु॒तृपं॒ न ता॒युं सृ॒जा व॒त्सं न दाम्नो॒ वसि॑ष्ठम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (राजन्) प्रकाशस्वरूप प्रभो! तू (नः) हमारे (पित्र्या) माता-पिता के दोष के कारण प्राप्त, (द्रुग्धानि) तेरे प्रति किये द्रोह आदि अपराधों को (अव सृज) दूर कर और (वयं) जिन अपराधों को हम (तनूभिः चकृम) देहों से करते हैं उनको भी (अव सृज) दूर कर। (तायुं न पशु-तृपं) चोरी की नियत से पशु को घासादि खिलाने वाले, सन्देह मात्र में बद्ध चोर के समान बंधन में बंधे, (पशु-तृपं) अपने इंद्रियरूप पशुओं को भोग-विलासों से तृप्त करते हुए (तायुं) तेरे ऐश्वर्य को बिना पूछे भोगने वाले चोरवत् मुझ (वसिष्ठं) अति उत्तम 'वसु', तुझमें ही बसने वाले तेरे भक्त को तू (दाम्नः वत्सं न) रस्से से बछड़े के समान, दयालु पशुपालकवत् (अव सृज) बंधन से मुक्त कर।

न स स्वो दक्षो॑ वरुण॒ ध्रुतिः॒ सा सुरा॑ म॒न्युर्वि॒भीद॑को॒ अचि॑त्तिः ।
अस्ति॒ ज्याया॒न्कनी॑यस उपा॒रे स्वप्न॑श्च॒नेदनृ॑तस्य प्रयो॒ता ॥ ६ ॥

भा०—हे (वरुण) न्यायकारिन् प्रभो! (अनृतस्य) विवेक-रहित, असत्य और अविवेकमय दशा को (प्रयोता) ला देने वाला (सः स्वः दक्षः न) केवल वह अपना कर्म ही नहीं, प्रत्युत और बहुत कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर जीव अनृत, पाप, दुःखादि मार्ग में जाता है। वे कारण कौन २ से हैं? जैसे (१) अपने किये काम तो हैं ही, या (सः स्वः दक्षः) वह स्वस्वरूप कर्त्ता आत्मा। (२) (सा ध्रुतिः, सुरा) वह द्रुतगति से जाने वाले जल के समान आत्मा की 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने की ध्रुति, प्रवृत्ति अर्थात् रजोगुणी काम-वासना

भी कारण है। (३) (विभीदकः मन्युः) वह मन्यु, क्रोध, जिससे सब प्राणी भय खाते हैं वह भी एक कारण है। (४) (अचित्तिः) ज्ञान न रहना भी एक कारण है। (५) (कनीयसः उप-आरे) छोटे, अल्पशक्ति वाले जीव के समीप (स्वप्नः चन इत्) अज्ञान में सोते के समान (ज्यायान् अस्ति) बड़ा भी अर्थात् उसके माता पिता, भाई बन्धु आदि स्वयं अज्ञान वा पाप में मूढ़ रहने से दूसरे को मार्ग दिखाने में असमर्थ होते हैं। छोटा भी संग दोष से उसी ओर जाता है। कोई भी (अनृतस्य प्रयोता न) अज्ञान को दूर करने वाला नहीं होता।

अरं दासो न मीळहुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनांगाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥

भा०—(अहं) मैं (अनागाः) पाप-रहित होकर (भूर्णये) पालक (देवाय) प्रकाशक परमेश्वर के लिये (मीढुषः दासः न) दाता स्वामी के दास के समान (अरं कराणि) बहुत सेवा करूं। वह (देवः) प्रभु, (अर्यः) स्वामी (अचितः) अज्ञानी जनों को (अचेतयत्) ज्ञान देता है और वह (कवि-तरः) सर्वाधिक विद्वान् होकर (गृत्सं) स्तुतिकर्त्ता भक्त को (राये जुनाति) ऐश्वर्य के लिये सन्मार्ग पर ले जाता है।

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।८

भा०—हे (वरुण) कष्टों के वारक ! हे (स्वधावः) जीवों के स्वामिन् ! हे अन्नपते ! (अयं सः स्तोमः) यह वह स्तुति-वचनादि (तुभ्यम्) तेरे लिये (हृदि चित् उप-श्रितः अस्तु) हृदय में पूजार्थ स्थिर रहे। वह (नः क्षेमे शं उ अस्तु) हमारे धन-प्राप्ति-काल में शान्तिदायक हो। हे विद्वान् जनो ! (सदा यूयं नः पात स्वस्तिभिः) पूर्ववत्। इत्यष्टमो वर्गः॥

[८७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्राणांसि समुद्रियां नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥

भा०—(वरुणः) व्यापक परमेश्वर (सूर्याय) सूर्य के (पथः) मार्गों को (रदत्) बनाता है। वही (समुद्रिया) समुद्र की ओर जाने वाली (नदीनां अर्णांसि) नदियों के जलों को बहाता है। (सर्गः न सृष्टः अर्वतीः ऋतायन्) जैसे बरसा हुआ जल नीची, बहती नदियों की ओर जाता है वैसे (सर्गः) जगत् का बनाने वाला (सृष्टः) जगत् का स्वामी (अर्वतीः) अधीन महती शक्तियों और प्रकृति की विकृतियों को (ऋतायन्) ज्ञानपूर्वक सञ्चालित करता हुआ (अहभ्यः महीः अवनीः चकार) दिनों से रात्रियों को पृथक् करता है।

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वव्यापक प्रभो ! (वातः रजः) जैसे वायु धूलि को (आ नवीनोत्) सब तरफ उड़ाता है वैसे ही (वातः) बलशाली (ते आत्मा) तेरा व्यापक सामर्थ्य (रजः) ब्रह्माण्डों में फैले, धूलि-कणवत् लोकों को (आ नवीनोत्) सञ्चालित करता है। अध्यात्म में—(ते आत्मा वातः) तेरा आत्मा, जीवभूत प्राण देह में (रजः आ नवीनोत्) रक्तप्रवाह को प्रेरित करता है। (यवसे पशुः न ससवान् भूर्णिः) घास, भूसा आदि पर पलने वाला पशु जैसे अन्नादि से लादा जाकर स्वामी के भरण-पोषण में समर्थ होता है वैसे ही यह (वातः) वायु वा (ते आत्मा) तेरा महान् सामर्थ्य ही (ससवान्) अन्नादि ऐश्वर्य से समृद्ध होकर (भूर्णिः) विश्व के भरण-पोषण में समर्थ होता

है। (इमे बृहती मही रोदसी अन्तः) इन विशाल, सुख देने वाले आकाश-भूमि या सूर्य-भूमि के बीच (ते) तेरे (विश्वा) समस्त (प्रियाणि) प्रिय (धाम) तेज और विश्वधारक लोक, सामर्थ्य हैं।

परि॒ स्पशो॒ वरु॑णस्य॒ स्मदि॑ष्टा उ॒भे प॑श्यन्ति॒ रोद॑सी सु॒मेके॑।
ऋ॒तावा॑नः क॒वयो॑ य॒ज्ञधी॑राः प्रचे॑तसो॒ य इ॒षय॑न्त॒ मन्म॑ ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः) जैसे दुष्टों के निवारक राजा के 'स्पश्'—गुप्तचर, अभिप्रायवान् होकर (उभे सु-मेके पश्यन्ति) ऊपर से देखने में अच्छे २ और बुरे शास्य शासक दोनों वर्गों को देखते हैं वैसे ही (ये) जो (प्र-चेतसः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (मन्म) मनन योग्य ज्ञान की (इषयन्त) अन्नवत् चाहना करते हैं वे (ऋतावानः) वेदमय तप का सेवन करते हुए, (यज्ञ-धीराः) त्यागयुक्त कर्म को करते, उसका अन्यों को उपदेश करते हुए (वरुणस्य स्पशः) प्रभु के सिपाहियों के समान, उसकी बनाई सृष्टि और व्यवस्थाओं का साक्षात् द्रष्टा (स्मदिष्टाः) एक साथ समान इष्ट वा समान उत्तम लक्ष्य वाले होकर (उभे) दोनों (सु-मेके) सुखप्रद मेघादि से युक्त (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान (सुमेके) शुभ वीर्यसेचन में समर्थ, सन्तानोत्पादक माता-पिता को सृष्टि का कारण यथावत् (परि पश्यन्ति) देखते हैं।

उ॒वाच॑ मे॒ वरु॑णो॒ मेधि॑राय॒ त्रिः स॒प्त नामाघ्न्या॑ बिभर्ति।
वि॒द्वान्प॒दस्य॒ गुह्या॒ न वो॑चद्यु॒गाय॒ विप्र॒ उप॑राय॒ शिक्ष॑न् ॥ ४ ॥

भा०—(मे मेधिराय) मुझ बुद्धिमान् पुरुष को (वरुणः) वरणीय प्रभु (उवाच) उपदेश करता है कि (अघ्न्या) अविनाशी, परमेश्वरी या प्रकृति शक्ति (त्रिः सप्त नाम) तीन गुना सात अर्थात् २१ स्वरूपों को (बिभर्त्ति) धारण करती है। (विप्रः विद्वान्) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् (उपराय) समीप-स्थित (युगाय) मनोयोग से चिया-

६ प.

ग्रहण करने वाले शिष्य को (शिक्षन्) उपदेश देता हुआ (पदस्य) परमप्राप्य ब्रह्म के (गुह्या न) रहस्यों का (वोचत्) उपदेश करे।

'त्रिः-सप्त नाम'—ईश्वरीय शक्ति या प्रकृति के २१ स्वरूप 'ये त्रिषप्ताः०' (अथर्व० १।१।१॥) के भाष्य में स्पष्ट किये हैं। पञ्च-तन्मात्रा, पञ्च स्थूलभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन। यद्वा, त्रिः। सप्त पद पृथक् हैं। इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति, महि विश्रुति एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥ यजु० ८।४२॥ वेद ने ये १० नाम अघ्न्या के कहे हैं। यहां वे ही (त्रिः=३+सप्त ७=१०) नाम हैं। 'त्रि' इत्यस्य प्रथमैकवचने त्रिः॥ अथवा सुपां सुपो भवन्तीति जसः स्थाने सुः।

तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम्॥ ५॥

भा०—(तिस्रः द्यावः) तीनों लोक, भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश में (अस्मिन् अन्तः निहिताः) वरुण परमेश्वर के ही भीतर स्थित हैं और (तिस्रः भूमीः) तीनों भूमियां (उपराः) एक दूसरे के समीप स्थित (षड् विधानाः) छः छः प्रकार के ऋतु आदि विधानों सहित उसके ही भीतर हैं। (गृत्सः) ज्ञान का उपदेष्टा (राजा) सर्वोपरि शासक (वरुणः) वरण-योग्य प्रभु ही (दिवि) आकाश में (प्रेङ्खं) उत्तम गति से जाने वाले (एतं) उस (हिरण्ययम्) तेजोमय सूर्य को, अन्तरिक्ष में गतिमान्, हित, रमणीय रूप वायु को और भूमि पर तेजोमय अग्नि को (शुभे) दीप्ति, जल और कान्ति के लिये (चक्रे) बनाता है। कं पादपूरणः।

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान्।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा॥६॥

भा०—(द्यौः इव सिन्धुं) सूर्य जैसे अकेला समस्त आकाश में व्यापता है वैसे ही परमेश्वर (द्यौः) तेजस्वरूप, (वरुणः) सर्वव्यापक होकर (सिन्धुं) वेग वाले प्रकृति के बने जगत्प्रवाह को (अव स्थात्) व्यवस्थित करता है। वह (द्रप्सः न श्वेतः) जलबिन्दुवत् रसस्वरूप व कान्तिमय है। वह (मृगः) सिंहवत् बलवान् वा, (मृगः) ज्ञानी जनों द्वारा खोजने योग्य और (मृगः) पावन स्वरूप, (तुविष्मान्) सर्व शक्तिमान् है। वह (गम्भीर-शंसः) गंभीर समुद्र तुल्य अगाध और प्रशंसा-योग्य, (रजसः विमानः) इस समस्त लोक-समूह का विशेष निर्माता है, वह (सुपार-क्षत्रः) सुख से सर्वपालक, बलैश्वर्यवान्, (अस्य सतः राजा) इस व्यक्त संसार का राजावत् शासक है।

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥६॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (आगः चक्रुषे चित्) अपराध करने वाले के भले के लिये (मृडयाति) उस पर दया करता है, उस (वरुणे) प्रभु के अधीन हम (अनागाः स्याम) निष्पाप रहें । उस (अदितेः) अखण्ड प्रभु के (व्रतानि अनु) नियमों के अनुकूल (ऋधन्तः) समृद्ध, हे विद्वान् जनो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) पूर्ववत् । इति नवमो वर्गः ॥

[८८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्द—१, २, ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (ईम्) इस (अर्वाञ्चं) अभिमुख आगे (यजत्रं) आत्मसमर्पक और सत्संगति वाले पुरुष को (सहस्र-मघं)

सहस्रों धनों से सम्पन्न, (वृषणं) मेघवत् उदार और (बृहन्तम् करते) बड़ा बना देता है उस (वरुणाय) ऐश्वर्यदाता (मीढुषे) ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, परमेश्वर के निमित्त (प्रेष्ठां) अति प्रिय (मतिं) स्तुति और बुद्धि का (प्र भरस्व) प्रयोग कर ।

अधा न्वस्य सन्दृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥२॥

भा०—(अध नु) और मैं (अस्य) इस (अग्नेः) तेजोमय (वरुणस्य) परमेश्वर के विषय में (जगन्वान्) ज्ञान प्राप्त कर और उसकी शरण जाकर उसके (सं-दृशम्) सम्यक्-दर्शन-योग्य (अनीकं) तेज को (मंसि) मनन करता हूँ । (यद्) जैसे (अश्मन् अन्धः वपुः दृशये निनीयात्) चक्की आदि में पीसा अन्न या कुटी ओषधि, या (अश्मन् अन्धः) मेघ के आधार पर उत्पन्न अन्न शरीर को उत्तम, दर्शन योग्य बनाता है वैसे ही (यत्) जो (अधिपाः) सर्वोपरिपालक (स्वः) सुखकारी है वह (अन्धः) अन्नवत् प्राणों का धारक होकर (दृशये) साक्षात् करने के लिये (मा) मुझे (वपुः) रूप, शरीर आदि (निनीयात्) प्राप्त कराता है ।

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥ ३ ॥

भा०—(अहं) मैं और (वरुणः च) वरणीय स्वामी, दोनों दो मित्रों के समान वा पति-पत्नीवत् (यत् नावम् आ रुहाव) जब नाव पर चढ़ें (यत् समुद्रम् मध्यम् ईरयाव) और जब समुद्र के बीच उसको चलावें (यत् अधि अपां) जब जलों के ऊपर (स्नुभिः चराव) गमनशील यानों से विचरें तो (शुभे) शोभा और (कम्) सुख पाने के लिये (प्रेङ्खे) झूले पर (प्रेङ्खयावहे) हम दोनों झूलें ।

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः ॥४॥

भा०—(वरुणः) वरणीय आचार्य (वसिष्ठं) अधीन वस कर ब्रह्मचारी शिष्य को (नावि) ज्ञान-सागर से पार उतारने वाली वेदवाणी रूप नौका में (ह) अवश्य (आधात्) स्थापित करे । वह स्वयं (स्वपाः) कर्मशील होकर (महोभिः) बड़े २ गुणों से (वसिष्ठं ऋषिं चकार) उत्तम ब्रह्मचारी को वेद-मन्त्रार्थों को यथार्थ देखने में विद्वान् बनावे । (विप्रः) विद्याओं से शिष्य को पूर्ण करने वाला आचार्य (अन्हां सु-दिनत्वे) दिनों को शुभ बनाने के लिये (यात् द्यावा नु यात् उषसः नु) आये दिनों और आयी रातों में भी (स्तोतारं ततनन्) अध्ययनशील शिष्य को विस्तृत ज्ञानवान् करे ।

क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥

भा०—हे (वरुण) वरणीय ! हे (स्वधावः) प्राणपते ! (नौ) हम दोनों के (त्यानि सख्यानि) वे नाना मित्रता के भाव (क्व बभूवुः) कहां हुए, (यत्) जो हम दोनों (पुराचित्) मानों पूर्वकाल से (अवृकं) परस्पर चोरी का भाव न रखते हुए (सचावहे) मिलकर रहें । हे (वरुण) वरणीय ! हे (स्वधावः) अमृत के स्वामिन् ! हम (बृहन्तं) महान् (मानं) परिमाण वाले (सहस्रद्वारं) सहस्रों द्वार वाले (गृहं जगाम) घर को प्राप्त हों ।

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥६

भा०—हे (वरुण) प्रभो ! राजन् ! तू (नित्यः) सदा का (आपिः) बन्धु (प्रियः) प्रिय (सन्) होकर हमें प्राप्त है, उस (त्वाम्) तेरे प्रति (ते सखा) तेरा मित्र यह जीव (आगांसि कृणवत्) नाना अपराध करता

है। हे (यक्षिन्) यक्ष 'अर्थात्' पूजा करने वाले भक्त जनों के स्वामिन्! हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य का (एनस्वन्तः) पापी होकर (मा भुजेम) भोग न करें। तू (विप्रः) मेधावी (स्तुवते) स्तुतिशील को (वरूथं यन्धि) वरणीय एवं दुःखों को दूर करने योग्य उत्तम गृह और बल दे।

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्य१स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत्। अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७।१०॥

भा०—परमेश्वर जीवों के कर्म-बन्धन किस प्रकार काटता है? हम लोग (आसु ध्रुवासु क्षितिषु) इन धारने योग्य, कर्म और भोग-भूमियों में (क्षियन्तः) निवास करते हुए वा ऐश्वर्ययुक्त, वा क्षीण होते हुए, कभी ऊर्ध्वगति, कभी नीच गति प्राप्त करते हुए, (अदितेः उपस्थात्) भूमि से (अवः वन्वानाः) तृप्तिकारक अन्न प्राप्त करते हैं और जैसे (अदितेः उपस्थात् अवः अन्वानाः) सूर्य से दीप्ति प्राप्त करते हैं वैसे ही (अदितेः) अखण्ड परमेश्वर से हम (अवः) रक्षा, सुख, प्रेम (वन्वानाः) प्राप्त करते रहें। वह (वरुणः) प्रभु (अस्मत् पाशं) हम से पाश को (वि मुमोचत्) छुड़ाता है। हे विद्वान् पुरुषो! (नः यूयं सदा स्वस्तिभिः पात)। आप लोग हमारी सदा उत्तम उपायों से रक्षा करो। इति दशमो वर्गः॥

[८९]

वसिष्ठ ऋषिः॥ वरुणो देवता॥ छन्दः—१—४ आर्षी गायत्री। ५ पादनिचृज्जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

मा षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम्। मृळा सुक्षत्र मृळय ॥१॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ! हे (राजन्) देदीप्यमान! हे (सुक्षत्र) उत्तम धन, ऐश्वर्य, बल से सम्पन्न! (अहम्) मैं (मृन्मयं गृहम्) मिट्टी के बने गृह के तुल्य नश्वर, मृत्यु से आक्रान्त, वा ग्रहण-योग्य, वा आत्मा को पकड़े हुए इस देह को (मोषु गमम्) कभी न प्राप्त करूं

तो अच्छा हो ! हे प्रभो ! (मृड) सबको सुखी करने हारे दयालो ! तू (मृडय) सुखी कर, हम पर दया कर ।

यदेमि॑ प्रस्फुरन्नि॑व दृति॒र्न ध्मा॒तो अ॑द्रिवः । मृळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ॥ २

भा०—हे (अद्रिवः) पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों के स्वामिन् ! प्रभो ! (यत्) जब मैं (प्रस्फुरन् इव) तड़पता हुआ-सा, (दृतिः न ध्मातः) कुप्पे के समान फूला हुआ, फूंक से भरे चर्मवाद्य के समान रोता-गाता (एमि) शरण आऊं, हे (सुक्षत्र) सुबल ! सुधन ! तू मुझे (मृड मृडय) सुखी कर ।

क्रत्व॑ः समह दी॒नता॑ प्रती॒पं ज॑गमा शुचे । मृळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ॥ ३॥

भा०—हे (समह) पूज्य ! (दीनता) दीन होने के कारण मैं (क्रत्वः) सत् कर्म और सत् ज्ञान के (प्रतीपं जगम) विपरीत चला गया हूँ और (शुचे) शोक करता हूँ । अथवा हे (शुचे) शुद्ध प्रभो ! हे (सु-क्षत्र) बलशालिन् ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, कृपा कर ।

अ॒पां मध्ये॑ तस्थि॒वांसं॒ तृष्णा॑विदज्जरि॒तार॑म् ।
मृळा सु॑क्षत्र मृळय॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुक्षत्र) उत्तम बल के स्वामिन् ! (अपां मध्ये तस्थिवांसं) जलों के बीच में खड़े (जरितारं) रोगादि से जीर्ण होते हुए पुरुष को जैसे (तृष्णा अविदत्) प्यास सताती है वैसे ही हे प्रभो ! (जरितारं) तेरे स्तोता (अपां मध्ये तस्थिवांसं) आप्त पुरुषों के बीच या प्राणों या रक्त द्रव से पूर्ण शरीर के बीच रहने वाले मुझको भी (तृष्णा) भूख-प्यास के समान विषय-भोगादि की लालसा प्राप्त है, हे प्रभो ! हे (मृड, मृडय) सबको सुखी करने हारे ! तू मुझे सुखी कर ।

यत्किं चे॒दं व॑रुण॒ दैव्ये॒ जने॑ऽभिद्रो॒हं म॑नु॒ष्या॒३ श्चरा॑मसि । अचि॑त्ती यत्तव॒ धर्मा॑ युयोपि॒म मा न॒स्तस्मा॒देन॑सो देव रीरिषः ॥५।११।५॥

भा०—हे (वरुण) प्रभो ! (दैव्ये जने) विद्वान् सत्पुरुष के हितकारी जन के ऊपर रहकर हम (मनुष्याः) मनुष्य (यत् किं च) जो कुछ भी (इदं अभिद्रोहं) इस प्रकार का द्रोह आदि (चरामसि) करते हैं और (अचित्ती) विना ज्ञान के (यत् तव धर्मा युयोपिम) जो तेरे बनाये नियमों को उल्लंघन करते हैं, हे (देव) प्रभो ! राजन् ! (तस्माद् एनसः) उस अपराध या पाप से (नः मा रीरिषः) हमें दुःखित मत कर । इत्येकादशो वर्गः ॥

[९०]

वसिष्ठ ऋषिः ।। १—४ वायुः । ५—७ इन्द्रवायु देवते छन्दः—१, २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृद्‌ त्रिष्टुप् ।। सप्तर्चं सूक्तम् ।।

प्र वी॒र॒या शुच॑यो दद्रिरे वामध्व॒र्युभि॒र्मधु॑मन्तः सु॒तासः॑ ।
वह॑ वायो नि॒युतो॑ या॒ह्यच्छा॒ पिबा॑ सु॒तस्यान्ध॑सो॒ मदा॑य ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! हे वायुवत् बलवान् वीर सेनापते ! (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, ईमानदार (वीरया = वीराः) वीर (मधुमन्तः) बलवान्, मधुरप्रकृति, (सुतासः) योग्य पदों पर अभिषिक्त पुरुष (अध्वर्युभिः) प्रजा की हिंसा पीड़ा न चाहने वाले सौम्यवृत्ति विद्वानों सहित (वाम् प्र दद्रिरे) तुम दोनों को प्राप्त होते हैं । हे (वायो) वायुवत् बलवन् ! तू (नियुतः) सहस्रों अश्वादि सेनाओं को (वह) सन्मार्ग पर ले चल और (सुतस्य अन्धसः) ऐश्वर्य से समृद्ध अन्न को (याहि) प्राप्त कर और (मदाय) तृप्ति के लिये उसका (पिब) उपभोग कर ।

ई॒शा॒नाय॒ प्रहु॑तिं॒ यस्त॒ आन॑ट् शुचिं॒ सोमं॑ शुचि॒पास्तुभ्यं॑ वायो ।
कृ॒णोषि॒ तं मर्त्ये॑षु प्रश॒स्तं जा॒तोजा॑तो जायते वा॒ज्य॑स्य ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) विद्वन् ! (यः) जो (शुचि-पाः) शुद्ध आचार, व्यवहार का पालक पुरुष (ते ईशानाय) तुम सर्वैश्वर्यवान् का (शुचिं

सोमं) शुद्ध अन्नादि, ऐश्वर्य और (प्रहुतिं) सर्वोत्तम दान (आनट्) प्राप्त कराता है, (तं) उसको तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (प्रशस्तं कृणोषि) कर्मकुशल बना देता है और वह (जातः-जातः) उत्तम रूप से प्रकट होकर (अस्य) इस प्रजाजन के बीच (वाजी) ज्ञानवान्, बलवान् (जायते) हो जाता है।

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥३॥

भा०—(इमे रोदसी) आकाश व भूमि के तुल्य ये माता-पिता, राजसभा-प्रजासभा दोनों (राये) राष्ट्र में ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये (नु) ही (यं) जिसको (जज्ञतुः) उत्पन्न करते और (यं देवम्) जिस विजिगीषु को (धिषणा देवी) सर्वोपरि विद्यमान विद्वत्सभा भी (राये) ऐश्वर्य-रक्षा के लिये (धाति) स्थापित करती है, उस (वायुं) शत्रु को वायुवत् मूल से उखाड़ने में समर्थ पुरुष को (स्वाः) उसकी अपनी (नियुतः) लक्षों सेनाएं और प्रजाएं (सश्चत) प्राप्त होती हैं (उत) और उसी (श्वेतं) शुद्धाचारी को (निरेके) श्रेष्ठ पद पर (वसु-धितिम्) ऐश्वर्य की ख्याति वाला जान कर प्राप्त होते हैं।

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (उषसः) प्रभात वेलाएं वा सूर्य की दाहक कान्तियें (सु-दिनाः उच्छन्) उत्तम दिन वाली होकर प्रकट होती हैं, (अरि-प्राः) पाप-रहित (दीध्यानाः) देदीप्यमान, (उरु ज्योतिः विविदुः) बहुत बड़े विशाल प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त करती (उशिजः) कान्तियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम् विवव्रुः) रश्मियों के बड़े धन को फैलाती है (अनु प्रदिवः आपः सस्रुः) अनन्तर आकाश से मेघ जल बरसते हैं वैसे ही (उषसः) उषावत् जीवन के प्रारम्भ भाग में वर्त्तमान नर-

कारीगण (सु-दिना) शुभ दिन युक्त होकर (उच्छन्) अपने गुण प्रकट करें और वे (दीध्यानाः) ईश्वर-ध्यान करते हुए (उरु ज्योतिः) बड़ी भारी ज्ञान-ज्योति को (विविदुः) प्राप्त करें। वे (उशिजः) प्रीतियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम्) वेदवाणी के धन को (विवव्रुः) विविध प्रकार से विवरण करें, उसकी व्याख्या करें। (तेषाम् अनु) उनके पीछे २ ही (प्र-दिवः) उत्तम फल की कामना वाली (आपः) आप्त प्रजाएं (सस्रुः) चलें।

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति। इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ५

भा०—(ते) वे ज्ञानवान्, विद्वान् लोग (सत्येन मनसा) सत्य चित्त और सत्य ज्ञान से (दीध्यानाः) चमकते हुए (स्वेन युक्तासः) अपने आत्मसामर्थ्य से युक्त होकर (दीध्यानाः) चमकते हुए वा आत्म-योग का अभ्यास करते हुए (युक्तासः) योगी होकर (स्वेन क्रतुना) अपने ज्ञान और बल से (वहन्ति) रथ को अश्वों के तुल्य देह को धारण करते हैं। हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन्! ज्ञानवन्! (ईशानयोः वाम्) शासक-रूप आप दोनों के (वीरवाहं रथं) वीरों के धारक, रथवत् रमणीय उपदेश वा स्थिर पद वा राष्ट्र को (वहन्ति) धारण करते और सञ्चालित करते हैं और वे (पृक्षः) प्रतियुक्त होकर (अभि सचन्ते) परस्पर समवाय बनाकर रहते हैं।

ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥६॥

भा०—(ये) जो (ईशानासः) ऐश्वर्यवान् और शासन-अधिकार से युक्त होकर (नः) हमारे सर्वस्व राष्ट्र और सुखादि को (गोभिः) गौओं और भूमियों (अश्वेभिः) घोड़ों (वसुभिः) विद्वानों, (हिरण्यैः) सुवर्णादि धातुओं और रमणीय साधनों से (विश्वम् आयुः) पूर्ण जीवन (दधते)

धारण करते हैं। हे (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् बलवान् प्रधान नायक पुरुषो! वे (सूरयः) विद्वान् (अर्वद्भिः वीरैः) शत्रुनाशक वीर पुरुषों द्वारा (पृतनासु) संग्रामों में (सह्युः) विजय करें।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥१२॥

भा०—हम लोग (अर्वन्तः) शत्रुनाशक वीर पुरुषों और अश्वों के समान बलवान्, (श्रवसः भिक्षमाणाः) श्रवण योग्य ज्ञान की योग्य गुरुओं और अन्न की गृहस्थों से याचना करते हुए, (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी होकर (सु-अवसे) उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये स्वयं (वाजयन्तः) ज्ञान, बल, धनादि को चाहते और प्राप्त करते हुए (इन्द्रवायू हुवेम) ऐश्वर्यवान् और बलवान् जनों को प्राप्त करें। (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) पूर्ववत्। इति द्वादशो वर्गः ॥

[९१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३ वायुः । २, ४—७ इन्द्रवायू देवते । छन्दः—१, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् । २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन्।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (नमसा) शत्रु को नमाने वाले बल से (पुरा) पहले (वृधासः) बढ़ने हारे (अन-वद्यासः) अनिन्दिताचरण वाले, (देवाः) धन, पुत्र आदि के अभिलाषी (आसन्) रहते हैं (ते) वे (वायवे) वायु तुल्य बलवान् वा प्राणवत् प्रिय, (मनवे) मननशील, (बाधिताय) पीड़ित प्रजा की रक्षा के लिये (उषसं) प्रभात के समान तेजस्विनी सेना को (सूर्येण) तेजस्वी नायक पुरुष के साथ (बाधिताय मनवे) खण्डित वंश वाले मनुष्य की वंशवृद्धि के लिये (उपसं) सन्तान

की कामनायुक्त स्त्री को (सूर्येण) पुत्रोत्पादन में समर्थ पुरुष के साथ (अवासयन्) रखें।

उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥२॥

भा०—(उशन्ता) सबको चाहने वाले (दूता) शत्रु सन्तापक, (गोपा) प्रजा-रक्षक, (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान्, बलवान् पुरुष (मासः च शरदः च) वर्षों और मासों तक (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान प्रजा की (पाथः) रक्षा करें। हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् ! (वाम् इयाना) आप दोनों को प्राप्त होता हुआ, (सुस्तुतिः) उत्तम उपदेश (मार्डीकम्) सुख और (सुवितं) उत्तम, (नव्यम्) स्तुत्यआचार (ईट्टे) चाहता है।

पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥

भा०—(नियुताम् अभिश्रीः) नियुक्त सैन्यों के बीच सबके आश्रय-योग्य एवं उत्तम राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न (श्वेतः) उज्ज्वल वस्त्र धारे (सुमेधाः) बुद्धिमान् शत्रुनाशक पुरुष (रयि-वृधः) ऐश्वर्य बढ़ाने वाले, (पीवः अन्नान्) अन्नादि से हृष्ट-पुष्ट पुरुषों का (सिषक्ति) समवाय बना कर रहता है और (ते) वे (नरः) नायक पुरुष (समनसः) एक चित्त होकर (वायवे) नायक पुरुष की वृद्धि के लिये (वि तस्थुः) उसके आस पास स्थित होते हैं। वे (विश्वा) सभी (सु-अपत्यानि) उत्तम से सन्तानों के समान (चक्रुः) काम करते हैं।

यावत्तरस्तन्वो्यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! हे नायको ! (यावत्) जितना (तन्वः तरः) शरीर का बल हो और (यावत् ओजः) जितना पराक्रम हो और (यावत्) जब तक (नरः) नेता लोग

(चक्षसा) उत्तम ज्ञान-दर्शन से (दीध्यानाः) देदीप्यमान हों तब तक आप दोनों (शुचिं) शुद्ध, (सोमम्) प्रजाजन को (पातम्) पालन करो और (शुचिं सोमं पातं) शुद्ध अन्न, ऐश्वर्य का उपभोग करो (इदं) इस (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजा पर (सदतम्) अध्यक्ष बन कर विराजो।

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) विद्युत् और वायु के तुल्य बलवान् नायक पुरुषो! (स्पार्हवीराः) मनोहर वीर पुरुषों से युक्त (नियुतः) अश्व सेनाओं को (नियुवाना) सञ्चालित करते हुए आप दोनों (स-रथं) रथ-सहित (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो। (इदं हि) यह कार्य ही (मध्वः अग्रं प्रभृतम्) आप दोनों को अन्न या आजीविका प्राप्त करने का साधन है। (अध) और (प्रीणाना) प्रजा को प्रसन्न करते हुए (अस्मे वि मुमुक्तम्) हमें विविध बन्धनों से युक्त करो।

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) विद्युत्, पवन के समान तेजस्वी, बलशाली पुरुषो! (याः) जो (वां) आप दोनों के (शतं) सैकड़ों और (याः सहस्रं) जो हजारों (नियुतः) अश्वों के सैन्यगण (विश्ववाराः) शत्रुओं के वारण में समर्थ होकर (सचन्ते) संघ बनाकर रहते हैं (आभिः) इन (सु-विदत्राभिः) उत्तम ऐश्वर्य लाभ कराने वाली सुशिक्षित सेनाओं से आप दोनों (अर्वाक् यातं) आगे बढ़ो। हे (नरा) नायक पुरुषो! आप दोनों (प्रतिभृतस्य) वेतन द्वारा परिपुष्ट (मध्वः) सैन्य बल की (पातम्) रक्षा करो।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥१३॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ९० । ७ ॥ इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[९२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३—५ वायुः । २ इन्द्रवायू देवते । छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥

भा०—हे (शुचिपाः) शुद्ध चरित्रवन् ! ईमानदार की रक्षा करने वाले ! हे (वायो) तुष से अन्नों को पृथक् करने वाले वायु के समान सत्य, असत्य के विवेक वाले विद्वन् ! तू (नः उप आ भूष) हमें प्राप्त हो । हे (विश्व-वार) वरण योग्य ! पापों के वारक ! (ते सहस्रं नियुतः) तेरे अधीन सहस्रों आज्ञा पालक हैं । हे (देव) विद्वन् ! तू (यस्य पूर्वपेयं) जिसके पूर्व पालन वा भोग योग्य अंश को (दधिषे) धारण करता है, मैं उसी (मद्यम्) तृप्तिकारक, हर्षजनक (अन्धः) अन्न को (ते उपो अयामि) तेरे लिये प्राप्त कराऊं ।

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।
प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस (मध्वः) शत्रुपीड़क बल और मधुर ऐश्वर्य के (अग्रियं) प्रमुख पद तथा श्रेष्ठ भाग को (देवयन्तः) शुभ गुणों और उत्तम फलों की आकांक्षा वाले (अध्वर्यवः) प्रजा की हिंसा से रहित राष्ट्र-पालक जन (वां प्र भरन्ति) आप दोनों के लिये प्राप्त कराते हैं, उस (सोमम्) ऐश्वर्य या बल वीर्य को (इन्द्राय वायवे) सूर्य वायुवत् तेजस्वी और बलवान् पुरुष के (पिबध्यै) उपभोग के लिये (अध्वरेषु) यज्ञादि उपकारक कार्यों में (वीरः सोता) विद्वान् वीर शासक, (प्र अस्थात्) प्राप्त करे ।

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥३॥

भा०—हे (वायो) बलवन्! (याभिः नियुद्भिः) जिन अश्वादि सेनाओं सहित (दुरोणे) गृहवत् राष्ट्र में विद्यमान (दाश्वांसम्) कर आदि के दाता प्रजाजन को (अच्छ प्र यासि) भली प्रकार प्राप्त होता है उन द्वारा ही तू (नः) हमें (सुभोजसं रयिम्) उत्तम भोग्य पदार्थों और रक्षा-साधनों से सम्पन्न ऐश्वर्य को (नि युवस्व) दे और (वीरं) वीरजन, (गव्यं राधः) गौ आदि और (अश्व्यं च राधः) अश्वों से बनी सम्पदा भी (नि युवस्व) दे।

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥४॥

भा०—(ये) जो (वायवः) बलवान् पुरुष (इन्द्र-मादनासः) प्राणों के समान शत्रुहन्ता, प्रजा को प्रसन्न करने में समर्थ (आदेवासः) सब ओर विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुषों को रखते और (अर्यः) शत्रु के (नितोशनासः) मारने वाले हों ऐसे (सूरिभिः) शासकों और विद्वानों द्वारा हम (वृत्राणि घ्नन्तः) विघ्नकारक शत्रुओं का नाश करते हुए (युधा) युद्ध द्वारा (नृभिः अमित्रान् सासह्वांसः) वीर पुरुषों द्वारा शत्रुओं का पराजय करने वाले हों।

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५।१४

भा०—हे (वायो) बलवान् वीर! तू (शतिनीभिः सहस्रिणीभिः) सौ २ तथा हजार २ के भटों के नायकों वाली (नियुद्भिः) अश्व सेनाओं सहित (नः यज्ञं उप याहि) हमारे यज्ञ, राज्य को प्राप्त हो। (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस शासन में तू प्रसन्न हो, अन्यों को प्रसन्न कर।

वीर पुरुषो! आप लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) पूर्ववत्। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[९३]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्राग्नि देवते॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ आर्षी त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, ७ विराट् त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम्।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा॥ १॥

भा०—जैसे (वृत्र-हणा) विघ्ननाशन करने वाले माता-पिता (नव-जातं शुचिं) नये उत्पन्न उत्तम शुद्ध बालक को (जुषेताम्) प्रेम करते और (धेष्ठा वाजं उशते दत्तः) पालक माता पिता बुभुक्षित को अन्न देते हैं वैसे ही हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् और तेजस्विन् अग्रणी नायको! आप दोनों (वृत्र-हणा) बढ़ते शत्रुओं के नाशक होकर (शुचिम्) पवित्र व्यवहार वाले (नवजातम्) नये ही प्राप्त, (स्तोमं) स्तुतियोग्य प्रजा के अधिकार (अद्य) आज के समान सदा (जुषेताम्) प्रेम और उत्साह से प्राप्त करें। (ता) वे दोनों (धेष्ठा) प्रजा, सैन्य, सभादि के अधिकार को उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ होकर (सद्यः) शीघ्र ही (उशते) कामना वाले प्रजाजन को (वाजं) अभिलषित धन, अन्न, बल, ज्ञान आदि दें। (उभा हि वां) आप दोनों को ही मैं (सु हवा) सुख से, आदर सहित बुलाने योग्य (जोहवीमि) स्वीकार करता हूँ, आपको आदर से निमन्त्रित करूं। माता पिता दोनों ही इन्द्र और दोनों ही अग्नि हैं। वे सन्तान के बाधक कारणों का नाश करने से 'वृत्रहन्' हैं।

ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः॥२॥

भा०—(ता) वे दोनों (सानसी) सेवा योग्य, दान दाता और (शवसाना) बलपूर्वक ऐश्वर्य भोगने वाले, (साकं-वृधा) एक साथ वृद्धि को प्राप्त और (शवसा) बल से (शूशुवांसा भूतम्) बढ़ते रहो और (भूरेः यवसस्य) बहुत से अन्न और (रायः) दान-योग्य धन पर (क्षयन्तौ) प्रभुत्व करते हुए (भूरेः) बहुत बड़े (स्थविरस्य) चिर-स्थायी (घृष्वेः) शत्रुनाशक (वाजस्य) बल को (पृक्तम्) साथ मिलाये रक्खो।

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जो मनुष्य (वाजिनः) संग्रामचतुर, ऐश्वर्यवान् और (प्रमतिम् इच्छमानाः) बुद्धि को चाहने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (धीभिः) बुद्धियों, कर्मों द्वारा (विदथं उपो अगुः) ज्ञान, ऐश्वर्य और संग्राम को प्राप्त करते हैं (ते) वे (नरः) जन (इन्द्राग्नी) इन्द्र अग्नि, विद्युत् अग्नि, आचार्य और अध्यापक, सभापति और सेनापति इन २ को (जोहुवतः) प्रमुख स्वीकार करते हुए, (काष्ठां अर्वन्तः) दूर २ देश की सीमा की ओर अश्व के समान आगे बढ़ते हुए (काष्ठां) काष्ठा, अर्थात् 'क' परम सुखमय 'आस्था' स्थिति को (नक्षमाणाः) प्राप्त करते हुए (विदथं उपो गुः) प्राप्तव्य उद्देश्य प्राप्त करते हैं।

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम्।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

भा०—(विप्रः) विद्वान् पुरुष (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (प्रमतिम्) उत्तम ज्ञान (इच्छमानः) चाहता हुआ, (पूर्व-भाजम्) पूर्व विद्वानों से सेवित, (यशसं) यशोजनक (रयिम्) ज्ञानैश्वर्य की (ईट्टे) याचना करे और (इन्द्राग्नी) आचार्य एवं विद्वान् दोनों वीर नायकों के समान (वृत्रहणा) विघ्नों के नाशक (सु-वज्रा) पापादि के वर्जक उपदेश

एवं ज्ञान-रूप वज्र से युक्त होकर (नव्येभिः देष्णैः) नये से नये उप-देष्टव्य ज्ञानों द्वारा (नः प्र तिरतम्) हमें बढ़ावें ।

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५॥१५॥

भा०—(यत्) जब (मही) बड़ी २ (मिथती) परस्पर ललकारती हुईं (तनू-रुचा) शरीर के तेज से (स्पर्धमाने) एक दूसरे से बढ़ने की, दो स्त्रियों के समान स्पर्द्धालु दो सेनाएं (शूर-साता) वीरों के संग्राम में (सं-यतेते) विजय का यत्न करती हैं उनमें, हे इन्द्र, अग्नि ! वीरों और अग्रणी नायक जनो ! आप दोनों (विदथे) संग्राम में (देवयुभिः) वृत्तिदाता राजा के पक्ष वाले वीर पुरुषों के साथ मिलकर (अदेवयुं) राजा के अप्रिय, शत्रु जन को (सोमसुता जनेन) अन्नादि के उत्पादक प्रजाजन के साथ मिलकर (वृत्रा हतम्) विघ्नकारी शत्रुओं को मारो ॥ इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! आप दोनों (नः) हमारे (इमाम्) इस (सोम-सुतिम्) अन्न आदि द्वारा किये यज्ञ को (सौमनसाय) उत्तम मन बनाये रखने के लिये (सु-आ-यातम्) आदर पूर्वक आइये । (नू चित् हि) आप कभी भी (अस्मान् परि मम्नाथे) हमें त्याग कर अन्य को न मानें। मैं प्रजाजन (वां) आप दोनों को (वाजैः शश्वद्भिः) बहुत ऐश्वर्यों से (आ ववृतीय) सम्मानित करूं ।

सो अग्न एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष ! (सः) वह तू (एना नमसा) इस आदरयुक्त वचन और दुष्टों के नमाने वाले बल से (सम्-इद्धः) खूब

तेजस्वी होकर (मित्रं वरुणं इन्द्रं) स्नेहवान्, श्रेष्ठ, ऐश्वर्यवान् पुरुष को (अच्छ वोचेः) भली प्रकार कह कि (सीम्) हम (यत्) जो भी (आगः चकृम) अपराध करें तू (तत्) उसे (सु) भली प्रकार (मृड) न्याय पूर्वक देख। (तत्) उसको (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष और (अदितिः) सद्व्यवस्था को न टूटने देने वाला, पुरुष हम प्रजाजनों के उस अपराध को (शिश्रथन्तु) निर्मूल करें।

एता अंग्न आशुषाणास॑ इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम् वाजा॑न्।
मेन्द्रो॑ नो विष्णु॑र्मरुतः परि॑ख्यन्यूयं पा॑त स्वस्तिभिः सदा॑ नः ८।१६

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी जन! हम लोग (एताः) इन (इष्टीः) दातव्य करादि अंशों को (आशुषाणासः) शीघ्र देते हुए, (युवोः) तुम दोनों के (वाजान्) ऐश्वर्यों को (सचा अभि अश्याम) एक साथ भोग करें। (इन्द्रः विष्णुः) ऐश्वर्यवान् जन और व्यापक अधिकार वाले शासक तथा (मरुतः) बलवान् वीर पुरुष (नः परिख्यन्) हमारी निन्दा न करें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) पूर्ववत्। इति षोडशो वर्गः॥

[९४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, ३, ८, १० आर्षी निचृद् गायत्री। २, ४, ५, ६, ७, ९, ११ आर्षी गायत्री। १२ आर्षी निचृद-नुष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

इयं वा॑मस्य मन्म॑न इन्द्रा॑ग्नी पूर्व्यस्तु॑तिः। अभ्राद्वृष्टिरि॑वाजनि॥१॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! हे (अग्ने) अंग में झुकने हारे, विनयशील शिष्य जन! (इयं) यह (पूर्व्य-स्तुतिः) पूर्व पुरुषों से प्राप्त ज्ञानोपदेश (अस्य मन्मनः) इस ज्ञानी पुरुष का (वाम्) आप दोनों के प्रति (अभ्रात् वृष्टिः इव) मेघ से वृष्टि तुल्य (अजनि) प्रकट हो।

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः। ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्य और विनयशील पुरुषो! आप दोनों ही, (जरितुः) उपदेष्टा जन के (हवम्) उपदेश को सुनो। (गिरः) वेद-वाणियों और (गिरः) उपदेष्टा जनों की (वनतम्) सेवा करो। (ईशाना) अधिक समर्थ होकर (धियः) सत्कर्मों और सद्-बुद्धियों को (पिप्यतम्) बढ़ाओ।

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये। मा नो रीरधतं निदे ३

भा०—हे (नरा इन्द्राग्नी) उत्तम नायको! हे इन्द्र, अग्नि ऐश्वर्यवन्! विद्यावन्! नायक, नायिका जनो! आप (नः) हमें (पापत्वाय) पाप कर्म के लिये (मा रीरधतम्) अपने अधीन मत रक्खो। (अभिशस्तये मा रीरधतम्) शत्रु द्वारा पीड़ित करने के लिये भी मत रक्खो, (निदे) निन्दित कर्म वा निन्दा करने वाले के लाभ के लिये भी हमें किसी के अधीन मत रखो।

इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे। धिया धेना अवस्यवः ४

भा०—हम लोग (अवस्यवः) ऐश्वर्यादि चाहते हुए, (इन्द्रे अग्नौ) शत्रुहन्ता और अग्निवत् तेजस्वी वर्गों में (बृहत् नमः) बड़ा आदर, बल और (सु-वृक्तिम्) शुभ वर्त्ताव, शत्रु, पापादि को वर्जने का बल और (धिया) बुद्धि और कर्म के द्वारा (धेनाः) वाणियों को (आ ईरयामहे) प्रेरित करें।

ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये।
सबाधो वाजसातये ॥ ५ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (शश्वन्तः विप्रासः) बहुत से विद्वान् पुरुष (सबाधः) पीड़ित होकर दुःख पीड़ा आदि की चर्चा संदेशादि लेकर (ऊतये) अपनी रक्षा और (वाजसातये) संग्राम करने के लिये (ता हि ईडते) उन दोनों इन्द्र, अग्नि को अध्यक्ष रूप से चाहते हैं।

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे।
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—हम (वपन्यवः) विविध व्यवहारों वाले, (प्रयस्वन्तः) प्रयास वा उद्योगशील और अन्यों को (सनिष्यवः) वृत्तिदाता (ता वां) उन आप दोनों इन्द्र, अग्नि जनों को ही (मेध-साता) यज्ञ और संग्राम के लिये (गीर्भिः) नाना वाणियों से (हवामहे) बुलाते हैं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥

भा०—हे (चर्षणी-सहा) मनुष्यों के बीच शत्रुओं को हराने वाले (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि के तुल्य नायको! आप (अस्मभ्यं) हमारी (अवसा) रक्षा के सहित (आ गतम्) आओ। जिससे (नः) हम पर (दुःशंसः) दुष्ट वचन बोलने वाला, पुरुष (मा ईशत) अधिकार न करे।

मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्र णङ्मर्त्यस्य।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्यवत्, अग्निवत् तेजस्विन्! आप दोनों (नः शर्म यच्छतम्) हमें सुख दो। (कस्य) किसी भी (अररुषः मर्त्यस्य) रोषकारी मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा-चेष्टा (नः मा प्र णङ्) हम तक न पहुँचे।

गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे। इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥९॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य-अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो! हम (यत्) जो और जैसा भी (वाम् ईमहे) आप दोनों से मांगते हैं (तत्) वह (गोमत्) गौओं, (हिरण्यवत्) सुवर्णादि बहुमूल्य पदार्थ और (अश्वावद्) अश्वों से सम्पन्न (वसु) धन (वनेमहि) प्राप्त करें।

यत्सोम॒ आ सु॒ते नर॑ इन्द्रा॒ग्नी अजो॑हवुः । सप्ती॑वन्ता सप॒र्यवः॑ ॥ १०

भा०—हे (सप्तीवन्ता) उत्तम अश्वों के स्वामी, (इन्द्राग्नी) विद्युत्, अग्निवत् तेजस्वी, शत्रुसंतापक जनो ! (यत्) जब (सोमे सुते) पुत्रवत् प्रिय 'सोम' अर्थात् ओषधि, अन्नादिवत् भोग्य राष्ट्र में (नरः) नायक लोग (सपर्यवः) शुश्रूषा करते हुए (आ अजोहवुः) आदर से बुलाते हैं तब आप आइये ।

उ॒क्थेभि॑र्वृत्र॒हन्त॑मा॒ या म॑न्दा॒ना चि॒दा गि॒रा ।
आ॒ङ्गू॒षैरा॒विवा॑सतः ॥ ११ ॥

भा०—(या) जो आप दोनों (वृत्रहन्तमा) दुष्टों को खूब दण्ड देने वाले, (उक्थेभिः) उत्तम वेद-वचनों से (आमन्दाना) सबको प्रसन्न करते हैं, वे (गिरा चित्) वेद वाणी से और (आंगूषै) उत्तम स्तुति-वचनों, उपदेशों से (आ विवासतः) ज्ञानप्रकाश करते हैं ।

ताविद्दु॒ःशंसं॒ मर्त्यं॒ दुर्वि॑द्वांसं र॒क्षस्वि॑नम् ।
आ॒भो॒गं हन्म॑ना ह॒तमु॑द॒धिं हन्म॑ना ह॒तम् ॥ १२ ॥ १८ ॥

भा०—(तौ इद्) वे दोनों ही (दुःशंसं) कठोर भाषणकर्ता (दुर्विद्वांसं) दुर्गुणी, विद्यावान्, (रक्षस्विनम्) अन्यों के कार्यों में विघ्नकारी के सहायक, (आभोगं) चारों तरफ से भोग विलास में मग्न, (मर्त्यं) मनुष्य को (हन्मना) हननकारी हथियार से (हतम्) दण्ड दो और (उद-धिम्) जल धारक घट या तालाब के समान उसको भी (हन्मना हतम्) शस्त्र द्वारा नाश करो । जैसे घट या जलाशय को तोड़ या खोद-कर जल से खाली किया जाता है वैसे ही दुष्ट को दण्ड देकर उसका सर्वस्व हरना चाहिये । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[९५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १,२, ४—६ सरस्वती । ३ सरस्वान् देवता ।। छन्दः— १ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४, विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड़ृचं सूक्तम् ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्र बाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१॥

भा०—पत्नी, स्त्री के कर्त्तव्य—जैसे (सिन्धुः) बहने वाली नदी (क्षोदसा सस्रे) पानी से बहती है, (आयसीः पूः) लोहे के प्रकोट के तुल्य नगर की रक्षा करती, (रथ्या इव) रथ में लगे अश्वों के तुल्य (प्र बावधाना) मार्ग के वृक्ष, लतादि को उखाड़ती हुई, (अन्याः अपः च प्रबाबधाना) अन्य सब जल-धाराओं को बाधती हुई, मुख्य होकर (याति) आगे बढ़ती है वैसे ही (सरस्वती) ज्ञानयुक्त विदुषी स्त्री (धायसा) बालक को पिलाने योग्य दूध (क्षोदसा) और अन्न से (प्रसस्रे) प्रेम से प्रवाहित होती है। वह (धरुणम्) गृहस्थ-धारक और सबका आश्रय हो, वह (आयसी पूः) लोहे के प्रकोट के तुल्य दृढ़ एवं (आ-यसी) सब प्रकार से श्रम वाली और (पूः) परिवार की पालक हो। वह (रथ्या इव) रथ में लगे अश्वों के तुल्य दृढ़ और (महिना) स्व सामर्थ्य से (विश्वाः अन्याः अपः) अन्य आप्त जनों को (सिन्धुः) महानद के समान (प्र बाबधाना) दृढ़ सम्बन्ध से बांधती हुई (याति) जीवन-मार्ग पर चले।

एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥

भा०—जैसे (नदीनां एका सरस्वती शुचिः) नदियों में से एक अधिक वेग व जल वाली नदी (गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती) पर्वतों से समुद्र तक जाती हुई (नाहुषाय) मनुष्य वर्ग के लिये (घृतं पयः दुदुहे) जल और अन्न प्रचुर मात्रा में देती है, वैसे ही (सरस्वती) ज्ञान वाली स्त्री (नदीनाम्) धनसम्पन्न स्त्रियों के बीच भी (शुचिः) शुद्ध चरित्र, रूप और वाणी वाली होकर (एका चेतत्) अकेली ही सर्व प्रशस्त जानी जाय। वह (गिरिभ्यः) उपदेष्टा पिता आदि गुरुओं से

(आ समुद्रात्) कामना-योग्य पति-गृह को (यती) प्राप्त होती हुई (भुवनस्य) समस्त लोकों को (भूरेः रायः चेतन्ती) अपना बहुत ऐश्वर्य बतलाती हुई, (नाहुषाय) सम्बन्ध में बांधने वाले पति के लिये (घृतं पयः) स्नेह, दुग्ध, अन्न आदि की (दुदुहे) वृद्धि करे ।

स वा॑वृधे॒ नर्यो॒ योष॑णासु॒ वृषा॒ शिशु॑र्वृष॒भो य॒ज्ञिया॑सु ।
स वा॒जिनं॑ म॒घव॑द्भ्यो दधाति॒ वि सा॒तये॑ त॒न्वं॑ मामृजीत ॥ ३ ॥

भा०—नरश्रेष्ठ का वर्णन—(सः) वह (नर्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुष (यज्ञियासु) परस्पर संग, दान-प्रतिदान द्वारा प्राप्त (योषणासु) स्त्रियों में (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ, (वृषभः) बलवान्, (शिशुः) सहशायी होकर (वावृधे) पुत्र, धन-धान्यादि से बढ़े । (सः) वह (मघवद्भ्यः = मखवद्भ्यः) याज्ञिकों और धनैश्वर्य-सम्पन्न राजादि के हितार्थ (वाजिनं) धन, ज्ञानादि से सम्पन्न पुत्र को प्रजावत् (दधाति) धारण करे । वह (सातये) पुत्र, धन, अन्न, ज्ञानादि के लाभ एवं संग्राम के लिये भी (तन्वं) शरीर वा आत्मा को (वि मामृजीत) यज्ञ, दान, स्नान, उपदेश, तप आदि उपायों से शुद्ध करे ।

उ॒त स्या नः॒ सर॑स्वती जु॒षा॒णोप॑ श्रवत्सु॒भगा॑ य॒ज्ञे अ॒स्मिन् ।
मि॒तज्ञु॑भिर्नम॒स्यै॑रिया॒ना रा॒या यु॒जा चि॒दुत्त॑रा सखि॑भ्यः ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (सरस्वती) ज्ञान वाली विदुषी स्त्री, (जुषाणा) स्नेह करती हुई (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (सु-भगा) सौभाग्यवती होकर (नः उप श्रवत्) हमारी बात सुने । वह (नमस्यैः) नमस्कार योग्य (मित-ज्ञुभिः) परिमित-संकुचित जानुओं वाले, ज्ञातव्य पदार्थों के ज्ञाता पुरुषों के साथ (इयाना) प्राप्त होती हुई (राया) ऐश्वर्य (चित्) और (युजा) सहयोगी पति से तु (सखिभ्यः) स्व सखियों से (उत्तरा) अधिक उत्कृष्ट हो ।

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (सरस्वति) ज्ञान-युक्त विदुषी ! ज्ञानमय प्रभो ! तू (स्तोमं प्रति जुषस्व) स्तुत्यवचन को प्रेम से स्वीकार कर। हम (नमोभिः) विनय-वचनों सहित (युष्मत् आजुह्वाना) तुमसे प्राह्य पदार्थ लेते हुए (तव प्रियतमे शर्मन्) तेरे प्रियतम गृह में स्वयं को (दधानाः) रखते हुए (वृक्षं न शरणं) वृक्ष तुल्य शरण दायक (उप स्थेयाम) तेरे पास आयें।

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।१६

भा०—हे (सरस्वति) विदुषि ! हे (सुभगे) भाग्यशालिनि ! (अयम् वसिष्ठः) यह ब्रह्मचारी (ते) तेरे लिये (ऋतस्य द्वारौ) सत्य ज्ञान, अन्न और धन के दो द्वारों को (व्यावः) प्रकट करता है। हे (शुभ्रे) शुभ चरित्र वाली ! तू (स्तुवते) गुणप्रशंसक, गुणग्राही जन को (वाजान्) ऐश्वर्यादि (रासि) दे। हे विद्वान् लोगो ! (यूयं स्वस्तिभिः न पात) पूर्ववत्।

[९६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–३ सरस्वती । ४–६ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची भुरिग्बृहती । ३ निचृत् पंक्तिः । ४, ५ निचृद्गायत्री । ६ आर्षी गायत्री ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) विद्वन् ! तू (रोदसी) भूमि और सूर्य दोनों में नायक और (नदीनाम् असुर्या) नदियों में बलवती नदी के तुल्य समृद्ध प्रजाओं में बलशाली, प्रभु की (बृहत् उ गायिषे) बहुत स्तुति

कर। (सुवृक्तिभिः) स्तुति, (स्तोमैः) वेद-सूक्तों और यज्ञादि से (सरस्वतीम् इत् महय) जो अनादि काल से ज्ञान, सुख, ऐश्वर्य का प्रवाह बहा रहा है उसे (महय) पूज।

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस (ते) तेरे (महिना) सामर्थ्य से (पूरवः) मनुष्य (उभे) दोनों को (अधि क्षियन्ति) प्राप्त करते हैं हे (शुभ्रे) उज्वल रूप वाली सरस्वति! ज्ञानमयी! (सा) वह तू (मरुत्सखा) विद्वानों की मित्र (अवित्री) संसार की रक्षक होकर (नः बोधि) हमें ज्ञान दे और (मघोनां) ऐश्वर्यवान् जनों को (राधः चोद) धनादि दे।

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

भा०—(भद्रा सरस्वती) सबका कल्याण करने वाली वह परमेश्वरी (वाजिनी-वती) ऐश्वर्य, अन्नादि और सूर्यादि की स्वामिनी, विद्वानों की स्वामिनी और (अकव-अरी) कुत्सित मार्ग में न जाने देने वाली होकर सबके लिये (भद्रम् इत् कृणवत्) कल्याण ही करती है। वही (चेतति) सबको ज्ञान देती है। वह (जमदग्निवत्) अग्नि के तुल्य (गृणाना) स्तुति की जाती है और (वसिष्ठवत्) सब में बसने वाले के तुल्य (स्तुवाना) स्तुति की जाती है।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे ॥४॥

भा०—हम लोग (जनीयन्त :) भार्या रूप संतति जनक क्षेत्र की कामना वाले, (पुत्रीयन्तः) पुत्रों की कामना वाले, (अग्रवः नु) आगे बढ़ने वाले और (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (सरस्वन्तं) उत्तम ज्ञानवान् प्रभु को (हवामहे) प्राप्त होते, पुकारते, उसी से याचना करते हैं।

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥५

भा०—हे (सरस्वः) ज्ञान और बलशालिन्! (ते) तेरे (ये) जो (मधुमन्तः) जल, अन्नादि युक्त, (घृतश्चुतः) स्नेह और जल प्रदाता (ऊर्मयः) उत्तम तरङ्गवत् उत्कृष्ट मार्ग से जाने वाले विद्वान्, सूर्य, मेघादि हैं (तेभिः) उनसे तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो।

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(यः) जो (विश्व-दर्शतः) समस्त जीवों के लिए दर्शनीय, सूर्य समान तेजस्वी है, उस (सरस्वतः) ज्ञानवान् प्रभु के (पीपिवांसं) सबके पोषक, (स्तनं) बालक का स्तन के समान पुष्टिदाता प्रभु का हम (भक्षीमहि) सेवन करें और उसी की दी हुई (प्रजाम्, इषम्) सन्तान, अन्न आदि का सेवन करें। इति विंशो वर्गः ॥

[९७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ इन्द्रः । २, ४—८ बृहस्पतिः । ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती । १० इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः—१ आर्षी त्रिष्टुप् । २, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर इन्द्र ! (यत्र) जिस (यज्ञे) सर्वप्रद प्रभु के आश्रय (देवयवः) दिव्य शक्तियों की कामना करने वाले जन (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमि पर के (नृ-सदने) मनुष्यों के रहने के स्थान में (मदन्ति) हर्ष लाभ करते हैं । (च) और (वयः) ज्ञानी पुरुष (मदाय) मोक्षानन्द के लिये (यत्र) जिस प्रभु के आश्रय स्थिर होकर

(प्रथमं गमन्) श्रेष्ठ पद को पाते हैं उस (इन्द्राय) प्रभु के लिये मैं (सवनानि) उपासनाएं (सुन्वे) करूं।

आ दैव्या॑ वृणीमहेऽवां॑सि बृह॒स्पति॑र्नो मह॒ आ स॑खायः ।
यथा॑ भवे॑म मी॒ळ्हुषे॒ अना॑गा॒ यो नो॑ दा॒ता प॑रा॒वतः॑ पि॒तेव॑ ॥२॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (पिता इव) पिता तुल्य (परावतः) दूर २ से, वा परम पद से (दाता) सब सुख ऐश्वर्यादि दाता है वह (बृहस्पतिः) ब्रह्माण्ड का पालक (नः) हमें (आ महे) सब प्रकार से देता है। हे (सखायः) मित्रो! हम उस (मीढुषे) ऐश्वर्य सुखों के वर्षक प्रभु के प्रति (यथा) जैसे हो (अनागाः भवेम) निरपराध हों, इसीलिये हम (दैव्यानि अवांसि) सर्वप्रकाशक प्रभु के दिये बलों, ऐश्वर्यों और-रक्षाओं को (आ वृणीमहे) चाहते हैं।

तमु॒ ज्येष्ठं॒ नम॑सा ह॒विर्भिः॑ सु॒शेवं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ गृणीषे ।
इन्द्रं॒ श्लोको॒ महि॒ दैव्यः॑ सिषक्तु॒ यो ब्रह्म॑णो दे॒वकृ॑तस्य॒ राजा॑ ॥३॥

भा०—(यः) जो (देव-कृतस्य) परमेश्वर रचित दिव्य पदार्थ, पृथिवी आदि (ब्रह्मणः) महान् ब्रह्माण्ड का (राजा) स्वामी है उस (महि) महान् (इन्द्रं) प्रभु को (दैव्यः) विद्वानों की (श्लोकः) स्तुति और (दैव्यः श्लोकः) प्रभु से प्राप्त 'श्लोक' अर्थात् वेदवाणी, (सिषक्तु) प्राप्त होती है, वह उसी का वर्णन करती है। (तम् उ ज्येष्ठं) उसी सर्वश्रेष्ठ, (सु-शेवं) सुखदाता, आनन्दकन्द (ब्रह्मणः पतिम्) ब्रह्माण्ड और वेद के पालक प्रभु की मैं (हविर्भिः) उत्तम वचनों से (गृणीषे) स्तुति करूं।

स आ नो॒ योनिं॑ सदतु॒ प्रेष्ठो॒ बृह॒स्पति॑र्वि॒श्ववा॑रो॒ यो अस्ति॑ ।
कामो॑ रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य॒ तं दा॒त्पर्ष॑न्नो॒ अति॑ स॒श्चतो॒ अरि॑ष्टान् ॥४॥

भा०—(यः) जो (विश्व-वारः) सबसे वरणीय है और जो सब संकटों को दूर करता है (सः) वह (प्रेष्ठः) प्रियतम, (बृहस्पतिः)

ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वह (नः) हमारे (योनिं) एकत्र मिलने के स्थान हृदय-देश में (आ सदतु) अनुग्रह कर प्राप्त हो। वही परमेश्वर हमारी जो (सुवीर्यस्य रायः कामः) उत्तम बलयुक्त ऐश्वर्य की अभिलाषा है (तं) उस को (दात्) पूर्ण करता और (सश्चतः) प्राप्त होने वाले (अरिष्टान्) मृत्यु-लक्षणों से भी (अतिपर्षत्) पार करता है।

तमा नो॑ अ॒र्कम॒मृता॑य॒ जुष्ट॑मि॒मे धा॑सुर॒मृता॑सः पुरा॒जाः।
शुचि॑क्रन्दं यज॒तं प॒स्त्या॑नां बृह॒स्पति॑मन॒र्वाणं॑ हुवेम ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(नः) हमारे (पुराजाः) पूर्व काल में नाना जन्मों में उत्पन्न (इमे) ये (अमृतासः) अविनाशी जीवगण (अमृताय) दीर्घ जीवन के लिये (अर्कम्) अन्न के समान (अमृताय) मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिये (जुष्टं) प्रेम से सेवनीय (अर्कं) अर्चना-योग्य (तम्) उस परमेश्वर को (धासुः) धारण करें और (पस्त्यानां) गृहस्थों के समान देह-रूप गृहों में रहने वाले जीवों के (यजतम्) उपासनीय, (शुचि-क्रन्दं) न्यायकर्त्ता के समान शुद्ध, निर्दोष वचन कहने वाले, (अनर्वाणम्) अश्वादि की अपेक्षा न करने वाले स्वयंगामी रथ तुल्य जगत्-सञ्चालक, (बृहस्पतिम्) बड़े २ सूर्यादि के भी पालक प्रभु की हम (हुवेम) स्तुति करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

तं श॒ग्मासो॑ अरु॒षासो॒ अश्वा॒ बृह॒स्पतिं॑ सह॒वाहो॑ वहन्ति।
सह॑श्चि॒द्यस्य॒ नील॑वत्स॒धस्थं॒ नभो॒ न रू॒पम॑रु॒षं वसा॑नाः ॥ ६ ॥

भा०—(सहवाहः अश्वाः यथा बृहस्पतिं वहन्ति) एक साथ चलने वाले अश्व जैसे बड़े सैन्य के स्वामी को अपने ऊपर धारते हैं वैसे ही (यस्य) जिस परमेश्वर का (सधस्थं) साथ रहना ही (नीडवत्) गृह के समान आश्रय देता और (सहः चित्) सब दुखों को सहन कराने में समर्थ बल है और जिसका (रूपं नभः न) रूप आकाश वा सूर्य के समान व्यापक और (अरुषं) तेजोमय है, (तं) उस प्रभु को, (वसानाः)

उसकी भक्ति में रहने वाले, (शग्मासः) आनन्दमग्न, शक्तिमान्, (अरु-षासः) उज्ज्वल रूपयुक्त, सूर्यवत् प्रकाशमान (अश्वाः) विद्या-विज्ञान में निष्णात पुरुष वा सूर्यादि लोक (सह-वाहः) एक साथ मिलकर संसार यात्रा करते हुए (बृहस्पतिं वहन्ति) महान् ब्रह्माण्ड के पालक प्रभु को अपने ऊपर धारण करते हैं।

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७॥

भा०—(सः हि) वह प्रभु ही (शुचिः) पवित्र, (शतपत्रः) शत-दल कमल के समान उज्ज्वल, निस्संङ्ग है (सः शुन्ध्युः) वह सबको शुद्ध करने वाला, (हिरण्य-वाशीः) हित, रमणीय वेदवाणी से युक्त, (इषिरः) सबके चाहने योग्य, (स्वः-साः) सुखदाता है। (सः सु-आवेशः) वह उत्तम रीति से विश्व में व्यापक, (ऋष्वः) महान्, (सखिभ्यः) अपने समान ख्याति, आत्मा नाम वाले जीवों के लिये (पुरु आसुतिं) बहुत सा अन्न आदि ऐश्वर्य (करिष्ठः) उत्पन्न करने वाला है, वही (बृहस्पतिः) जगत्-पालक बृहस्पति है। ऐसा ही राष्ट्र का स्वामी भी हो। वह (शुचिः) ईमानदार, शुद्ध हो (शतपत्रः) सैकड़ों रथों का स्वामी, (शुन्ध्युः) राज्य के कण्टकों का शोधक, (हिरण्य-वाशीः) लोह आदि के चमकते शस्त्रों वाला, (इषिरः) सेना का सञ्चालक, (स्वर्षाः) शत्रुतापकारी अस्त्रों तथा प्रजा के सुखों का दाता, (सु-आवेशः) सुखपूर्वक राष्ट्र में प्रविष्ट, (ऋष्वः) महान् (सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः) मित्रों के लिये ऐश्वर्य का उत्पादक हो।

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥

भा०—(देवी) ऐश्वर्यों के दाता (रोदसी) भूमि और आकाश, (देवस्य महित्वा) सर्वप्रकाशक प्रभु के सामर्थ्य से (जनित्री) जगत्

को उत्पन्न करते हैं। वे दोनों (बृहस्पतिं) महान् जगत्-पालक प्रभु की महिमा को ही (वबृधतुः) बढ़ा रहे हैं। हे (सखायः) मित्रो! आप लोग (दक्षाय्याय) महान् सामर्थ्य के स्वामी को (दक्षत) बढ़ाओ और जैसे (सुतरा सुगाधा ब्रह्मणे करत्) उत्तम, सुख से अवगाहन करने योग्य जलधारा अन्न उत्पत्ति की सहायक है वैसे ही (सुतरा) दुःख-सागर से सुख से तरा देने वाली उत्तम, (सु-गाधा) वेदवाणी (ब्रह्मणे) सामर्थ्यवान् परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये ज्ञानोपदेश (करत्) करे।

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) वेद और राष्ट्र के पालक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! जीव! (वां) आप दोनों की (इन्द्राय वज्रिणे) शक्तिशाली आत्मा की (इयं) यह (सुवृक्तिः) उत्तम स्तुति (अकारि) की है। आप दोनों (धियः अविष्टं) उत्तम बुद्धियों, कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) देह के पुरवत् धारक जीवों को उपदेश करो। (वनुषां) कर्म-फल सेवन करने वाले जीवों के (अरातीः) सुखादि न देने वाले, बाधक (अर्यः) शत्रुओं को (जजस्तम्) नष्ट करो।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०।२२

भा०—हे (बृहस्पते) महान् विश्व-पालक! हे (इन्द्रः च) जीवात्मन्! (युवम्) आप दोनों, (दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः) आकाश और भूमि के समस्त ऐश्वर्यों के (ईशाथे) प्रभु हो। आप दोनों (स्तुवते कीरये चित्) स्तुतिशील विद्वान् को (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य दो। हे विद्वान् जनो! (यूयं स्वस्तिभिः न सदा पात) पूर्ववत्। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[९८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–६ इन्द्रः ७ इन्द्राबृहस्पती देवेते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ के इच्छुक दयाशील प्रजाजनो ! आप लोग (क्षितीनाम्) मनुष्यों में (वृषभाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिये (अरुणं) कभी न रुकने वाले, (दुग्धम्) दूध के तुल्य, समस्त भूमि-भागों से प्राप्त (अंशुम्) अन्नादि का अंशभाग करवत् (जुहोतन) दो । (सुत-सोमम् इच्छन्) अभिषेक द्वारा प्राप्ति योग्य ऐश्वर्य का इच्छुक, (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, (गौरात्) भूमि में रमण करने वाले प्रजाजन से (अवपानं वेदीयान्) प्रजा-पालन का वेतन प्राप्त करता हुआ (विश्वाहा इत् याति) सदा प्राप्त हो ।

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (प्र-दिवि) उत्तम तेज होने पर (चारु अन्नं दधिषे) उत्तम अन्न को पुष्ट करता है, (दिवेदिवे) दिनो-दिन जलपान के समान (अस्य पीतिम् इत् वक्षि) इस राष्ट्र के पालन और उपभोग की कामना कर । (उत) और (हृदा उत मनसा) हृदय और मन से राष्ट्र को (जुषाणः) सेवन करता और (उशन्) नित्य चाहता हुआ (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) प्राप्त ऐश्वर्यों और सौम्य वीरों की रक्षा कर ।

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्व॒न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥

भा०—विजिगीषु राजा का कर्त्तव्य । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (जज्ञानः) प्रकट होकर (सहसे) शत्रुविजयी बल को बढ़ाने के लिये (सोमं) ऐश्वर्यमय राष्ट्र को (पपाथ) पालन कर और (माता) जगत्-उत्पादक भूमि माता (ते महिमानम्) तेरे सामर्थ्य को (प्र उवाच) उत्तम रीति से कहे । हे (इन्द्र) सेनानायक ! तू (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष को (युधा) युद्ध-साधनों से (आ पप्राथ) विस्तृत कर और (देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) विजयेच्छुक सैनिकों के लिये धन उत्पन्न कर ।

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४॥

भा०—(यत्) जब तू (महतः) बड़े २ (मन्यमानान्) अभिमानी शत्रुओं को (योधयाः) हमसे लड़ा और हम (शाशदानान्) मारते हुए (तान्) उनको (बाहुभिः) बाहुओं से (साक्षाम) पराजित करें । (वा) और (यत्) जब हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नृभिः वृतः) वीर नायकों से घिर कर (अभियुध्याः) शत्रुओं का सामना करे तब हम (त्वया) तेरे बल से (तं) उस (सौश्रवसं आजि) कीर्त्ति-जनक संग्राम को जीतें ।

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रस्य) शत्रुहन्ता सेनापति के (प्रथमा) मुख्य (कृतानि) कर्त्तव्यों को मैं (प्र-वोचम्) कहता हूँ । (मघवा) ऐश्वर्यवान् (या) जिन (नूतना) नये २ कार्यों को (चकार) करे, उनको (प्र वोचं) अच्छी प्रकार कहूँ । (यत्) जब वह (अदेवीः मायाः) दुष्ट पुरुषों के कपट-

८ प॰

कृत्यों को भी (असहिष्ट) पराजित करे (अथ) अनन्तर (सोमः) यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र (केवलः) केवल (अस्य अभवत्) उसी के अधीन हो जाता है ।

तवेदं विश्वम॒भितः॑ पश॒व्यं१॒॑ यत्पश्य॑सि॒ चक्ष॑सा॒ सूर्य॑स्य ।
गवाम॑सि॒ गोप॑ति॒रेक॑ इन्द्र भक्षी॒महि॑ ते॒ प्रय॑तस्य॒ वस्वः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! राजन् ! (यत्) जो तू (सूर्यस्य चक्षसा) सूर्य के प्रकाश से (पश्यसि) देखता है, इसलिये (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (अभितः) सब तरफ (तव) तेरे ही (पशव्यं) 'पशव्य' अर्थात् इन्द्रियों से देखने योग्य है । तू (गवाम् गोपतिः असि) सब वाणियों, भूमियों और सूर्यादि लोकों का गो पालक के समान स्वामी है । (प्रयतस्य) सर्वोत्कृष्ट सञ्चालक तेरे ही दिये (वस्वः) ऐश्वर्य का हम (भक्षीमहि) भोग करें ।

बृह॑स्पते यु॒वमिन्द्र॑श्च॒ वस्वो॑ दि॒व्यस्ये॑शाथे उ॒त पार्थि॑वस्य ।
ध॒त्तं र॒यिं स्तु॑व॒ते की॒रये॑ चिद्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ७।२३

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ९७ । १० ॥ इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[९९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–३, ७ विष्णुः । ४–६ इन्द्राविष्णु देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प॒रो मात्र॑या त॒न्वा॑ वृधान॒ न ते॑ महि॒त्वमन्व॑श्नुवन्ति ।
उ॒भे ते॑ विद्म॒ रज॑सी पृथि॒व्या विष्णो॑ दे॒व त्वं प॑र॒मस्य॑ वित्से ॥१॥

भा०—हे (वृधाना) सबसे बड़े ! वा जगत् के बढ़ाने हारे ! (विष्णो) सर्वव्यापक ! (तन्वा) जगत् को फैलाने वाले, (मात्रया) जगत् को बनाने वाली प्रकृति से भी (परः) उत्कृष्ट (ते) तेरी (महि-

त्वम्) महिमा को कोई भी (न अनु अश्नुवन्ति) पा नहीं सकते। हे (देव) सर्वप्रकाशक ! (पृथिव्याः ते) संसार के विस्तारक तेरे ही बनाये इन (उभे) दोनों (रजसी) सूर्य, पृथिवी, वा आकाश और भूमि लोकों को (विद्म) जानते हैं। तू (अस्य) इससे भी (परम्) उत्कृष्ट तत्व को (वित्से) जानता है।

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥२॥

भा०—हे (विष्णो) जगदीश्वर (न जायमानः) न उत्पन्न होता हुआ और (जातः) उत्पन्न हुआ कोई (ते महिम्नः) तेरे महान् सामर्थ्य की (परम् अन्तम्) परली सीमा को (न आप) प्राप्त नहीं कर सका है। हे (देव) सर्वप्रकाशक ! तू (बृहन्तं) बड़े भारी, (ऋष्वं) महान् (नाकम्) दुःख-रहित, मोक्ष धाम और आकाश को (उत् अस्तभ्नाः) उठा रहा है और (पृथिव्याः) पृथिवी की (प्राचीं ककुभं) प्राची दिशा को जैसे सूर्य प्रकाशित करता है वैसे ही तू (पृथिव्याः) जगत् को फैलाने वाली प्रकृति को (प्राचीं ककुभम्) जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व से उत्तम रूप से प्रकट होने वाले आर्जवी भाव अर्थात् विकृति भाव को (दाधर्थ) धारण कराता है।

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥३॥

भा०—हे (द्यावापृथिव्यौ) आकाश और भूमि, सूर्य और भूमि ! तुम दोनों (इरा-वती) जलों, अन्नों से युक्त तथा (धेनुमती) रसपान कराने वाली, गौ, वाणी तथा किरणों से युक्त और (मनुषे) मनुष्य के लिये (सु-यवसिनी) उत्तम अन्न वाली और (दशस्या) सुख देने वाली (भूतम्) होवो। हे (विष्णो) प्रभो ! तू (एते रोदसी) इन पृथ्वी और

आकाश को (वि अस्तभ्नाः) विशेष रूप से थामे है, तु (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) सब ओर से (मयूखैः) किरणों से (दाधर्थ) धारण किये है ।

उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नायको ! हे स्त्री-पुरुषो ! हे (इन्द्र-विष्णू) विद्युत्, जल को वर्षाने हारे, सूर्य वा पवन के समान लोकोपकारक जनो ! जैसे विद्युत् तथा मेघ को वर्षाने वाले तुम दोनों मिलकर (सूर्यम्) सूर्य, (उषासम्) और उसकी दाहिका ताप शक्ति को (जनयन्ता) उत्पन्न करते हुए (यज्ञाय) तत्वों के परस्पर मिलने के लिये (उरुं लोकं चक्रथुः) विशाल स्थान अन्तरिक्ष को उपयोगी बनाते हो और (वृषशिप्रस्य दासस्य) वर्षक जल-स्वरूप जल वाले मेघ की (मायाः) नाना रचनाओं को (पृतनाज्येषु) जलों के निमित्त आघात करते वैसे ही आप दोनों, (सूर्यम्) सूर्य तुल्य तेजस्वी और (उषासम्) उषा के तुल्य कान्तियुक्त विदुषी और (अग्निम्) अग्नि तुल्य ज्ञानप्रकाशक विद्वान् को प्रकट करते हुए (यज्ञाय) परस्पर दान, प्रतिदान, सत्संगादि के लिये (उरुं लोकं चक्रथुः उ) विशाल गृहादि स्थान बनाओ और (पृतनाज्येषु) संग्रामों में (वृष-शिप्रस्य) बलवान् नेता वाले (दासस्य) प्रजानाशक शत्रु जन की (मायाः) कुटिल चालों का (जघ्नथुः) नाश करो ।

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् ! हे व्यापक शक्तिशालिन् ! आप दोनों (शम्बरस्य) शान्ति-सुख-नाशक शत्रु के (नव नवतिं च पुरः) ९९ नगरियों, प्रकारों को (श्नथिष्टम्) नाश करो । (असुरस्य)

बलवान् शत्रु के (अप्रति) बेजोड़, (शतं सहस्रं च वर्चिनः वीरान्), सौ हजार तेजस्वी वीरों को (साक हथः) एक साथ दण्डित करो।

इ॒यं म॑नी॒षा बृ॑ह॒ती बृ॒हन्तो॑रुक्र॒मा त॒वसा॑ व॒र्धय॑न्ती।
र॒रे वां॒ स्तोमं॑ वि॒दथे॑षु विष्णो॒ पिन्व॑त॒मिषो॑ वृ॒जने॑ष्विन्द्र ॥ ६ ॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक वीर ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इयं) यह (बृहती) बड़ी, (मनीषा) मन की प्रेरक शक्ति, (उरुक्रमा) बड़े पराक्रमी (बृहन्ता) बड़े सामर्थ्यवान् (वां) आप दोनों को (तवसा) बल से (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई (विदथेषु) संग्रामों में (स्तोमं ररे) उत्तम संघ-बल देती है। आप दोनों (वृजनेषु) शत्रु नाशक प्रयाण-कारी बलों में (इषः पिन्वतम्) तीव्र प्रेरणाएं दो।

वष॑ट् ते विष्णवा॒स आ कृ॑णोमि॒ तन्मे॑ जुषस्व शिपिविष्ट ह॒व्यम्।
वर्ध॑न्तु त्वा सुष्टु॒तयो॒ गिरो॑ मे यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥२४

भा०—हे (विष्णो) व्यापक, नाना सैन्यों से घिरे ! नियमों में बद्ध ! (ते) तेरा (आसः) स्थापन (वषट्) सत्कार-पूर्वक (आकृणोमि) करता हूँ। हे (शिपिविष्ट) तेजों से युक्त ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! तू (मे) मुझ राष्ट्र जन का (तत् हव्यम् जुषस्व) वह उपायन, भेंटादि स्वीकार कर (त्वा) तुझे (मे) मेरी (सु-स्तुतयः गिरः) स्तुति में विद्वान् जन (वर्धन्तु) बढ़ावें। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) पूर्ववत्। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१००]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता छन्दः—१, २, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

नू मर्तो॑ दयते सनि॒ष्यन्यो विष्ण॑व उरुगा॒याय॒ दाश॑त्।
प्र यः स॒त्राचा॒ मन॑सा॒ यजा॑त ए॒ताव॑न्तं॒ नर्य॑मा॒विवा॑सात् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य, (सनिष्यन्) दान देने की इच्छा से (दयते) दान देता, दया करता है वही (उरु-गायाय) बहुतों से स्तुतियोग्य (विष्णवे) परमेश्वर के निमित्त (दाशत्) दान करे ! (यः) जो मनुष्य (सत्राचा मनसा) सत्यनिष्ठ मन से (प्र यजाते) दान करता वा देव पूजा करता है वह (एतावन्तं) उतना ही (नर्यम्) मनुष्यों के हित की (आ विवासत्) सेवा करता है ।

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥ २ ॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक प्रभो ! (त्वं) तू (विश्वजन्या) सब जनों की हितकारिणी, (अप्रयुताम्) सबके साथ मिली हुई, (सुमतिं मतिम्) उत्तम ज्ञानयुक्त बुद्धि को (दाः) दे । (यथा) जिससे, (नः) हमारे (सुवितस्य) उत्तम रीति से प्राप्त (भूरेः अश्वावतः) बहुत से अश्वों से युक्त, (पुरु-चन्द्रस्य) बहुतों के आह्लादकारी (रायः) ऐश्वर्य का (पर्चः) सम्पर्क हो ।

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ३ ॥

भा०—(देवः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ने (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (एतां) इस (पृथिवीम्) पृथिवी को (त्रिः) तीन प्रकार से (शत-अर्चसम्) सैकड़ों दीप्ति युक्त पदार्थों से पूर्ण (वि चक्रमे) बनाया है । सूर्य, विद्युत, अग्नि से पृथ्वी को सहस्रों चमकते पदार्थों का भण्डार बनाया है । वह (तवसः तवीयान्) बलवान् से बलवान् (विष्णुः) प्रभु (प्र अस्तु) सबसे उत्तम है । उस (स्थविरस्य) नित्य प्रभु का (नाम) नाम, स्वरूप और शासन सूर्य-प्रकाश के समान (त्वेषं हि) तेजोमय और उज्ज्वल है ।

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४॥

भा०—(एषः) वह (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (एतां पृथिवीम्) इस पृथिवी को (मनुषे दशस्यन्) मनुष्यों को दान देता हुआ (क्षेत्राय) निवास करने के लिये (वि चक्रमे) विविध प्रकार का बनाता है। (अस्य) इसकी (कीरयः) स्तुति करने वाले (जनासः) जन्तु, आत्मगण (ध्रुवासः) नित्य हैं। वह पृथ्वी को (उरु-क्षितिम्) बहुत जीवों से बसने योग्य और (सुजनिम्) उत्तम रीति से जन्तुओं, अन्नादि, वनस्पतियों को उत्पादक (आ चकार) बनाता है।

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥५॥

भा०—हे (शिपिविष्ट) सूर्य तुल्य रश्मियों से आवृत! तू (अर्यः) सबका स्वामी, (वयुनानि) सब कर्मों को (विद्वान्) जानने हारा है। (तत्) जो तेरे ही (नाम) स्वरूप और (वयुनानि) कर्मों की (अद्य) आज मैं (शंसामि) स्तुति करता हूँ। मैं (अतव्यान्) अल्पशक्ति मनुष्य, (त्वा तवसं) तुझ बलवान् की स्तुति करता हूँ और (अस्य रजसः पराके) इस विश्व के परे विद्यमान, महान् से महान् (त्वा तं गृणामि) उस तेरी मैं प्रार्थना करता हूँ।

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ ६ ॥

भा०—(ते) तेरा (किम् इत्) कौनसा रूप (परिचक्ष्यं भूत्) कथन-योग्य है (यत्) जिसको तू (ववक्षे) स्वयं बता रहा है कि मैं (शिपिविष्टः अस्मि) रश्मियों में प्रविष्ट, उनसे घिरे सूर्य तुल्य तेजोमय हूँ। (अस्मत्) हमसे अपने (एतत्) उस तेजोमय (वर्पः) रूप को

(मा अप गूह) मत छिपा। (यत्) क्योंकि तू (समिथे) मिलने पर (अन्यरूपः बभूथ) दूसरे रूपों में प्रकट होता है।

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।२५।६

भा०—व्याख्या देखो सू० ९९। ७॥ इति पञ्चविंशो वर्गः॥
इति षष्ठोऽध्यायः॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[१०१]

वसिष्ठ कुमारो वाग्नेय ऋषिः॥ पर्जन्यो देवता॥ छन्दः—१, ६ त्रिष्टुप्। २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप्॥

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः।
स वत्सं कृण्वन्गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥१॥

भा०—जैसे (वृषभः) बरसता मेघ (रोरवीति) गर्जता है (ज्योतिरग्राः वाचः वदति) प्रथम विद्युत् को चमका कर बाद में गर्जना करता है और (ऊधः मधुदोधम् दुह्रे) अन्तरिक्ष से जल को दोहता है और (ओषधीनां गर्भं कृण्वन्) ओषधियों को गर्भित करता है वैसे ही हे विद्वन्! तू (ज्योतिरग्रा) ज्ञान-ज्योतियों से युक्त (तिस्रः वाचः) तीनों वेदवाणियों-यजुष, ऋग् और साम को (प्र वद) उपदेश कर (याः) जिनसे (वृषभः) मनुष्यों में श्रेष्ठ जन (एतत् ऊधः) इस ऊर्ध्वस्थित ब्रह्म से (मधु-दोघम्) ऋग्वेदमय ज्ञान-रस को (दुह्रे) दोहन करता है (सः) वह (ओषधीनां) अन्नादि के ग्रहण करने वाले (वत्सं) छोटे

बच्छे के समान बालक को अपना (वत्सं कृण्वन्) शिष्य बना कर (सद्यः) शीघ्र ही (जातः) स्वयं प्रकट होकर (रोरवीति) उपदेश करता है।

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यस्मे ॥२॥

भा०—(ओषधीनां वर्धनः) ओषधियों को बढ़ाने वाला, (अपां वर्धनः) जलों को बढ़ाने वाला, मेघवत् सूर्यवत् (देवः) प्रकाश, जल का दाता (विश्वस्य जगतः ईशे) सब जगत् का स्वामी है। वह (त्रिवर्तुं ज्योतिः यंसत्) तीनों ऋतुओं में सुखप्रद प्रकाश देता है वैसे ही (यः) जो (देवः) प्रभु (ओषधीनां वर्धनः) उष्णता के धारक जीवों को बढ़ाने वाला, (यः) जो (अपां वर्धनः) जलचारी जीवों को बढ़ाने वाला और (यः) जो (विश्वस्य जगतः) समस्त जगत् का (ईशे) स्वामी है। (सः) वह परमेश्वर (अस्मे) हमें (सु-अभिष्टिः) सुख से चाहने योग्य (त्रिवर्तुं ज्योतिः) त्रिविध ज्ञानदाता वेदमय प्रकाश और (त्रि-धातु) तीन धातु सुवर्णादि से बने (शरणं) गृह और तीन धातु वात, पित्त, कफ से बने शरणयोग्य देह और (त्रिवर्तुं) तीनों कालों में वर्त्तने वाला सुख (यंसत्) दे।

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३॥

भा०—(त्वत्) मेघ का एकरूप (स्तरीः उ) न प्रसवने वाली गौ तुल्य होता है, (सूते त्वत्) और उसका एक रूप प्रसवशील गौ के तुल्य जल-धाराएं उत्पन्न करता है। (एषः यथावशं तन्वं चक्रे) वह सूर्य-कान्ति के अनुसार अपना व्यापक रूप बना लेता है। वह (पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति) सूर्य रूप पिता से जल ग्रहण करता और (तेन) उससे (माता) पृथिवी भी जल ग्रहण करती है। (तेन) उस जल से

(पिता वर्धते) सूर्य महिमा से बढ़ता और (तेन पुत्रः वर्धते) उसी जल से पुत्रवत् ओषधि वनस्पति तथा जीवादि भी बढ़ते हैं। वैसे ही हे प्रभो ! (त्वत्) तेरा एक रूप (स्तरीः भवति उ) सर्वाच्छादक होता है और (त्वत्) दूसरा रूप (सूते उ) जगत् को उत्पन्न करता है। (यथावशं) जितनी इच्छा होती है उतना ही (एषः) वह परमेश्वर (तन्वं) अपना विस्तृत संसार (चक्रे) बनाता है। (माता) जैसे माता (पितुः) पिता से (पयः प्रतिगृभ्णाति) वीर्य ग्रहण कर गर्भ धारण करती है और उससे (पिता पुत्रः वर्धते) पिता का वंश, पुत्र बढ़ता है। वैसे ही (पितुः) सर्वपालक पिता से ही (माता) सर्वनिर्मात्री प्रकृति (पयः) वीर्य, शक्ति को (प्रति गृभ्णाति) प्रति सर्ग ग्रहण करती है और (तेन) उससे ही (पिता) प्रभु-महिमा (वर्धते) बढ़ती है।

यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आधार पर (विश्वानि भुवनानि) समस्त लोक, (तस्थुः) स्थित हैं, (यस्मिन् तिस्रः द्यावः) जिसके आश्रय तीनों लोक पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सूर्य स्थित हैं। (यस्मिन्) जिसका आश्रय लेकर (आपः त्रेधा सस्रुः) जल तीन प्रकार से गति करते हैं, पृथिवी से वाष्प बनकर ऊपर उठते हैं, मेघ से जल बन कर नीचे आते और समुद्र से वायु के बल पर भूमि पर आते हैं और (यस्मिन्) जिसके आश्रय (त्रयः कोशासः) तीन कोश (मध्वः उप-सेचनासः) जल वर्षक मेघों के समान मधुर आनन्द की वर्षा करने वाले होकर (विरप्शम् अभितः) उस महान् के चारों ओर (श्चोतन्ति) गति करते हैं। अध्यात्म में तीन कोश-विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय। सूर्य में तीन कोश-क्रोमोस्फ़ीयर फ़ोटोस्फ़ीयर और उद्रजन। यह सब कर्म उसी महान् प्रभु के ही अधीन हो रहे हैं।

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ५ ॥

भा०—(इदं वचः) यह वचन (स्वराजे) स्वप्रकाशस्वरूप, (पर्जन्याय) सब रसों के दाता प्रभु के लिये (हृदः अन्तरं अस्तु) हृदय के भीतर हो। (तत्) उस स्तुति-वचन को प्रभु (जुजोषत्) स्वीकार करे (अस्मे) हमारे सुख के लिये (मयः-भुवः वृष्टयः शन्तु) सुखदात्री वृष्टियां सदा हों और (सुपिप्पलाः) उत्तम फलयुक्त (देव-गोपाः) मेघ-द्वारा रक्षित (ओषधीः) ओषधियें भी (मयः-भुव सन्तु) सुखकारी हों।

पर्जन्यः—पर्जन्यस्तृपेः आद्यन्त विपरीतस्य । तर्पयिता जन्यः परो जेता वा । जनयिता वा । प्रार्जयिता वा रसानाम् । निरु० ।

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥१

भा०—(सः) वह परमेश्वर (रेतोधाः) प्रकृति देवी में विश्व के उत्पादक परम बीज, तेज को आधान करने वाला (शश्वतीनां वृषभः) मेघ तुल्य सुखों का वर्षक, गौओं में सांड के समान पृथिवियों में जीवों का बीज बोने वाला है, (तस्मिन्) उसके ही आश्रय (जगतः तस्थुषः च आत्मा) जंगम और स्थावर संसार का आत्मा या सत्ता विद्यमान है। (तत् ऋतं) वह ज्ञानमय परमेश्वर (मे शतशारदाय पातु) मेरे जीवन को सौ वर्षों तक पालन करे। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) पूर्ववत्। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०२]

वसिष्ठ कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ याजुषी विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । द्व्यृचं सूक्तम् ॥

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे ।
स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (दिवः पुत्राय) सूर्य से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र व (मीढुषे) सेचन करने में समर्थ, (पर्जन्याय) जल दाता मेघ सदृश ज्ञान-प्रकाश से बहुतों के रक्षक और हृदय में आनन्द के सेचक, (पर्जन्याय) सब रसों के दाता, सबके उत्पादक, परमेश्वर के लिये (प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो। (सः) वह (नः) हमें (यवसम्) अन्नादि देना (इच्छतु) चाहे।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम्।
पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (ओषधीनाम्) मेघ तुल्य ओषधियों, (गवाम्) गौओं, (अर्वताम्) अश्वों और (पुरुषीणाम्) मानव स्त्रियों के (गर्भम् कृणोति) गर्भ उत्पन्न करता है, वही (पर्जन्यः) सर्वोत्पादक प्रभु है।

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम्।
इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥ २ ॥

भा०—जो परमेश्वर वा गुरु (नः) हमारे (आस्ये) मुख में (इडाम्) वाणी को (संयतं) सुनियन्त्रित (करत्) करता है (तस्मै इत्) उसी के गुणगान के लिये (आस्ये) मुख में (मधुमत्-तमम्) अत्यन्त मधुर गुण युक्त (हविः) वचन (जुहोत) धारण करो। ऐसे ही जो प्रभु मेघ तुल्य (नः इडां संयतं करत्) हमें नियम से अन्न देता है उसके लिये मधुर हवि को (आस्ये) छिन्न भिन्न करके दूर तक फैला देने वाले अग्नि में (हविः) मधुर अन्नादि चरु प्रदान करो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१०३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मण्डूका देवताः ॥ छन्दः—१ आर्षी अनुष्टुप्। २, ६, ७, ८, १० आर्षी त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ९ विराट् त्रिष्टुप्। तृचं सूक्तम् ॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥

भा०—जैसे (संवत्सरं शशयानाः) वर्ष भर पड़े रहने वाले (मण्डूकाः) जलवासी मैंडक (पर्जन्य-जिन्वितां वाचं प्र अवादिषुः) मेघ से दी हुई वाणी को खूब ऊंचे २ बोलते हैं वैसे ही (व्रत-चारिणः) व्रत का आचरण करने वाले (संवत्सरं शशयानाः) वर्ष भर तप करते हुए (ब्राह्मणाः) 'ब्रह्म', वेद के जानने वाले, वेदज्ञ, विद्वान् जन (मण्डूकाः) ज्ञान, आनन्द में मग्न होकर (पर्जन्य-जिन्वितां) प्रभु की दी हुई (वाचं) वेद वाणी का (प्र अवादिषुः) उत्तम रीति से प्रवचन किया करें ।

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥

भा०—(दृतिं शुष्कं न) सूखे चर्म-पात्र के तुल्य (सरसि शयानं) तालाब में पड़े (एनम्) इस मण्डूक को (दिव्या आपः) आकाश के जल (यद् अभि आयन्) जब प्राप्त होते हैं तब (मण्डूकानां वग्नुः) मैंडकों का शब्द (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बछड़े वाली गौओं के शब्द के तुल्य ही (सम् एति) आता है वैसे ही (शुष्कं दृतिं न) सूखे चर्म-पात्र के तुल्य (सरसि) ज्ञानमार्ग में (शयानम्) तप करते हुए (एनम् प्रति अभि) इस ब्राह्मण वर्ग को (दिव्याः आपः) परमेश्वर से प्राप्त होने वाली ज्ञान-वाणियां वर्षा-जल के तुल्य ही (आयन्) प्राप्त होते हैं तब (मण्डूकानां) ज्ञान में मग्न विद्वानों का (वग्नुः) उपदेश और (वत्सिनीनाम्) नियम से ब्रह्मचर्यवास करने वाले शिष्यों से युक्त (गवाम् मायुः) वेद-वाणियों की ध्वनि भी (अत्र) इस लोक में (सम् एति) अच्छी प्रकार सुनाई देती है ।

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥

भा०—(उशतः) वर्षा को चाहने वाले और (तृष्यावतः एनान्) प्यासे इनके प्रति (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा काल आ जाने पर (अभि अवर्षीत्) मेघ वर्षता है, (पुत्रः पितरं न) पिता के प्रति पुत्र के तुल्य (वदन्तम् अन्यम् अन्यः उप एति) बोलते एक मेंडक के पास दूसरा जैसे आ जाता है वैसे ही (आगतायां प्रावृषि) वर्षाकाल आने पर (यद् ईम्) जब भी (उशतः) विद्या के इच्छुक और (तृष्यावतः एनान्) ज्ञान-पिपासा से युक्त इन शिष्यों के प्रति विद्वान् पुरुष मेघ के तुल्य (अभि अवर्षीत्) ज्ञान-वर्षा करता है तब (वदन्तम् अन्यम् उप) उपदेश करते हुए एक के पास (अन्यः) दूसरा शिष्य (पुत्रः पितरं न) पिता के पास पुत्र के तुल्य ही (अक्खलीकृत्य) विनम्र होकर (उप एति) आता है और ज्ञान प्राप्त कराता है ।

अ॒न्यो अ॒न्यमनु॑ गृभ्णात्येनोर॒पां प्र॑स॒र्गे यदम॑न्दिषाताम् ।
म॒ण्डूको॒ यद॒भिवृ॑ष्टः कनि॑ष्क॒न्पृश्नि॑ः सम्पृ॒ङ्क्ते हरि॑तेन॒ वाच॑म् ॥४॥

भा०—जैसे (अपां प्रसर्गे) जलों के खूब हो जाने पर (यत् अमन्दिषाताम्) जब दो मेंडक प्रसन्न हो जाते हैं (अन्यः अन्यम् अनुगृभ्णाति) एक दूसरे को पकड़ लेता है, (कनिष्कन् मंडूकः पृश्निः हरितेन वाचं सम्पृङ्क्ते) पीला, कूदता मेंडक हरे मेंडक से अपनी आवाज मिलाता है वैसे ही (यत्) जब (अपां प्रसर्गे) आप्त वेदज्ञानों के देने के लिये गुरु शिष्य दोनों (अमन्दिषाताम्) प्रसन्न हो जाते हैं (एनोः) इन गुरु और शिष्य में से (अन्यः) एक, गुरु, (अन्यम्) दूसरे को (अनुगृभ्णाति) अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करता है और (यत्) जो (अभिवृष्टः) अभिषेचित विद्याव्रत-स्नातक (मण्डूकः) हर्षवान् होकर (कनिष्कन्) विद्या प्रदान करता है तब (पृश्निः) वेद का विद्वान् (हरितेन) ज्ञान-ग्राहक शिष्य से (वाचम् संपृङ्क्ते) अपनी वाणी का सम्पर्क कराता है, उसे ज्ञान देता है ।

यदे॑षाम॒न्यो अ॒न्यस्य॒ वाचं॑ शा॒क्तस्ये॑व॒ वद॑ति॒ शिक्ष॑माणः ।
सर्वं॒ तदे॑षां स॒मृधे॑व॒ पर्व॒ यत्सु॒वाचो॒ वद॑थ॒नाध्य॒प्सु ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (एषाम्) इन विद्वानों में से (अन्यः) एक विद्वान् शिष्य (शिक्षमाणः) शिक्षा पाकर (अन्यस्य शाक्तस्य) दूसरे विद्या आदि से सम्पन्न गुरु की (वाचम् वदति) वाणी को कहता है और (यत्) जब (अप्सु अधि) प्राप्त शिष्यों वा प्रजाओं के बीच, इन विद्वानों में (सुवाचः) उत्तम वाणी वाले आप लोग (वदथन) उपदेश करते हैं (तत्) तब (एषां) इनका (सर्वं) समस्त (पर्वं) पालन योग्य व्रत, वेदादि-अध्ययन (समिधा इव) समृद्ध उत्सवादि के समान हो जाता है । इति तृतीयो वर्गः ॥

गोमा॑युरेको॑ अ॒जमा॑यु॒रेकः॒ पृश्नि॒रेको॒ हरि॑तः॒ एक॑ एषाम् ।
स॒मा॒नं नाम॒ बिभ्र॑तो॒ विरू॑पाः पुरु॒त्रा वाचं॑ पिपिशु॒र्वद॑न्तः ॥६॥

भा०—(एषाम्) इन विद्वानों में से (एकः) एक (गो-मायुः) वेद-वाणियों के प्रवचन में समर्थ होता है। (एकः अज-मायुः) एक विद्वान् अजन्मा, परमेश्वर के प्रवचन में समर्थ है । (एक पृश्निः) एक प्रश्नोत्तर करने में कुशल है । (एक हरितः) एक ज्ञानों को ग्रहण करने में कुशल है । ये सब (समानं) एक समान (नाम) 'ब्राह्मण' 'विद्वान्' नाम धारण करते हुए भी (वि-रूपाः) विविध विद्याओं को धारण करते हैं। वे (वदन्तः) प्रवचन करते हुए (पुरुत्रा वाचं पिपिशुः) नाना प्रकार से वाणी को प्रकट करते हैं।

ब्रा॒ह्म॒णासो॑ अतिरा॒त्रे न सोमे॒ सरो॒ न पू॒र्णम॒भितो॒ वद॑न्तः ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तदहः॒ परि॑ ष्ठ॒ यन्म॑ण्डूकाः प्रावृ॒षीणं॑ ब॒भूव॑ ॥७॥

भा०—जैसे (यत्) जब (संवत्सरस्य) वर्ष के बीच (प्रावृषीणं अहः बभूव) वर्षा का दिन होता है, (तत् अहः) उस दिन (मण्डूकाः) मेंडक (पूर्णं सरः अभितो वदन्तः परि तिष्ठन्ति) भरे तालाब के चारों

ओर बोलते हुए विराजते हैं। वैसे ही (अति-रात्रे) अति रात्र सोमयाग की रात्रि को अतिक्रमण कर व्रतधारी विद्वान् (सोमे) सोम अर्थात् शिष्य के निमित्त (न) भी, हे (ब्राह्मणासः) वेदज्ञ लोगो ! आप (पूर्णं सरः अभितः वदन्तः) पूर्ण ब्रह्म का उपदेश करते हुए (संवत्सरस्य तत् अहः) वर्ष के उस दिन (परि स्थ) सब एक घर सा बना कर बैठा करो।

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ॥८॥

भा०—(सोमिनः ब्राह्मणासः) सोमयाग करने वाले, वा ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने वाले विद्वान् लोग (परि वत्सरीणम्) वर्ष भर (ब्रह्म कृण्वन्तः) वेदोपदेश करते हुए (वाचम् अक्रत) प्रवचन करें। (अध्वर्यवः) यज्ञ-कर्त्ता (घर्मिणः) सूर्यवत् तेजस्वी, (सिष्विदानाः) स्वेद-युक्त होकर भी (केचित्) कुछ विद्वान् लोग (गुह्याः न) गुहा में बैठे तपस्वियों के तुल्य (गुह्याः) बुद्धि, ज्ञान या हृदय-गुहा में रमण करते हुए (आविर्भवन्ति) प्रकट होते हैं।

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥९॥

भा०—(संवत्सरे) वर्ष में (तप्ताः घर्माः) तपे घाम अर्थात् सूर्य के तेज (प्रावृषि आगतायां) वर्षाकाल आने पर (विसर्गम् अश्नुवते) विविध प्रकार से जलों को व्याप लेते हैं, मेघ रूप से प्रकट करते हैं, वे (द्वादशस्य) बारह मास के बने वर्ष के (देव-हितिं) जलप्रद मेघ की (जुगुपुः) रक्षा करते और (नरः) नायक वायुगण (ऋतं न प्रमिनन्ति) वर्षा ऋतु को नष्ट नहीं होने देते वैसे ही (संवत्सरे) एक वर्ष में (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा के आने पर (तप्ताः) तप से संतप्त, (घर्माः) तेजस्वी पुरुष भी (विसर्गम् अश्नुवते) विविध अध्याय, काण्डादि से युक्त वेद का अभ्यास करते हैं। वे (द्वादशस्य) बारहों मास (देव-हितिं जुगुपुः)

परमेश्वरदत्त ज्ञान की रक्षा करते हैं और (एते) वे (नरः) उत्तम पुरुष (ऋतुं न प्र मिनन्ति) 'ऋतु' अर्थात् ज्ञानयुक्त वेद को वैसे ही नष्ट नहीं होने देते जैसे नर-जीव अपने जातिवर्ग में ऋतु का व्यर्थ नाश नहीं होने देते।

गोमायुरदादजमायुरदात्पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः १०।४

भा०—(गो-मायुः) वाणियों का उपदेष्टा (नः वसूनि अदात्) हमें ऐश्वर्य दे। (अज-मायुः नः वसूनि अदात्) नित्य पदार्थ जीव, आत्मा और प्रकृति का उपदेशक हमें ऐश्वर्य दे। (हरितः) ज्ञान-संग्रही विद्वान् (नः वसूनि अदात्) हमें ऐश्वर्य दे। (मंडूकाः) मोक्षादि आनन्द में मग्न और अन्यों को आनन्दित करने वाले विद्वान् (सहस्रसावे) सहस्रों के ऐश्वर्यों और सुखों के देने के निमित्त (गवां शतानि) सैकड़ों वाणियों का (ददतः) उपदेश करते हुए (आयुः प्र तिरन्ते) आयु की वृद्धि करें। इति चतुर्थो वर्गः॥

[१०४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ देवता—१—७, १५, २५ इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ। ८, १६, १९–२२, २४ इन्द्रः ९, १२, १३ सोमः। १०, १४ अग्निः। ११ देवाः। १७ ग्रावाणः। १८ मरुतः। २३ वसिष्ठः। २३ पृथिव्यन्तरिक्षे॥ छन्दः—१, ६, ७ विराड्जगती। २ आर्षी जगती। ३, ५, १८, २१ निचृज्जगती। ८, १०, ११, १३, १४, १५, १७ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ आर्षी त्रिष्टुप्। १२, १६ विराट् त्रिष्टुप्। १९, २०, २२ त्रिष्टुप्। २३ आर्ची भुरिग्जगती। २४ याजुषी विराट् त्रिष्टुप्। २५ पादनिचृदनुष्टुप्॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः॥१॥

भा०—दुष्टों का दमन। हे (इन्द्रा सोमा) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवन्! शत्रु-हन्तः! हे सोम, शासक जन! आप दोनों मिलकर (रक्षः तपतम्) दुष्टों को इतना पीड़ित करो कि वे पश्चात्ताप करें। (उब्जतम्) उनको झुकाओ, । हे (वृषणा) प्रबन्धक, बलवान् जनो! (तमः-वृधः) अज्ञान,-अन्धकार बढ़ाने वालों को (नि अर्पयतम्) नीचे दबाओ। उन (अचितः) मूर्ख लोगों को (परा शृणीतम्) पीड़ित करो कि वे बुरे पथ से हट-जायं। उनको (नि ओषतं) सन्तापित करो, (हतं) दण्डित करो, (नुदेथाम्) उनको भगाते रहो। (अत्रिणः) प्रजा का सर्वस्व खा जाने वालों को भी (नि शिशीतम्) तीक्ष्ण दण्ड दो।

इन्द्रा॑सोमा॒ सम॒घशं॑सम॒भ्य१॒॑घं तपु॒र्ययस्तु च॒रुर॑ग्नि॒वाँ इ॑व।
ब्र॒ह्म॒द्विषे॑ क्र॒व्यादे॑ घो॒रच॑क्षसे॒ द्वेषो॑ धत्तमनवा॒यं कि॑मी॒दिने॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन्! हे शासक जनो! आप दोनों (अघ-शंसं) पाप-चर्चा करने वाले (अघं) पापी पुरुष को (सम् अभि धत्तम्) अच्छी प्रकार बांधो, वह (तपुः) संतप्त होकर, (अग्निवान् चरुः इव) अग्नि-युक्त पात्र के समान सन्तप्त होकर (ययस्तु) पीड़ित हो। आप दोनों (ब्रह्म-द्विषे) वेद और वेदज्ञ के द्वेषी (क्रव्यादे) कच्चे मांस-खोर और (किमीदिने) अब क्या, अब क्या इस प्रकार मूढ़ और (घोरचक्षसे) क्रूर-दृष्टि पुरुष को (अनवायं) निरन्तर (द्वेषः धत्तम्) अप्रीति करो।

इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृतो॑ व॒व्रे अ॒न्तर॑नारम्भ॒णे तम॑सि॒ प्र वि॑ध्यतम्।
यथा॒ नातः॒ पुन॒रेक॑श्च॒नोदय॒त्तद्वा॑मस्तु॒ सह॑से मन्यु॒मच्छवः॑ ॥३॥

भा०—हे (इन्द्रोसोमा) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (सोम) विद्वान् जनो! आप लोग (दुष्कृतः) दुष्ट और दुःखदायी कामना वाले पुरुषों को (वव्रे अन्तः) चारों ओर से घिरे कैद, कारागारादि स्थान के भीतर

और (अनारम्भणे तमसि) अवलम्बन-रहित, ऐसे अन्धेरों में जहां कार्य न किया जा सके (प्र वि ध्यतम्) रखकर दण्डित करो। (यथा) जिससे (अतः) वहां से (पुनः एकः चन) फिर एक भी कोई (न उद् अयत्) उठ के ऊपर न आवे। (वाम्) आप दोनों का (तत्) वह अद्भुत (मन्यु-मत् शवः) क्रोध से पूर्ण पराक्रम (सहसे अस्तु) दुष्ट पराजय के लिये हो।

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम्।
उत्तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन्, हे विद्यावान् दोनों जनो! आप (अघ-शंसाय) पाप-चर्चा कारी पुरुष को दण्ड देने के लिये (दिवः) सूर्य और (पृथिव्याः) पृथिवी से (वधं वर्तयतम्) दण्ड किया करो और उसके लिये (तर्हणम्) नाशकारी (स्वर्यं) सन्तापजनक, नादकारी (पर्वतेभ्यः) मेघों से आने वाले विद्युत् को (उत् तक्षम्) उत्तम रीति से प्राप्त करो। (येन) जिससे (वावृधानं रक्षः) बढ़ते दुष्ट जन को (निजूर्वथः) दण्डित कर सको।

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्माभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निःस्वरम् ५॥५

भा०—हे (इन्द्रासोमा) राजन्! शासक जन! (युवम्) आप दोनों (अग्नि-तप्तेभिः) अग्नि से तपे हुए, (अश्म-हन्मभिः) मेघ से विद्युत् तुल्य आघात करने वाले (तपुर्वधेभिः) दुष्ट नाशक अस्त्रों से (दिवः परि) आकाश से दूर से ही मार कर (अत्रिणः) प्रजा नाशक दुष्ट पुरुष के (पर्शाने) दोनों पासों के बल समुदाय को (नि विध्यतम्) छिन्न-भिन्न करो। जिससे वह (निः-स्वरम्) बिना आवाज किये, बिना कष्ट पहुँचाये (यन्तु) चला जावे। इति पञ्चमो वर्गः॥

इन्द्रा॑सोमा॒ परि॑ वां भूतु वि॒श्वत॑ इ॒यं म॒तिः क॒क्ष्याश्वे॑व वा॒जिना॑ ।
यां वां॒ होत्रां॑ परिहि॒नोमि॑ मे॒धये॒मा ब्रह्मा॑णि नृ॒पती॑व जिन्वतम् ॥६॥

भा०—(कक्ष्या वाजिना अश्वा-इव) जैसे वेग वाले, अश्वों को बगलबन्द की रस्सी चारों ओर से बांधती है हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन् वा ज्ञानदर्शिन् आचार्य ! हे सोम ! सौम्य भावयुक्त शिष्य ! (वां) आप दोनों को (इयं मतिः) यह ज्ञान वा वाणी (कक्ष्या) अवगाहन-योग्य गंभीर, (विश्वतः परि भूतु) सब ओर से प्राप्त हो । (वां) आप दोनों की (यां) जिस (होत्रां) ग्रहण योग्य उत्तम वाणी को (मेधया) धारणावती बुद्धि द्वारा (परि हिनोमि) मैं प्राप्त करूं, (इमा ब्रह्माणि) इन वेद-वचनों को (नृपती इव) राजाओं के समान तुम दोनों (जिन्वतम्) प्राप्त करो ।

प्रति॑ स्मरेथां तु॒जय॑द्भि॒रेवै॑र्ह॒तं द्रु॒हो र॒क्षसो॑ भङ्गु॒राव॑तः ।
इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृते॒ मा सु॒गं भू॒द्यो नः॑ क॒दा चि॑दभि॒दास॑ति द्रु॒हा ७

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् पुरुषो ! आप दोनों ! (तुजयद्भिः) शत्रुनाशक (एवैः) प्रयाणशील, सैन्यों तथा अज्ञाननाशक ज्ञानों में (प्रति स्मरेथाम्) प्रत्येक वस्तु का स्मरण करो । (भङ्गुरावतः) गृहादि को तोड़ने वाले तथा व्रतादि के नाशक, (द्रुहः रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और दुष्ट भावों को (हतम्) दण्ड दो, नष्ट करो । (यः) जो (नः) हमें (कदाचित्) कभी भी (द्रुहा) द्वेष से (अभिदासति) नाश करता, वा हमें अपना दास बना लेता है, ऐसे (दुष्कृते) दुराचारी को (सुगं मा भूत्) कभी सुख न हो ।

यो मा॒ पाके॑न॒ मन॑सा॒ चर॑न्तमभि॒चष्टे॒ अनृ॑तेभि॒र्वचो॑भिः ।
आप॑ इव का॒शिना॒ सङ्गृ॑भीता॒ अस॑न्न॒स्त्वास॑त इन्द्र व॒क्ता ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (पाकेन मनसा) परिपक्व = दृढ़, ज्ञान वा चित्त से अथवा (पाकेन = वाकेन) सत्य वचन

और (मनसा) उत्तम ज्ञान-सहित (चरन्तम्) आचरण करने वाले (मा) मुझ पर (अनृतेभिः वचोभि) असत्य वचनों द्वारा (अभि-चष्टे) आक्षेप करता है वह (असन्) असत्य का (वक्ता) कहने वाला (काशिना संगृभीताः अपः इव) मुट्ठी में लिये जलों के समान (असन् अस्तु) नहीं-सा होकर नष्ट हो।

ये पा॑कशं॒सं वि॒हर॑न्त॒ एवै॒र्ये वा॑ भ॒द्रं दू॒षय॑न्ति स्व॒धाभि॑ः ।
अह॑ये वा॒ तान्प्र॒ददा॑तु॒ सोम॒ आ वा॑ दधातु॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्थे॑ ॥९॥

भा०—(ये) जो लोग (एवैः) बुरे अभिप्रायों से (पाक-शंसं) परिपक्व, सत्य वचन कहने वाले को (विहरन्ते) विरुद्ध मार्ग में ले जाते हैं (वा) अथवा जो (स्वधाभिः) अपने बल, अन्न, गृह के बल से वा वेतन भोगी पुरुषों द्वारा (भद्रं दूषयन्ति) भले आदमी को दूषित करते हैं, (सोमः) शासक राजा, न्यायाधीश (तान्) उनको (वा) भी (अहये प्र ददातु) सर्पादि जन्तु के काटने, वा सर्पवत् कुटिलाचार करने के लिये दण्ड दे। (वा) अथवा, (तान्) ऐसे पुरुषों को (निः ऋतेः) दुःखदायी जन्तु, सिंह, रीछ आदि वा पीड़क के (उपस्थे) समीप (आ दधातु) रक्खें।

यो नो॒ रसं॒ दिप्स॑ति पि॒त्वो अ॑ग्ने॒ यो अश्वा॑नां॒ यो गवां॒ यस्त॒नूना॑म् । रि॒पुः स्ते॒नः स्ते॑य॒कृद्द॒भ्रमे॑तु॒ नि ष ही॑यतां त॒न्वा॒३॒॑ तना॑ च ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (यः) जो दुष्ट पुरुष (नः) हमारे (पित्वः रसं) अन्न के रस, सारभाग को (दिप्सति) नष्ट करना चाहता है और (यः) जो हमारे (अश्वानां) घोड़ों, (गवां) गौओं, और (तनूनां) शरीरों के (रसं) सारवान् बलयुक्त अंश को नाश करता है वह (रिपुः) शत्रु, (स्तेनः) चोर (स्तेयकृत) चोरी करने वाला, पुरुष

(दभ्रम् एतु) पीड़ा वा मृत्यु दण्ड को प्राप्त हो और (सः) वह (तन्वा) शरीर और (तना च) पुत्रादि से (नि हीयताम्) वञ्चित रहे।

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ११

भा०—हे (देवाः) विद्वान् मनुष्यो! (यः च) और जो (नः) हमें (दिवाः) दिन में या (नक्तम्) रात में (दिप्सति) हानि पहुँचाता, (सः) वह (तन्वा तना च) शरीर और पुत्रादि से भी (परः अस्तु) दूर हो। वह (विश्वाः) समस्त (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) भूमियों, लोकों से (अधः अस्तु) नीचे रहे, वह गढ़े में, या नीची कोटि में रक्खा जावे। (अस्य यशः) उसका यश, बल (प्रति शुष्यतु) प्रतिदिन सूखता जाय।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥

भा०—(चिकितुषे) जानने वाले (जनाय) मनुष्य के लिये (सत् च असत् च) सत्य और असत्य दोनों (सुविज्ञानं) अच्छी प्रकार जानने योग्य हैं, क्योंकि (सत् च असत् च वचसी) सत्य और असत्य दोनों वचन (पस्पृधाते) परस्पर स्पर्द्धा करते हैं। दोनों विरोधी होते हैं (तयोः) उन दोनों में (यत् सत्यं) जो सत्य है और (यतरत् ऋजीयः) जो अधिक ऋजु, धर्मानुकूल है (तद् इत्) उसकी ही, (सोमः) उत्तम शासक विद्वान् (अवति) रक्षा करता है और (असत् हन्ति) असत् को विनष्ट करता है।

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥

भा०—(सोमः) उत्तम शासक (वृजिनं) असत्य को (न वै उ

हिनोति) कभी वृद्धि न दे और (मिथुया धारयन्तं) असत्य के धारक (क्षत्रियम्) बलशाली पुरुष को भी (न हिनोति) न बढ़ने दे। (रक्षः) दुष्ट पुरुष को (हन्ति) दण्ड दे, और (असद् वदन्तम् हन्ति) असत्यवादी को दण्ड दे। (उभौ) वे दोनों भी (इन्द्रस्य प्रसितौ) दुष्टों के भयकारी पुरुष के उत्तम बन्धन में (शयाते) डाले जाएँ।

यदि॑ वा॒हम॑नृ॑तदे॑व आस॒ मोघं॑ वा दे॒वाँ अ॑प्यू॒हे अ॑ग्ने।
किम॒स्मभ्यं॑ जातवेदो हृणीषे द्रोघ॒वाच॑स्ते निर्ऋ॒थं स॑चन्ताम् ॥१४

भा०—(यदि वा) और यदि (अहम्) मैं (अनृतदेवः) असत्य बात का प्रकाश करने वाला हूँ, हे (अग्ने) तेजस्विन्! अथवा मैं (देवान् अपि) विद्वान् पुरुषों से भी (मोघं) झूठ-मूठ, (ऊहे) नाना तर्क वितर्क करता हूँ, हे (जातवेदः) विद्वन्! ज्ञानवन्! (अस्मभ्यम्) विचार करो कि हमारे सुधार के लिये (किम् हृणीषे) क्या २ क्रोध कर हमें किस प्रकार दण्डित करो। क्योंकि (द्रोघ-वाचः) द्वेष की बात कहने वाले (ते) वे लोग (निर्ऋथं) अति दुःखी और सत्य, ऐश्वर्यादि से रहित, कष्टमय जीवन को (सचन्ताम्) प्राप्त हों।

अ॒द्या मु॑रीय॒ यदि॑ यातु॒धानो॒ अस्मि॒ यदि॒ वायु॑स्त॒तप॒ पूरु॑षस्य।
अधा॒ स वी॒रैर्द॒शभि॒र्वि यू॑या॒ यो मा॒ मोघं॒ यातु॑धा॒नेत्याह॑ ॥ १५॥७॥

भा०—(यदि) यदि मैं (यातुधानः) अन्यों का पीड़क (अस्मि) होऊं और (यदि वा) जो मैं (पूरुषस्य) मनुष्य के (आयुः) जीवन को (ततप) पीड़ित करूं, तो मैं (अद्य मुरीय) आज ही मृत्यु को प्राप्त होऊं। अन्य को पीड़ा देने और मनुष्य को हानि पहुँचाने वाले को मृत्यु-दण्ड हो। (अध) और (यः) जो (मोघं) व्यर्थ, (मा) मुझे (यातुधान इति आह) पीड़ादायक कहे (सः) वह तू (दशभिः वीरैः) दशों प्रकार के प्राणों या दशों अंगुलिओं, दोनों हाथों से (वि यूयाः) वियुक्त हो। इति सप्तमो वर्गः ॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (अयातुं मा) अन्य को पीड़ा न देने वाले मुझको (यातुधान इति आह) 'पीड़ा देने वाला' ऐसा कहे (वा) और (यः) जो (रक्षाः) स्वयं दुष्ट पुरुष होकर (शुचिः अस्मि इति आह) मैं निर्दोष हूँ, ऐसा कहे (इन्द्रः) राजा (तं) उसको (महता वधेन) बड़े भारी शस्त्र से (हन्तु) मारे और वह (विश्वस्य जन्तोः) समस्त पापियों से (अधमः) नीचा (पदीष्ट) समझा जावे ।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७॥

भा०—(या) जो स्त्री, (खर्गला इव) उल्लुनी के समान (द्रुहा) पति-द्रोह करके (तन्वं गूहमाना) शरीर को छिपाकर (नक्तम्) रात के समय (प्र अप जिगाति) घर छोड़ कर जाती है (सा) वह (अनन्तान् वव्रान्) खूब गहरे गढ़ों को (अव पदीष्ट) प्राप्त हो । (ग्रावाणः) क्षत्रिय लोग (उपब्दैः) घोषणाओं सहित (रक्षसः घ्नन्तु) दुष्ट पुरुषों को विनष्ट करें ।

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे १८

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! (ये) जो (नक्तभिः) रातों के समय आप लोग (वयः भूत्वी) प्रकाशयुक्त होकर (पतयन्ति) नगर स्वामी के समान रक्षा करते हैं (ये वा) और जो आप लोग (अध्वरे) हिंसारहित (देवे) तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (रिपः) दुष्ट पुरुषों को (दधिरे) पकड़ते हो वे आप लोग (विक्षु) प्रजाओं में (वि तिष्ठध्वम्) विशेष २ पदों पर विराजें और (वि इच्छत) विविध ऐश्वर्यों की कामना करें । (रक्षसः वि गृभायत) दुष्ट पुरुषों को विविध

प्रकार से कैद करो और उनको (सं पिनष्टन) खूब पीसो, दण्डित करो, कुचलो।

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन॥ १९॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! तू (दिवः अश्मानम्) आकाश से गिरे ओलों के तुल्य (दिवः) आग्नेय अस्त्र से (अश्मानम्) शत्रुनाशक-गोली आदि कठिन वस्तु (प्र वर्त्तय) फेंक। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (सोम-शितम्) ऐश्वर्य और उत्तम शासक से तीव्र हुए शत्रु और प्रजाजन दोनों का (सं शिशाधि) अच्छी प्रकार शासन कर। (प्राक्तात्, अपाक्तात्, उदक्तात्, अधरात्) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचे, दक्षिण से भी (पर्वतेन) दृढ़ पोर वाले दण्ड से, पशु तुल्य (रक्षसः जहि) दुष्ट पुरुषों को दण्ड दे।

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः॥२०॥८

भा०—(एते उ त्ये) ये वे बहुत से (श्व-यातवः) कुत्ते के समान चाल चलने और अन्यों को पागल कुत्ते के समान बिना प्रयोजन काटने और गुर्रा २ कर डराने वाले लोग ही (पतयन्ति) मालिक से बनना चाहते और प्रजा के धन को हरना चाहा करते हैं (दिप्सवः) हिंसाकारी लोग ही (अदाभ्यम् इन्द्रं दिप्सन्ति) अहिंसनीय, राजा को मारना चाहा करते हैं। (शक्रः) शक्तिशाली राजा (पिशुनेभ्यः) क्षुद्र पुरुषों का दमन करने के लिये (वधं शिशीते) शस्त्र-बल को तेज करे। (नूनं) अवश्य ही वह (यातुमद्भ्यः) प्रजापीड़क पुरुषों के दमन के लिये (अशनिं) विद्युत्वत् आघातकारी अस्त्र (सृजत्) बनावे। इत्यष्टमो वर्गः॥

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः॥२१॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (हविर्मथीनां) प्रजाओं के अन्न, यज्ञों के चरु आदि को हरने वाले (यातूनां) प्रजापीड़ादायी मनुष्यों और (अभि आ विवासताम्) सामने से आक्रमण करने वाले पुरुषों को (परा-शरः) दूर तक मार मारने वाला (आ भवत्) हो। (परशुः यथा वनं) जैसे फरसा, वन को काट गिराता है, (पात्रा इव) जैसे पत्थर वर्त्तनों को तोड़ डालता है वैसे ही (शक्रः) शक्तिशाली राजा (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों को (परशुः) कुल्हाड़ा-सा होकर (अभि एति) प्राप्त हो और (रक्षसः सतः भिन्दन् एति) उन दुष्टों को भेद-नीति से तोड़ता-फोड़ता हुआ प्राप्त हो।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक! राजन्! (उलूक-यातुम्) बड़े उल्लू के समान चाल चलने और छिप कर प्रजा के धन, प्राण पर आक्रमण करने वाले को, (शुशुलूकयातुम्) छोटे उल्लू के समान कर्कश बोल कर डराने और गरीब जनों को पीड़ित करने वाले को, (श्व-यातुम्) कुत्ते के समान भौंक कर, कठोर वचन कह कर प्रजाजनों को पीड़ा देने वाले, (कोक-यातुम्) उल्लू की तीसरी जाति के समान प्रजा को कष्ट देने वाले (सुपर्ण-यातुम्) बाज़ के समान झपटने वाले (उत) और (गृध्र-यातुम्) गीध के समान गोल बनाकर उदासीन प्रजा को नोच कर खा जाने वाले, (रक्षः) दुष्ट जनों को (दृषदा इव) सिलबट्टे या चक्की के पाटों के समान पीस डालने वाले (प्र मृण) दण्ड द्वारा नष्ट कर डाल।

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥

भा०—(रक्षः) दुष्ट पुरुष (नः) हम तक (मा अभिनड्) न पहुंचे। (यातुमा-वताम्) पीड़ा देने वाले जनों के (मिथुना) जोड़े, स्त्री-पुरुष

(या किमीदिना) जो क्षुद्र कोटि का स्वार्थमय स्नेह करते हैं वे (अप उच्छतु) दूर हों। (पृथिवी) पृथिवीवत् सर्वाश्रय, विस्तृत शक्ति (नः पार्थिवात् अंहसः पातु) हमें पृथिवी से होने वाले कष्ट से बचावे और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (अस्मान्) हमें (दिव्यात् अंहसः पातु) आकाश की ओर से आने वाले कष्ट से बचावे।

इन्द्र॑ ज॒हि पुमां॑सं यातु॒धान॑मु॒त स्त्रियं॑ मा॒यया॒ शाश॑दानाम्।
विग्री॑वासो॒ मूर॑देवा ऋ॒दन्तु॒ मा ते दृ॑शन्त्सू॒र्य॑मु॒च्चर॑न्तम् ॥२४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (यातुधानं पुमांसं) पीड़क पुरुष को और (मायया शाशदानाम्) माया से प्रजा की नाशक (स्त्रियं उत) स्त्री को भी (जहि) दण्डित कर। (मूर-देवाः) मूढ़ होकर विषयों में क्रीड़ा करने वाले दुष्ट लोग (वि-ग्रीवासः) बिना गर्दन के होकर (ऋदन्तु) नष्ट हों। (ते) वे (उत्चरन्तं) उगते हुए (सूर्यं मा दृशन्) सूर्य को भी न देख पावें।

प्रति॑ चक्ष्व॒ वि च॒क्ष्वेन्द्र॑श्च सोम जागृतम्।
रक्षो॑भ्यो व॒धम॑स्यतम॒शनिं॑ यातु॒मद्भ्यः॑ ॥२५॥९॥६॥७॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे शासक! तुम और (इन्द्रः च) शत्रुहन्ता सेनापति दोनों ही (प्रति चक्ष्व) प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार को देखो और (वि-चक्ष्व) विविध प्रकार से देखो (जागृतम्) तुम दोनों सावधान रहो। (रक्षोभ्यः वधम् अस्यत) दुष्टों के नाश के लिये शस्त्र प्रहार करो और (यातुमद्भ्यः अशनिम् अस्यत) पीड़ा देने वाले पर विद्युत् के तुल्य अस्त्र का प्रयोग करो। इति नवमो वर्गः॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

इति सप्तमं मण्डलं समाप्तम



अथाष्टमं मण्डलम्

—:*:—

[१]

प्रगाथो घौरः काण्वो वा । ३—२९ मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ । ३०—३३ आसङ्गः प्लायोगिः । ३४ शश्वत्याङ्गिरस्यासंगस्य पत्नी ऋषिः ॥ देवताः—१—२९ इन्द्रः । ३०—३३ आसंगस्य दानस्तुतिः । ३४ आसंगः ॥ छन्दः—१ उपरिष्टाद् बृहती , २ आर्षी भुरिग् बृहती । ३, ७, १०, १४, १८, २१ विराड् बृहती । ४ आर्षी स्वराड् बृहती । ५, ८, १५. १७, १९, २२, २५, ३१ निचृद् बृहती । ६, ९, ११, १२, २०, २४, २६, २७ आर्षी बृहती । १३ शङ्कुमती बृहती । १६, २३, ३०, ३२ आर्ची भुरिग्बृहती । २८ आसुरी स्वराड् निचृद् बृहती । २९ बृहती । ३३ त्रिष्टुप् । ३४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

मा चिदुन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (अन्यत्) और किसी को (मा चित् शंसत) उपास्य मत कहो, (मा रिषण्यत) हिंसा मत करो । (वृषणं) सुखवर्षक, जगत् के प्रबन्धक (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के स्वामी की (इत्) ही (स्तोत) स्तुति करो । (सुते) इस जगत् में (सचा) एक साथ बैठ कर (मुहुः) बार २ (उक्था च) नाना स्तुति (शंसत) कहो ।

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

भा०—(अव-क्रक्षिणं गां न) हल,शकट आदि को खैंचने वाले बैल के समान अपने अधीन जगत् भर को चलाने वाले (यथा वृषभं) मेघ

के तुल्य सुखवर्षक, वृषभ तुल्य बलशाली, (अजुरं) अविनाशी, (चर्षणी-सहम्) सब मनुष्यों से ऊपर, (वि-द्वेषणं) द्वेष के भावों से विवर्जित, (सं-वनना) अच्छी प्रकार से सेवा करने योग्य (मंहिष्ठम्) अति दान-शील (उभयं-करम्) दोनों लोकों में कल्याण करने वाले, (उभया-विनम्) दोनों लोकों में, कर्म और भोग दोनों योनियों में विद्यमान जीवों के रक्षक परमेश्वर की ही (स्तोत) स्तुति करो।

यच्चिद्धि त्वा जना॑ इ॒मे नाना॒ हव॑न्त ऊ॒तये॑।
अ॒स्माकं॒ ब्रह्मे॒दमि॑न्द्र भूतु॒ तेऽहा॒ विश्वा॑ च॒ वर्ध॑नम् ॥३॥

भा०—(यत् त्वा चित् हि) जिस तुझ पूज्य को ही (इमे नाना जना) ये नाना जन (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये (हवन्ते) पुकारते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) उस तेरा (इदं ब्रह्म) यह वेद-ज्ञान (विश्वा अहा) सब दिनों ही (अस्माकं वर्धनं भूतु) हमें बढ़ाने वाला हो।

वि त॑र्तूर्यन्ते मघवन्विप॒श्चितो॒ऽर्यो वि॒पो जना॑नाम्।
उप॑ क्रमस्व पुरु॒रूप॒मा भ॑र॒ वाजं॒ नेदि॑ष्ठमू॒तये॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (विपश्चितः) विद्वान् (वि तर्तूर्यन्ते) विशेष रूप से तेरे अनुग्रह से संसार से पार हो जाते हैं। (जनानाम्) मनुष्यों को तू ही (विपः) कंपाने वाला और (अर्यः) उनका स्वामी है। तू (पुरु-रूपम्) बहुत प्रकार से (उप क्रमस्व) हमें प्राप्त हो और (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (नेदिष्ठं वाजं भर) अति समीप बल एवं ज्ञान दे।

म॒हे च॒न त्वाम॑द्रिवः॒ परा॑ शु॒ल्काय॑ देयाम्।
न स॒हस्रा॑य॒ नायुता॑य वज्रिवो॒ न श॒ताय॑ शतामघ ॥५॥१०॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिमन् ! (त्वाम्) तुझको (महे चन शुल्काय) बड़े भारी अर्थ-लाभ के लिये (न परा देयाम्) कभी न त्यागूं।

हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन् ! हे (शत-मघ) सैकड़ों ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! मैं तुझे (सहस्राय) हजारों के लिये (न) नहीं त्यागूं । (शतुताय न) दस हजार के लिये न त्यागूं (शताय न) सैकड़ों के लिये भी न त्यागूं । इति दशमो वर्गः ॥

वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (मे) मेरे (अभुञ्जतः) न पालन करने वाले (पितुः) पिता और (भ्रातुः) भाई से भी (वस्यान् असि) श्रेष्ठ है । हे (वसो) सब में बसने हारे ! तू और (माता च) मेरी माता दोनों (समौ) बराबर हैं । दोनों ही (छदयथः) मुझे आच्छादित करते हो । और (वसुत्वनाय) मुझे बसाने और (राधसे) धनैश्वर्य देने के लिये भी (समौ) माता और तू दोनों बराबर हो ।

क्वे॑यथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुरन्दर) देह-रूप पुरों का नाश करने वाले ! हे देह-बन्धन से छुड़ाने वाले ! प्रभो ! (क्व इयथ) तू कहां गया है ? (क्व इत् असि) तू कहां है ? (ते) तेरे लिये (मनः) मेरा मन (पुरुत्र चित् हि) बहुत २ स्थानों पर जाता है । हे (युध्म) दुष्टों को ताड़ना देने हारे ! हे (खजकृत्) इन्द्रियों के बीच प्रकट होने वाले ! प्राण शक्तियों को प्रकट करने हारे आत्मन् ! तू (अलर्षि) सर्वत्र व्यापता है । (गायत्राः) गान करने वाले विद्वान् और वेदमन्त्र (ते) तेरा ही (प्र अगासिषुः) उत्तम रूप से गान करते हैं ।

प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः ॥८॥

भा०—जैसे सेनापति वा राजा, (वावातुः) हिंसक वा प्रबल शत्रु की भी (पुरंदरः) नगरियों को तोड़-फोड़ देने में समर्थ होकर (वज्री) बलवान् होकर (बर्हिः उप आसदं) राष्ट्र-प्रजा के ऊपर अध्यक्षासन पर बैठने वालों के लिये (यासत्) उद्योग करता है और (पुरः भिनत्) शत्रु के नगरों को तोड़ता है वैसे ही (यः) जो परमेश्वर (वावातुः) निरन्तर भोगों को सेवने वाले जीव के भी (पुरन्दरः) देह-बन्धन का नाश करता है और वह जीव (याभिः) जिन देहपुरी रूप साधनों से, (कण्वस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (बर्हिः उप आसदम्) महान् यज्ञ में उपासना करने के लिये (यासत्) यत्न करता है, उसी से वह (वज्री) वीर्यवान् आत्मा भी (पुरः भिनत्) देह-पुरियों को काटता है ।

ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सेनापते ! (ते) तेरे (ये) जो (दशग्विनः) दश गतियों से जाने वाले, या दश गौओं या भूमियों या भटों के स्वामी, (शतिनः) सौ ग्रामों, या सौ भटों के नायक (सहस्रिणः) हजार भूमियों, या भटों के स्वामी, अथवा (शतिनः) सौ संख्या वेतन और (सहस्रिणः) सहस्र संख्या वेतन वाले (अश्वासः) अश्वारोही वीर पुरुष हैं और (ये) जो (ते) तेरे (वृषणः) बलवान् (रघु-द्रुवः) वेग से जाने वाले हैं (तेभिः) उन सबके साथ (नः) हमें (तूयम्) शीघ्र (आ गहि) प्राप्त हो ।

आ त्व१द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—(सु-दुघां धेनुम्) सुख से दोहने योग्य गौ जैसे (उरु-धारां) बहुत दूध की धारा वाली, (सबर्दुघाम्) उत्तम गोरस देने वाली होती है वैसे ही मैं (इन्द्रं) प्रभु को भी (धेनुम्) गौ के समान

(सु-दुघाम्) आनन्द-रस देने वाली, (अन्याम्) अन्य, इन लौकिक गौओं से सर्वथा भिन्न, (इषम्) सदैव इच्छा करने योग्य (उरु-धाराम्) बहुत से लोकों को धारने में समर्थ, सुख को मेघवत् वर्षाने वाली, (अरं कृतम्) प्रचुर अन्न उत्पन्न करने वाली, (गायत्र-वेपसम्) गान करने वालों को आवेश और प्रेमोद्रेकों से कंपा देने, गद्-गद् कर देने वाली और (सबर्दुघाम्) मधुर दुग्धवत् परमानन्द एवं 'स्वः' परम सुख दोहन करने वाली, (अथ आ हुवे) जानकर तुझे स्वीकार और प्रार्थना करता हूँ । इत्येकादशो वर्गः ॥

यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद्गन्धर्वमस्तृतम् ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जो (सूरः) तेजस्वी पुरुष (एतशं) अश्व सैन्य को (तुदत्) मार्ग पर चलाता है और जो (वातस्य) वायु के से (वङ्कू) वक्र गति वाले, (पर्णिना) पक्ष-युक्त विमानों को सञ्चालित करता है और (आर्जुनेयं) अर्जुनी शत्रुदल की नाशक सेना के बने (कुत्सम्) शस्त्र-बल को (वहत्) धारण करता है वह (शत-क्रतुः) बहुत कर्म करने वाले कर्त्ता पुरुषों का स्वामी होकर (अस्तृतम्) अहिंसित, (गन्धर्वम्) भूमि को धारण करने वाले पद वा अश्वसैन्य (त्सरत्) प्राप्त कर चलावे ।

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥१२॥

भा०—(यः) जो (पुरा) पहले भी (अभिश्रिषः ऋते) सरेस या जोड़ने वाले कील आदि पदार्थों के बिना (चित्) भी (जत्रुभ्यः) हंसलियों तक के (आतृदः) पृथक् २ मोहरों को (संधाता) अच्छी प्रकार जोड़ता है और जो (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरुवसुः) बहुत से लोकों में बसा, (विह्रुतं सन्धिं) विपरीत रूप से मुड़े या विच्छिन्न सन्धि को

को भी (पुनः इष्कर्त्ता) फिर ठीक लगाने वाला है वही ईश्वर, इन्द्र वा जीवात्मा है।

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (अद्रिवः) मेघों, नाना बलों के स्वामिन्! हम (निष्ट्या इव मा भूम) नीच, हीन के समान न हों। (त्वत्) तुझसे पृथक् (अरणाः इव) जीवन के आनन्द से रहित भी (मा भूम) न हों। (प्रजहितानि वनानि न) परित्यक्त, बिना देख-भाल के वनों के तुल्य कण्टकाकीर्ण भी (मा भूम) न हों। प्रत्युत (दुरोषासः) उत्तम दुर्गों, गृहों में रहते हुए (अमन्महि) तेरा मनन करें।

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन्।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुनाशक प्रभो! राजन्! हम सदा (अनाशवः) शीघ्रता न करते हुए, धैर्यवान् और (अनुग्रासः च) सौम्य होकर (ते) तेरा (स्तोमं) स्तुत्य रूप और गुणों का (अमन्महि) मनन करें। हे (शूर) शूरवीर! (ते) तेरे (महता राधसा) बड़े ऐश्वर्य से (सकृत्) एक बार तो (स्तोमं अनु मुदीमहि) हम तेरी स्तुति करके प्रसन्न हों।

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥१५॥१२॥

भा०—हे राजन्! (यदि) यदि तू (मम स्तोमं) मेरे स्तुति-वचन को (श्रवत्) सुने तो (अस्माकम्) हम प्रजाजनों के बीच (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् जन और (तिरः ससृवांसः) तिरछे या दूर तक जाने वाले (आशवः) वेग से जाने वाले (तुग्र्यावृधः) शत्रुओं के नाशक सैन्य बलों के हितों को बढ़ाने वाले पुरुष भी (पवित्रं) पवित्राचार वाले,

(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तुझ प्रभु को (मन्दन्तु) प्रसन्न करें । इति द्वादशो वर्गः ॥

आ त्व१द्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥ १६ ॥

भा०—(अद्य) आज, तू (वावातुः) सेवा करने वाले और (सख्युः) मित्र की (सधस्तुतिम्) साथ की स्तुति को (आ गहि) प्राप्त हो । (मघोनां) ऐश्वर्यवानों की (उपस्तुतिः) उपमा द्वारा की गई स्तुति भी (त्वा प्र अवतु) तुझे प्राप्त हो । (अध) और मैं (ते) तेरी (सु-स्तुतिम्) उत्तम स्तुति करना (वश्मि) चाहता हूँ ।

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो (अद्रिभिः) जैसे मेघों से जल बरसता और 'सोम' ओषधि उत्पन्न होता है वैसे ही (अद्रिभिः) शस्त्र-बलों से (सोमं सोत) ऐश्वर्य उत्पन्न करो । (अद्रिभिः सोमं सोत) मेघवत् कलशों से अभिषेक योग्य का अभिषेक करो। (ईम् एनम्) उसको (अप्सु) प्रजाओं में (आ धावत) प्राप्त कराओ । हे (नरः) वीर नायक जनो ! जैसे वायुगण आकाश में मेघों को तम्बुओं की तरह फैला देते हैं और जल को (वक्षणाभ्यः) नदियों की वृद्धि के लिये मेघों को दोह देते हैं वैसे ही तुम भी (वस्त्रा इव) वस्त्रों के समान (गव्या वासयन्त) गोधनों को बसाओ । उन (वक्षणाभ्यः) दूध देने वाली गौओं से (निः धुक्षन्) खूब दोहो ।

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥ १८ ॥

भा०—हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म करने वाले ! तू (अध ज्मः) पृथिवी से (अध वा दिवः) वा अन्तरिक्ष से (बृहतः रोचनात्) बड़े

चमकते सूर्य से (जाता) उत्पन्न प्राणियों का (आ पृण) पालन कर और (अया मम तन्वा गिरा) इस मेरी विस्तृत वाणी से (वर्धस्व) बढ़।

इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम्।
शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (इन्द्राय) शत्रुहन्ता पुरुष के लिये (मदिन्तमं) आनन्द और तृप्तिकारक (सोमं) ओषधि रस के समान (वरेण्यं) धनैश्वर्य को (सोत) उत्पन्न करो। (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष ही (एनं) इसको (हिन्वानं वाजयुं न) वृद्धिकारक ऐश्वर्य के इच्छुक प्रजाजन के समान ही (पीपयत्) बढ़ावे।

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥२०॥१३॥

भा०—(सोमस्य) ऐश्वर्य के लिए (गल्दया) स्तुति व (गिरा) वाणी से (सदा) सदा (अहं याचन्) मैं मांगता हुआ (भूर्णि) प्रजापालक (सवनेषु) शासनकार्यों में (मृगं न) सिंह के तुल्य (त्वा) तुझ को (मा चुक्रुधं) क्रोधित न करूं। (ईशानं) स्वामी से (कः न याचिषत्) कौन नहीं मांगता? इति त्रयोदशो वर्गः ॥

मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥ २१ ॥

भा०—वह राजा, वा प्रभु (उग्रेण मदेन) अति आनन्द और (उग्रेण शवसा) उग्र बल से, (इषितं) अभीष्ट (मदम्) आनंद (नः ददाति) हमें देता है और (मदे) आनन्द में ही (विश्वेषाम्) सबको (तरुतारं) पार उतारने वाला और (मदच्युतं) हर्षजनक ज्ञान भी हमें देता है।

शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥२२॥

भा०—(दाशुषे मर्त्ताय) दानादि के दाता मनुष्य के लिए (देवः) दानी राजा (शेवारे) सुख प्राप्त करने हेतु (पुरूवार्यो रासते) बहुत २ धन देता है। (सः) वह (विश्व-गूर्त्तः) सबसे प्रशंसित और (अरि-स्तुतः) शत्रुओं से भी प्रशंसित होकर (सुन्वते स्तुवते च) स्तुति और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के लिये भी (रासते) ऐश्वर्य देता है।

एन्द्र॑ याहि॒ मत्स्व॑ चि॒त्रेण॑ देव॒ राध॑सा।
सरो॒ न प्रा॑स्यु॒दरं॒ सपी॑तिभि॒रा सोमे॑भिरु॒रु स्फि॒रम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (देव) तेजस्विन् ! तू (आ याहि) आ और (चित्रेण राधसा) आश्चर्यजनक धनों से (मत्स्व) हर्षित हो। तू (स-पीतिभिः) मिलकर उपभोग और पालन क्रियाओं से (सरः न) सरोवर के तुल्य (सोमेभिः) ऐश्वर्यों से (स्फिरम्) प्रति-ष्ठित (उरु) बड़े (उदरम्) पेट के तुल्य राष्ट्र-कोश को (यासि) पूर्ण कर।

आ त्वा॑ स॒हस्र॒मा श॒तं यु॒क्ता रथे॑ हिर॒ण्यये॑।
ब्र॒ह्म॒युजो॒ हर॑य इन्द्र के॒शिनो॒ वह॑न्तु॒ सोम॑पीतये ॥ २४ ॥

भा०—(हिरण्यये रथे) सुवर्ण रथ में जुते (केशिनः हरयः) अयाल वाले अश्व जैसे रथस्वामी को ले जाते हैं वैसे, हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन् ! (सहस्रं) हजार २ और (शतम्) सौ सौ (ब्रह्मयुजः) अन्न, वेत-नादि पर नियुक्त (केशिनः) उत्तम केशों वाले तेजस्वी (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) सावधान होकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्यमय राज्य-पालन के लिये (हिरण्यये रथे) हित और सुन्दर राष्ट्र में (त्वा) तुझे (आ वहन्तु) अपने पर धारण करें।

आ त्वा॒ रथे॑ हिर॒ण्यये॒ हरी॑ म॒यूर॑शेप्या।
शि॒ति॒पृ॒ष्ठा व॑हतां॒ मध्वो॒ अन्ध॑सो वि॒वक्ष॑णस्य पी॒तये॑ ॥२५॥१४॥

भा०—(रथे हरी) रथ में दो अश्वों के तुल्य (हिरण्यये) ऐश्वर्य युक्त (रथे) राष्ट्र में (मयूरशेप्या) मयूर के तुल्य शिर पर आदर सूचक कलगी धारण करने वाले, (हरी) उत्तम दो नेता पुरुष (शिति-पृष्ठा) शुद्ध रूप वाले, निर्दोष होकर (त्वा) तुझको (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्न के तुल्य (विचक्षणस्य) विविध प्रकार से धारण करने योग्य राष्ट्र में स्वामी के कार्य के (पीतये) पालन के लिये (वहताम्) अपने ऊपर धारण करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

पिबा त्वश्स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिनं इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ २६ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणियों के दाता आचार्य ! हे वाणियों से स्तुत्य ! राजन् ! तू (पूर्व-पा-इव) पूर्व काल के अनुभवी पालक के तुल्य, (अस्य सुतस्य) इस शिष्य वा प्रजाजन को पुत्र के तुल्य (पिब) पालन कर। (परिष्कृतस्य) अच्छी प्रकार बनाये (रसिनः) रसयुक्त अन्न का (आसुतिः) पदार्थ जैसे हर्षजनक होता है वैसे ही (परिष्कृतस्य) सजे-सजाये, विद्यादि गुणों से अलंकृत (रसिनः) बलवान् पुरुष की (इयम्) यह (आ-सुतिः) अभिषेक क्रिया भी, (चारुः) सबको अच्छी लगने वाली होकर (मदाय) सब के आनन्द के लिये (पत्यते) पालकवत् उसको सब का स्वामी बना देती है।

य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गम॒त्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो (एकः) अकेला ही (दंसना) कर्म-सामर्थ्य से (महान् अस्ति) महान् है और जो (व्रतैः महान्) कर्त्तव्य-पालनों द्वारा (उग्रः) उग्र है (सः) वह (शिप्री) उत्तम मुख नासिका वाला, सुमुख पुरुष (अभिगमत्) हमें प्राप्त हो। (न सः योषत्) वह हम से पृथक्

न हो। वह (हवं गमत्) स्तुति को प्राप्त हो। वह (न परि वर्जति) हमारा त्याग न करे।

त्वं पुरं चरिष्णवं वधैः शुष्णस्य सं पिणक्।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (शुष्णस्य) प्रजाशोषक दुष्ट पुरुष के (चरिष्णवं) अस्थिर या प्रजा के ऐश्वर्य के भोक्ता (पुरं) नगर-वत् अड्डे, या छावनी को (वधैः संपिणक्) दण्डों और शस्त्रों से पीस डाल और (अध यत्) जब तू (हव्यः भुवः) स्तुतियों को प्राप्त करे तो (अध द्विता अनु चरः) अनन्तर दोनों प्रकार के तेजों को प्राप्त कर, अर्थात् शत्रुदमन और प्रजापालन दोनों कीर्त्ति तुझे प्राप्त हों।

मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) सबको बसाने वाले राजन्! प्रभो! (सूरे उदिते) सूर्योदय काल में, (दिवः मध्यन्दिने) दिन के, मध्याह्न में और (प्रपित्वे) समाप्ति काल में और (अपिशर्वरे) रात्रि के तमोमय काल में (मम) मेरे (स्तोमासः) स्तुति-वचन (त्वा अवृत्सत) तुझे लक्ष्य करके निकलें।

स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम्।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥३०॥१५॥

भा०—(घ) निश्चय से हे (मेध्यातिथे) सत्संग-योग्य, पूज्य अतिथे! विद्वान्! (मघोनां) ज्ञानादि के धनी गुरुजनों की (स्तुहि स्तुहि इत्) तू बार २ स्तुति कर, क्योंकि (ते) वे पूज्य जन (मघस्य) धन, ज्ञानादि के (मंहिष्ठासः) उत्तम दाता हैं और (निन्दिताश्वः) दुष्टे-न्द्रिय, अजितेन्द्रिय पुरुष (प्रपथी) सन्मार्ग को उलांघने वाला और

(परमज्या) श्रेष्ठ पुरुषों के मान, आयु की हानि करने वाला होता है।
इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम्।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥ ३१ ॥

भा०—(यत्) जब मैं उत्तम सारथी या रथारोही के तुल्य (वनन्वतः) विषयों के भोक्ता (अश्वान्) इन्द्रियरूप 'अश्वों' को (आ) सब ओर से रोक लेता हूँ तब मैं (श्रद्धया) सत्य धारण के बल से (रथे) इस देह रूप रथ पर भी (रुहम्) चढ़ सकता हूँ। (याद्वः पशुः) मनुष्यों के हितकारी पशु के समान (यः) जो मनुष्य (याद्वः) यत्नवान् मनुष्यों के बीच कुशल, (पशुः) सम्यक्-दर्शी है वही (वामस्य) सुन्दर (वसुनः) परमैश्वर्य का (चिकेतति) ज्ञाता है।

य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासङ्गस्य स्वनद्रथः ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो आत्मा (हिरण्यया त्वचा) सुवर्ण की बनी सुनहरी पोशाक के तुल्य उज्ज्वल ज्योतिर्मय रूप से (मह्यं) मुझे (ऋज्रा) सरल व्यवहार, ज्ञान और ऐश्वर्य (मामहे) देता है (एषः) वह (आसङ्गस्य) सङ्ग-रहित आत्मा वा सबको सत्कार्यों में लगाने हारे का (स्वनत्-रथः) श्रेष्ठ प्राण-धारक रथ, देह (विश्वानि सौभगानि) समस्त सुखैश्वर्यों को (अभि-अस्तु) साक्षात् करे।

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ ३३ ॥

भा०—(अध) और जैसे (दशभिः सहस्रैः अन्यान् अतिदासत्) विजयी दसों हजारों भटों से शत्रुओं को पराजय कर नष्ट कर देता है, वैसे ही (प्लायोगिः = प्रायोगिः) प्रयोग कुशल वा प्रयस् = उद्यम से,

ज्ञानपूर्वक जाने हारा (आसङ्गः) उत्तम सत्संगी, वा असंग पुरुष (दशभिः) दश (सहस्रैः) बलवान् इन्द्रियों के साथ (अति दासत्) सबको अपने वश कर लेता है। हे (अग्ने) प्रकाशक प्रभो ! (अध) तब (दश उक्षणः) दसों देह के उठाने वाले प्राण-गण (मह्यं) मेरी सहायता के लिये (सरसः नडाः इव) तालाब के तट पर खड़े नड़ों के तुल्य (नडाः = नराः) वीर पुरुषों के समान ही (निर् अतिष्ठन्) निकल खड़े होते हैं।

अन्व॑स्य स्थूरं द॑दृशे पुरस्ता॑दन॒स्थ ऊ॒रुर॑व॒रम्ब॑माणः ।
शश्व॑ती॒ नार्य॑भि॒चक्ष्या॑ह॒ सुभ॑द्रमर्य॒ भोज॑नं बिभर्षि ॥३४॥१६॥

भा०—(अस्य) इस आत्मा का (स्थूरम्) स्थूल देह (अनु) इसके अनुरूप ही (पुरस्तात्) आगे (ददृशे) दीखता है। वह स्वयं (अनस्थः) अस्थि आदि से रहित, (ऊरुः) जंघों के समान शरीर का आश्रय होकर भी (अवरम्बमाणः) देह का आश्रय ले रहा है। (शश्वती) सदातनी (नारी) आत्मा की सहयोगिनी बुद्धि (अभिचक्ष्य) आत्मा का साक्षात् करके (आह) कहती है—हे (अर्य) स्वामिन् ! तू ही (सु-भद्रम्) उत्तम सुखदायी (भोजनं) भोग-साधन देह को (बिभर्षि) धारण करता है। इति षोडशो वर्गः ॥

[२]

मेध्यातिथि काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः । ४१, ४२ मेधातिथिर्ऋषिः ॥ देवताः—१—४० इन्द्रः । ४१, ४२ विभिन्दोर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः— १—३, ५, ६, ९, ११, १२, १४, १६,—१८, २२, २७, २९, ३१, ३३, ३५, ३७, ३८, ३९ आर्षी गायत्री । ४, १३, १५, १९—२१, २३, २४, २५, २६, ३०, ३२, ३६, ४२ आर्षी निचृद्गायत्री । ७, ८, १०; ३४, ४० आर्षी विराड् गायत्री । ४१ पाद निचृद् गायत्री । २८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् ॥ चत्वारिंशदृचं सूक्तम् ॥

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन्ररिमा ते ॥ १ ॥

भा०—हे (वसो) प्रजा को बसाने वाले राजन्! वा प्रत्येक में बसने वाले आत्मन्! तू (अन्धः) अन्न के तुल्य (सु-पूर्णम्-उदरम्) अच्छी प्रकार पेट भर कर (सुतम् पिब) जलवत् उत्पन्न ऐश्वर्य का भोग कर। हे (वसो) गृहस्थ पिता तू (सुतम्) पुत्र को (सुपूर्णम् उदरम् अन्धः पिब) पेट भर कर अन्न खिलाकर पाल। हे (अनाभयिन्) अभय! (ते) तुझे हम ऐश्वर्य (ररिम) दें।

नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः ।
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अश्नैः सुतः) प्रस्तरों द्वारा अभिषुत सोमरस (नृभिः धूतः) ऋत्विजों द्वारा हिला २ कर (अव्यः वारैः परिपूतः) भेड़ के बालों से छनता है वैसे ही (अश्नैः) शस्त्र बलों से (सुतः) अभिषिक्त राजा (नृभिः धूतः) नायक पुरुषों द्वारा शिक्षित और (अव्यः) रक्षा योग्य राष्ट्र के (वारैः) ऐश्वर्यों वा शत्रुवारक सैन्यों से (परिपूतः) परिगत राजा (नदीषु निक्तः अश्वः) नदियों में नहाये अश्व के तुल्य (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं के बीच (निक्तः) अभिषिक्त हो।

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जैसे (यवं) जौ के भोजन को (गोभिः श्रीणन्तः) गाय के दूधों से मिलाते हुए (स्वादुम् अकर्म) स्वादु बना लेते हैं और जैसे (ते) तेरे (यवं) शत्रुनाशक सैन्य बल को (गोभिः) भूमियों से उत्पन्न अर्थों द्वारा (श्रीणन्तः) परिपक्व, दृढ़ करते हुए राष्ट्र को (स्वादुम्) सब से भोग करने योग्य (अकर्म) करें। वैसे ही हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन्! (अस्मिन् सधमादे) इस एक साथ हर्षित होने योग्य

अवसर में (त्वा) तुझको हम (गोभिः श्रीणन्तः) उत्तम वाणियों से संगत करते हुए (स्वादुम् = स्व-आदुम्) निज ऐश्वर्य-भोक्ता (अकर्म) बनाते हैं।

इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः।
अन्तर्देवान्मर्त्याँश्च ॥ ४ ॥

भा०—(एकः इन्द्रः इत्) अद्वितीय, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही (सोम-पाः) ओषधि वर्ग के पालक मेघ था सूर्य के समान ऐश्वर्य का पालक है। वही (एकः इन्द्रः) अद्वितीय, 'इन्द्र', ऐश्वर्यवान् राजा या प्रभु (सुत-पाः) उत्पन्न ऐश्वर्य का भोक्ता, (सु-तपाः) शत्रु को अच्छी प्रकार पीड़ित करने वाला, (विश्वायुः) समस्त प्रजा का जीवन-स्वरूप, सब को प्राप्त है। वही (देवान् मर्त्यान् च अन्तः) सब दिव्य पदार्थों, मरणधर्मा प्राणियों के भीतर रहकर उनका (सोम-पाः) शिष्यवत् और पुत्रवत् पालक है।

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम्।
अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥५॥१७॥

भा०—(उरु-व्यचसं) महान् राष्ट्र में विशेष प्रसिद्ध (सु-हार्दम्) उत्तम हृदय वाले (यं) जिसको (न शुक्रः) न देह में बलवीर्यवत् तेजो-वर्धक बल और (न दुराशीः) न दुर्भावना और (न तृप्राः) न तृप्त, धनी जन ही (अप-स्पृण्वते) द्वेष कर सकते हैं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते।
अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥

भा०—(व्राः न मृगं) घेरने वाले जन जैसे मृग अर्थात् सिंह को (गोभिः मृगयन्ते) हांकों से ढूंढ़ते हैं वैसे (यत्) जिसको (अस्मत् अन्ये) हमसे दूसरे भी (गोभिः) स्तुति वाणियों से (मृगयन्ते) खोजते

हैं वे (धेनुभिः) वाणियों, स्तुतियों द्वारा ही (अभि त्सरन्ति) प्राप्त होते हैं।

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य।
स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (सुतपाव्नः) यज्ञ में सोमपायी इन्द्र के लिये (सोमाः त्रय सुताः) सोम तीन वार सेवन किया जाता है वैसे (स्वे क्षये) अपने निवास-योग्य राष्ट्र में (सुतपाव्नः) गृह में सुतों के तुल्य राष्ट्र में प्रजा पालक, (इन्द्रस्य) शत्रुनाशक, (देवस्य) राजा के लिये (त्रयः सोमाः) तीनों ऐश्वर्य जन, धन, सनन बल, (सुतासः) अच्छी प्रकार तैयार (सन्तु) हों।

त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः।
समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥

भा०—(समाने) एक समान, (भार्मन् अधि) भरण-पोषण-योग्य राष्ट्र वा युद्ध के अध्यक्ष पद पर स्थित राजा के (त्रयः कोशासः) तीनों कोश और (तिस्रः) तीन प्रकार की (सु-पूर्णाः) खूब पूर्ण, (चम्वः) राष्ट्र की भोक्ता प्रजाएं वा सेनाएं (श्चोतन्ति) उसे ऐश्वर्य देती हैं। तीन कोश—जनकोश, राष्ट्र, धनकोश ख़जाना और मन्त्रकोश राजविद्वत्सभा वा सचिव परिषत् और तीन चमू, प्रजाएं, सेनाएं और शासक वर्ग। (२) भरणीय, पोष्य देह में तीन कोश विज्ञानमय, मनोमय, आनन्द-मय, तीन चमू, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, सभी आनन्द, ज्ञान, कर्म और फल देती हैं।

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः।
दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! तू (पुरु-निः-ष्ठाः) बहुतों में स्थिर होकर, (क्षीरैः) जलों से (मध्यतः) सब के बीच (आशीर्तः) आसेवित होकर

और (दक्षा) राष्ट्रधारक बल से (शूरस्य) पुरुष को भी (मन्दिष्ठः) आनन्दित करने वाला होकर (शुचिः असि) पवित्र हो ।

इ॒मे त॑ इन्द्र॒ सोमा॑स्ती॒व्रा अ॒स्मे सु॒तासः॑
शु॒क्रा आ॒शिरं॑ याचन्ते ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमे) ये (सोमाः) प्रजाजन और (अस्मे सुतासः) हमारे पुत्रादि (शुक्राः) आशु-कार्यकारी, तेजस्वी, (तीव्राः) वेगवान् होकर (ते) तेरा (आशिरं याचन्ते) आश्रय मांगते हैं । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

ताँ आ॒शिरं॑ पु॒रो॒ळाश॒मिन्द्रे॒मं सोमं॑ श्रीणीहि ।
रे॒वन्तं॒ हि त्वा॑ शृ॒णोमि॑ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (हि) क्योंकि मैं (त्वा) तुझको (रेवन्तं) धन का स्वामी (श्रृणोमि) सुनता हूँ । जैसे (आशिरम् पुरोडाशम्) रसादि से मिश्रित अन्न को अग्नि तपाता और जैसे ओषधि अन्नादि का सूर्य परिपाक करता है वैसे ही तू (तान्) उन पूर्वोक्त शुद्धाचारवान् पुरुषों को और (आशिरम्) आश्रय देने योग्य (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र तथा (इदं) उस (पुरोडाशम्) आगे आदर पूर्वक देने योग्य की (श्रीणिहि) सेवा कर ।

हृ॒त्सु पी॒तासो॑ युध्यन्ते दु॒र्मदा॑सो॒ न सुरा॑याम् ।
ऊध॒र्न न॒ग्ना ज॑रन्ते ॥ १२ ॥

भा०—(दुर्मदासः न) दुष्ट मद से युक्त पुरुष जैसे (हृत्सु पीतासः) हृदयों तक पीकर, (युद्ध्यन्ते) लड़ते हैं ऐसे ही (सुरायाम्) सुख देने वाली, राज्यलक्ष्मीवत् सुख से रमण-योग्य आनन्द दशा में (हृत्सु पीतासः) हृदयों में आनन्द रस का अनुभव कर लेने वाले विद्वान् (युध्यन्ते) अन्तःशत्रु, काम क्रोधादि से युद्ध करते हैं और (नग्नाः) वेद-

प्राणियों का त्याग न करने वाले विद्वान् (ऊधः न) मातृस्तन वा मेघ-वत् सुखवर्षी प्रभु की (जरन्ते) स्तुति करते हैं।

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः।
प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (त्वावतः) तेरे जैसे (मघोनः) उत्तम ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य के स्वामी और (रेवतः) धन स्वामी की (स्तोता) स्तुति करने वाला पुरुष भी (रेवान् इत् स्यात्) धनाढ्य ही हो जाता है। वह (प्र इत् उ) निश्चय ही (श्रुतस्य) वेदज्ञों द्वारा सुने गये ज्ञान का (हरिवः) आहरण करने वाला अपने में समा लेने वाला होता है।

उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत।
न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥

भा०—(अरिः) व्यापक, प्रभु (अगोः) वाणीरहित, मूक जन के भी (शस्यमानम् उक्थं चन) मन में कहे गये स्तुति वचन को (आचिकेत) जानता है वैसे ही (न गायमानं गायत्रं च) न गाये गये गायत्र स्तोम, गान योग्य गीत को भी जानता है। भगवान् मूक की भी सुनता है।

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः।
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (पीयत्नवे) क्रूर पुरुष के लाभ के लिये (मा परा दाः) मत त्याग और (शर्धते मा परा दाः) हमें पीड़ित करने वाले के हाथ मत दे। हे (शचीवः) शक्ति के स्वामिन्! तू (नः) हमें (शचीभिः) शक्तियों और वाणियों से दुष्ट पुरुष के दण्ड के लिये (शिक्ष) शिक्षा या बल दे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य पद स्वामिन् ! (वयम् कण्वाः) हम विद्वान् लोग (तदिदर्थाः) उस, इस पारमार्थिक, ऐहिक नाना प्रयोजनों को चाहने वाले, (सखायः) मित्र होकर (त्वायन्तः) तुझे सदा चाहते हुए वा तुझे प्राप्त होकर (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (जरन्ते) स्तुति करते हैं ।

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ १७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन् ! (अपसः) कर्म करने वाले तेरी (नविष्टौ) उत्तम पूजा के अवसर पर मैं (अन्यत् न घ आ पपन) और कुछ स्तुति नहीं करूं, मैं (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमं चिकेत) स्तुति करना मानूं ।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ १८ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् जन (सुन्वन्तं) यज्ञ और ईश्वर स्तुति करने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं । वे (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) सोने वाले वा आलस्य से प्रेम नहीं करते । (अतन्द्राः) आलस्यरहित पुरुष भी (प्रमादम् यन्ति) प्रमादी हो जाते हैं इसलिये आलस्य से प्रेम न करो । अथवा—(अतन्द्राः प्र-मादम् यन्ति) आलस्य से रहित लोग ही उत्तम आनन्द पाते हैं ।

ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्य१स्मान् ।
महाँइव युवजानिः ॥ १९ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! (युवजानिः महान् इव) जैसे युवती स्त्री का पति (वाजेभिः) उत्तम ऐश्वर्यों सहित महान् होकर लज्जा अनुभव नहीं करता, वैसे ही हे ऐश्वर्यवन् ! तू भी (महान्) गुणों में महान् होकर

(अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ उ सु-प्र याहि) आ और सुखपूर्वक, आदर से जा (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (मा हृणीथाः) क्रोध मत कर।

मा ष्व१द्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे अस्मत् ।
अश्रीर इव जामाता ॥ २० ॥ २० ॥

भा०—हे स्वामिन् ! तू (दुर्हणावान्) दुःसह पीड़ा देने वाला प्रभु (अद्य) आज (अस्मत्) हम से दूर रहकर (मो सु सायं करत्) सारा दिन बिता कर सायंकाल न कर दे। (अश्रीरः इव जामाता) सौभाग्यादि से रहित जंवाई जैसे दिन भर व्यतीत करके रात्रि काल में आता है, जिससे उसकी बुरी दशा प्रकट न हों। वैसे ही हे स्वामिन् ! तेरा भी विरह असह्य है। इति विंशो वर्गः ॥

विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् ।
त्रिषु जातस्य मनांसि ॥ २१ ॥

भा०—(अस्य वीरस्य) इस वीर के तुल्य बल से युक्त, विद्याओं के उपदेष्टा, स्वामी की (भूरि-दावरीं) बहुत सुखैश्वर्य देने वाली (सुमतिम्) कल्याणकारी बुद्धि और वाणी को (विद्म हि) अवश्य जानें। (त्रिषु) तीनों वेदों में (जातस्य) प्रसिद्ध, तीनों के ज्ञाता के (मनांसि) ज्ञानों को भी (विद्म) जानें।

आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात् ।
यशस्तरं शतमूतेः ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (कण्वमन्तं) विद्वान् पुरुषों से युक्त जन को (आ सिञ्च) वनस्पतिवत् सींच, बढ़ा। (शतम्-ऊतेः) सैकड़ों रक्षाओं से युक्त (शवसानात्) शक्तिशाली से (यशस्तरं) अधिक यशस्वी दूसरे को हम (न घ विद्म) नहीं जानते

ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय ।
भरा पिबन्नर्याय ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोतः) उपासक! तू (वीराय) विविध बुद्धियों की प्रेरणा देने वाले, (शक्राय) शक्तिशाली (इन्द्राय) ऐश्वर्यवन् और (नर्याय) मनुष्यों के हितकारी के लिये (ज्येष्ठेन) उसे सर्वश्रेष्ठ जान कर (सोमं भर) ऐश्वर्यादि, वा अपने आत्मा को अर्पण कर। वह (पिबत्) उसका पालन करे।

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः।
वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (अव्यथिषु) अन्यों के अपीड़क जनों में (वेदिष्ठः) सबसे अधिक वेदनावान् है, वह (जरितृभ्यः) विद्वानों और (स्तोतृभ्यः) उपदेशकों को (अश्वावन्तं गोमन्तं वाजं) अश्वों और गौओं से सम्पन्न ऐश्वर्य देता है।

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय।
सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सोतारः) विद्वान् जनो! हे यज्ञकर्त्ता जनो, हे ऐश्वर्य, अन्नादि के उत्पादक प्रजा जनो! आप लोग (मद्याय) आनन्द हर्ष के योग्य (वीराय) वीर (शूराय) शूर पुरुष के लिये (पन्यं-पन्यं सोमं) स्तुत्य, एवं सर्वोत्तम अन्न ऐश्वर्यादि प्राप्त कराओ। इत्येकविंशो वर्गः ॥

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्।
नि यमते शतमूतिः ॥ २६ ॥

भा०—(अस्मत् आरे) हमसे दूर रहकर भी (वृत्रहा) विघ्नों, विघ्नकारी शत्रुओं का नाशक राजा (पाता) राष्ट्र का पालक होकर राष्ट्र को (सुतम्) पुत्रवत् जान कर (आ घ गमत्) अवश्य आवे। वह (शतम्-ऊतिः) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न होकर (नियमते) राष्ट्र की व्यवस्था करे।

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥

भा०—(ब्रह्म-युजा) बृहद् राष्ट्र के पालक पद पर नियुक्त, बड़े वेतनादि पर सहयोगी (हरी) स्त्री-पुरुष (इस) इस राष्ट्र में (शग्मा) सुखदायी होकर (गीर्भिः श्रुतं) वाणियों से विख्यात, (गिर्वणसम्) वाणियों को स्वीकारने और देने वाले (सखायम्) मित्रवत् इन्द्र को (आ वक्षतः) अपने ऊपर धारण करते हैं ।

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥ २८ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) तेजस्विन् ! हे (ऋषीवः) इन्द्रियों के स्वामिन् ! हे (शचीवः) शक्तियों के स्वामिन् ! (सोमाः) ये अन्नादि जगत् के उत्पन्न पदार्थ; अध्यात्म में—अध्यात्म आनन्द और ये जीवगण (स्वादवः) सुखकारी और (सु-आदवः) सुख की कामना करते, (सोमाः श्रीताः) समस्त रस परस्पर मिल गये हैं और समस्त जीवगण रस से तृप्त हैं । (आ याहि आ याहि) हे प्रभो ! तू आ, तू आ । (न) अभी (अयम्) यह (सध-मादम्) साथ मिलकर हर्ष उत्पन्न करने वाले को (अच्छ) साक्षात् कर ।

स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।
इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (या स्तुतः) जो स्तुतियां (त्वा कारिणं वर्धन्ति) तुझ कर्त्ता को बढ़ाती हैं जो पुरुष (महे राधसे) बड़े ऐश्वर्य और (नृम्माण) ज्ञान के लिये (वृधन्तः) बढ़ते हुए (त्वा कारिणं) तुझ कर्त्ता को प्राप्त करते हैं वे (दधिरे) उन स्तुतियों को धारते हैं ।

गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि ।
सत्रा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वाहः) मनुष्यों को वाणियां देने वाले! (याः च गिरः) जो वाणियां और (यानि च उक्थानि) जो उत्तम वेद-वचन (ते) तेरे लिये प्रयुक्त हैं विद्वान् जन उन वाणियों और (तानि) उन उत्तम वचनों और (शवांसि) नाना बलों को (तुभ्यं) तेरी स्तुति के लिये ही (सत्रा दधिरे) सदा धारण करें। इति द्वाविंशो वर्गः॥

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः।
सनादमृक्तो दयते॥ ३१॥

भा०—(एव इत्) निश्चय से ही, (एषः) यह (तुवि-कूर्मिः) बहुत से लोकों का कर्त्ता (एकः) अकेला, (वज्रहस्तः) अपने हाथ में समस्त शक्तियों को लिए हुए, (सनात्) सनातन से प्रसिद्ध, (अमृक्तः) अविनाशी प्रभु ही (वाजान् दयते) समस्त ऐश्वर्यों और सुखों को देता है।

हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः।
महान्महीभिः शचीभिः॥ ३२॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (पुरुहूतः) बहुतों द्वारा स्तुति-योग्य है। वह (दक्षिणेन) प्रबल ज्ञान और सामर्थ्य से (वृत्रं) अज्ञान का अन्धकारवत् (हन्ता) नाश करता है। वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियों और पूज्य वाणियों से गुरुवत् (महान्) महान् है।

यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च।
अनु घेन्मन्दी मघोनः॥ ३३॥

भा०—(यस्मिन्) जिस परमेश्वर के आश्रय (विश्वाः चर्षणयः) समस्त मनुष्य (उत च्यौत्ना) समस्त बल, और (ज्रयांसि) श्रेष्ठ विजय सामर्थ्य हैं उसी (मघोनः) ऐश्वर्य के स्वामी के (अनुः घ इत्) अनुकूल रहने वाला पुरुष ही (मन्दी) अति सुखी, आनन्दवान् होता है।

एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे।
वाजदावा मघोनाम्॥ ३४॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अति शृण्वे) सब वैभवों में सबसे अधिक सुना जाता है, जो (मघोनाम्) ऐश्वर्यवानों को भी (वाजदावा) ऐश्वर्यदाता है (एषः) वह (एतानि) इन सब सूर्यादि को (चकार) बनाता है।

प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति ।
इनो वसु स हि वोळहा ॥ ३५ ॥ २३ ॥

भा०—वह (प्र-भर्ता) सबसे उत्कृष्ट, प्रजा-पोषक प्रभु, (अपाकात्) कच्चे मार्ग से रथ को सारथि के तुल्य (यम्) जिस (गव्यन्तं) स्तुति-वाणी या भूमि आदि के इच्छुक (रथम्) रमणकारी भक्त की (अवति) रक्षा करता है (सः हि) वही (इनः) स्वामी (वसु वोढा) ऐश्वर्य धारण करने वाला होता है।

सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः ।
सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥

भा०—वह (वृत्रं हन्ता) अज्ञान, विघ्नकारी दुष्टों का नाशक, (शूरः) वीर सेनापति के तुल्य प्रभु (विप्रः) ज्ञानों का दाता है, वही (नृभिः) उत्तम पुरुषों और (अर्वद्भिः) ज्ञान-साधनों से (सनिता) सुखों का दाता है। वह (विधन्तम्) सेवा करने वाले का (सत्यः अविता) सच्चा रक्षक है।

यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा ।
यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ॥ ३७ ॥

भा०—जैसे (सोमैः) जलों से सूर्य व्यक्त जगत् को तृप्त और प्रसन्न करता है वैसे ही (यः) जो (सोमैः सत्य-मद्वा भूत्) ऐश्वर्यों, बलों से सत्य ज्ञान और व्यक्त जगत् में रमण करने वाला और ज्ञानी पुरुषों या ऐश्वर्यों से सत्य रूप से स्तुति करने योग्य होता है, हे (प्रियमेधाः)

यज्ञप्रिय जनो ! (एनं इन्द्रं) इस इन्द्र, ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (सत्राचा मनसा) सत्य से युक्त, एवं तद्गत चित्त से (यजध्वम्) उपासना करो।

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम्।
कण्वासो गात वाजिनम् ॥ ३८ ॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान् पुरुषो ! आप (गाथ-श्रवसं) जिसका श्रोतव्य ज्ञान वा स्वरूप गाने योग्य है, उस (सत्पतिं) सत् पदार्थों के पालक, (श्रवः-कामं) श्रवणीय ज्ञान, संकल्प वाले, (पुरु-त्मानम्) इन्द्रियों में की आत्मा के समान बहुतों के प्रिय (वाजिनम्) ज्ञानवान् प्रभु की (गात) स्तुति करो।

य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान्।
ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥ ३९ ॥

भा०—(यः) जो (ऋते) ज्ञानमय प्रभु में या सत्य ज्ञान के बल पर (पदेभ्यः) प्राप्त होने वाले (नृभ्यः) मनुष्यों का (शचीवान् सखा) शक्तिशाली मित्र होकर (गाः दात्) वाणियों को देता है और (ये) जो (अस्मिन्) इसमें (कामम्) अपनी कामना को (अश्रियन्) प्राप्त करते हैं उनका वह मित्र है।

इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम्।
मेषो भूतोऽभि यन्नयः ॥ ४० ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार हे (अद्रिवः) सर्वशक्तिमान् ! (धीवन्तम्) बुद्धिमान्, ध्यान-धारणा-युक्त, (काण्वं) विद्वान्, (मेध्यातिथिम्) व्यापक प्रभु वा अतिथि के उपासक के प्रति तू (मेषः) सब सुखों का देने वाला, मेघवत् (भूतः) होकर (अभि यन्) प्रत्यक्ष होकर (अयः) प्राप्त होता है।

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्।
अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१ ॥

भा०—हे (विभिन्दो) अज्ञानों के नाशक ! प्रभो ! तू (ददत्) ऐश्वर्यादि देता हुआ (अस्मै) इस उपासक को (अयुता) एकत्र सम्मिलित (चत्वारि) चारों पुरुषार्थों को (शिक्ष) प्रदान कर, (परः) और भी अधिक (सहस्रा) बलवान् (अष्टा) सात मुख्य प्राण और आठवीं वाणी को भी प्रदान कर ।

उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या ।
जनित्वनाय मामहे ॥ ४२ ॥ २४ ॥

भा०—(उत) और (त्ये) उन (पयः-वृधा) माता पिता के समान दूध और ज्ञान से बालकवत् बढ़ाने वाले (रणस्य माकी) रम्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (नप्त्या) सदा परस्पर सम्बद्ध, प्रभु और प्रकृति दोनों को (जनित्वनाय) जीवों और जगत् के उत्पन्न करने के लिये (सु मामहे) उत्तम रीति से पूज्य जानें । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[३]

मेध्यातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—२० इन्द्रः ।२१—२४ पाकस्थाम्नः कौरयाणस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१ कुकुम्मती बृहती । ३, ५, ७, ९, १९ निचृद् बृहती । ८ स्वराड् बृहती । १५, २४ बृहती । १७ पथ्या बृहती । २, १०, १४, सतः पंक्तिः । ४, १२, १६, १८ निचृत् पंक्तिः । ६ भुरिक् पंक्तिः । २० विराट् पंक्तिः । १३ अनुष्टुप् । ११, २१ भुरिगनुष्टुप् । २२ विराड् गायत्री । २३ निचृत् गायत्री ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! तू (गोमतः) वाणी से युक्त प्रार्थी वा इन्द्रियों से युक्त (रसिनः) बल या सुख के अभिलाषी (सुतस्य) उत्पन्न

जीव का (पिब) पालन कर। (नः मत्स्व) हमें हर्षित कर। तू (सधमाद्यः) सत्संग से आनन्द प्राप्त करने हारा होकर गुरुवत् (नः) हमारा (आपिः) आप्त बन्धु होकर हमें (वृधे) वृद्धि के लिये ऐश्वर्य (बोधि) प्रदान कर। और (ते धियः) तेरे कर्म, बुद्धियां और स्तुतियां (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय॥ २॥

भा०—हे स्वामिन्! (वयं) हम (वाजिनः) ऐश्वर्य के स्वामी होकर भी (ते) तेरी (सु-मतौ) उत्तम बुद्धि के अधीन (भूयाम) रहें। तू (नः) हमें (अभि-मातये) अभिमानी पुरुष के स्वार्थ के लिये (मा स्तः) पीड़ित मत कर। तू (नः) हमें (सुम्नेषु) सुखदायक प्रबन्धों में (आ यमय) बांध और (चित्राभिः अभिष्टिभिः) अद्भुत कामनाओं से (अस्मान् अवतात्) हमारी रक्षा कर।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत॥ ३॥

भा०—हे (पुरु-वसो) बहुत धनों के स्वामिन्! (याः) जो (मम) मेरी (गिरः) नाना वाणियां हों (इमा उ त्वा) वे सब भी तुझको (वर्धन्तु) बढ़ावें। और (पावकवर्णाः) अग्नि समान तेजस्वी, पवित्र करने वाले शरीरयुक्त, (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) स्तुतियों से (त्वा अभि-अनूषत) तेरा स्तवन करें।

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥ ४॥

भा०—(अयं) यह स्वामी (सहस्रं) सहस्रों वार वा सहस्रों (ऋषिभिः) तत्वज्ञानी पुरुषों से (सहस्कृतः) बल युक्त किया जाकर

(समुद्रः इव) समुद्र के तुल्य (पप्रथे) विस्तार को प्राप्त होता है। (सः अस्य) वह इसका (सत्यः महिमा) सच्चा सामर्थ्य है जो (विप्र-राज्ये) विद्वानों के शासन में (यज्ञेषु) सत्संगादि में (शवः) उसके बल और ज्ञान की (गृणे) स्तुति की जाती है।

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥५॥२५॥

भा०—(देव-तातये) विद्वानों से किये जाने वाले यज्ञादि उत्तम कार्य के लिये (वयं) हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् स्वामी को (हवामहे) बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति) यज्ञ प्रवृत्त होने पर भी हम (वनिनः) दान-शील होकर (इन्द्रं हवामहे) ऐश्वर्यप्रद प्रभु की स्तुति करते हैं। (समीके) युद्ध के अवसर पर (वनिनः) ऐश्वर्यवान् होकर हम (इन्द्रं) शत्रुहन्ता स्वामी को स्वीकार करते हैं, (धनस्य सातये) धन लाभ के लिये हम उसकी ही स्तुति करते हैं।

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि को (पप्रथत्) विस्तारित करता है। वह (शवः इन्द्रः) बलवान् सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को प्रकाशित करता है। (इन्द्रे ह) उस प्रभु के अधीन ही (विश्वा भुव-नानि) समस्त भुवन (येमिरे) सुव्यवस्थित हैं। (इन्द्रे) उस प्रभु के अधीन ही (सुवानासः) उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) मेघ, सूर्य, चन्द्रादि लोक और शुभ-कर्मकारी विद्वान् रहते हैं।

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रु वा दुष्टजनों के नाशक स्वामिन् ! (आयवः) मनुष्य लोग (पूर्वपीतये) सर्व प्रथम राष्ट्र के उपभोग और पालन के लिये (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य कर ही (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों से (समीचीना) उत्तम भाव से युक्त होकर (ऋभवः) धन, ज्ञान से सम्पन्न जन (सम् अस्वरन्) मिलकर तेरी स्तुति करते हैं। (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले वीर तथा मेघ, सूर्यादि, वा उपदेष्टा विद्वान् जन (पूर्व्यम् गृणन्त) सबसे पूर्व विद्यमान तेरी ही स्तुति करते हैं।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुं ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥८॥

भा०—(सुतस्य) इस उत्पन्न जगत् के (विष्णवि) व्यापक (मदे) आनन्द में ही (अस्य) इस जीव गण के (इत्) भी (वृष्ण्यं शवः) बल-युक्त सुखप्रद ज्ञान और बल को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (वावृधे) बढ़ाता है। (आयवः) ज्ञानी मनुष्य (अद्य) आज भी (अस्य तम् महिमानम्) इसके उस महान् सामर्थ्य का (पूर्वथा अनु स्तुवन्ति) पूर्ववत् स्तुति करते हैं।

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥९॥

भा०—हे प्रभो ! (त्वा) तुझसे मैं (तत्) वह (सुवीर्यं) उत्तम बल (तत् ब्रह्म) वह ज्ञान, ऐश्वर्य (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान और सञ्चय के निमित्त (यामि) मांगता हूँ (येन) जिससे (यतिभ्यः) जितेन्द्रिय पुरुषों और (भृगवे) पुष्ट वाणी वाले तेजस्वी के उपकार के लिये (हिते धने) हितकारी धन के निमित्त (प्रस्कण्वम्) उत्कृष्ट मेधावी पुरुष की (आविथ) रक्षा करता है।

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥१०॥२६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (येन) जिस बल से तू (समुद्रम्) समुद्र को (महीः अपः) भूमियों और जलों को (असृजः) रचता है (ते) तेरा (तत्) वह (शवः) ज्ञान और बल (वृष्णि) सब सुखों को देने वाला है। (यम्) जिसके अनुकूल (क्षोणीः अनु चक्रदे) भूमि, मनुष्य चलते और स्तुति करते हैं (सः अस्य महिमा) वह उसकी महिमा है। (सद्यः न संनशे) शीघ्र उसको नहीं जाना जा सकता ?

शुग्धी नं इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।
शुग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शुग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यत् रयिम्) जिस ऐश्वर्य और (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को मैं तुझ से (यामि) मांगता हूँ। तू वह (नः शग्धि) हमें देकर समर्थ कर। (प्रथमम्) सर्वोत्तम पुरुष को (वाजाय) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (शग्धि) समर्थ कर। हे (पूर्व्य) पूर्व के जनों में सर्वोत्तम ! हे पूर्ण ! तू (सिषासते) भजन की इच्छा वाले (स्तोमाय) स्तुतिकर्त्ता जन के हितार्थ (शग्धि) सब को समर्थ कर।

शुग्धी नों अस्य यद्ध पौरमाविंथ धियं इन्द्र सिषासतः ।
शुग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (धियः सिषासतः) कर्मों और बुद्धियों का सेवन करने वाले के (पौरम्) पुरवासी जन को (यत् ह) जिससे तू (आविथ) रक्षा करता है, (अस्य) इस ऐश्वर्य को (नः शग्धि) हमें भी दे और (यथा) जैसे (रुशमं) रोगों के शान्तिकारक, (श्यावकम्) विद्वान्, (कृपम्) कृपालु (स्वः-नरम्) सुखप्रद नायक तेजस्वी पुरुष की (आवः) रक्षा करता है वैसे हमें भी (शग्धि) समर्थ बना।

कन्नव्यों अतसीनां तुरो गृंणीत मर्त्यः ।
नुहीन्वंस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्तं आनशुः ॥ १३ ॥

भा०—(अतसीनां) निरन्तर एक से दूसरे देह में विचरने वाले जीवों में से (कः) कौन सा (तुरः) शीघ्रकारी (नव्यः) अपूर्व ऐसा (मर्त्यः) मनुष्य है जो (अस्य) इस प्रभु के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य का (गृणीत) वर्णन कर सके। (इन्द्रियं) 'इन्द्र' के ही महान् ऐश्वर्य, प्रभु के बनाये जगत् को ही (स्वः) परम सुख (गृणन्तः) कहते हुए जीव (अस्य) इसके सामर्थ्य का पार (नही नु आनशुः) कभी नहीं पा सकते।

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वत कदु स्तुवत आ गमः ॥१४॥

भा०—हे (देवत) प्रकाशस्वरूप! (ऋतयन्तः) ज्ञान, ऐश्वर्य की कामना वाले तुझे (कद् उ स्तुवन्ते) कौन स्तुति करते हैं (कः) कौन (ऋषिः) तत्वदर्शी (विप्रः) विद्वान् (आ ऊहते) प्रार्थना कर सकता है? हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (इन्द्र) प्रकाशस्वरूप! तू (सुन्वतः) उपासक के (हवं) स्तुति-वचन को (कदा आगमः) कब प्राप्त होता और (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता के समीप (कत् उ आ गमः) तू कब आता है?

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१५॥२७॥

भा०—(वाजयन्तः रथाः इव) संग्राम करने वाले रथ वा रथारोही वीर (अक्षित-ऊतयः) अक्षय बल से युक्त होकर (सत्राजितः) एक साथ शत्रुओं को जीतने और (धनसाः) धन को प्राप्त करने वाले होते हैं वैसे ही हे (इन्द्र) प्रभो! (त्ये) वे (मधु-मत्-माः) उत्तम रीति से गुरु द्वारा सञ्चित विद्या-मधु के धारक (स्तोमासः) स्तुतिकर्त्ता और (गिरः) उपदेष्टा लोग (सत्राजितः) सत्य के बल पर विजयी, (धनसाः) ऐश्वर्य के भागी और दानी (अक्षितोतयः) अक्षय तृप्तियुक्त वा

अक्षुण्ण मार्ग वाले, (वाजयन्तः) ज्ञानैश्वर्य के अभिलाषी होकर (उत् ईरते) ऊंचे उठते हैं।

कण्वा॑ इ॒व भृग॑वः॒ सूर्या॑ इव॒ विश्व॒मिद्धी॒तमा॑नशुः।
इन्द्रं॒ स्तोमे॑भि॒र्म॒हय॑न्त आ॒यवः॑ प्रि॒यमे॑धासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

भा०—(सूर्याः इव) सूर्यों के तुल्य तेजस्वी, (कण्वाः इव) विद्वान् जनों के तुल्य ही (भृगवः) पापों को भूनने वाले, वा वाग्मी जन, (विश्वम् इत् धीतम्) विश्व रूप से ध्यान करने योग्य प्रभु को (आनशुः) प्राप्त होते हैं, और (स्तोमेभिः महयन्तः) स्तुतियों से पूजा करते हुए (प्रिय-मेधासः) सत्संगप्रिय, अन्नार्थी जन (इन्द्रम्) ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (अस्वरन्) स्तुति करते हैं।

यु॒क्ष्वा हि वृ॑त्रहन्तम॒ हरी॑ इन्द्र परा॒वतः॑।
अ॒र्वा॒ची॒नो म॑घव॒न्त्सोम॑पीतय उ॒ग्र ऋ॒ष्वेभि॒रा ग॑हि ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्-तम) विघ्नों और वारण योग्य व्यसनों के नाशक स्वामिन्! तू (परावतः) दूर २ देश से ही (हरी युक्ष्व हि) स्त्री-पुरुषों को परस्पर जोड़ा कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (उग्र) बलवन्! तू (सोमपीतये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (अर्वाचीनः) आगे बढ़ कर (ऋष्वेभिः) बड़े पुरुषों या विद्वानों द्वारा दिये उपदेश से हमें (आगहि) प्राप्त हो।

इ॒मे हि ते॑ का॒रवो॑ वाव॒शुर्धि॒या विप्रा॑सो मे॒धसा॑तये।
स त्वं नो॑ मघवन्निन्द्र गिर्वणो वे॒नो न शृ॑णुधी॒ हव॑म् ॥१८॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (इन्द्र) हे प्रकाशस्वरूप! हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तुति करने योग्य! (इमे हि ते कारवः) ये तेरे स्तुतिकर्त्ता (विप्रासः) बुद्धिमान् जन (मेध-सातये) यज्ञ, दान प्राप्त करने के लिये, (वावशुः) तुझ ईश्वर को चाहते हैं। (सः त्वं) वह तू

(वेनः न) अभिलाषी के तुल्य (नः हवम् श्रुणुधि) हमारी पुकार सुन।

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (बृहतीभ्यः धनुभ्यः) बड़ी २ धनुर्धर सेनाओं की प्रतिष्ठा के लिये तू (वृत्रं निर् अस्फुरः) धन का विनाश मत कर (अर्बुदस्य) अत्यन्त ज्ञानी (मृगयस्य) स्वामी प्रभु के अन्वेषक, (मायिनः) बुद्धिमान् (पर्वतस्य) मेघ-तुल्य सबके पालक पुरुष की (गाः निर् अजः) वाणियों को हृदय से निकाल वा ग्रहण कर।

निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥२०॥२८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! जो तू (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (महाम् अहिम्) बड़े, आघातकारी मेघ वा अन्धकार को दूर करता है, तब तू (पौंस्यं कृषे) मनुष्यों के हितकर बल को प्रकट करता है। उस समय (अग्नयः निर् रुरुचुः) अग्नियें खूब प्रज्वलित होती हैं (सूर्यः निर्) सूर्य खूब प्रकाशित होता है और (इन्द्रियः रसः) इन्द्र, आत्मा से सेवन-योग्य, रसवत् आत्मिक आनन्द भी प्रकट होता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥

भा०—परमेश्वर का स्वरूप—(यम्) जिसको लक्ष्य करके (इन्द्रः) आचार्य और (मरुतः) विद्वान् तथा आत्मा और प्राण (मे दुः) मुझे ज्ञान देते हैं और परमेश्वर (पाकस्थामा) परिपक्व बल वाला (कौरयाणः) क्रियावान्, सबको चलाने वाला है। मैं (विश्वेषां) सबके बीच (त्मना शोभिष्ठम्) आत्मा-रूप से शोभावान् उस तेजोमय को (दिवि धावमानम् उप इव) आकाश में गति करते सूर्य के तुल्य देखता हूँ।

रोहि॑तं मे पाक॑स्थामा सुधुरं॑ कक्ष्यप्राम् ।
अदा॑द्रायो विबो॑धनम् ॥ २२ ॥

भा०—सर्वनियन्ता प्रभु मुझे (सुधुरं) सुख से धारण योग्य (कक्ष्य-प्राम्) कक्षाओं, कोखों में पूर्ण (रोहितं) निरन्तर बढ़ने वाला वा तेजस्वी आत्मा वा शरीर (अदात्) देता है, वह (रायः) नाना ऐश्वर्य देता है और वह (विबोधनम् अदात्) मन, इन्द्रिय आदि ज्ञानों के साधन और विशेष ज्ञान को भी देता है ।

यस्मा॑ अन्ये दश प्रति धुरं॑ वह॑न्ति वह्न॑यः ।
अस्तं॑ वयो॑ न तुग्र्य॑म् ॥ २३ ॥

भा०—(तुग्र्यं वयः न) शत्रुहिंसक, गृह-स्वामी को वेगवान् अश्व जैसे ((अस्तं) घर ले जाते हैं वैसे ही (यस्मै) जिस प्रभु के दर्शन के लिये (अन्ये दश वह्नयः) और दस अग्निवत् तेजस्वी शरीर को गाड़ी के तुल्य उठाने वाले दश प्राण (धुरं प्रति वहन्ति) धारक आत्मा के अधीन उसको उठाते हैं ।

आत्मा पितुस्तनूर्वास॑ ओजोदा अभ्यञ्ज॑नम् ।
तुरीयमिद्रोहि॑तस्य पाक॑स्थामानं भोजं दातार॑मब्रवम् ॥२४॥२१॥

भा०—मैं (रोहितस्य) तेजस्वी, शरीर में उत्पन्न होने वाले जीव को (दातारम्) देने वाले (पाकस्थामानम्) बलशाली (भोजम्) पालक प्रभु को ही (तुरीयम् इत् अब्रवम्) तुरीय, चतुर्थ परम पद के नाम से कहता हूँ । वही (आत्मा) चेतन है, वह (पितुः) अन्नवत् जीवनाधार है । वह (तनूः) देहवत् प्रिय जगत् का विस्तारक है । वह (वासः) वस्त्रवत् आच्छादक, सर्वत्र वसने वाला है । वही (ओजः दाः) देह में आत्मा के तुल्य समस्त बल का दाता और (अभ्यञ्जनम्) तैलादि स्निग्ध पदार्थों के तुल्य कान्ति, स्नेह और प्रकाश को देने वाला है । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[४]

देवातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—१४ इन्द्रः । १५—१८ इन्द्रः पूषा वा । १९—२१ कुरुंगस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, १३ भुरिगनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । २, ४, ६, ८, १२, १४, १८ निचृत् पंक्तिः । १० सत पंक्तिः । १६, २० विराट् पंक्तिः । ३, ११, १५ निचृद् बृहती । ५, ९ बृहती पथ्या । १७, १९ विराड् बृहती । २१ विराडुष्णिक् ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (प्राग्, अपाक्, उदङ्, न्यग् वा) पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण या ऊंचे नीचे, (नृभिः हूयसे) मनुष्यों से स्तुति किया जाता है हे (प्र-शर्ध) उत्तम बलशालिन् ! हे (सिम) सर्वश्रेष्ठ ! तू सचमुच (तुर्वशे) चारों पुरुषार्थों के इच्छुक मनुष्य-संघ के बीच भी (पुरु नृ-सूतः) बहुत प्रकार के मनुष्यों से उपासित (असि) होता है ।

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

भा०—(यद् वा) और जो तू (रुमे) उपदेष्टा, (रुशमे) अन्यों की पीड़ा शान्त करने वाले रक्षक, (श्यावके) इधर-उधर जाने वाले व्यापारी और (कृपे) दयाशील, श्रमी, जनवर्ग में (सचा) एक साथ सबको (मादयसे) प्रसन्न करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! और (स्तोम-वाहसः) स्तुतिधारक, (कण्वासः) बुद्धिमान् (ब्रह्मभिः त्वा यच्छन्ति) वेदमन्त्रों से तुझे अपने को अर्पित करते हैं, वह तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।

यथा॑ गौ॒रो अ॒पा कृ॒तं तृष्य॒न्नेत्यवे॑रिणम् ।
आ॒पि॒त्वे नः॑ प्रपि॒त्वे तूय॒मा ग॑हि॒ कण्वे॑षु॒ सु सचा॒ पिब॑ ॥३॥

भा०—(यथा) जैसे (गौरः) गौओं में रति, अनुरागादि करने वाला वृषभ पशु वा गौर नाम मृग, (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा कृतम्) जल से भरे (इरिणम्) जलाशय को (अव: एति) प्राप्त होता है वैसे ही (गौरः) 'गो' इन्द्रियों में रमने वाला जीव, (तृष्यन्) तृष्णा-युक्त होकर (अपा) जलादि के विकाररूप रुधिरादि से (कृतं) बने (इरिणम्) 'इरा' अन्न के विकार से बने देह को (अव एति) प्राप्त होता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (नः) हमारे (आपित्वे) बन्धु-भाव को (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (नः) हमें (तूयम्) शीघ्र ही (आ गहि) प्राप्त हो और (कण्वेषु) विद्वान् जनों के बीच (सचा) साथ रहकर (सु-पिब) अच्छी प्रकार मोक्ष-आनन्द रस का पान कर।

मन्द॑न्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्द॑वो राधो॒देया॑य सुन्व॒ते ।
आ॒मुष्या॒ सोम॑मपिबश्च॒मू सु॒तं ज्येष्ठं॒ तद्द॑धिषे॒ सहः॑ ॥४॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) दुष्टों के नाशक प्रभो ! राजन् ! (इन्दवः) ऐश्वर्य युक्त जीवगण (त्वा मन्दन्तु) तुझे प्राप्त होकर प्रसन्न हों। (सुन्वते) उपासक तथा (राधो-देयाय) उपहार देने वाले पुरुष के (सोमम्) ज्ञानसरुपन्न, (चमू-सुतम्) उत्तम माता पिता के बीच उत्पन्न जीव को पुत्रवत् (आ-मुष्य) स्वीकार कर, उसका गुरुवत् (अपिबः) पालन कर। तू ही (तत्) उस (सहः) बल को (दधिषे) धारण करने हारा है।

प्र च॑क्रे॒ सह॑सा॒ सहो॑ ब॒भञ्ज॑ म॒न्युमोज॑सा ।
विश्वे॑ त इन्द्र पृतना॒यवो॑ यह्वो॒ नि वृ॒क्षा इ॑व येमिरे ॥५॥३०॥

भा०—वह शत्रुहन्ता स्वामी (सहसा) बल से (सहः) शत्रुओं का पराजय (प्र चक्रे) अच्छी प्रकार करे और (ओजसा) पराक्रम से

(मन्युम् बभञ्ज) शत्रु के क्रोध को तोड़ डाले। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (यह्वो) महान्! (ते) तेरे अधीन (विश्वे) सब (पृतनायवः) सेना-बल और प्रजास्थ मनुष्यों के स्वामी नायक (वृक्षाः इव) वृक्षों के समान भूमि को घेर कर (नि येमिरे) भूमि या राज्य का प्रबन्ध करें। इति त्रिंशो वर्गः॥

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम्।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! (यः) जो (ते) तेरी (उप-स्तुतिम्) स्तुति (आनड्) करता है, वह (सहस्रेण इव) अनेक (यवीयुधा) शत्रु-नाशक बल से (सचते) सम्पन्न होता है, वह (सु-वीर्ये) उत्तम बल के आश्रय पर (पुत्रं) प्रजा को (प्रावर्गं) शत्रु निवारण में समर्थ (कृणुत) बनाता है और (नमः-उक्तिभिः) विनय वचनों से (दाश्नोति) दान करता है।

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥७॥

भा०—हे प्रभो! हम (उग्रस्य) बलवान् (तव) तेरे (सख्ये) मित्रभाव में रहकर (मा भेम) कभी न डरें, (मा श्रमिष्म) कभी न थकें। (वृष्णः ते) उत्तम प्रबन्धक और सुखों के वर्षक तेरे (कृतं) किये (महत्) भारी (अभि-चक्ष्यं) प्रत्यक्ष कार्य को तथा (यदुम्) यत्नशील (तुर्वशम्) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि के अभिलाषी मानव को (पश्येम) देखें।

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब॥८॥

भा०—जैसे (दानः न वृषा) सुखदाता, वीर्यवान् सेक्ता पुरुष

(सव्याम् स्फिग्यं) वाम भाग में रखने वा प्रजोत्पादन योग्य अर्धाङ्गिनी को (अनु वावसे) प्राप्त कर उसके अनुकूल होकर रहता, उसको आच्छादन करता है और वह भी (अस्य न रोषति) उससे रुष्ट नहीं होती न उसको रुष्ट करती है, वैसे ही (वृषा) प्रबन्ध-कुशल, प्रजा पर सुखों का वर्षक, बलवान् (दानः) दानशील, एवं दुष्टों का नाशक पुरुष (सव्याम्) ऐश्वर्य-सम्पन्न वा शासन-योग्य (स्फिग्यं) प्रतिष्ठा-योग्य प्रजाजन को (अनु ववसे) उसके अनुकूल रहकर बसावे, उसकी रक्षा करे। वह प्रजागण (अस्य न रोषति) उसे रोष न दिलावे न उसके प्रति रोष करे। हे ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः! (धेनवः) गौओं के समान वाणियां और भूमियां (सारघेण मध्वा) मधु के समान मधुर दुग्ध और ज्ञान से (सम्पृक्ताः) युक्त हैं। तू (तूयम्) शीघ्र ही (आ इहि) आ, और (आ द्रव) आगे बढ़ और (आ द्रव) आगे बढ़ और (आ पिब) ऐश्वर्य का उपभोग कर।

अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ इदिन्द्र ते सखा।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो! (ते) तेरा (सखा) मित्र (अश्वी) अश्वों का स्वामी, (रथी) रथों का स्वामी (सु-रूपः) उत्तम रूपवान् (गोमान्) इन्द्रियों, वाणियों, भूमियों का स्वामी (इद्) ही हो जाता है। वह (श्वात्र-भाजा वयसा) धनादि से समृद्ध अन्न, बल, आयु से (सदा सचते) सदा युक्त होता और (चन्द्रः) सबको सुखी करने वाला होकर (सभाम् उप याति) सभा को प्राप्त होता है। सभापति वा सभासद् बनता है।

ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु।
निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥१०॥३१॥

भा०—हे (मघवन्) धनों के स्वामिन्! (तृष्यन् ऋष्यः न)

पिपासा मृग जैसे (अवपानम् आगच्छति) जलाशय था घाट को प्राप्त होता और (वशान् अनु पिबति) यथेच्छ पान करता है वैसे ही तू भी (ऋष्यः) दर्शनीय, महान् (तृष्यन्) ऐश्वर्य के लिये तृष्णायुक्त (न) के समान (अव-पानम्) अधीन पालन योग्य राष्ट्र को (आ गहि) प्राप्त कर। (वशान् अनु) अपनी अभिलाषाओं के अनुकूल (सोमं) राष्ट्रैश्वर्य का (पिब) पालन और उपभोग कर। तू (दिवे-दिवे) दिनों-दिन (नि-मेघमानः) नियम से प्रजा पर सुखों का वर्षण करता हुआ मेघवत् उदार होकर (ओजिष्ठं सहः) अति पराक्रम युक्त, सैन्य-बल को (दधिषे) धारण कर।

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥११॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा के 'ध्वर' अर्थात् हिंसन, पीड़नादि को न चाहने वाले सेनापते! राजन्! (त्वं) तू (द्रवय) शत्रु को दूर भगा क्योंकि (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सोमं) राष्ट्र को (पिपासति) पालन करना चाहता है। वह (नूनं) निश्चय से (वृष्णा हरी) बलवान् अश्वों को (उपयुयुजे) रथ में जोड़ता और बल वीर्यवान् स्त्री पुरुषों का (उप युयुजे) परस्पर सम्बन्ध करे। इस प्रकार वह (वृत्रहा) बढ़ते शत्रु तथा विघ्नों का नाश करता हुआ (आजगाम च) आवे।

स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१२॥

भा०—हे राजन्! (यत्र) जिस राष्ट्र में (सोमस्य) तू ऐश्वर्य से (तृम्पसि) तृप्त होता है (सः) वह राष्ट्रवासी प्रजाजन (दाशुरिः) कर आदि देने वाला होकर (स्वयं चित्) स्वयं ही (मन्यते) राष्ट्र-कार्य को समझता है। (ते) तेरे लिये (इदं) यह (अन्नं) अन्न (युज्यं) और सहयोगी बल (सम्-उक्षितम्) अच्छी प्रकार सींचा जावे। (तस्य)

उसको तू (आ इहि) प्राप्त कर और (प्र द्रव) अन्नादि के लिये जल धाराएं प्रद्रवित कर और (प्र द्रव) वेग से शत्रु पर आक्रमण कर और (पिब) राष्ट्र का पालन कर।

रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥१३॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) प्रजा के नाश को न चाहने वाले राष्ट्र के उत्तम पुरुषो! आप (रथेष्ठाय इन्द्राय) रथ पर स्थित शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य (सोतन) उत्पन्न करो। (ब्रध्नस्य अधि) अन्तरिक्ष में जैसे (दाशु-अध्वरम् सुन्वन्तः) वृष्टि, अन्नादि देने वाले सूर्य के जीवनप्रद जलप्रद, यज्ञ करते हुए (अद्रयः) मेघगण (वि चक्षते) दिखाई देते हैं वैसे ही (ब्रध्नस्य अधि) मूल आधार राष्ट्र के ऊपर (दाशु-अध्वरम्) ऐश्वर्यप्रद राजा के प्रजापालक यज्ञ को (सुन्वतः) करते हुए (अद्रयः) शस्त्र-बल के अध्यक्ष जन (वि चक्षते) विविध प्रकार से दीखें।

उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥१४॥

भा०—जैसे (वावाता वृषणा हरी ब्रध्नं इन्द्रम् उप वक्षतः) वेग से जाने वाले वृष्टिकारक वायु और मेघ आकाश में 'इन्द्र', विद्युत् को धारण करते हैं और जैसे (ब्रध्नं वृषणा हरी वावाता ब्रध्नं इन्द्रम् सु उप वक्षतः) बलवान्, वेगवान् दो अश्व प्रबन्ध-कुशल ऐश्वर्य-पति राजा को ढो ले जाते हैं वैसे ही (ब्रध्नं इन्द्रम्) राष्ट्र के प्रबन्धक, सूर्य-तुल्य तेजस्वी पुरुष को (वावाता) वायुवत् वेग से जाने और शत्रु-नाश करने में समर्थ (वृषणा) बलवान्, मेघवत् उदार (हरी) दोनों विद्वानों के वर्ग (अप-सु) राष्ट्र के कार्यों में (उप वक्षतः) धारण करें वा समीप जाकर

उत्तम वचन कहें। हे ऐश्वर्यवन्! (अर्वाञ्चं) शत्रुनाशक सैन्य गण से युक्त (त्वा) तुझको (अध्वर-श्रियः सप्तयः) शत्रुओं से न पराजित होने वालों की वा युद्ध-यज्ञ की शोभा धारण करने वाले, वेग से जाने वाले वीर (सवना इत् उप वहन्तु) नाना ऐश्वर्य तुझे प्राप्त करावें।

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम्।
स शंक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५॥३२॥

भा०—हम (युज्याय) उत्तम पद पर नियुक्त करने के लिये (पूषणं) पोषक (पुरु-वसु) बहुत से ऐश्वर्य और राष्ट्रवासी जनों के स्वामी को (वृणीमहे) वरण करें। हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हे (पुरु-हूत) बहुत से मनुष्यों से स्वीकृत! हे (वि-मोचन) बन्धनों से छुड़ाने हारे! (सः) वह तू (नः) हमें (तुजे) शत्रु के नाश करने और प्रजा को शरण देने तथा (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (धिया) बुद्धिपूर्वक (शिक्ष) उत्तम शिक्षा दे।

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥१६॥

भा०—(भुरिजोः इव क्षुरम्) दोनों बाहुओं में पकड़ कर जैसे छुरे को तेज करते हैं वैसे ही हे राजन्! हे (विमोचन) बन्धनों से छुड़ाने हारे! तू (भुरिजोः) दोनों पालनशील बाहुओं में सुरक्षित कर (नः) हमें (सं शिशीहि) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कर, प्रखर शक्ति वाला बना और (रायः रास्व) ऐश्वर्य दे। (त्वं) तू (यं) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य वर्ग को, या शत्रु को मारने वाले सैन्य को (हिनोषि) सञ्चालित करता है, हे राजन्! (त्वे) तेरे अधीन (नः) हमारा (उस्रियं) गवादि पशु-सम्पदा से युक्त, (तत् वसु) वह धन (सुवेदम्) सुख से प्राप्ति-योग्य, सर्वोत्तम है।

वेमि॑ त्वा पूषन्नृ॒ञ्जसे॒ वेमि॒ स्तोत॑व आघृणे ।
न तस्य॑ वेम्यर॑णं॒ हि तद्व॑सो स्तु॒षे प॒ज्राय॒ साम्ने॑ ॥१७॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक ! (ऋञ्जसे) उत्तम रीति से कार्य करने के लिये मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझे (वेमि) चाहता हूँ। हे (आघृणे) सब ओर से प्रदीप्त, तेजस्विन् ! (स्तोतवे) स्तुति के लिये भी (त्वा वेमि) तुझे चाहता हूँ। हे (वसो) सब में बसने वाले प्रभो ! (अरणं हि तत्) क्योंकि वह रमणीय नहीं है, इसलिये (तस्य न वेमि) उसको मैं न चाहूँ। (पज्राय) विद्वान् (साम्ने) समान व्यवहार वाले श्रेष्ठ पुरुष की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ।

परा॒ गावो॒ यव॑सं॒ कच्चि॑दाघृणे॒ नित्यं॒ रेक्णो॑ अमर्त्य ।
अ॒स्माकं॑ पूषन्नवि॒ता शि॒वो भ॑व॒ मंहि॑ष्ठो॒ वाज॑सातये ॥ १८ ॥

भा०—हे (आघृणे) सर्वत्र प्रकाशमान ! हे (अमर्त्य) मनुष्यों में विशेष ! (कच्चित्) चाहे (गावः) गौवें (यवसम्) चारे को लक्ष्य कर (परा) दूर भी हों तो भी (रेक्णः) वह धन (नित्यं) स्थिर बना रहे। हे (पूषन्)पोषक स्वामिन् ! तू (अस्माकम् अविता) हमारा रक्षक और (शिवः) कल्याणकारक (भव) हो और तू (वाजसातये) ऐश्वर्य के संविभाग बल को प्राप्त करने के लिये (मंहिष्ठः) अति पूज्य (भव) हो।

स्थूरं राधः॑ श॒ताश्वं॑ कुरु॒ङ्गस्य॒ दिवि॑ष्टिषु ।
रा॒ज्ञस्त्वे॒षस्य॑ सु॒भग॑स्य रा॒तिषु॑ तु॒र्वशे॒ष्वमन्महि ॥१९॥

भा०—(दिविष्टिषु) उत्तम दान देने और उत्तम इच्छाओं वाले (रातिषु) दानशील, (तुर्वशेषु) चारों पुरुषार्थों के इच्छुक मनुष्यों के ऊपर (कुरुंगस्य) कर्मकारी समस्त जीवों को प्राप्त उनमें भी व्यापक (राज्ञः) दीप्तियुक्त, (त्वेषस्य) कान्तिमान्, (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शताश्वं) सैकड़ों अश्वों, सूर्यादि, वा भोक्ता जीवों से

सम्पन्न (स्थूरं राधः) बड़े ऐश्वर्य को देखकर हम (अमन्महि) उसका मनन करें।

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥ २० ॥

भा०—(वाजिनः) ऐश्वर्यवान् (काण्वस्य) विद्वान्, राजा के (निर्मजाम्) आते विशुद्ध (गवां) गौओं के (षष्टिं सहस्रा) ६०००० साठ २ हजार के (यूथानि) समूह (अभि-द्युभिः) तेजस्वी (प्रिय-मेधैः) यज्ञ के प्रिय विद्वानों, (धीभिः) बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा (सातानि) अच्छी प्रकार विभक्त हों। उनको (ऋषिः) निरीक्षक पुरुष (अनु निर् अजे) सञ्चालित करे।

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः।
गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥२१॥३३॥७॥

भा०—(वृक्षाः चित्) वृक्ष जैसे वायु के झकोरे से मर्मर ध्वनि करते हैं, वे जैसे (मेहना) वृष्टियुक्त (गां भजन्त) भूमि का सेवन करते हैं और (मेहना अश्वं भजन्त) वृष्टिकारक आशुगामी वायु का सेवन करते हैं वैसे ही (मे) मुझ स्वामी को (अभिपित्वे) प्राप्त होने पर (वृक्षाः चित्) भूमि को वश करके स्थित भूपति भी (अरारणुः) हर्षध्वनि करते हैं। वे (गां) भूमि को (भजन्त) पाते तथा (मेहना अश्वं भजन्त) उत्तम अश्वादि सैन्य को प्राप्त करते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः। इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

[५]

ब्रह्मातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—१–३७ अश्विनौ। ३७–३९ चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ५, ११, १२, १४, १८, २१, २२, २९,

३२, ३३, निचृद् गायत्री। २—४, ६—१०, १५—१७, १९, २०, २४, २५, २७, २८, ३०, ३४, ३६ गायत्री। १३, २३, ३१, ३५ विराड् गायत्री। १२, २६ आर्ची स्वराड् गायत्री। ३७, ३८ निचृद् बृहती। ३९ आर्षी निचृदनुष्टुप्॥ एकोनचत्वारिंशदृचं सूक्तम्॥

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत्।
वि भानुं विश्वधातनत्॥ १॥

भा०—(यत्) जैसे (अरुणप्सुः) अरुण कान्तियुक्त उषा (दूरात् सती) दूर रहकर भी (इह एव) यहां ही, समीप विद्यमान के तुल्य (अशिश्वितत्) जगत् को श्वेत कर देती है और (विश्व-धा) सब प्रकार से (भानुं) कान्ति को (वि अतनत्) फैलाती है वैसे ही (अरुणप्सुः) अरुण कान्तियुक्त, स्वस्थ, (दूरात् सती) दूर देश में रहती हुई भी, सच्चरित स्त्री (इह इव) जैसे यहां ही हो, ऐसे गृहवत् ही (अशिश्वितत्) अपने उज्ज्वल चरित्र से जगत् को शुभ्र करती है और (विश्व-धा) सब प्रकार से (भानुं वि अहनत्) अपनी कीर्त्ति फैलाती है।

नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा।
सचेथे अश्विनोषसम्॥ २॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय, दुष्टों वा शरीरस्थ दोषों के नाशक स्त्री पुरुषो! मुख्य नायको! हे (अश्विना) अश्वों, इन्द्रियों और मन के स्वामी जनो! (नृवत्) दो नायकों के समान आप (मनः-युजा) मन रूप सारथि या अश्व की शक्ति से युक्त (पृथुपाजसा) अधिक बलशाली (रथेन) रथ रूप देह से युक्त होकर (उपसम् सचेथे) अपने चाहने वाले को प्राप्त होओ।

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत।
वाचं दूतो यथोहिषे॥ ३॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न, बल, ऐश्वर्य युक्त प्रजा, सेना और भूमि से उत्पन्न धन के धनी स्त्री पुरुषो! (युवाभ्यां) आप दोनों के लिये (स्तोमाः) उत्तम स्तुतिवचन (प्रति अदृक्षत) प्रत्येक कार्य में दीखें। (यथा दूतः) दूत के समान मैं (वाचं ओहिषे) वाणी को धारण करूं।

पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू।
स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष दोनों (पुरुप्रिया) बहुत को प्रिय, (पुरुमन्द्रा) बहुतों को प्रसन्न करने वाले और (पुरू-वसू) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये हों। उन दोनों को (कण्वासः) विद्वान् लोग (स्तुषे) उपदेश के लिये हों।

मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती।
गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (मंहिष्ठा) अति पूज्य (वाज-सातमा) ज्ञान, अन्न बल के देने वालों में उत्तम (इषयन्ता) उत्तम अन्न की कामना करने वाले (शुभः पती) उत्तम कल्याण कर्म और शुद्ध जल को पालन वा पान करने वाले स्वयं पति पत्नी (दाशुषः गृहम्) ज्ञानादि देने वाले के गृह को (गन्तारा) जाने वाले होओ। इति प्रथमो वर्गः ॥

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम्।
घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों उत्तम विद्वान् और उत्तम विजिगीषु वा विद्यादि के अभिलाषी शिष्यों के स्वामी (दाशुषे) ज्ञानदाता गुरु, आचार्य वा धनप्रद स्वामी की (सु-मेधाम्) उत्तम बुद्धियुक्त (अवि-तारिणीम्) विनाश न होने देने वाली (गव्यूतिम्) वाणियों के सम्मि-

अण होने की यज्ञ क्रिया वा नीति को गोचर भूमि के समान ही (घृतैः उक्षतम्) स्नेहों और घृतादि पवित्र पदार्थों वा (घृतैः) जलों से सींचो, बढ़ाओ, उन्नत करो।

आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः।
यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी जनो! आप दोनों (द्रवत् तूयम्) शीघ्र-शीघ्र ही (नः) हमारे (स्तोमम् उप) उपदेश को प्राप्ति के लिये (श्येनेभिः) उत्तम गति वाले, (आशुभिः) शीघ्रगामी और (अश्वेभिः) अश्वोंवत् प्राण वृत्तियों से (उप यातम्) प्राप्त होओ।

येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना।
त्रीँरक्तून्परिदीयथः ॥ ८ ॥

भा०—(येभिः) जिन वेग-युक्त साधनों से तुम दोनों (तिस्रः दिवः त्रीन् अक्तून्) तीन दिन और तीन रातों में ही (परावतः) दूर २ के देशों और (विश्वानि रोचना) समस्त रुचिकर स्थानों को भी (परिदीयथः) परिभ्रमण कर सको, उन साधनों से हमारे (स्तोमम् उपयातम्) स्तुत्य यज्ञादि कार्य को भी प्राप्त होओ।

उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा।
वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अहर्विदा) दिन को प्राप्त कराने या ज्ञान करा देने वाले उषा सूर्यवत् (अहर्विदा) अविनाशी आत्मा वा दिन-कृत्य के ज्ञाता जनो! आप दोनों (उत) भी (नः) हमारी (गोमतीः इषः) उत्तम वाणियों से युक्त इच्छाओं, भूमियों वा गोरस—दुग्ध, दही घृतादि से युक्त अन्नों (उत सातीः) और सेवनीय सम्पदाओं को प्राप्त करो और (पथः सातये) सन्मार्ग प्राप्त करने और सेवन के लिये (वि सितम्) विविध प्रकार से नियम-बन्धन करो।

आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् ।
वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (नः) हमें (गोमन्तं) गौओं (सु-वीरं) उत्तम वीरों (सुरथं रयिम्) और उत्तम रथों वाला ऐश्वर्य (आ वोढम्) प्राप्त कराओ और (अश्वावतीः इषः) अश्वों वाली सेनाओं को भी (आ वोढम्) रखो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
पिबतं सोम्यं मधु ॥११॥

भा०—हे (दस्रा) दुःखों के नाशक आप दोनों (शुभस्पती) उत्तम गुणों और आचार का पालन करते हुए (वावृधाना) बढ़ते हुए (सोम्यं मधु पिबतम्) ओषधि-रस से युक्त मधु, अन्न, जल का उपभोग करो ।

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः ।
छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥१२॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न, ऐश्वर्य, बल आदि उत्पन्न करने वाली क्रिया, सेना आदि के धनवत् पालने वाले वीर, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे और (मघवद्भ्यश्च) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों के लिये (अदाभ्यम् छर्दिः) न नाश होने योग्य, गृह प्रदान करो ।

नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् ।
मो ष्वन्याँ उपारतम् ॥१३॥

भा०—हे शक्तिमान् सेनापति, सैन्य वर्ग जनो ! (यौ) जो आप दोनों (जनानां ब्रह्म) मनुष्यों के धन, अन्न और राष्ट्र को (नि सु अविष्टम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो वे आप (तूयम् आ गतम्) शीघ्र प्राप्त होओ । (अन्यान्) और विरोधियों को (मो सु उप अरतम्) मत प्राप्त होओ ।

अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः ।
मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥१४॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी जनो ! आप दोनों (धिष्ण्या) उत्तम बुद्धियुक्त और पूज्य आसन वा पदों के योग्य होकर (एतस्य) आदर पूर्वक दिये (अस्य चारुणः मदस्य) इस तृप्तिजनक मधुपर्कादि अन्न का (पिबतम्) उपभोग करो ।

अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥१५॥३॥

भा०—हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा रथी सारथिवत् राजा और सचिव जनो ! आप दोनों (अस्मे) हमारे लिये (शतवन्तं) सौ और (सहस्रिणं) हजार संख्यायुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (आवहतम्) प्राप्त कराओ । वह ऐश्वर्य (पुरु-क्षुं) बहुतों को अन्न देने और बसाने में समर्थ और (विश्वधायसम्) सबका पालक पोषक हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः ।
वाघद्भिरश्विना गतम् ॥१६॥

भा०—हे (नरौ) नायक जनो ! वा स्त्री-पुरुषो ! (मनीषिणः) ज्ञानी लोग (वां) आप दोनों को (पुरुत्र चित् हि) बहुत से कार्यों में (वि-ह्वयन्ते) आदर पूर्वक बुलावें । आप दोनों (वाघद्भिः) कार्य भार उठाने में समर्थ, अश्वों के समान क्षमतायुक्त पुरुषों सहित (आ गतम्) आओ ।

जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरङ्कृतः ।
युवां हवन्ते अश्विना ॥१७॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी राजा और सेना-सभा के अध्यक्ष जनो ! (युवां) आप दोनों को (वृक्त-बर्हिषः) कुशा को काट लाने वाले, चतुर पुरुषों के तुल्य शत्रुओं को काटने वाले (हवि--

-वमन्तः) अन्नादि से समृद्धिमान् (अरंकृतः) उद्योग करने वाले, कर्मण्य जन (हवन्ते) बुलाते हैं ।

अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्य, और विद्यादि में निष्णात विद्वानों के स्वामी जनो ! (अस्माकम्) हमारा (अयं) यह (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके किया (स्तोमः) वचन एवं व्यवहार (युवाभ्यां) आप के लिये (अन्तमः) अति समीप और (वाहिष्ठः) अति सुखदायी (भूतु) हो ।

यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे ।
ततः पिबतमश्विना ॥१९॥

भा०—हे (अश्विना) रथी-सारथिवत्, विद्यावान् एवं राष्ट्रादि के स्वामी जनो ! जैसे (रथचर्षणे आहितः दृतिः) रथ को खैंचने के स्थान पर जल की मशक लटकी रहती है और रथस्थ पुरुष (मधुनः पिबतः) जल का पान और अन्न का भोजन करते हैं वैसे ही (रथ-चर्षणे) रमण योग्य गृहस्थ वा राष्ट्र-कार्य के उठाने के समय भी (वां) आप दोनों के लिये (मधुनः) मधुर अन्न तथा ऐश्वर्य का (यः) जो (दृतिः) पात्र (आहितः) आदर पूर्वक प्रस्तुत किया जावे (ततः) उससे (पिबतम्) जल अन्नादि का उपभोग करो ।

तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे ।
वहतं पीवरीरिषः ॥२०॥४॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) 'वाजिनी' ज्ञानयुक्त बुद्धि, बल-युक्त सेना और ऐश्वर्य युक्त-समृद्धि के स्वामी ! आप दोनों (तेन) उस पूर्वोक्त मधु से पूर्ण पात्र वा शत्रुकर्षक बल से (नः) हमारे (पश्वे) पशुओं,

(तोकाय) सन्तानों और (गवे शं) गौओं की शान्त्यर्थ (पीवरीः इषः) हृष्ट पुष्ट सेनाओं, सम्प्रदाओं को (वहतं) धारण करो, प्राप्त कराओ।

इति चतुर्थो वर्गः ॥

उत नो दिव्या इषं उत सिन्धूँरहर्विदा ।
अप द्वारेव वर्षथः ॥२१॥

भा०—हे (अहर्विदा) दिन के कृत्यों के ज्ञाता प्रधान, गौण जनो ! आप (नः) हमारे लिये (दिव्याः इषः) उत्तम अन्न और विजयिनी सेनाओं (उत) और (सिन्धून्) बहने वाली जल धाराओं और वेगवान् अश्वों को (द्वारा इव) उत्तम साधनों और मार्गों से (अप वर्षथः) दूर तक वर्षाओ और ले जाओ।

कदा वां तौग्र्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥२२॥

भा०—हे (नरा) नायक वरो ! (तौग्र्यः) 'तुग्र', शत्रुओं को मारने में समर्थ पुरुषों में कुशल, स्वामी, सेनापति (समुद्रे) उमड़ते हुए शत्रु सैन्य के बीच (जहितः) आकर (वां) तुम दोनों की (कदा) कब (विधत्) सेवा करे ? [उत्तर] (यत्) जब (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ सैन्य (विभिः) वेगवान् अश्वों से (पतात्) प्रयाण करे ।

युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये ।
शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३॥

भा०—हे (नासत्यौ) सत्य का उपदेश देने और सत्य का विधान करने और कभी असत्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (युवं) आप दोनों (हर्म्ये) उत्तम गृह में रहते हुए (अपि-रिप्ताय कण्वाय) पीड़ित विद्वान् जन को बचाने के लिये (शश्वत्) सदा (ऊतीः दशस्यथः) नाना रक्षाएं, अन्नादि तृप्तिकारक पदार्थ भी प्रदान किया करो ।

ताभिरा यांतमूतिभिर्नव्यंसीभिः सुशस्तिभिः ।
यद्वां वृषणवसू हुवे ॥२४ ॥

भा०—हे (वृषण्-वसू) बलवान् पुरुषों को राष्ट्र में बसाने वाले नायको ! (यत् वां) जब २ मैं आप को (हुवे) पुकारूं, तब २ आप दोनों (ताभिः) इन (नव्यसीभिः) नवीन, उत्तम (सुशस्तिभिः) शासन व्यवस्थाओं और (ऊतिभिः) रक्षा-साधनों सहित (आ-यातम्) प्राप्त होओ ।

यथा चित्कण्वमावंतं प्रियमेधमुपस्तुतम् ।
अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥२५॥५॥

भा०—(यथा चित्) जैसे भी हो वैसे हे (अश्विना) जितेन्द्रिय बलवान् विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप (कण्वम् आ अवतम्) विद्वान् पुरुष की रक्षा करो और आप दोनों (उप-स्तुतम्) प्रशंसनीय (प्रिय-मेधम्) यज्ञ और युद्धादि के प्रिय विद्वान् और वीर पुरुष की रक्षा करो । (शिञ्जारम् अत्रिम्) मधुर शब्द करने और मधुर वचन कहने वाले वाद्य, गान प्रिय, गायक, कवि और उपदेष्टा वर्ग की रक्षा करो । इति पञ्चमो वर्गः ॥

यथोत कृत्व्ये धनेऽशुं गोष्वगस्त्यम् ।
यथा वाजेषु सोभरिम् ॥२६॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् बलवान् स्त्री पुरुषो ! (यथा उत) और जैसे हो वैसे, (कृत्व्ये धने) धन पैदा करने के लिये (अंशुम्) खाने और भोगने योग्य अन्नादि की रक्षा करो और (गोषु) किरणों के प्राप्त्यर्थ और भूमियों को सम्पन्न बनाने के लिये (अगस्त्यम्) स्थावर पर्वत वृक्षों की रक्षा करो । (यथा) जैसे हो वैसे (वाजेषु) ज्ञानों, अन्नों और बलों की रक्षा के लिये (सोभरिम्) उनके उत्तम पालक की रक्षा करो !

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना ।
गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥२७॥

भा०—हे (वृषण्-वसू) बलवान् शासकों को राष्ट्र में बसाने वा उनको धन समझने वाले पुरुषो ! (गृणन्तः) आप के प्रति उपदेश करते हुए हम (वाम्) आप दोनों के (एतावत्) इतने (सुम्नम्) सुखकारी ऐश्वर्य (अतो वा भूयः) वा इससे भी अधिक को (ईमहे) मांगते हैं।

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥२८॥

भा०—हे (अश्विना) वेग से जाने वाले रथ, अग्नि, जल आदि के स्वामी, तत्सम्बन्धी कार्यकुशल विद्वान् शिल्पी जनो ! आप दोनों (हिरण्यबन्धुरम्) सुवर्ण आदि धातु से सुन्दर, (हिरण्याभीशुम्) लोहादि धातु की बनी रोक-थाम वाले (दिवि-स्पृशम्) आकाश, भूमि दोनों को स्पर्श करने वाले दोनों में जाने वाले, (रथं स्थाथः हि) रथ पर विराजो ।

हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः ।
उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! तुम दोनों के (ईषाः) रथ के अग्रखण्ड (रभिः) दृढ़ और (हिरण्ययी) सुवर्णादि उत्तम धातु के बने हों और (अक्षः हिरण्ययः) अक्ष भी लोह के दृढ़ बने हों । (उभा) दोनों (चक्रा) चक्र भी (हिरण्यया) लोह से बने, दृढ़ हों ।

तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् ।
उपेमां सुष्टुतिं मम ॥३०॥६॥

भा०—हे (वाजनीवसू) बलवती सेना, अन्नसम्पदा वाली भूमि के स्वामी जनो ! (तेन) उस पूर्वोक्त रथ से (परावतः चित्) दूर देश से

भी (नः आगतम्) आप लोग हमारे पास आया करो, (इमाम्) इस (मम सु-स्तुतिम्) मेरी उत्तम स्तुति, उपदेशादि श्रवण करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना।
इषो दासीरमर्त्या ॥३१॥

भा०—हे (अमर्त्या) असाधारण मनुष्यो ! आप दोनों (पराकात्) दूर देश से प्राप्त (इषः आ वहेथे) अन्नादि सामग्रियों को लाया करो और (पूर्वीः) पूर्व प्राप्त अन्नों को (अश्नन्ता) भोग करते हुए (दासीः) भृत्यादि प्रजा को भी अन्न सामग्री देते रहो। उसी प्रकार (पराकात्) दूर देशों तक भी (इषः दासीः वहेथे) तीव्र शत्रुनाशक सेनाएं रक्खो।

आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना।
पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥३२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य आचारण न करने वाले, (अश्विना) राष्ट्र, बल के स्वामी जनो ! आप दोनों (पुरु-चन्द्रा) बहुत प्रजा को आह्लादित करने वाले तथा बहुत सुवर्णादि के स्वामी होओ और (नः) हमें (द्युम्नैः) यशों, धनों, (श्रवोभिः) अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों और प्रशंसाओं (राया) और ऐश्वर्य सहित (नः आ उप यातम्) हमारे पास आया करो।

एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः।
अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥३३॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में (प्रुषित-प्सवः) स्निग्ध और परिपक्व भोजन करने वाले, (पर्णिनः) रथों, वाहनों के स्वामी (वयः) पक्षिवत् शीघ्रगामी विद्वान् पुरुष घोड़ों के समान नियुक्त होकर (वां) आप दोनों ही (सु-अध्वरं जनं) उत्तम यज्ञयुक्त प्रजा को (अच्छ आ वहन्तु) भली प्रकार धारण करें।

रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह।
न चक्रमभि बाधते ॥३४॥

भा०—(यः इषा सह वर्तते) जो अन्नादि तथा सैन्य से सम्पन्न है तुम दोनों के (अनु-गायसं) अनुगमन करने योग्य, प्रशंसनीय (रथम्) रमणीय राष्ट्र को (रथं चक्रं न) रथ को चक्र के समान (चक्रं) चक्रवत् पर-सैन्य, अथवा कर्मकर्तृगण (न अभि बाधते) पीड़ित नहीं करें।

हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः।
धीजवना नासत्या ॥३५॥७॥

भा०—हे (नासत्या) नासिका स्थित प्राणों के समान राष्ट्र में विद्यमान प्रमुख स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (धी-जवना) कर्म और बुद्धि में तीव्र वेग होकर (द्रवत्-पाणिभिः अश्वैः रथेन) वेगयुक्त चरणों वाले अश्वों से रथ के समान ही शीघ्र कर्मकारी, सिद्ध हस्त विद्वानों से सज्जित (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णादि से सम्बद्ध उत्तम राष्ट्र सहित हमें प्राप्त होओ। इति सप्तमो वर्गः॥

युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू।
ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥३६॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् पुरुषों को धनवत् पालने वाले राजा सचिव जनो ! (युवं) आप दोनों (मृगं) सिंहवत् बलवान्, (जागृवांसं) जागरणशील, सावधान, पुरुष को (स्वदथः) उत्तम ऐश्वर्य, तथ-पुष्टिकारक भोजन दो। (ता) वे सेनादि के स्वामी आप्त लोग (नः) हमें (इषा) बलवती सेना सहित (रयिम् पृङ्क्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ।

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम्।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनाम् ॥३७॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (मे) मुझ विद्वान् वा राष्ट्र के (नवानाम्) नये-नये (सनीनां) ऐश्वर्यों और ज्ञानों का सदा (विद्यातम्) ज्ञान करते वा प्राप्त कराते रहो। (यथा चित्) जिससे (चैद्यः कशुः) विद्वानों में उत्तम और तेजस्वी पुरुष (उष्ट्रानां) राष्ट्र में बसने और शत्रु को दग्ध करने वाले (शतम्) सैकड़ों प्रजाओं, वीरों, (गोनाम् दशसहस्रा) दस सहस्र पशुओं व भूमियों को (ददत्) दे।

यो मे हिर॑ण्यसन्दृशो दश॒ राज्ञो॒ अमं॑हत।
अ॒धस्प॒दा इच्चै॒द्यस्य॑ कृ॒ष्टय॑श्चर्म॒म्ना अ॒भितो॒ जनाः॥३८॥

भा०—(यः) जो राजा, प्रभु (मे) मुझे (हिरण्य-संदृशः) सुवर्ण या सूर्य के समान दीखने वाले वा हित और रमणीय तत्व ज्ञान को देखने वाले सम्यक्दर्शी (दश राज्ञः) दसों तेजस्वी, राजसभासदों को (मे) मेरे हितार्थ (अमंहत) राष्ट्र को देता है उस (चैद्यस्य) ज्ञानी, सर्वोत्तम पुरुष के (अधः पदाः) अधीन (कृष्टयः) शत्रु पीड़क जन और (अभितः) चारों ओर (चर्मम्नाः जनाः) चर्म, खड्ग आदि के अभ्यासी वीर पुरुष (इत्) अवश्य रहें।

माकि॑रे॒ना प॒था गा॒द्येने॒मे यन्ति॑ चे॒दयः॑।
अ॒न्यो नेत्सू॒रिरोह॑ते भूरि॒दाव॑त्तरो॒ जनः॑ ॥३९॥८॥१॥

भा०—(येन पथा) जिस मार्ग से (इमे चेदयः) ये विद्वान् (यन्ति) जाते हैं (एना पथा) उस मार्ग से (माकिः गात्) कोई जा नहीं सकता। (अन्यः) दूसरा कोई (भूरिदावत्-तरः जनः) बहुत धनादि देने वाला और (सूरिः) विद्वान् भी (नः ओहते) इतना भारादि उठाने में समर्थ नहीं होता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[६]

वत्सः काण्व ऋषिः ॥ १—४५ इन्द्रः। ४६—४८ तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिर्देवताः ॥ छन्दः—१—१३, १५—१७, १९, २५—

२७, २९, ३०, ३२, ३५, ३८, ४२ गायत्री । १४, १८, २३, ३३, ३४, ३६, ३७, ३९—४१, ४३, ४५, ४८ निचृद् गायत्री । २० आर्चीं स्वराड् गायत्री । २४, ४७ पादनिचृद् गायत्री । २१, २२, २८, ३१; ४४, ४६ आर्षी विराड् गायत्री ॥

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥

भा०—(यः इन्द्रः) जो ऐश्वर्य दाता परमेश्वर (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वृष्टि वाले मेघ के तुल्य (इन्द्रः) अन्न जलवत् उत्तम फलों का दाता (पर्जन्यः) सब सुखों-रसों का दाता है, वह प्रभु (ओजसा महान्) बल पराक्रम से महान् है । वह (स्तोमैः) स्तुति वचनों और वैदिक सूक्तोपदेशों से गुरुवत् (वत्सस्य) अधीन बसने वाले शिष्यवत् प्रभु में ही निवास करने वाले एवं बालकवत् प्रिय भक्त की (वावृधे) वृद्धि करता है ।

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२॥

भा०—हे प्रभो ! (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय (पिप्रतः) जगत् को पूर्ण करने वाले तेरी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (यत्) जो (वह्नयः) सूर्यादि और जगत् में अग्निवत् ज्ञान-प्रकाश धारण करने वाले विद्वान् (प्र भरन्त) अच्छी प्रकार प्रजा का पोषण करते हैं वे ही (ऋतस्य वाहसा) सत्य ज्ञान को धारण करने से (विप्राः) सच्चे 'विप्र' विद्वान् हैं ।

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत आयुधम् ॥३॥

भा०—(यत्) जब (कण्वाः) विद्वान् पुरुष, (इन्द्रं) प्रभु को

(स्तोमैः) स्तुति वचनों तथा अधिकारों, पदों से (यज्ञस्य) परस्पर मिलकर करने योग्य देवपूजा, संगतिकरण भावना, दान आदि सत्कर्मों का (साधनन्) साधक, (अक्रत) बना लेते हैं तब वे (आयुधम्) संकटों को पराजित करने वाले आयुध के समान प्रभु को ही (जामि ब्रुवते) अपना बन्धु कहते हैं ।

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥४॥

भा०—(समुद्राय-इव सिन्धवः) नदियें जैसे समुद्र को प्राप्त होने के लिये (नमन्तः) उसकी ओर ही झुकती हैं वैसे ही (विश्वाः विशः कृष्टयः) समस्त प्रजाएं, शत्रु-कर्षक सेनायें और कृषक जन (अस्य मन्यवे) इस प्रभु के ज्ञान की प्राप्ति के लिये उसी के समक्ष (सं नमन्त) झुकती हैं ।

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥५॥९॥

भा०—(इन्द्रः चर्म इव) जैसे शत्रुहन्ता वीर रक्षा-साधन ढाल और शत्रुछेदन-साधन खड्ग को (सम अवर्त्तयत्) अच्छी प्रकार चलाता है तब (अस्य ओजः तित्विषे) उसका पराक्रम चमकता है, वैसे ही (यत्) जब (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् प्रभु (चर्म इव) खड्ग ढाल के तुल्य ही (रोदसी उभे सम् अवर्त्तयत्) प्रजा और शासक वर्ग दोनों को एक साथ संचालित करता है (तत्) तभी (अस्य) उस प्रभु का (ओजः तित्विषे) पराक्रम, तेज चमकता, प्रत्यक्ष सूर्य के प्रकाशवत् दृष्टिगोचर होता है । इति नवमो वर्गः ॥

वि चिद्वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥६॥

भा०—जैसे सूर्य, विद्युत् वा वायु (वृत्रस्य शिरः) मेघ के ऊपर के भाग को (वृष्णिना वज्रेण) वृष्टिकारी विद्युत्-प्रहार से (वि बिभेद) छिन्न-भिन्न करता है, वैसे ही ऐश्वर्यवान् राजा (वृत्रस्य) बढ़ते शत्रु के (शिरः) प्रमुख सैन्य को (वृष्णिना) शस्त्रादि वर्षक (वज्रेण) शत्रु-निवारक (शतपर्वणा) सैकड़ों खंड वाले सैन्य बल से (दोधतः वृत्रस्य) हृदय में भय पैदा करने वाले त्रासकारी शत्रुगण के (शिरः वि बिभेद) शिर या प्रमुख अंग को छिन्न-भिन्न करे ।

इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः ।
अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥७॥

भा०—हम (अग्रेषु) अग्रगण्य विद्वानों के अधीन (विपाम्) वेद-वाणियों में से (इमाः) इन (धीतयः) धारण योग्य वाणी या कर्मों को (अभि प्र नोनुमः) साक्षात् कर अभ्यास करें, अन्यों के प्रति कहें । वे (अग्नेः शोचिः न) अग्निज्वाला के तुल्य (दिद्युतः) प्रकाशक हैं ।

गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः ।
कण्वा ऋतस्य धारया ॥८॥

भा०—(यत्) जो (धीतयः) संकल्प वा कर्म (गुहा सतीः) बुद्धि में विद्यमान रहकर (त्मना) आत्मा के सामर्थ्य से (प्र शोचन्त) प्रकाशित होते हैं उनको (कण्वाः) हम विद्वान् जन (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (धारया) वाणी से (प्र नोनुमः) अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं ।

प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के दाता ! हम (तम्) उस (गोमन्तं रयिम्) गौओं से युक्त सम्पत्ति, इन्द्रियों से युक्त देह और वाणियों से युक्त ज्ञान और (अश्विनम्) अश्वों से युक्त सैन्य बल को (प्र नशीमहि)

अच्छी प्रकार प्राप्त करें। इसी प्रकार हम (पूर्व-चित्तये) सब से पूर्व विद्यमान एवं पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान के लिये (गोमत् ब्रह्म) वाणियों से युक्त ब्रह्म = वेद ज्ञान को (प्र नशीमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करें।

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥१०॥१०॥

भा०—(अहं) मैं जिज्ञासु (इत्) ही (हि) अवश्य (ऋतस्य) वेद-मय सत्य ज्ञान के (पितुः मेधाम्) पितावत् पालक प्रभु वा गुरु की (मेधाम्) ज्ञानवती बुद्धि को (परि जग्रभ) प्रेमपूर्वक ग्रहण करूं और (अहं) मैं (सूर्यः इव) सूर्य के समान (अजनि) होऊं। इत्ये-कादशो वर्गः ॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्।
येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥११॥

भा०—(येन) जिस ज्ञान से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (शुष्मम् इत् दधे) शत्रुशोषक बल को धारण करता है (अहं) मैं भी (प्रत्नेन) पुराने (मन्मना) मनन-योग्य, वेदमय या आत्मज्ञान से (कण्ववत्) मेधावी पुरुष के तुल्य (गिरः शुम्भामि) वाणियों को सुशोभित करूं।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः।
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, प्रभो! आचार्य! (ये) जो यथार्थ ज्ञान के द्रष्टा न होकर (त्वाम् न तुष्टुवुः) तेरी स्तुति नहीं करते हैं (च) और (ये च ऋषयः तुष्टुवुः) जो ज्ञानद्रष्टा होकर स्तुति करते हैं उनसे तू (सु-स्तुतः) उत्तम रीति से स्तुतियुक्त होकर (मम इत्) मुझे अवश्य (वर्धस्व) बढ़ा, ज्ञान से पूर्ण कर।

यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन्।
अपः समुद्रमैरयत् ॥१३॥

भा०—(यत्) जब (अस्य मन्युः) सूर्य या विद्युत् का ताप (वृत्रं) मेघ के (पर्वशः) पोरु २ (वि रुजन्) छिन्न-भिन्न करता है तब (अपः समुद्रम् ऐरयत्) जलों को वह मेघ समुद्र की तरफ प्रेरित करता है वैसे ही (यत्) जब (मन्युः) ज्ञानमय प्रभु वा गुरु (अस्य) इस जीव शिष्य को (वृत्रं) विस्तृत ज्ञान का (पर्वशः विरुजन्) अंश २ खोलकर (अध्वनीत्) उपदेश करता है, तब वह (अपः) अपने कर्म को वा लिङ्ग शरीर को उस (समुद्रम्) प्रभु के प्रति (ऐरयत्) सञ्चालित करे ।

नि शुष्ण॑ इन्द्र धर्णसिं वज्रं॑ जघन्थ॒ दस्य॑वि ।
वृषा॒ ह्यु॑ग्र शृण्वि॒षे ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) सर्वशक्तिमन् ! दुष्टों को भय देने हारे ! तू (वृषा हि) निश्चय से बलवान्, सुखों का वर्षक (शृण्विषे) सुना जाता है । तू (शुष्णे दस्यवि) प्रजाशोषक, कष्टदायी दुष्ट पर (धर्णसिं वज्रं) दृढ़ वज्र (नि जघन्थः) प्रहार कर कि वह दुष्ट कर्म से हटे ।

न द्याव॒ इन्द्र॒मोज॑सा॒ नान्तरि॑क्षाणि व॒ज्रिण॑म् ।
न वि॑व्यचन्त॒ भूम॑यः ॥१५॥११॥

भा०—(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (वज्रिणम्) सर्व-शक्तिमान् प्रभु से (न द्यावः) न प्रकाशमान सूर्य तारे, (न अन्तरिक्षाणि) न अन्तरिक्षगत वायु आदि और (न भूमयः) न भूमिस्थ जल, जन्तु आदि ही (ओजसा) बल पराक्रम से (वि व्यचन्त) अधिक हैं । इत्येकादशो वर्गः ॥

यस्त॑ इन्द्र म॒हीर॒पः स्त॑भू॒यमा॑न॒ आश॑यत् ।
नि तं पद्या॑सु शिश्नथः ॥१६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरी (महीः अपः) बड़ी व्यापक, जगत् की प्रारम्भक प्रकृति की सूक्ष्म मात्राओं को (स्त-

भूयमानः) निष्क्रिय करता हुआ (आशयत्) सर्वत्र प्रसुप्त किये रहता है (तं) उसको तू (पद्यासु) शक्तिरूप क्रियाओं के बीच में (नि शिश्नथः) सर्वथा नष्ट कर देता है। जड़ प्रकृति की जड़ता ही 'वृत्र' है, जो सृष्टि के पूर्व प्रकृति को शिथिल, प्रसुप्त सा रखता है।

य इमे रोदसी मही संमीची समजग्रभीत्।
तामोभिरिन्द्र तं गुहः ॥१७॥

भा०—(यः) जो (इमे) इन (मही) बड़ी (रोदसी) आकाश और भूमि (समीची) परस्पर मिली, स्त्री पुरुषों की श्रेणियों को मेघ वा रात्रिवत् (तमोभिः) अज्ञान-अन्धकारों से (सम् अजग्रभीत्) ग्रस लेता है, हे (इन्द्र) प्रभो ! तू (तं गुहः) उस अज्ञान को लुप्त कर।

य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः।
ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥१८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ये यतयः) जो इन्द्रियों और मन के संयमी (ये च भृगवः) और जो पापों को ज्ञानाग्नि से दग्ध करने या वेद वाणियों को धारने वाले तपस्वी, विद्वान् पुरुष हैं वे (त्वा) तेरी (तुष्टुवुः) स्तुति करते हैं। तू उनकी सुनता है। हे (उग्र) दुष्टों के प्रति भयंकर ! दण्डधर प्रभो ! (मम इत् हवम्) मेरी पुकार भी तू (श्रुधि) सुन।

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम्।
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः पृश्नयः) ये सूर्य, अन्तरिक्ष, भूमि आदि पदार्थ गौओं के तुल्य हैं। (ते) तेरे अधीन होकर (एनम्) इस (आशिरम्) भोगने योग्य (घृतं) क्षरणशील दुग्धवत् जल अन्नादि को (इमाः) ये (दुहते) प्रदान करते और (ऋतस्य) तेज, जल, अन्न,

धन, ज्ञान की (पिप्युषीः) वृद्धि करते हैं। ज्ञान वृद्धि करने से ऋषि भी 'पृश्नि' हैं।

या इ॑न्द्र प्र॒स्व॑स्त्वा॒सा गर्भ॒मच॑क्रिरन् ।
परि॒ धर्मे॑व॒ सूर्य॑म् ॥२०॥१२॥

भा०—(धर्मं इव सूर्यम्) धारण करने वाला मेघमय जल वा वायु जैसे 'सूर्य' के ताप को (गर्भं करोति) भीतर ग्रहण करता है वैसे ही हे (इन्द्र) प्रभो! (याः प्रस्वः) जो जगत् में उत्पन्न करने वाली शक्तियें (आसा) मुख से अर्थात् मुख्य बल से, वा स्तुति द्वारा (त्वा) तुझे (गर्भम् अचक्रिरन्) अपने भीतर शक्तिरूप में धारण करते हैं। इसी प्रकार माताएं भी जो गर्भ में धारण करती हैं वे भी सूर्यवत् तेरे ही उत्पादकांश को भीतर धारण करती हैं। इति द्वादशो वर्गः।

त्वामिच्छ॑वसस्पते॒ कण्वा॑ उ॒क्थेन॑ वावृधुः ।
त्वां सु॒तास॒ इन्द॑वः ॥ २१ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल के पालक! (कण्वाः) विद्वान् (त्वाम् इत्) तुझे लक्ष्य कर (उक्थेन) स्तुति वचनों से (वावृधुः) स्वयं वृद्धि करते हैं। (इन्दवः) भक्ति-रस से द्रवित (सुतासः) जीव, एवं भक्तजन पुत्रवत् (त्वाम्) तुझ पिता को प्राप्त कर स्तुति से (वावृधुः) तेरी महिमा गाते हैं।

तवेदि॑न्द्र॒ प्रणी॑तिषू॒त प्रश॑स्तिरद्रिवः ।
य॒ज्ञो वित॑न्त॒साय्य॑: ॥२२॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामी सूर्यवत्! अनेक शक्तियों के स्वामिन्! (उत) और (प्रणीतिषु) उत्तम उत्कृष्ट नीतियों और रचनाओं में भी (तव इत्) तेरी ही (प्रशस्तिः) उत्तम कीर्त्ति और शासन है। तू ही (यज्ञः) सर्वोपास्य, सर्वदाता (वितन्तसाय्यः) अति विस्तृत महान् है।

आ नं इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमंतीम् ।
उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (नः) हमें (महीम्) बड़ी, पूज्य (इषम्) इच्छा, प्रेरणा, (गोमतीं पुरं न) गवादि सम्पद्‌ युक्त नगरी के समान इन्द्रियों और वाणी से युक्त, पालन पोषण योग्य देह पुरी (उत) और (प्रजां) प्रजा, पुत्रादि और प्राणादि तथा (सुवीर्यम्) उत्तम बलवीर्य (आ दर्षि) देता है ।

उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुंषीष्वा ।
अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ॥२४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (यत्) जो (अग्रे) सबसे पहले (नाहुषीषु विक्षु) मानुषी प्रजाओं में (प्र दीदयत्) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है (त्यत्) वह (आशु-अश्व्यम्) अति शीघ्र अश्व, मन, इन्द्रियादि को वश करने वाला मन, प्राण आदि सामर्थ्य ।

अभि व्रजं न तत्निषे सूरं उपाकचंक्षसम् ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२५॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (यत्) जो तू (नः) हमें (मृडयासि) सुखी करता है वह तू (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाशस्वरूप (उपाक-चक्षसम्) अति समीप, अन्तःकरण में दर्शनीय, गुरुवत् समीप रहकर उपदेष्टा (व्रजं न) शरण वा गमनयोग्य ज्ञान मार्ग को (अभि तत्निषे) विस्तार करता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

यदङ्ग तविषीयस इन्द्रं प्र राजसि क्षितीः ।
महा अंपार ओजंसा ॥ २६ ॥

भा०—(अङ्ग इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू स्वयं ही (तविषीयसे) बलवती सेना के समान आचरण करता है तू स्वयं (क्षितीः)

सब बसी प्रजाओं पर (प्र राजसि) उत्तम राजा के समान है। तू (ओजसा) बल पराक्रम में (महान्) बड़ा और (अपारः) अपार है।

तं त्वां हविष्मंतीर्विश उपं ब्रुवत ऊतयें।
उरुज्रयंसमिन्दुंभिः ॥२७॥

भा०—हे प्रभो ! राजन् ! (हविष्मतीः विशः) उत्तम अन्न आदि देने और उपभोग करने योग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न प्रजाएं (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों सहित (तं) उस (उरु-ज्रयसं त्वा) महान् बल पराक्रम वाले तुझ से (उप ऊतये ब्रुवते) रक्षा के लिये प्रार्थना करती हैं।

उपह्वरे गिंरीणां संङ्गथे चं नदीनांम्।
धिया विप्रों अजयात ॥२८॥

भा०—(गिरीणाम् उपह्वरे) पर्वतों के पास सुरक्षित स्थान में और (नदीनां च संगथे) नदियों के संगम स्थान में (धिया) कर्म और बुद्धि के योग से (विप्रः अजायत) मनुष्य विद्वान् हो जाता है। वैसे ही विद्यार्थी (गिरीणाम् उपह्वरे) ज्ञान के उपदेष्टा गुरुजनों के समीप और (नदीनां च संगथे) ज्ञान-सम्पन्न जनों के सत्संग में रहकर (धिया) कर्म और बुद्धि के योग से (विप्रः) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् (अजायत) होता है।

अतंः समुद्रमुद्वतंश्चिकित्वाँ अवं पश्यति।
यतों विपान एजंति ॥२९॥

भा०—(यतः) जिस कारण से (विपानः) विशेष रूप से पालक वा व्यापक प्रभु (एजति) सब को चला रहा है, (अतः) इस कारण ही वह प्रभु (चिकित्वान्) सर्वज्ञ है और वह सूर्य के समान (उद्वतः) ऊपर के लोकों को और (समुद्रम्) महा सागरवत् प्रवाह से अनादि अनन्त जगत् सर्ग को भी (अव पश्यति) अपने अधीन देखता है।

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् ।
परो यदिध्यते दिवा ॥३०॥१४॥

भा०—(यत्) जो (ज्योतिः) प्रकाश (दिवा) दिन के तुल्य स्वाभाविक रूप से (परः) काल और देश की मर्यादाओं के परे, (इध्यते) प्रकाशित होता है (प्रत्नस्य) सनातन, (रेतसः) सब के सञ्चालक, जल वा वीर्यवत् उत्पादक प्रभु की उस (वासरम्) सबको बसाने वाली ज्योति को (आत् इत्) योग साधनादि के पश्चात् योगीजन (पश्यन्ति) देखते हैं ।

कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् ।
उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥३१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) महान् शक्तिमन् ! (विश्वे) समस्त (कण्वासः) बुद्धिमान् पुरुष (ते मतिं) तेरे दिये ज्ञान और (पौंस्यं) पौरुष युक्त बल, पराक्रम (उतो) और (वृष्ण्यम्) तेरे सुखवर्षी, बलवीर्य, धन धान्यादि को भी (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं ।

इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव ,
उत प्र वर्धया मतिम् ॥३२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (मे) मेरी (इमां) इस (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर तू (मा प्र सु अव) मुझे उत्तम रीति से रक्षा कर, दुःखों और पापों से बचा । (उत) और (मतिम् प्र वर्धय) मेरे ज्ञान, बुद्धि की वृद्धि कर ।

उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः ।
विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥३३॥

भा०—(उत) और हे (प्रवृद्ध) सब से महान् ! हे (वज्रिवः) सर्व शक्तिमन् ! (वयं विप्राः) हम विद्वान् लोग (तुभ्यं ब्रह्मण्या) तेरे उपदेश

किये ज्ञानों, कर्मों को (जीवसे अतक्ष्म) सुखमय जीवन-वृद्धि के लिये करें।

अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः।
इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥३४॥

भा०—(कण्वाः) विद्वान् पुरुष (इन्द्रं) उस सर्वैश्वर्यवान् प्रभु को (अभि अनूषत) लक्ष्य करके स्तुति करते हैं। (यतीः आपः प्रवता न) बहती जलधाराएं जैसे नीचे जाने वाले मार्ग से ही बहती हैं वैसे ही (यतीः) यमनियमों के पालक इन्द्रिय और मन के वशीकर्त्ता (आपः) आप्तजन भी (प्रवता) उत्तम कर्म या मार्ग से (इन्द्रम् अभि अनूषत) प्रभु के समक्ष झुकते हैं। और (मतिः) उनकी बुद्धि और वाणी भी (इन्द्रं वनन्वती) प्रभु का भजन करती हुई स्तुति करती है।

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः।
अनुत्तमन्युमजरम् ॥३५॥१५॥

भा०—(सिन्धवः समुद्रम् इव) जैसे नदियें समुद्र को बढ़ाती हैं वैसे ही (उक्थानि) वेदमन्त्र (समुद्रम्) आनन्द के सागर और (अनुत्त-मन्युम्) सर्वोपरि ज्ञान से युक्त (अजरम्) जरारहित, (इन्द्रम्) प्रभु को (वावृधुः) बढ़ाते हैं। उस की महिमा का विस्तार करते हैं।

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम्।
इममिन्द्र सुतं पिब ॥३६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (हरिभ्यां परावतः) दो अश्वों से जैसे कोई शीघ्र दूर देश से आता है वैसे ही तू (हर्यताभ्याम्) कान्ति-युक्त, (हरिभ्याम्) दुःखों के हरने वाले चिन्मय, आनन्दमय, और क्रियामय रूपों से (परावतः) दृश्यमान जगत की सीमा से परे, अन्य अगम्य दशा से (नः आयाहि) हमें प्राप्त हो, हे प्रभो! (इमं सुतं पिब) उत्पन्न इस जीव-संसार को पुत्रवत् पालन कर।

त्वामिद्वृ॑त्रहन्तम॒ जना॑सो वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
हव॑न्ते॒ वाज॑सातये ॥३७॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) आत्मा को घेरने वाले अज्ञान और दुःख-जनक वासना-पुञ्जों को नाश करने में सर्वोत्तम ! (वृक्त-बर्हिषः) कुशादि को छेदन कर यज्ञ करने वालों के समान वासनामूलों के उच्छेदक उपासना जीव (वाज-सातये) बल, अन्न और ज्ञानैश्वर्य प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हवन्ते) तुझे बुलाते, तुझे उद्देश्य करके आहुति देते हैं ।

अनु॑ त्वा॒ रोद॑सी उ॒भे च॒क्रं न व॒र्त्येत॑शम् ।
अनु॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वः ॥३८॥

भा०—(एतशं चक्रं न) जैसे घोड़े के पीछे २ रथ चक्र-जाता है वैसे ही (उभे रोदसी) दोनों आकाश और पृथिवी (त्वा अनुवर्त्ति) तेरे पीछे २ चल रहे हैं । वैसे ही (सुवानासः) ऐश्वर्यशील या उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) सूर्यादि वा जीवगण (त्वा अनु) तेरे अनुकूल चलते हैं ।

मन्द॑स्वा॒ सु स्व॑र्णर उ॒तेन्द्र॑ शर्य॒णाव॑ति ।
मत्स्वा॒ विव॑स्वतो म॒ती ॥३९॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! तू (स्वः-नरे) सुखमय परम पद को लक्ष्य कर अपने को ले जाने वाले (उत) और (शर्यणावति) पापादि को नाश करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष में (सु मन्दस्व) अच्छी प्रकार आनन्द उत्पन्न करे । (विवस्वतः) विशेष रूप में तेरी परिचर्या करने वाले पुरुष की (मती) बुद्धि में (मत्स्व) आनन्द उत्पन्न कर ।

वा॒वृ॒धा॒न उप॒ द्यवि॒ वृषा॑ व॒ज्र्य॑रोरवीत् ।
वृ॒त्र॒हा सो॑म॒पात॑मः ॥४०॥१६॥

भा०—जैसे (उप द्यवि वावृधानः वृषा वज्री अरोरवीत्) आकाश में बढ़ता हुआ वर्षणशील, विद्युत्-मय मेघ गर्जता है, वह (वृत्र-हा) जल को प्राप्त कर (सोम-पातमः) ओषधि गण का सर्वोत्तम पालक होता है, वैसे (वृषा) सुखवर्षक, संसार प्रबन्धक, (वज्री) सर्वशक्तिमान्, पापादि को वर्जने वाले, ज्ञान-बल-सम्पन्न, (वृत्र-हा) विघ्न और आवरण अज्ञान का नाशक, (सोम-पातमः) ऐश्वर्यों, और जीवों का पालक परमेश्वर (द्यवि) ज्ञानमय, स्वरूप में (उप) हृदय के निकट रहकर (वावृधानः) महिमा प्रकट करता हुआ (अरोरवीत्) उपदेश करता है। इति षोडशो वर्गः ॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥४१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (हि) निश्चय से (ऋषिः) ज्ञानों का द्रष्टा, (पूर्वजाः) पूर्व विद्यमान रहकर सब को उत्पन्न करने वाला, (ओजसा) पराक्रम से (एकः ईशानः) अद्वितीय ईश्वर है, तू ही (वसु) बसे समस्त जीव को (चोष्कूयसे) वश करता, वा ऐश्वर्य देता है।

अस्माकं त्वा सुता उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः ।
शतं वहन्तु हरयः ॥४२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (अस्माकं) हम में से (शतं हरयः) अनेक मनुष्य (वीत-पृष्ठाः) कान्तियुक्त रूप वाले तेजस्वी (त्वा उप) तेरी उपासना करते हुए (सुतान्) नाना ऐश्वर्यों और पुत्रों तथा (प्रयः अभि) अन्न, ज्ञान आदि (अभि वहन्तु) प्राप्त करें, अन्यों को करावें।

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् ।
कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥४३॥

भा०—(कण्वाः) विद्वान् पुरुष (इमां) इस (पूर्व्यास्) पूर्व पुरुषों वा पूर्ण पुरुष की (मधोः घृतस्य) मधुर ज्ञान को बढ़ाने वाले (धियं) बुद्धि और कर्म को (उक्थेन) वेदमन्त्र से (वावृधुः) बढ़ावें समृद्ध करें।

इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः।
इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥४४॥

भा०—(विमहीनां) विविध सूर्य आदि बड़ी शक्तियों के बीच में भी (मेधे) पवित्र यज्ञ में (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रम् इत्) परमैश्वर्यवान् प्रभु को ही (वृणीत) उपास्य जाने। (सनिष्युः) दान देने की कामना वाला, पुरुष भी (ऊतये) रक्षा के लिये (इन्द्रम् इत् वृणीत) परमेश्वर को ही वरे।

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी।
सोमपेयाय वक्षतः ॥४५॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों द्वारा स्तुति योग्य, (प्रियमेधस्तुता) यज्ञ, उपासनादि के प्रेमी पुरुषों द्वारा स्तुत (हरी) ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ दोनों (सोमपेयाय) ओषधि-रसवत् तेरे आनन्द-रस-पान के लिये (अर्वाञ्चं) समीप प्राप्त, साक्षात् (त्वा वक्षतः) तुझे हृदय में धारते हैं।

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे।
राधांसि याद्वानाम् ॥४६॥

भा०—(अहं) मैं (याद्वानां) मनुष्यों के (शतं सहस्रं राधांसि) सौ, और हजार भी ऐश्वर्य (तिरिन्दिरे) उस तीर्णतम, सर्वोपरि ऐश्वर्यवान्, (पर्शौ) सर्वस्रष्टा प्रभु में ही (आददे) प्राप्त करता हूँ।

त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम्।
ददुष्पज्राय साम्ने ॥४७॥

भा०—वह परमेश्वर (पज्राय) प्रार्थना वा ज्ञानार्जन करने वाले, (साम्ने) सब के प्रति समान बुद्धि, समदर्शी पुरुष को (अर्वतां त्रीणि शतानि) तीन सौ गतिशील वर्षों की आयु और (गोनां दशसहस्रा) वेद वाणियों के दश सहस्र मन्त्र, विद्वान् लोग (ददुः) प्रदान करते हैं।

उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राँश्चतुर्युजो ददत्।
श्रवसा याद्वं जनम् ॥४८॥१७॥

भा०—(श्रवसा) श्रवण-योग्य ज्ञान के निमित्त (याद्वं जनम्) यत्नशील मनुष्य को (ककुहः उद् आनट्) सर्वश्रेष्ठ प्रभु उन्नत करता है और वह (चतुर्युजः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों के साथ मनोयोग करने वाली (उष्ट्रान्) नाना पदार्थों की कामना वाले लोगों को (दिवं ददत्) ज्ञानप्रकाश देता हुआ (ककुहः) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (श्रवसा उदानट) ज्ञान द्वारा उन्नत करता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७]

पुनर्वत्सः काण्व ऋषिः। मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ३—५, ७—१३; १७—१९, २१, २८, ३०—३२, ३४ गायत्री। २, ६, १४, १६, २०, २२—२७, ३५, ३६ निचृद्गायत्री। १५ पादनिचृद्गायत्री। २९, ३३ आर्षी विराट् गायत्री। षट्त्रिंशदृचं सूक्तम्॥

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत्।
वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥

भा०—जैसे जब (मरुतः पर्वतेषु वि राजथ) वायुगण मेघों में विशेष विद्युत् दीप्ति उत्पन्न करते हैं तब (विप्रः इषं अक्षरत्) रूप से विशेष जल से पूर्ण मेघ वृष्टि को (त्रिष्टुभम्) पृथिवी के प्रति सेचन करता है। वैसे ही हे (मरुतः) प्राणो! (यत्) जब (विप्रः) पुरुष (त्रिष्टुभम्) तीन कालों में (इषं) अन्न-रस को (प्र अक्षरत्) अच्छी

प्रकार देह में सेचन करता है तब हे प्राणो! तुम (पर्वतेषु) पर्व अर्थात् पोरुओं से युक्त देह के अंगों में (वि राजथ) विराजते हो।

यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम्।
नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥

भा०—जैसे जब (तवषीयवः यामं चिन्वन्ति) बलयुक्त वायुगण अपने जल-संयमन करने वाले, बल को एक साथ लगाते हैं तब (पर्वताः नि अहासत) मेघ निश्चित दिशा में गति करते हैं। वैसे ही (अङ्ग) हे (तविषीयवः) बलवती सेना बनाने के इच्छुक वीरो! आप लोग (यत्) जब (शुभ्रा) शस्त्रादि से सज कर (यामं) सैन्य बल को (अचिध्वम्) सञ्चित करलो तब (पर्वताः) खण्डों से युक्त सैन्यबल के अध्यक्ष जन (नि अहासत) नियमपूर्वक प्रयाण करें।

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः।
धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (पृश्नि-मातरः) प्रबल धारा वर्षक नीहारिका से उत्पन्न (वाश्रासः) गर्जनशील मेघ (वायुभिः इत् ईरयन्त) वायुओं के साथ उठते हैं तब वे (पिप्युषीम् इषं धुक्षन्त) अन्न वनस्पति आदि को बढ़ाने वाली जलवृष्टि करते हैं। ऐसे ही (पृश्निमातरः) भूमि, विद्वान् गुरुओं और विदुषी माताओं के पुत्र (वाश्रासः) उपदेष्टा पुरुष (वायुभिः) वायुवत् बलवान् प्राणों और नेता पुरुषों से युक्त होकर (उद् ईरयन्ते) ऊपर को उठते हैं तब वे (पिप्युषीम्) राष्ट्र को बढ़ाने वाली (इषम्) सेना को (धुक्षन्त) पूर्ण करते हैं।

वर्पन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान्।
यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (मरुतः यद् यामं वायुभिः यान्ति) सजल वायुएं स्थल वायुओं के साथ आकाश मार्ग से जाते हैं तब वे (पर्वतान् प्रवे-

पयन्ति) मेघों को गति देते और (मिहं वपन्ति) वर्षा को बीजवापनवत् भूमि पर डालते हैं। ऐसे ही (मरुतः) प्रचण्ड वात के समान वीर गण (यत्) जब (वायुभिः) वायुवत् बलवान् सैनिकों के साथ (यामं) प्रयाण में गमन करते हैं तब वे (मिहं वपन्ति) शस्त्र-वृष्टि करते हैं और (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़ शत्रुओं को भी (प्रवेपयन्ति) विचलित कर देते हैं। विशेष वृष्टि लाने वाली मानसून वायुएं वेद में 'मरुतः' हैं।

नि यद्यामा॑य वो गि॒रिर्नि सिन्ध॑वो॒ विध॑र्मणे।
म॒हे शुष्मा॑य येमि॒रे ॥५॥१८॥

भा०—वृष्टि लाने वाले सजल वायुगण को (यामाय) रोकने के लिये जैसे (गिरिः = गिरयः) पर्वत या मेघ और (वि-धर्मणे) उनको विशेष रूप से धारण करने व (महे शुष्माय) बड़े वैद्युतिक आदि बल उत्पन्न करने के लिये (सिन्धवः) नदियें और नहरें (नियम्यन्ते) विशेष रूप से बनायी जाती हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीरो ! विद्वानो ! (वः यामाय) आप लोगों के नियन्त्रण और शिक्षण के लिये (गिरयः) उपदेष्टा गुरुजन नियत किये जावें। और (विधर्मणे) विशेष रूप से आप लोगों को दृढ़ रखने और (महे शुष्माय) बड़ी बलवृद्धि के लिये (सिन्धवः नियेमिरे) वेगवान् अश्वों को नियम में रखा जाय। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यु॒ष्मा उ॒ नक्त॑मू॒तये॑ यु॒ष्मान्दिवा॑ हवामहे।
यु॒ष्मान्प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! (नक्तम्) रात्रि के समय (ऊतये) रक्षा के लिये (युष्मान् उ हवामहे) आप लोगों से ही हम प्रार्थना करते हैं। हे वीर पुरुषो ! (युष्मान्) तुम्हें हम (दिवा ऊतये हवामहे) दिन के समय रक्षा करने के लिये प्रार्थना करते हैं और

(अध्वरे प्रयति) यज्ञ के अवसर में (ऊतये हवामहे) रक्षा के लिये बुलावें।

उदु त्ये अ॑रु॒णप्स॑वश्चि॒त्रा यामे॑भिरीरते।
वा॒श्रा अधि॒ ष्णुना॑ दि॒वः ॥ ७ ॥

भा०—जैसे वायुगण, (वाश्राः) शब्द करते हुए (अरुणप्सवः) सूर्य की दीप्तियों को मानो खा जाते हैं, अपने में विलीन कर लेते हैं, (चित्राः) अद्भुत रूप होकर (यामेभिः) वायु मार्गों से (उत् ईरते) उठकर आकाश से जाते हैं वे (स्नुना अधि दिवः) पर्वत शिखर के साथ २ आकाश में चले जाते हैं वैसे ही (त्ये मरुतः) वे विद्वान् और वीर (अरुणप्सवः) तेजोवर्धक पदार्थ का भोजन करने वाले हों, वे (चित्राः) अद्भुत कर्म करने वाले (यामेभिः) रथों से या उत्तम नियम व्यवस्थाओं से (उत् ईरते) उठें, शत्रु पर जा चढ़ें। वे (वाश्राः) गर्जन करते हुए (स्नुना) ऐश्वर्य के साथ ही (दिवः अधि) भूमि पर अधिकार करें।

सृज॑न्ति र॒श्मिमोज॑सा॒ पन्थां॒ सूर्या॑य॒ यात॑वे।
ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे ॥ ८ ॥

भा०—जैसे वायुगण (ओजसा) पराक्रम से (यातवे सूर्याय) जाते सूर्य के (पन्थाम्) मार्ग को प्राप्त कर (रश्मिं सृजन्ति) दीप्ति उत्पन्न करते और (भानुभिः वि तस्थिरे) विद्युत् कान्तियों से विराजते हैं वैसे ही (ते) वे वीर (भानुभिः वि तस्थिरे) कान्तियों से विराजें और (यातवे सूर्याय) प्रयाणकर्ता तेजस्वी पुरुष के (ओजसा) बल से (पन्थां सृजन्ति) मार्ग बनावें।

इ॒मां मे॑ मरुतो॒ गिर॑मि॒मं स्तोम॑मृभुक्षणः।
इ॒मं मे॑ वनता॒ हव॑म् ॥ ९ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! हे (ऋभुक्षणः) बलशाली पुरुषो ! आप लोग (मे इमां गिरम्) मेरी इस वाणी को और (इमां

स्तोमं) इस स्तुत्य वचन को और (मे इमं हवम्) मेरे इस ग्राह्य उपहार वेतनादि को भी (वनत) सेवन करो ।

त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥१०॥१९॥

भा०—जैसे (पृश्नयः) जल वर्षक सूर्य के रश्मि (वज्रिणे) विद्युत् से युक्त मेघ के लिये (त्रीणि सरांसि) तीन तालाबों के तुल्य भूमि, अन्तरिक्ष और बृहदाकाश तीनों से (मधु दुदुह्रे) जल ग्रहण करते हैं। वे ही (उत्सं) ऊपर बहने वाले (उद्रिणम्) जल-युक्त मेघ से (कबन्धम्) जल को (दुदुह्रे) प्रदान करते हैं। वैसे ही (पृश्नयः) विद्वान् जन (वज्रिणे) शक्तिशाली राष्ट्रपति के लिये (त्रीणि सरांसि मधु दुदुह्रे) तीनों लोकों से मधुर ऐश्वर्य प्राप्त करें और उत्तम मेघ, जलाशय तथा (उत्सं) ऊपर से बहने वाले झरने आदि से राष्ट्र के लिये (कबन्धम्) धाराबद्ध जल प्राप्त करें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।
आ तू न उप गन्तन ॥११॥

भा०—हे (मरुतः) जलवर्षी वायुगणों के समान विद्वान्, वीर जनो ! हम लोग (यत् ह वः) जब भी आप लोगों को (सुम्नायन्तः) सुख एवं ज्ञान चाहते हुए (हवामहे) आदर से प्रार्थना करें (आ तु) अनन्तर ही आप लोग (नः उप गन्तन) हमारे समीप प्राप्त हुआ करें। रक्षेच्छुक प्रजाजनों के लिये सिपाही जनों को तुरंत जाना चाहिये ।

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे ।
उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥

भा०—हे (सुदानवः) शोभन दानशील, शत्रुओं का अच्छी प्रकार खण्डन करने वाले (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले ! (ऋभुक्षणः) सत्य

का विवेचन करने वाले वीर, विद्वान् पुरुषो ! हे (प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञान और उत्तम चित्त वाले सदाशय पुरुषो ! (यूयं हि) आप लोग अवश्य (दमे) गृह में, शत्रुदमन के कार्य में (उत) और (मदे) समस्त प्रजाजनों को अन्नादि से तृप्त, सुखी और आनन्दित करने में (स्थ) दत्तचित्त रहो ।

आ नो र॒यिं म॑द॒च्युतं॑ पुरु॒क्षुं वि॒श्वधा॑यसम् ।
इय॑र्ता मरुतो दि॒वः ॥ १३ ॥

भा०—जैसे जलवर्षी वायुगण (मद-च्युतं) तृप्तिदायक (पुरुक्षुं) बहुत-अन्न युक्त (विश्व-धायसम् रयिम्) विश्व-पोषक सम्पदा (दिवः) अन्तरिक्ष से देते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! आप (नः) हमें (मद-च्युतम्) आनन्ददायक (पुरु-क्षुं) बहुतों के निवास-योग्य (विश्व-धायसम्) समस्त प्रजापोषण में समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य (दिवः) भूमि से (आ इयर्त्त) प्राप्त कराओ ।

अधी॑व॒ यद्गि॒री॒णां यामं॑ शुभ्रा॒ अचि॑ध्वम् ।
सु॒वा॒नैर्म॑न्दध्व॒ इन्दु॑भिः ॥ १४ ॥

भा०—जैसे जलवर्षी वायुगण (गिरीणाम् अधि) पर्वतों और मेघों के बीच (शुभ्राः) शुभ्र वर्ण होकर (यामं) पवन के मार्ग का (अचि-ध्वम्) अवलम्बन करते या वायु-मण्डल के जल-राशि का सञ्चय करते हैं, तब (सुवानैः इन्दुभिः) उत्पन्न होते हुए द्रवणशील जलों से (मन्दध्वे) सबको आनन्दित करते हैं । वैसे ही हे वीर पुरुषो ! आप लोग (गिरीणां) पर्वतों के (अधि इव) मानो ऊपर भी (यामं) नियन्ता राष्ट्रपति के आदेश को ही (अचिध्वम्) ग्रहण करो ।

ए॒ताव॑तश्चिदेषां सु॒म्नं भि॑क्षेत॒ मर्त्यः॑ ।
अदा॑भ्यस्य॒ मन्म॑भिः ॥१५॥२०॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (एषां) इन वीर वा विद्वान् पुरुषों में से (अदाभ्यस्य) शत्रुओं से नाश न होने वाले, (एतावतः) ऐसे ही महान् गुणवान् पुरुष से (मन्मभिः) उत्तम स्तुति युक्त वचनों से (सुम्नम् भिक्षेत) सुखप्रद धन और शुभ ज्ञान की याचना करें। निर्गुण अल्प चित्त वाले से ज्ञान, धनादि लेना न चाहे। इति विंशो वर्गः॥

ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः।
उत्सं दुहन्तो अक्षितम्॥ १६॥

भा०—जैसे मरुद्गण (रोदसी धमन्ति) भूमि और आकाश को शब्द से पूरित करते और फिर (वृष्टिभिः अक्षितं उत्सं) वृष्टियों द्वारा अक्षय जल को मेघ में से दोहकर देते हैं। वैसे ही (ये) जो वीर पुरुष (द्रप्सा इव) राष्ट्र के बलवीर्य-रूप होकर (रोदसी) उभय पक्ष की सेनाओं को (धमन्ति) निनादित करते हैं, अग्नि-शस्त्र से आग लगाते हैं वे (अनु) पश्चात् (वृष्टिभिः) बाणवर्षाओं से (उत्सम्) उठने वाले शत्रु का नाशकर स्वयं (अक्षितं) अपराजित राष्ट्र और अक्षय ऐश्वर्य को (दुहन्तः) पूर्ण करते हुए रहते हैं।

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः।
उत्स्तोमैः पृश्निमातरः॥ १७॥

भा०—जैसे (पृश्नि-मातरः) जल-सेचन अर्थात् वर्षण करने वाले मेघों के माता के समान उत्पादक वायुगण (स्वानेभिः वायुभिः उद् ईरते) प्रबल वायु-वेगों से उठते हैं वैसे ही (पृश्नि-मातरः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि, आचार्य वा पृथिवी माता के पुत्र वीर पुरुष (स्वानेभिः) सिंह-गर्जनाओं-सहित (उत् ईरते) उठते हैं, (रथैः उत्) रथों और (वायुभिः उद् उ) वायुवत् प्रबल नायकों और (स्तोमैः उत्) स्तुतियोग्य प्रशंसा-वचनों से (उत् ईरते) उत्साहित होते और विजय करते हैं।

येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् ।
राये सु तस्य धीमहि ॥ १८ ॥

भा०—(येन) जिस साधन से आप लोग (तुर्वशं) शत्रु-नाशक वा हिंसकों के वशकर्त्ता वा चारों पुरुषार्थ के इच्छुक (यदुं) यत्नशील, उद्योगी वर्ग और (येन) जिस उपाय से (धन-स्पृतं) धन के इच्छुक वैश्य वर्ग और (कण्वं) विद्वान् ब्राह्मण वर्ग की (आव) रक्षा करते हो (तस्य) उसी उपाय का हम (राये) ऐश्वर्य लाभ के लिये (सु धीमहि) अच्छी प्रकार धारण और विचार करें।

इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः ।
वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ॥ १९ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील एवं छेदन भेदन के कर्म में कुशल जनो! (वः) आप लोगों की (इमाः इषः) ये जल-वृष्टियों के समान (इषः) सेनाएं (घृतं न पिप्युषीः) जल के समान परस्पर स्नेह और राजा के तेज की वृद्धि करती हुईं (काण्वस्य) विद्वान् पुरुष के (मन्मभिः) सुविचारित वचनों से (वर्धान्) वृद्धि को प्राप्त करें।

क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः ।
ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥२०॥२१॥

भा०—जैसे जल वृष्टि और अन्न देने से वायुगण (सुदानवः) उत्तम दानशील हैं वे (वृक्त-बर्हिषः) अन्तरिक्ष चीर के जाने वाले होते और सबको आनन्दित करते हैं, उनके सम्बन्ध में भी प्रश्न होता है कि उनको (कः ब्रह्मा) कौन महान् शक्तिशाली सञ्चालित करता है। वैसे ही हे (सु-दानवः) उत्तम धन, यशादि देने वाले वीर विद्वान् पुरुषो! आप लोग (वृक्त-बर्हिषः) योग के निमित्त कुशादि काट लाने वाले वा शत्रुओं और अन्तरात्मा से क्रोध कामादि को समूल उच्छिन्न कर शुद्ध

पवित्र होकर (क्व मदथ) कहां २ आनन्द लाभ करते और किस २ स्थान वा अवसर पर अन्यों को आनन्दित करते हो ? (वः) आप लोगों का (कः) कौन (ब्रह्मा) महान् शक्ति वाला, ज्ञानवान् पुरुष (सपर्यति) सत्कार करता है ? इत्येकविंशो वर्गः ॥ उत्तर—

नहिं ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः ।
शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृक्तबर्हिषः) यज्ञशील और शत्रुरहित वीर जनो ! (पुरा) पहिले के समान ही (वः) आप लोगों के (यत् नहि स्म) जो बल नहीं प्राप्त हो उन (ऋतस्य) धन, अन्न और सत्य ज्ञान के (शर्धान्) नाना बलों को (स्तोमेभिः) स्तुति वचनों द्वारा (जिन्वथ) बढ़ाओ ।

समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥ २२ ॥

भा०—जैसे मेघ लाने वाले सजल वायुगण (महती अपः सं दधुः) बहुत भारी जल राशि को धारण करते हैं । (क्षोणी सं दधुः) भूमि पर उन जलों को प्रदान करते वा वे वृष्टि युक्त वायुगण (क्षोणी सं दधुः) भूमि और अन्तरिक्ष को परस्पर सुसम्बद्ध करते हैं वे ही (सूर्यम्) सूर्य की दीप्ति को (सं दधुः) धारण करते हैं और (वज्रं) विद्युत् को भी (पर्वशः) पोरु २, खण्ड २ कर धारण करते हैं वैसे ही (त्ये) वे वीर पुरुष भी (महतीः अपः सम् दधुः) बहुत बड़ी प्रजाओं को धारण करें, (क्षोणी सम्) स्व और पर-राष्ट्र की भूमि को सन्धि द्वारा व्यवस्थित करें, (सूर्यं सं दधुः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा को धारण करें और (पर्वशः वज्रं सं दधुः) सेना की एक २ टुकड़ी का नायक महास्त्र को धारण करे ।

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः ।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ २३ ॥

भा०—जैसे पूर्वोक्त वायुगण (वृत्रं) जल को (पर्वशः) पोरु २ पर (वि ययुः) विशेष रूप से व्यापते हैं। वे (अराजिनः) स्वयं दीप्ति-रहित, श्याम (पर्वतान् वि ययुः) मेघों को भी व्यापते हैं और (वृष्णि) वर्षणशील मेघ पर विशेष (पौंस्यं विचक्राणाः भवन्ति) बल पराक्रम करते हैं वैसे ही वीर लोग (वृत्रं) अपने बढ़ते शत्रु को (पर्वशः वि ययुः) पोरु २, सन्धि २ में व्याप लें, उसके सैन्य दल में घुस जांय (अराजिनः) राजा के विपरीत उच्छृंखल द्रोही (पर्वतान्) अचल शत्रुओं पर भी (वि ययुः) चढ़ाई करें। और (वृष्णि) बलवान् शत्रु पर (पौंस्यं) बल-पौरुष (चक्राणाः) करते रहा करें।

अनु॑ त्रि॒तस्य॒ युध्य॑तः॒ शुष्म॑मावन्नु॒त क्रतु॑म्।
अन्विन्द्रं॑ वृत्र॒तूर्ये॑ ॥ २४ ॥

भा०—जैसे (वृत्रतूर्ये इन्द्रं अनु शुष्मम् क्रतुम् आवन्) मेघ को छिन्न-भिन्न करने के समय वायुगण सूर्य के अनुकूल ही बलयुक्त कर्म करते हैं वैसे ही वीर सैन्य भी (वृत्र-तूर्ये) शत्रु-नाशक संग्राम में (त्रितस्य युद्धयतः) स्व और पर से अतिरिक्त तीसरे बलशाली से लड़ते हुए (इन्द्रम् अनु) सेनापति के साथ (उत) ही (शुष्मम् क्रतुम्) बल, कर्म को (अनु आवन्) प्राप्त करते और बलवान्, क्रियावान् भाग की रक्षा करते हैं।

वि॒द्युद्ध॑स्ता अ॒भिद्य॑वः॒ शिप्राः॑ शी॒र्षन्हि॑र॒ण्ययीः॑।
शु॒भ्रा व्य॑ञ्जत श्रि॒ये ॥ २५ ॥ २२ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! आप (विद्युद्-हस्ताः) विद्युत्-तुल्य चमकीले शस्त्रों को हाथ में लिये और स्वयं (अभिद्यवः) कान्ति युक्त (शुभ्राः) शोभायुक्त वस्त्रालंकार धारण कर (शीर्षन्) शिर पर (हिरण्ययीः) सुवर्ण से सजे सुन्दर लोह आदि के बने (शिप्राः) शिर

बचाने के टोपों को (श्रिये) शोभा के लिये (वि-अञ्जत) विशेष प्रकट करे । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।
द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥२६॥

भा०—जैसे पवन गण (परावतः) दूर विद्यमान (उक्ष्णा) जल-सेचक मेघ के (रन्ध्रम्) छिद्र भाग की ओर (उशनाः) तीव्र कान्ति-युक्त होकर जाते हैं। तब (द्यौः न भिया चक्रदत्) आकाश व पृथिवी भी भय से कांप या गूंज उठती है वैसे ही आप भी (उशनाः) विजय कामना करते हुए हे वीरो ! (यत्) जब (परावतः उक्ष्णः) दूर देश से बलवान् शत्रु के (रन्ध्रम्) मर्म को पाकर (अयातन) प्रयाण करो तब (द्यौः न) मानो पृथिवी और आकाश भी (भिया चक्रदत्) भय से गूंज उठे, कांप उठे ।

आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः ।
देवास उप गन्तन ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! आप (नः) हमारे (मखस्य) यज्ञ-निमित्त (दावने) दान देने के लिये (हिरण्य-पाणिभिः) सुवर्णादि पदाथ को हाथ में लिये (अश्वैः) वेगयुक्त अश्वों से हमारे (उप गन्तन) पास आओ ।

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥ २८ ॥

भा०—जैसे वायुओं के (रथे) वेग में (पृषतीः) जल-सेचन-कर्त्री मेघमालाओं को (प्रष्टिः) तीव्र वायु और (रोहितः) रक्तवर्ण सूर्य (वहति) वहन करता है तब वे भी (यान्ति) गति करते और (शुभ्राः अपः रिणन्) स्वच्छ जल पहुँचाते हैं। वैसे ही (एषां) इन वीरों के (रथे) रथ-समुदाय में (पृषतीः) सेनाएं वा नियुक्त अश्व (प्रष्टिः) शीघ्र चालक

(रोहितः वहति) सारथिवत् सेनापति वहन करे तब ये भी (शुभ्राः) सुन्दर (अपः) जलधारा तुल्य सैन्यधाराओं का सञ्चालन करते हुए (यान्ति) प्रयाण करें।

सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पुस्त्यावति ।
ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (सुषोमे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (शर्यणावति) उत्तम सेना से सुरक्षित, (आर्जीके) धार्मिक निवासियों से वरणीय धार्मिक राजा से शासित (पस्त्यावति) उत्तम प्रजा से सम्पन्न, नगर या देश में (निचक्रया) नीचे लगे चक्रों से युक्त गाड़ियों से (ययुः) जाया-आया करें।

कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् ।
मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥ ३० ॥ २३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो! आप लोग (इत्था) इस प्रकार (हवमानं विप्रम्) स्तुतिशील वा यज्ञकर्त्ता, (मार्डीकेभिः) सुख-जनक वचनों से (नाधमानम्) प्रार्थना करते हुए विद्वान् पुरुष को (कदा गच्छाथ) कब प्राप्त होते हैं? इति त्रयोविंशो वर्गः॥

कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।
को वः सखित्व ओहते ॥ ३१ ॥

भा०—हे (कध-प्रियः) उत्तम कथा, स्तुति, उपदेश आदि से प्रसन्न होने वाले पुरुषो! (यद् इन्द्रम् अजहातन) जो आप लोग शत्रु-हन्ता और संशयच्छेत्ता वीर वा विद्वान् पुरुष वा प्रभु को त्यागते हो ऐसा भला (कद् ह नूनं) क्यों कर हो सकता है? यदि छोड़ दिया करो तो भला (वः सखित्वे) आप लोगों की मित्रता में (कः ओहते) कौन विश्वास करे?

सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः ।
स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (हिरण्य-वाशीभिः) लोह, सुवर्णादि के बने शस्त्रों से सजे, वा हितरमणीय बोलने वाले (वज्रहस्तैः) खड्ग और शस्त्र वर्जन करने वाले चर्म हाथ में लिये उत्तम बल सम्पन्न, (मरुद्भिः) वीरों, विद्वानों के (सह उ) सहित (अग्निम्) ज्ञानवान् नायक पुरुष के (नः सु स्तुषे) हमारे प्रति उत्तम रीति से गुण कथन करो ।

ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुवितायं ।
ववृत्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥

भा०—मैं (वृष्णः) बलवान्, उदार, (प्र-यज्यून्) उत्तम दान-शील (चित्र-वाजान्) अद्भुत बल और ऐश्वर्य के स्वामी जनों से (सुविताय) उत्तम धन प्राप्त करने और (नव्यसे) नये से नये धन प्राप्त करने के लिये (आ ववृत्याम्) प्रार्थना करूं और (नव्यसे सुविताय) स्तुत्य, उत्तम चरित्र शिक्षण के लिये अद्भुत ज्ञानी पुरुषों से प्रार्थना करूं ।

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः ।
पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥

भा०—(चित्) जैसे सजल वायुओं से स्पर्श पाकर (गिरयः नि जिहते) मेघ नीचे उतर आते हैं (पर्वताः चित् नियेमिरे) पर्वत उनको रोक थाम करते हैं वैसे ही (पर्शानासः) उत्तम विद्वानों और वीरों से स्पर्श पाकर (मन्यमानाः) अभिमान युक्त (गिरयः) विद्वान् जन (नि जिहते) विनय से झुकते हैं और (पर्शानासः) पीड़ित होकर (पर्वताः चित्) पर्वतवत् दृढ़, शत्रु भी (नि येमिरे) बांधे जाते हैं, वश किये जाते हैं ।

आच्छायावांनो वहन्त्यन्तरिक्षेण पतंतः ।
धातांर स्तुवते वयः ॥ ३५ ॥

भा०—(अन्तरिक्षेण पततः धातारः यथा वयः वहन्ति) जैसे अन्तरिक्ष से जाते हुए सजल पवन विश्व के पोषक अन्न को प्राप्त कराते हैं वैसे ही (अक्ष्य-यावानः) आंख के इशारे से आगे बढ़ने और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाश मार्ग से जाने वाले, (धातारः) राष्ट्र के धारक, (स्तुवते) स्तोता-प्रजाजन के हितार्थ (वयः वहन्ति) बल, अन्न धारण करते हैं ।

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा ।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६॥२४॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जैसे (पूर्व्यः जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है और वह (अर्चिषा) ज्वाला से (सूरः न छन्दः) सूर्य के समान दीप्तियुक्त होता है और वायुगण (भानुभिः) विद्युत् आदि से (वि तस्थिरे) विविध प्रकार से चमकते हैं वैसे ही (अग्निः) अग्रणी नायक प्रभु (पूर्व्यः जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है । वह ज्ञानदीप्ति से सूर्यवत् सब का उत्पादक और (छन्दः) रक्षक रहा । (ते) वे जीवगण और सूर्य आदि लोक उसी के (भानुभिः) प्रकाशों से (वि तस्थिरे) विविध प्रकारों से रहते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८]

सध्वंसः काण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ९, १२, १४, १५, १८—२०, २२ निचृदनुष्टुप् । ४, ७, ८, १०, ११, १३, १७, २१, २३ आर्षी विराडनुष्टुप् । ६, १६ अनुष्टुप् ॥ त्रयोविंशर्च सूक्तम् ॥

आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम् ।
दस्रा हिरंण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत्, चन्द्रसूर्यवत् सब के हृदयों में व्यापने वाले वा 'अश्व' अर्थात् शीघ्रगामी घोड़ों के समान वेग से विषय मार्गों में दौड़ने वाले इन्द्रियों के स्वामी पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा और ज्ञानों तथा तृप्तिदायक उपायों के सहित (नः) हमें (आगच्छतम्) प्राप्त होओ । आप दोनों (दस्रा) दुःखों का नाश करने वाले (हिरण्य-वर्त्तनी) स्वर्णादि-मण्डित रथ पर आरूढ़, एवं हितकारी, रमणीय मार्ग से जाने वाले, (सोम्यं मधु) ओषधि-रस और उत्तम मधुर अन्न आदि (पिबतम्) प्राप्त करो।

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी-सारथिवद् अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री पुरुषो ! आप (सूर्य-त्वचा) सूर्य तुल्य कान्तियुक्त आवरण वाले, सुन्दर (रथेन) रथ से (नूनं आयातम्) अवश्य आया-जाया करो । आप दोनों (भुजी) सुखों के भोगने और प्रजा को पालने वाले, (हिरण्य-पेशसा) सुवर्ण तुल्य कान्तियुक्त, (कवी) दीर्घदर्शी, (गम्भीर-चेतसा) गम्भीर-चित्त होओ ।

आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) राष्ट्र के स्वामी जनो ! सचिव और नृपति के तुल्य प्रधान पुरुषो ! आप (नहुषः परि) मनुष्य वर्ग से ऊपर (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतिवाणियों-सहित (आयातम्) आया करो और (कण्वानां) विद्वान् पुरुषों के (सवने) यज्ञ में (सुतम्) तैयार किये (मधु) मधुर अन्न, यज्ञ-शेष और ज्ञान आदि (पिबाथः) पान करो ।

आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया ।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् सम्बद्ध स्त्री-पुरुषो ! हे (अध-प्रिया) अपने अधीन सेवक आदि को सुखी रखने वाले, उनके प्रिय पुरुषो ! आप (दिवः परि) भूमि मार्ग से, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से भी (नः आयातम्) हमारे पास प्राप्त होओ । (इह) इस स्थान में (वाम्) आप दोनों को लक्ष्य करके (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान् पुरुष का शिष्य, पुत्र (सोम्यं मधु) विद्वान् पुरुषों के योग्य मधुर अन्न और ज्ञान को (सुषा) प्रदान करे ।

आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥५॥२५॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप लोग (स्तोमस्य) स्तुति, और उपदेश करने योग्य वेद-ज्ञान का (स्वाहा) उत्तम वाणी द्वारा प्रकथन करते हुए और (धीतिभिः) अध्ययन, मनन द्वारा उसकी (वर्धना) वृद्धि करते हुए (प्र यातम्) आगे बढ़ो । हे (कवी) विद्वानो ! हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! आप दोनों (सोमपीतये) ज्ञान और अन्नादि के पालन और उपभोग के लिये (उप-श्रुति) उत्तम ज्ञान-श्रवण के लिये यज्ञ, सभाभवन आदि स्थानों में (नः आयातम्) हमारे पास आओ । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥६॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो ! हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! (वां) आप के (अवसे) ज्ञान के लिये (पुरा) पहले काल में (ऋषयः) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियों ने (यत् चित् हि) जो कुछ भी (जुहूरे) उपदेश किया है और (इमां सुस्तुतिम्) इस उत्तम

स्तुति, उपदेशादि की (उप) प्राप्ति लिये (मम आयातम्) मेरे समीप आइये।

दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता॥ ७॥

भा०—हे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो! आप (दिवः चित् रोचना) सूर्य के समान प्रकाशमान, (रोचनात्) तेजस्वी गुरु से (स्वर्विदा) प्रकाशमय ज्ञान को प्राप्त करके (स्तोमेभिः) वेद के सूक्तों से (हवन-श्रुता) स्वयं ग्रहण करने और अन्यों को देने योग्य ज्ञान का श्रवण करके (धीभिः) बुद्धियों और कर्मों से (वत्स-प्रचेतसा) 'वत्स' अर्थात् उपदेष्टा गुरु के अधीन ज्ञानवान् होकर (अधि नः गन्तम्) हमारे पास आओ।

किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्॥ ८॥

भा०—(अस्मत् अन्ये) हम से अतिरिक्त अन्य विद्वान् भी (स्तोमेभिः) स्तुति-उपदेशों सहित (किम् परि-आसते) क्यों विराजते हैं। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय शिष्य-शिष्याओ! वे सब केवल ज्ञानोपदेश देने के लिये हैं। (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान् पुरुष का पुत्र वा मेधावी परमेश्वर के (पुत्रः = पुरु = त्रायते) बहुत से ज्ञान का रक्षक (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा विद्वान् (वत्सः) अभिवादन करने योग्य एवं विद्या का उपदेष्टा होकर (गीर्भिः) वेद वाणियों से (वाम् अवीवृधत्) तुम दोनों की उन्नति करे।

आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा॥ ९॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी वर्गो! (इह) इस आश्रम में (विप्रः) विद्वान् आचार्य (स्तोमेभिः) वेद के

मन्त्रों से (वां अवसे) आप दोनों को ज्ञान देने के लिये (अह्वत्) उपदेश करे और (ता) वे आप दोनों (अरिप्रा) पाप-रहित और (वृत्रहन्तमा) आवरणकारी अज्ञान के नाशक होकर (नः) हमारे लिये (मयोभुवा भूतम्) सुखदायक होओ।

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥ १०॥ २६ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञान, विद्या और वीर्यरूप धन के धनी स्त्री-पुरुषो ! (यत्) जब तक आप दोनों में से (योषणा) पति से प्रेम करने वाली स्त्री और स्त्री को प्रेम करने वाला पुरुष (रथम् आ अतिष्ठत्) गृहस्थ रूप रमण योग्य आश्रम में प्राप्त होते हो, उससे पूर्व हे (अश्विना) इन्द्रिय, मनरूप अश्वों के स्वामी, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी वर्गो ! आप दोनों (विश्वानि धीतानि = अधीतानि) समस्त अध्ययन योग्य विषयों को (प्र अगच्छतम्) अच्छी प्रकार ग्रहण करो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! जब (वत्सः) विद्या का उपदेष्टा, (काव्यः) विद्वानों में विद्वान् (कविः) क्रान्तदर्शी आचार्य (वां) तुम दोनों को (मधुमत् वचः) मधुविद्या, ब्रह्मविद्या से युक्त प्रवचन, (अशंसीत्) कर चुके (अतः) उसके बाद आप दोनों (सहस्र-निर्णिजा) बहुत प्रकार के बने (रथेन) रथों से (आयातम्) गृह आओ।

पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम्।
स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम् ॥ १२ ॥

भा०—(पुरु-मन्द्रा) बहुत मनुष्यों के प्रसन्नकर्ता (पुरु-वसू)

बहुतों को बसाने वाले, ऐश्वर्यों के स्वामी, (रयीणां) धनों की प्राप्ति, विनिमय आदि का उत्तम ज्ञानी (वह्नी) कार्य-भार-वहन में समर्थ (अश्विनौ) जितेन्द्रिय, वेगवान् अश्व, यान आदि चलाने में कुशल स्त्री-पुरुष वर्ग (इमं मे स्तोमं) मेरे इस स्तुति-वचन को (अभि अनूषाताम्) आदरपूर्वक ग्रहण करें।

आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया।
क्रतुं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे॥ १३॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो! (नः) हमारे (विश्वानि) सब (राधांसि) धनों को आप (अह्रया) बिना संकोच के (आ धत्तम्) धारण करो, और प्रदान करो। आप (नः) हमें (ऋत्वियावतः क्रतुम्) ऋतु २ में करने योग्य यज्ञ से सम्पन्न करो। (नः) हमें (निदे) निन्दक के लाभ के लिये (मा रीरधतं) अपने अधीन मत करो।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना॥ १४॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् मुख्य स्थान पर स्थित वा (न-असत्या) असत्य व्यवहार न करने वाले, आप दोनों (यद्) चाहे (परावति स्थः) दूर देश में होओ (यद् वा) वा (अम्बरे अधि स्थः) समीप में हो हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों के स्वामी जनो! (अतः) वहां से आप लोग (सहस्र-निर्णिजा रथेन) दृढ़ बल युक्त, रथ से (आ यातम्) आया करो।

यो वाँ नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम्॥ १५ ॥२७॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य व्यवहार न करने वाले और नासिकावत् प्रमुख पदों पर स्थित जनो! (यः) जो (वत्सः ऋषिः) उत्तम उप-

द्रेष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुष (वां अवीवृधत्) आप दोनों की वृद्धि करता है (तस्मै) उसके रक्षार्थ आप (घृतश्चुतम् इषम्) घृतयुक्त अन्न के समान (सहस्रनिर्णिजं) हज़ारों पुरुषों से बना, (घृतश्चुतम्) तेजोयुक्त पद, (इषं) सैन्य, वा स्नेह से युक्त इच्छा को (धत्तम्) धारण करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवंद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (वां) तुम दोनों को (सुम्नाय) सुख, शान्ति के लिये (तुष्टवत्) स्तुति, या उपदेश करे, हे (दानुनः पती) दानशील वा दातव्य धन के पालको ! (यः) जो जो (वसूयात्) आप दोनों के सुखार्थं धन चाहे, (अस्मै) उस पुरुष को (युवं) तुम दोनों हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! (घृतश्चुतं) घी, जलादि से युक्त (ऊर्जं प्रयच्छतम्) बलकारक अन्न दे ।

आ नो गन्त रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियों नरेमा दातमभिष्टये ॥ १७ ॥

भा०—हे (रिशादसा) हिंसकों के नाशक जनो ! हे (पुरुभुजा) बहुतों के पालक ! आप लोग (नः आ गन्तं) हमें प्राप्त होओ । और (नः) हमारे (स्तोमं) स्तुत्य वचन का (कृतम्) पालन करो। हे (नरा) नायक स्त्री-पुरुषो (इमाः) ये (सु-श्रियः) उत्तम २ लक्ष्मियां (नः) हमें (अभिष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (दातम्) दो ।

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (प्रिय-मेधाः) यज्ञ के द्वारा अन्न आदि भौतिक तत्वों के सुगन्धादि से पूर्ण, शत्रु वा दुष्ट पुरुषों

की ताड़ना को अच्छा समझने वाले वीर पुरुष (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त विद्या और रक्षा साधनों, सेनाओं सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को स्वीकार करें और आप (अध्वराणां) हिंसारहित यज्ञों और सब को मार्गोपदेश करने वाले कार्यों के बीच (यामहूतिषु) लोगों को चलने के मार्ग तथा उत्तम यमनियमादि व्यवस्था के उपदेश के कार्य में (राजन्तौ) राजावत् चमकते रहो ।

आ नो॑ गन्तं मयो॒भुवा॒श्विना॑ श॒म्भुवा॑ यु॒वम् ।
यो वां॑ विपन्यू धी॒तिभि॑र्गी॒र्भिर्व॒त्सो अवी॑वृधत् ॥१९॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वत्सः) उपदेष्टा, गुरु (विपन्यू) विशेष व्यवहार कुशल, एवं प्रार्थी (वां) आप दोनों को (धीतिभिः) उत्तम कर्मों और (गीर्भिः) वेद वाणियों द्वारा (अवीवृधत्) वृद्धि कराता है उससे उपदिष्ट (युवम्) आप दोनों (मयोभुवा) सुखप्रद और (शंभुवा) शान्तिदायक होकर (नः आगन्तम्) हमें प्राप्त होओ ।

याभि॒ः कण्वं॒ मेधा॑तिथिं॒ याभि॒र्वशं॒ दश॑व्रजम् ।
याभि॒र्गोश॑र्य॒माव॑तं॒ ताभि॑र्नोऽवतं नरा ॥२०॥२८॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो, सेनापति-सभापति आदि जनो ! आप लोग (याभिः) जिन उपायों से (कण्वं) विद्वान् (मेधातिथिम् अवतम्) अन्नादि सत्कार योग्य अतिथि की रक्षा करते और (याभिः) जिन क्रियाओं से (दश-व्रजम्) दशों दिशाओं में जाने वाले मार्गों से युक्त (वशं) वश करने योग्य राष्ट्रजन या मन आदि को वश करते हो, और (याभिः) जिन सैन्यादि से (गो-शर्यम्) 'गो' अर्थात् धनुष की डोरी और 'शर' बाण इनके चलाने में कुशल सैन्य व गो-भूमि के हिंसक, कृषकादि की (आवतम्) रक्षा करते (ताभिः) उनसे ही हे (नरा) नायक पुरुषो ! (नः अवतम्) हमारी रक्षा करो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥ २१॥

भा०—(याभिः) जिन सेना आदि से (कृत्व्ये धने) प्राप्ति-योग्य ऐश्वर्य की रक्षा हेतु (त्रसदस्युम्) दस्युओं को भयभीत करने वाले सिपाही आदि को (आवतम्) रखते हो उनसे ही हे (अश्विना) राष्ट्र के स्वामी जनो ! (वाज-सातये) अन्नादि के लाभ के लिये (अस्मान् सुप्र अवतम्) हमारी भी रक्षा करो ।

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥ २२ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं राष्ट्र के स्वामी जनो ! (स्तोमा) स्तुतियोग्य कार्य और (सुवृक्तयः) उत्तम रीति से पाप से बचाने वाली (गिरः) वाणियां (वां प्रवर्धन्तु) आप दोनों को बढ़ावें। (ता) वे आप दोनों (पुरुत्रा) बहुतों के रक्षक, (वृत्र-हन्तमा) शत्रु और पाप को अच्छी प्रकार नाशक और (नः) हमारे बीच (पुरुस्पृहा बहुतों के प्रेम-पात्र और न्यायपूर्वक स्नेह करने वाले, प्रेमी (भूतम्) होओ ।

त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥२३॥२९॥

भा०—(त्रीणि) तीन (पदानि) प्राप्तव्य विषय (अश्विनोः) विद्वान् स्त्री-पुरुषों की (गुहा) बुद्धि में (परः) सर्वाधिक, उत्तम रीति से (आविः सन्ति) प्रकट होते हैं । उन (ऋतस्य) ज्ञान के (पत्मभिः) तीनों पदों से वे दोनों (अर्वाक) साक्षात् (कवी) क्रान्तदर्शी होकर (जीवेभ्यः परि) जीवों के हितार्थ हों । 'ऋत' सत्याचरण, धर्म, यज्ञ और वेद-ज्ञान के तीन पद ऋक्, सामः, यजुः मन्त्र, गीति और क्रिया; ज्ञान, उपासना और यज्ञ हैं । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[९]

शशकर्णः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६ बृहती । १४, १५, निचृद् बृहती । २, २० गायत्री । ३, २१ निचृद् गायत्री । ११ त्रिपाद् विराड् गायत्री । ५ उष्णिक् ककुप् । ७; ८; १७, १९ अनुष्टुप् । ९ पादनिचृदनुष्टुप् । १३ निचृदनुष्टुप् । १६ आर्ची अनुष्टुप् । १८ विराडनुष्टुप् । १० आर्षी निचृद् पंक्तिः । १२ जगती ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (नूनं) अवश्य ही (वत्सस्य अवसे) बालक, भृत्यादि के रक्षण, वा भोजनादि से तृप्ति के लिये (आ गन्तम्) आया करो । ऐसे ही (वत्सस्य अवसे) उपदेष्टा विद्वान् की रक्षा और उसके ज्ञान और वृद्धि आदि के लिये आया करो । (अस्मै) उसको (पृथु छर्दिः) बड़ा विस्तृत गृह, (अवृकं) छल-कपट-रहित होकर (प्र यच्छतम्) प्रदान करो । (या अरातयः) जो न देने के क्षुद्र विचार हैं उनको (युयुतं) दूर करो ।

यद्न्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषा अनु ।
नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो (नृम्णम्) धन (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (यत् दिवि) जो आकाश में और (यत्) जो (पञ्च मानुषान् अनु) पांचों मनुष्यों के अनुकूल है (तत्) उसे हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं अश्वादि के स्वामी वर्गो ! आप लोग अवश्य (धत्तम्) धारण करो । आकाश में वायु, जल, मेघ, वृष्टि आदि और अन्तरिक्ष में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि, पांचों मनुष्यों के अनुकूल भूमि, पर्वत, नदी, जलाशय आदि ये त्रिविध धन मनुष्य मात्र के सुखप्रद होने से 'नृम्ण' हैं ।

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रांसः परिमामृशुः ।
एवेत्काण्वस्यं बोधतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम स्त्री पुरुषो ! (ये) जो (विप्रासः) विद्वान् पुरुष (वां) आप लोगों के (दंसांसि) नाना कार्यों को (परि मम्रृशुः) करते, उन पर विचार करते हैं, उनका और (कण्वस्य एव इत्) विद्वानों के किये अनुष्ठान आदि का भी (बोधतम्) ज्ञान प्राप्त करो ।

अयं वां घर्मो अंश्विना स्तोमैन परिं षिच्यते ।
अयं सोमो मधुंमान्वाजिनीवसू येनं वृत्रं चिकेंतथः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (वां) आप दोनों का (अयं) यह (घर्मः) तेजोयुक्त सामर्थ्य है जिसको (स्तोमैः) स्तुति योग्य वचनों द्वारा (परिषिच्यते) परिषेक किया जाता, प्रतिष्ठा की जाती है । हे (वाजिनीवसू) बलादि से युक्त क्रिया के धनी जनो ! (अयं मधुमान् सोमः) यह मधुर अन्नादि से युक्त ऐश्वर्य उत्पादक बल है, (येन) जिससे आप दोनों (वृत्रं) जीवन के रोग दुखादि को (चिकेतथ) दूर करने में समर्थ हो ।

यद॒प्सु यद्वन॒स्पतौ॒ यदोष॑धीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेनं माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, उत्तम भोगों को भोगने हारे ! हे (पुरु-दंससा) नाना कर्मों को करने में समर्थ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यत् अप्सु) जो जलों, (यद् वनस्पतौ) जो वनस्पति और (यद् ओषधीषु) जो ओषधि, अन्नादि के प्राप्ति के लिये (कृतम्) यत्न करते हो (तेन) उससे ही (मा अविष्टम्) प्रजावत् मेरी रक्षा करो । इति त्रिंशो वर्गः ॥

यन्नांसत्या भुर॒ण्यथो॒ यद्वां देव भिषज्यथः ।
अयं वां मतिभि॒र्न विन्धते ह॒विष्मन्तं हि गच्छंथः ॥ ६ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले आप दोनों (हविष्मन्तं हि) उत्तम अन्न वाले प्रजाजन की माता-पितावत् (भुरण्यथः) पालन करते हो, (यद्वा) जो आप दोनों (हविष्मतं भिषज्यथः) पवित्र अन्न वाले के ही रोगों को दूर करते हो और (हविष्मतं गच्छथः) उत्तम अन्नादि के स्वामी राष्ट्रवासी जन को तुम प्राप्त होते हो, (अयं) यह (वत्सः) राष्ट्र निवासी जन बालक के समान होकर (मतिभिः) बुद्धियों से (वां) तुम दोनों को (न विन्धते) प्राप्त नहीं कर सकता।

आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ ७ ॥

भा०—(ऋषिः) मन्त्रार्थ द्रष्टा विद्वान् पुरुष (नूनम्) अवश्य ही, (वामया) अपनी उत्तम बुद्धि से (अश्विनोः) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (स्तोमं) स्तुति-योग्य मन्त्रों का उपदेश (आचिकेत) करे। (अथर्वणि) स्थिर, प्रज्ञावान् पुरुष में ही वह अग्नि (घर्मः) तीव्र तेज के समान (मधुमत्तमम्) वा अति मधुर (सोमं) ओषधि रसवत् उत्तम ज्ञान और तेज का (सिञ्चात्) प्रदान करे।

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रिय और मन को वश में रखने वाले आप दोनों! (नूनं) अवश्य ही (रघु-वर्तनिं) लघु अर्थात् वेग से जाने में समर्थ, (रथं) रमणीय रथ पर (आ तिष्ठथः) विराजा करो। (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके (इमे) ये (स्तोमाः) स्तुत्य वचन, (नभः न) आकाश में सूर्य के प्रति किरणोंवत् वा पवनवत् (चुच्युवीरत) प्राप्त हों।

यद॒द्य वां॑ नासत्यो॒क्थैरा॑चुच्यु॒वीम॑हि ।
यद्वा॒ वाणी॑भिरश्विने॒वेत्का॒ण्वस्य॑ बोधतम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (नासत्या) सत्यभाषी, सत्यकर्मा, स्त्री पुरुषो ! (यत् अद्य) जो आज, (वां) आप दोनों के प्रति हम (उक्थैः) उत्तम वचनों सहित (अचुच्यवीमहि) प्राप्त हों और आप दोनों (यद् वा) और (अश्विना इव) 'अश्व', इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय होकर (कण्वस्य इव) विद्वान् पुरुष की (वाणीभिः) वाणियों से (बोधतम्) ज्ञान प्राप्त करो ।

यद्वां॑ क॒क्षीवाँ॑ उ॒त यद्व्य॑श्व॒ ऋषि॒र्यद्वां॑ दी॒र्घत॑मा जु॒हाव॑ ।
पृथी॒ यद्वां॑ वै॒न्यः साद॑नेष्वे॒वेदतो॑ अश्विना चेतयेथाम् ॥१०॥३१॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! अश्व-सैन्यादि के स्वामी, सेनापति आदि पुरुषो ! (वां) तुम दोनों को (यत्) जिससे (कक्षीवान्) कुशल वा अन्यों की बागडोर अपने हाथों रखने वाला पुरुष, (उत) और (यत्) जब (व्यश्वः) विविध या विशेष अश्वों या विद्वानों का स्वामी और (यत्) जिस कारण से (दीर्घतमाः) बड़ी २ आकांक्षाओं वाला, (ऋषिः) दूरदर्शी पुरुष (वां वां) तुम लोगों को (जुहाव) उत्तम उपदेश करे वा उत्तम कार्य के लिये बुलावे और (यद्वा) जिससे तुम दोनों को (वैन्यः) तेजस्वी, यश का इच्छुक (पृथी) बड़े राष्ट्र-ऐश्वर्य का स्वामी (सादनेषु) नाना स्थानों, पदों पर (एव जुहाव इत्) कार्य के लिये बुलावे, (अतः) उससे पूर्व, हे जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप दोनों अवश्य (चेतयेथाम्) ज्ञान प्राप्त करें । एकत्रिंशो वर्गः ॥

या॒तं छ॑र्दि॒ष्पा उ॒त नः॑ पर॒स्पा भू॒तं ज॑ग॒त्पा उ॒त न॑स्तनू॒पा ।
व॒र्तिस्तो॒काय॒ तन॑याय यातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों (नः) हमारे

(तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रादि के हितार्थ (वर्त्तिः यातम्) वृत्ति या वेतनादि प्राप्त करो। आप दोनों (नः) हमारे (छर्दिष्पा. भूतम्) गृहों के रक्षक होवो । (नः परस्पा भूतम्) हमें शत्रु से बचाने वाले होवो। (उत नः जगत्पा तनूपा भूतम्) और हमारे जंगम पशु-सम्पत्ति और हमारे शरीरों के भी रक्षक होवो।

यदिन्द्रे॑ण स॒रथं॑ या॒थो अ॑श्विना॒ यद्वा॑ वा॒युना॒ भव॑थः॒ समो॑कसा।
यदा॑दि॒त्येभि॑र्ऋ॒भुभिः॑ स॒जोष॑सा॒ यद्वा॒ विष्णो॑र्वि॒क्रम॑णेषु॒ तिष्ठ॑थः॥ १२

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वादि के स्वामी, स्त्री पुरुषो! (यत्) जो आप दोनों (इन्द्रेण) शत्रु-विनाशी सेनापति आदि के साथ (स-रथं याथः) रथ के साथ रथ चलाकर प्रयाण करने वा युद्ध-यात्रा करते हो, (यद्वा) अथवा जो आप दोनों (वायुना समोकसा) वायु और वायुवत् बलवान् सेनापति के समान भवन या पद वाले (भवथः) हो जाओ। (यद्) या जो आप दोनों (ऋभुभिः) सत्य-ज्ञान से प्रकाशित (आदित्येभिः) आदित्यवत् तेजस्वी विद्वानों के साथ (स-जोषसा) समान-प्रीति-युक्त होवो (यद् वा) या तुम दोनों (विष्णोः) बलशाली राजा के (विक्रमणेषु) विशेष विक्रम के कार्यों में (तिष्ठथः) उच्चासनों पर विराजो, यही आदर्श, कर्त्तव्य और अधिकार है।

यद्द्याश्विना॑व॒हं हु॒वेय॒ वाज॑सातये।
यत्पृ॒त्सु तु॒र्वणे॒ सह॒स्तच्छ्रेष्ठ॑म॒श्विनो॒रवः॑॥ १३॥

भा०—और (यत्) जो (अद्य) आज मैं (अश्विनौ) जितेन्द्रिय और अश्वादि के नायकों को (वाज-सातये) ऐश्वर्यादि-प्राप्ति के लिये सदावत् (हुवेय) बुलाया करूं। (यत्) क्योंकि जो (पृत्सु) संग्राम में (तुर्वणे) शत्रु-नाश करने में (सहः) शत्रु-पराजयकारी बल है (तत्) वही (अश्विनोः) उन अश्वादि के स्वामीजनों का (श्रेष्ठं अवः) श्रेष्ठ बल है।

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (तुर्वशे) चतुवर्गों की कामना वाले और (यदौ) यत्नशील, राष्ट्र प्रजाजन और (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के (अधि) बीच (वाम्) तुम दोनों को (इमे सोमासः) ये नाना बल, अधिकार, ऐश्वर्य प्राप्त हों और (नूनं) अवश्य ही (इमा) ये (हव्यानि) ग्रहण योग्य ऐश्वर्य, अन्न (वां हिता) आप लोगों के लिये नियत हैं, आदर से (आ यातम्) आओ और स्वीकार करो ।

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥१५॥३२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य ज्ञान से रहित, ज्ञानवान् पुरुषो ! (यत् भेषजम् पराके) रोगादि नाशक जो पदार्थ दूर देश में हो वा जो (अर्वाके अस्ति) समीप स्थान में हो (तेन) उससे हे (प्र-चेतसा) उत्तम ज्ञान और चित्त वाले जनो ! (वत्साय) पुत्रवत् राष्ट्र में बसे प्रजाजन के उपकारार्थ (वि-मदाय) विशेष आनन्द लाभ के लिये (नूनं) अवश्य (छर्दिः यच्छतम्) आवास प्रदान करो । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
अयावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१६॥

भा०—मैं (अश्विनोः) दिन रात दोनों में (देव्या) प्रकाशमान उषा के समान कान्तियुक्त और स्त्री पुरुषों में से (देव्या) गुणवती विदुषी के समान (अश्विनोः) विद्या के पारंगत स्त्री पुरुषों की (वाचा) वाणी से (प्र अभुत्सि) उत्तम रीति से प्रबोध, ज्ञान, जागृति को प्राप्त होऊं । हे (देवि) विदुषि ! हे वाणि ! तू (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ

(मतिं वि आ आवः) उत्तम सुमति, ज्ञान विशेष प्रकट कर और (रतिं वि) दान भी विविध दे।

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि।
प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥१७॥

भा०—हे (उषः) प्राभातिक कान्ति के समान शोभित हे (देवि) विदुषी ! ज्ञान का प्रकाश देने वाली ! दानशीले ! हे (सुनृते) उत्तम ज्ञान से युक्त ! हे (महि) पूज्ये ! जैसे उषा सब को जगाती है वैसे ही तू भी (प्र प्र बोधय) ज्ञानोपदेश से जगा। हे (यज्ञ-होतः) यज्ञ में होता के समान गृहस्थ तू भी (आनुषक्) निरन्तर (प्र बोधय) ज्ञान का उपदेश कर। (मदाय) आनंद प्राप्ति के लिये (बृहत् श्रवः) बहुत अन्न और बड़े उत्तम, श्रवण-योग्य वेदोपदेश देकर सबको ज्ञानवान् कर।

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८॥

भा०—हे (उषः) कांतिमति ! विदुषि ! तू जब प्राभातिक सूर्य की दीप्ति के तुल्य (भानुना) प्रकाश के साथ (यासि) गमन करती है और (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (सं रोचसे) युक्त होकर अच्छी लगती है तभी (अश्विनोः) आप दोनों जितेन्द्रिय वर, वधू का (अयम्) यह (रथः) रमणीय सुंदर गृहस्थ रथ, (नृपाय्यं वर्त्तिः याति) मनुष्य-मात्र के पालक गृह अर्थात् प्रजापति पद या मार्ग की ओर गति करता है।

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥१९॥

भा०—जैसे (गावः ऊधभिः दुह्रे) गौवें स्तन-मण्डलों से दूध देती हैं वैसे ही (यत्) जब (आपीतासः) ईषत् पिंगल वर्ण के, वा ज्ञान

का पान किये हुए (दुह्रे) प्रदान करते और (देवयन्तः) प्रभु की कामना करते हुए (प्र अनूषत) वाणियों का उच्चारण करते हैं उस समय हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों उसका लाभ लो।

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे ।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥२०॥

भा०—हे (प्र-चेतसा) उत्तम चित्त और ज्ञान वाले जनो ! आप दोनों (द्युम्नाय) उत्तम ऐश्वर्यं, (शवसे) बल और (नृ-षाह्याय) सब शत्रु-नायकों को पराजय करने, (शर्मणे) शत्रुहिंसक बल और प्रजा को शांतिदायक शरण देने और (दक्षाय) बल और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (प्र प्र प्र प्र) सदा उत्तम से उत्तम मार्ग पर आगे बढ़ो।

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥२१॥३३॥

भा०—(यत्) जब हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (नूनं) निश्चय से (धीभिः) उत्तम कर्मों (यद्वा) और जब (सुम्नेभिः) सुख-जनक कार्यों से (पितुः योना) माता पिता गुरु के गृह में (निषीदथः) रहते हो तब आप दोनों (उक्थ्या) प्रशंसा योग्य हो जाते हो। इति त्रयोत्रिंशो वर्गः ॥

[१०]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ आर्ची स्वराड् बृहती। २ त्रिष्टुप्। ३ आर्ची भुरिगनुष्टुप्। ४ आर्चीभुरिक् पंक्तिः। ६ आर्षी स्वराड् बृहती। षडृचं सूक्तम् ॥

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः ।
यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥

भा०—(यत्) यदि तुम दोनों (दीर्घ-प्र-सद्मनि) बड़े भवनों वाले

नगर में (स्थः) होवो, (यद्वा) या चाहे आप दोनों (अदः) इस दूरस्थ (दिवः रोचने) पृथिवी के क्रीड़ा, विनोदयुक्त किसी रुचिकर स्थान में होवो (यद्वा) अथवा चाहे (समुद्रे) जल या समुद्र के द्वीपादि में (अधि स्थः) हो, तो भी हे (अश्विना) वेग से चलने वाले साधनों से सम्पन्न जनो! आव (अतः आ यातन्) वहां से आया जाया करो।

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम्।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा ॥२॥

भा०—(यद्-वा) और जब आप दोनों (मनवे) मनुष्य-मात्र के हितार्थ (यज्ञं सं मिमिक्षथुः) यज्ञ को मिलकर एक साथ करो, (एव इत् काण्वस्य बोधतम्) तब भी विद्वानों को उसका ज्ञान करा दिया करो। (बृहस्पतिम्) बड़े राष्ट्र और वेद के पालक और (विश्वान् देवान्) समस्त मनुष्यों, विद्यार्थियों और (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् राजा, सामर्थ्य के सेनापति दोनों को और (आशुहेषसा) शीघ्र ध्वनि करने वाले (अश्विना) अश्वारोही, जितेन्द्रिय जनों को (अहं हुवे) मैं बुलाऊं कि वे यज्ञ में आवें।

त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥३॥

भा०—(त्या अश्विना नु हुवे) मैं उन दोनों जितेन्द्रिय, गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को निमन्त्रित करूं जो (सु-दंससा) उत्तम कर्मों का आचरण वाले और (गृभे कृता) गृह में एकत्र पति पत्नी बने हों, (ययोः) जिन में (नः सख्यं प्र अस्ति) हमारा सौहार्द हो और (ययोः) जिनका (आप्यं) बन्धुभाव (देवेषु) विद्वानों में (प्र अस्ति) उत्तम हो।

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥४॥

भा०—(ययोः अधि) जिन दोनों स्त्री पुरुषों पर (यज्ञाः) यज्ञ, उत्तम कर्म और (असूरे) सूर्यरहित, अन्धकार युक्त काल या देश में भी (ययोः अधि) जिन के अधीन या जिन पर (सूरयः) विद्वान् जन आश्रित हैं, (या) जो दोनों (स्वधाभिः) अन्नों सहित (सोम्यं मधु पिबतः) ओषधि-रस युक्त मधुर जल, मधु आदि पदार्थ पान करते हैं (ता) वे दोनों (प्र-चेतसा) उत्तम विद्वान्, शुभ-चित्तवान् होकर (अध्वरस्य यज्ञस्य) हिंसा रहित वा अक्षय यज्ञ के (स्वधाभिः) अन्नों से करने वाले हों।

यद्द्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।
यद्द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥५॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यद् अद्य) जो तुम दोनों (अपाग्) पश्चिम में या (यत्) जो (प्राक्-स्थः) पूर्व में भी होवो, हे (वाजिनीवसू) विद्या और बल युक्त क्रिया से सम्पन्न विद्वानो ! (यद्) यदि तुम दोनों (द्रुह्यवि) परस्पर द्रोही जनों में, (तुर्वशे) हिंसक जनों में और (अनवि) छोटे या अप्रसिद्ध जनों में या (यदौ) यत्नशील, श्रमी जनों में भी होवो तो मैं (अद्य) आज ही, (हुवे) सादर निमन्त्रित करूं। (अथ) और तुम दोनों (मा गतम्) मुझे प्राप्त हो।

यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु ।
यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना ॥६॥ ३४ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों और यन्त्रों के जानने और बनाने वाले शिल्पकार जनो ! (यत्) जो आप दोनों (पुरु-भुजा) बहुतों को पालने में समर्थ होकर (अन्तरिक्षे पतथः) अन्तरिक्ष मार्ग से गमन करते हो, (यद् वा) और जो आप दोनों (इमे रोदसी अनु पतथः) इन आकाश और पृथिवी दोनों में विचर सकते हो (यद् वा) और जो आप दोनों (स्व-धाभिः) स्वयं अपने आप धारण करने में समर्थ

शक्तियों से (रथम्) वेग से चलने वाले यन्त्र पर (अधि तिष्ठथः) विराजित हो वे आप दोनों (अतः आयातम्) हमारे पास आया करो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[११]

वत्सः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवताः ॥ छन्दः—१ आर्ची भुरिग्गायत्री। २ वर्धमाना गायत्री। ३, ५—७, ९ निचृद् गायत्री। ४ विराड् गायत्री। ८ गायत्री। १० आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने व्रत॒पा अ॑सि दे॒व आ मर्त्ये॒ष्वा। त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! व्यापक! तेजःस्वरूप सत्यार्थ प्रकाशक! राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (व्रत-पाः असि) व्रतों, सत्कर्मों, अन्नों का पालक है। (मर्त्येषु आ) मनुष्यों में भी तू (देवः) सुखों का दाता, दीप्तिमान् है। (त्वं) तू (यज्ञेषु) यज्ञों में (ईड्यः) स्तुति योग्य, पूज्य, चाहने योग्य है।

त्वम॑सि प्र॒शस्यो॑ वि॒दथे॑षु सहन्त्य। अग्ने॑ र॒थीर॑ध्व॒राणा॑म् ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (सहन्त्य) शत्रु-पराजयकारिन्! (त्वम्) तू (विदथेषु) यज्ञों, संग्रामों, ज्ञान लाभ के अवसरों में (प्रशस्यः असि) प्रशंसनीय और उपदेश करने योग्य है। तू ही (अध्वराणाम्) यज्ञों और सन्मार्ग, मोक्ष मार्ग में जाने वालों में (रथीः) रथवान् के समान मार्ग पार करा देने और लक्ष्य तक पहुँचाने हारा है।

स त्वम॒स्मदप॒ द्विषो॑ युयो॒धि जा॑तवेदः। अदे॑वीरग्ने॒ अरा॑तीः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! तेजस्विन्! हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता! व्यापक प्रभो! विद्वन्! (त्वं) तू (सः) वह (द्विषः) द्वेष करने वालों और द्वेष-योग्य क्रोधादि अन्तः-शत्रुओं, और (अरातीः अदेवीः) शुभ गुणों से रहित दान या उचित अधिकारों को

न देने वाले प्रभावों, वृत्तियों और वाणियों को भी (अस्मत् अप युयोधि) हम से दूर कर ।

अन्ति चित्सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः ॥४॥

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त पदार्थों को जानने हारे प्रभो ! हे विद्वन् ! (रिपोः मर्त्तस्य) पापी पुरुष के (अन्ति चित् सन्तं यज्ञं) अति समीप विद्यमान यज्ञ को (नु उप वेषि) प्राप्त नहीं होता, नहीं स्वीकार करता । तू शत्रु भावना वाले मनुष्य के यज्ञ, पूजा, दान स्वीकार नहीं करता ।

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः ५।३५

भा०—हे प्रभो ! (जात-वेदसः) उत्पन्न पदार्थों में व्यापक, सर्वज्ञ (ते) तुझ (अमर्त्यस्य) अविनाशी के (भूरि नाम) बहुत नामों से हम (मर्त्ताः) मनुष्य, (मनामहे) तेरी स्तुति करते हैं ।

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६॥

भा०—हम (विप्रासः मर्त्तासः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (अवसे) रक्षा, ज्ञान, आत्मसंतोष, प्रीति सुखादि और (ऊतये) तुझे प्राप्त होने के लिये (विप्रं) विविध ऐश्वर्यों के पूरक (देवं) प्रकाशमान (अग्निं) ज्ञान-स्वरूप की हम (गीर्भिः) नाना वेदवाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं ।

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप ! (वत्सः) तेरी स्तुति करने हारा पुत्रवत् प्रिय (परमात् चित् सधस्थात्) परम उत्कृष्ट तेरे साथ एकत्र रहने की स्थिति से (ते) तुझे प्राप्त करने के लिये (त्वां-कामया गिरा) तुझे चाहने वाली, वाणी से (मनः) मन को (आ यतम्) सब ओर से रोके ।

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः ।

समत्सु त्वा हवामहे ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो ! राजन् ! तू (पुरुत्रा) बहुत से स्थानों में भी सूर्यवत् (सदृङ् असि) एक समान सबको देखने और दीखने हारा, सर्वत्र एक रस है। तू (विश्वाः विशः अनु) समस्त प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह करने हारा, (प्रभुः) सर्वोत्तम शासक है। (त्वा) तुझसे ही (समत्सु) हर्ष के अवसरों और युद्धों में भी (हवामहे) प्रार्थना करते हैं।

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे। वाजेषु चित्रराधसम् ॥९॥

भा०—हम (समत्सु) संग्राम में और एक साथ मिलकर आनन्द के अवसरों में और (वाजेषु) ऐश्वर्यों, ज्ञानों, अन्नों के निमित्त (चित्र-राधसम्) अद्भुत धन के धनी, (अग्निम्) सर्वव्यापक, अग्रणी, ज्ञान-स्वरूप प्रभु की (अवसे) पालन, ज्ञान आदि के लिये ही (वाजयन्तः) ऐश्वर्य ज्ञानादि की कामना करते हुए हम लोग (हवामहे) स्तुति करते हैं।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व १०।३६।८।५

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ! सबसे पूर्व विद्यमान ! (हि) जिससे तू (प्रत्नः) पुराना, अनादि काल से विद्यमान (ईड्यः कम्) स्तुति योग्य अध्वरेषु) अविनाशी पदार्थों और यज्ञों में स्तुत्य है, तू (नव्यः च) सदा नवीन और (सनात् च) सनातन काल से (होता) सर्व सुखदाता होकर (सत्सि) विराजता है। तू (स्वां च तन्वं) अपनी ही विस्तृत सृष्टि को (पि प्रयस्व) पालन और तृप्त कर और (अस्मभ्यं च) हमें भी (सौभगम् आ यजस्व) उत्तम ऐश्वर्य दे । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति पञ्चमोऽष्टकः समाप्तः

अथ षष्ठोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

[१२]

पर्वत: काण्व ऋषि: ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८, ९, १५, १६, २०, २१, २५, ३१, ३२ निचृदुष्णिक् । ३—६, १०—१२, १४, १७, १८, २२—२४; २६—३० उष्णिक् । ७,१३,१९ आर्षीविराडुष्णिक् । ३३ आर्ची स्वराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्य१त्रिणं तमीमहे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! ज्ञानवन् ! (यः) जो तू (सोम-पातमः) ऐश्वर्य, जगत् वा राष्ट्र-प्रजा की पुत्रवत्, ओषधि, वनस्पति आदि को मेघ वा सूर्यवत् उत्तम रीति से पालन करने वाला, (मदः) सबको प्रसन्न करने वाला होकर (चेतति) सबको ज्ञान देता है और (येन) जिस कारण से तू (अत्रिणं) प्रजा के नाशक का (नि हंसि) नाश करता है, अतः (तम्) उस तुझको हम लोग (ईमहे) प्राप्त होते ।

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिससे हे प्रभो ! राजन् ! तू (दशग्वम्) 'दशगु' दस भूमि, या दस ग्रामों के स्वामी को और (अध्रिगु- अध्रिगुं) इससे भी अधिक भूमियों के स्वामी को और (स्वः-नरं) सबके नेता, सुखों वा ज्ञानोपदेश देने वाले विद्वान् को और (वेपयन्तं) शत्रुओं को कंपाने वाले को और (येन) जिस कारण से तू (समुद्रम्) समुद्रवत् अपार

प्रजाजन और सैन्य बल को (आविथ) रक्षा करता, प्राप्त करता है इससे हम सब (तम्) उस तुझको (ईमहे) प्राप्त होते, तुझसे प्रार्थना करते हैं।

येन॒ सिन्धुं॑ म॒हीर॒पो रथाँ॑ इव प्रचो॒दय॑: ।
पन्था॑मृ॒तस्य॒ यात॑वे॒ तमी॑महे ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिस कारण तू हे भगवन्! (रथान् इव) रथों रथारोही वीरों, (सिन्धुम्) अश्व-सैन्यों, (महीः) भूमिवासिनी प्रजाओं और (अपः) आप्त जनों को राजावत् उत्तम मार्ग में चलाता है और तू (सिन्धुं) महान् समुद्र, (महीः अपः) भूमियों और जलों को (प्रचोदयः) उत्तम उद्देश्य के लिये प्रेरित कर रहा है, अतः (ऋतस्य पन्थाम् यातवे) सत्य के मार्ग पर चलने के लिये (तं) उसी तुझ को हम (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

इ॒मं स्तोम॑म॒भिष्ट॑ये घृ॒तं न पू॒तम॑द्रिवः ।
येना॒ नु स॒द्य ओज॑सा व॒वक्षि॑थ ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रभो! (येन) जिस (ओजसा) भारी पराक्रम से तू (सद्यः) सब दिनों महान् राजा के तुल्य (ववक्षिथ) जगत् को धारण कर रहा है, उससे तू सबसे महान् है, हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्तिशालिन्! अतः हम (अभिष्टये) स्व आभिलषित फल प्राप्त करने के लिये (घृतं न पूतं) पवित्र जल के तुल्य स्वच्छ, तृप्ति, सुख, आरोग्यकारक और पवित्र तेज के समान पावन, अन्तःकरण के प्रकाशक (इमं स्तोमं) इस वेदमय ज्ञान को (ईमहे) तेरे से पाते हैं।

इ॒मं जु॑षस्व गिर्वणः समु॒द्र इ॑व पिन्वते ।
इन्द्र॒ विश्वा॑भिरू॒तिभि॑र्व॒वक्षि॑थ ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शक्तिशालिन्! तू (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा और शक्तियों से (ववक्षिथ) संसार को धारण कर रहा है। हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा श्रवण-भजन-योग्य! तू (समुद्रः इव) सागर

के समान, समान रूप से सबका आनन्द-दाता होकर (पिन्वते) बढ़ता है, तू (इमं) इस स्तुति को (जुषस्व) स्वीकार कर। इति प्रथमो वर्गः॥

यो नो॑ दे॒वः प॑रा॒वतः॑ सखित्व॒नाय॑ माम॒हे।
दि॒वो न वृ॒ष्टिं प्र॒थय॑न्व॒वक्षि॑थ॥ ६॥

भा०—(यः) जो (देवः) सुखों का दाता, जगत् का प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी (परावतः) दूर, परम स्थान से (दिवः वृष्टिं प्रथयन्) आकाश से वृष्टि करता हुआ जगत् को (ववक्षिथ) ज्ञान उपदेश करता है, उसको हम (सखित्वनाय) मित्र बनने की (मामहे) प्रार्थना करते हैं।

व॒वक्षु॑र॒स्य के॒तव॑ उ॒त वज्रो॒ गभ॑स्त्योः।
यत्सूर्यो॒ न रोद॑सी॒ अव॑र्धयत्॥ ७॥

भा०—(रोदसी सूर्यः न) आकाश और भूमि दोनों लोकों को सूर्य जैसे बढ़ाता है वैसे ही (सूर्यः) जगत् का सञ्चालक, और उत्पादक प्रभु (रोदसी) समस्त संसार को (अवर्धयत्) शिल्पीवत् बनाता, राजावत् पोषण करता है। (अस्य) उस प्रभु के (केतवः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान, विज्ञान और शक्तियां (उत) और (गभस्त्योः वज्रः न) हाथों में पकड़े शस्त्र के समान (वज्रः) ज्ञानमय उपदेश, ये सब (ववक्षुः) जगत् को धारण और उसकी रक्षा करते हैं।

यदि॑ प्रवृद्ध सत्पते स॒हस्रं॑ महि॒षाँ अघः॑।
आदित्ते॑ इन्द्रि॒यं मह्ि प्र वा॑वृधे॥ ८॥

भा०—हे (प्रवृद्ध) महान्! हे (सत्पते) व्यक्तजगत्, सत्पदार्थों, सत्य ज्ञान के पालक! (यदि) जो तू (सहस्रं महिषान्) हजारों, बड़े २ शक्तिशाली सूर्य, मेघ, पवनादि को (अघः) सञ्चालित करता है, (आत् इत्) इससे ही (ते) तेरा (महि इन्द्रियं) महान् ऐश्वर्य बल, (प्र वावृधे) बहुत बड़ा है।

इन्द्रः॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॒र्न्यर्श॑सा॒नमो॑षति।

अ॒ग्निर्वनेव सास॒हिः प्र वा॑वृधे ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से (अर्शसानम्) नाशकारी रोग और अन्धकार को (नि-ओषति) ऐसे भस्म कर देता है जैसे (अग्निः वना इव) आग वनों और काष्ठों को जलाती है। वह (सासहिः) सबको पराजित करने में समर्थ होकर (प्र वावृधे) सबसे बढ़ जाता है, सबसे महान् है।

इ॒यं त॑ ऋ॒त्वियाव॑ती धी॒तिरे॑ति॒ नवी॑यसी ।
स॒प॒र्यन्ती॑ पुरुप्रि॒या मिमी॑त॒ इत् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इयं) यह (ते) तेरी (ऋत्वियावतीः) ऋतु ऋतु में करने योग्य यज्ञादि वाली, (नवीयसी अति स्तुत्य (धीतिः) स्तुति, (पुरु-प्रिया) बहुतों को प्रसन्न करने वाली (सपर्यन्ती) अर्चना करती हुई, वेदवाणी (मिमीते इत्) उपदेश करती है। वैसे ही हे प्रभो! (ते धीतिः) तेरी जगत् धारक शक्ति, (ऋत्वियावतीः) सूर्य से उत्पन्न ऋतुवत् भिन्न २ सामर्थ्यों से विश्व को चलाने वाली, (मिमीते) जगत् को बनाती है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

गर्भो॑ य॒ज्ञस्य॑ देव॒युः क्रतुं॑ पुनीत आनु॒षक् ।
स्तोमै॒रिन्द्र॑स्य वावृधे॒ मिमी॑त॒ इत् ॥ ११ ॥

भा०—(देवयुः) दाता प्रभु को चाहने वाला मनुष्य (यज्ञस्य गर्भः) उपासनीय, सर्वदाता प्रभु की स्तुति करने और आश्रय करने वाला, माता के पेट में बालक के तुल्य, प्रभु की रक्षा में पालित-पोषित होकर (आनुषक्) निरन्तर (क्रतुं) ज्ञान और कर्म को (पुनीते) शुद्ध करता है। वह (इन्द्रस्य स्तोमैः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के उपदेशों, स्तुति-वचनों से (वावृधे) बढ़ता और (मिमीते इत्) प्रभु को जान भी लेता है।

स॒निर्मि॒त्रस्य॑ पप्रथ॒ इन्द्रः॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ।
प्रा॒ची वाशी॑व सुन्व॒ते मिमी॑त॒ इत् ॥ १२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सोमस्य पीतये) जीवगण को पालन और कर्मफलोपभोग कराने के लिये (मित्रस्य) अपने स्नेही जीव, भक्त को (सनिः) सुखदाता होकर (पप्रथे) जगत् को विस्तृत करता है, जीवों के भोग और मोक्ष के लिये जगत् को रचता है। (सुन्वते वाशी इव) शिल्पी का बसूला जैसे काष्ठ की वस्तुएं बनाता है वैसे ही (वाशी) सब जगत् को वश करने वाली और जगत्सर्ग करूं ऐसी 'कामना' वाली (सुन्वते = सुन्वतः) जगत्सर्ग करने वाले विधाता की शक्ति (प्राची) सबसे उत्कृष्ट होकर ही (मिमीते इत्) संसार की रचना करती है।

यं विप्रां उक्थवांहसोऽभिप्रमन्दुरायवंः ।
घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥ १३ ॥

भा०—(यं) जिस परमेश्वर को (उक्थ-वाहसः) वेद मन्त्रों के धारक (विप्राः) विद्वान् (आयवः) पुरुष (अभि प्रमन्दुः) साक्षात् कर प्रसन्न होते हैं, (यत्) जो (ऋतस्य) सत्य स्वरूप, परम कारण परमेश्वर सत्य ज्ञान वेद के (घृतं) प्रकाशवत् दीप्ति युक्त है उसे (आसनि) मुख में (घृतम् इव) पुष्टिदायक घृत के समान (पिप्ये) पान करूं, अर्थात् मुख से सत्य ज्ञान वेद का अभ्यास आदि अन्न घृतादि आहार के चर्वण आदि के तुल्य शनैः २ करे और उसे मनन द्वारा पचाये।

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् ।
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥ १४ ॥

भा०—(उत) और (स्वराजे) स्वयंप्रकाश, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (स्तोमम्) उपदेश-रूप ज्ञान को (अदितिः) अविनाशी वेद ही (जीजनत्) प्रकट करता है और (यत्) जो (ऋतस्य) कारणमय प्रभु का (पुरु प्रशस्तं) बहुत विद्वानों से उपदेश योग्य ज्ञान है उसको (ऊतये) जगत् की रक्षार्थ (अदितिः) अखण्ड तपस्वी पुरुष (जीजनत्) प्रकाशित करे।

अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये।
न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(वह्नयः) ज्ञान धारक विद्वान् शुश्रूषु जन (ऊतये)) ज्ञान प्राप्त करने और (प्र-शस्तये) जनों को अच्छी प्रकार शासन या उपदेश के लिये (ऋतस्य यत्) जो सत्य ज्ञानमय वेद है उसका (अनूषत) उपदेश करते हैं। हे (देव) सुखों के दाता, प्रभो! (विव्रता) सत्कर्मों से रहित आचरण वाले (हरी) स्त्री पुरुष सत्य ज्ञान के उस तत्व को (न) नहीं पाते। इति तृतीयो वर्गः॥

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू (विष्णवि) व्यापक प्रकाश वाले सूर्य के आधार पर, (यद्वा घ आप्त्ये) और जो तू जलों से पूर्ण (त्रिते) तीनों लोकों के आश्रय और (यद्वा मरुत्सु) वा प्राणों के आश्रय पर, (इन्दुभिः) ऐश्वर्य युक्त पदार्थों द्वारा (सोमम्) उत्पन्न होने वाले जगत् को (सम् मन्दसे) आनन्दित कर देता है, अतः तू सर्वोपास्य है।

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे।
अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥ १७ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिमन्! (यद् वा) जो तू (परावति) अज्ञानियों से दूर, (समुद्रे) समान रूप से एक रस, आनन्दमय (अधि मन्दसे) अति आनन्द में रमता है। (सुते) इस जगत् में (इन्दुभिः) दीप्तियुक्त और रसवत् द्रुतगति से जाने वाले पदार्थों से (अस्माकम् इत् रण) हमें अवश्य सुख दे।

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ १८ ॥

भा०—हे (सत्-पते) सत् पुरुष-पालक ! (यद् वा) जो तू (यस्य सुन्वतः) जिस किसी भी साधक (यजमानस्य) यज्ञ-कर्त्ता उपासक को (वृधः) बढ़ाता है, उसकी (उक्थे) स्तुति पर (रण्यसि) प्रसन्न होता है वह तू उसको (इन्दुभिः सं रण) ऐश्वर्यों से आनन्दित कर ।

देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।
अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों को (देवं-देवं) सर्वत्र प्रकाशमान और (इन्द्रम्-इन्द्रम्) सर्वत्र ऐश्वर्यवान् प्रभु को (अवसे) प्राप्त करने का (गृणीषणि) उपदेश करता हूँ (अध) और (तुर्वणे) दुष्टों के नाशक, (यज्ञाय) सर्वोपास्य परमेश्वर के ये ऐश्वर्य जगत् में (वि-आनशुः) विविध प्रकार से व्याप्त हैं और (तुर्वणे यज्ञाय) विघ्ननाशक, सर्वदाता प्रभु को ही समस्त भक्त विविध उपाय से प्राप्त होते हैं ।

यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् ।
होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—उस (यज्ञवाहसं) देवपूजा को स्वीकार करने वाले प्रभु को विद्वान् (यज्ञेभिः) उपासनाओं से (वावृधुः) बढ़ाते, उसकी महिमा को फैलाते और (वि-आनशुः) विविध प्रकार से प्राप्त होते हैं । उस (सोम-पातमम्) उत्पन्न नाना सर्गों के पालक प्रभु को भक्त (सोमैः-वावृधुः) ऐश्वर्यों के वर्णनों से बढ़ाते हैं और उन द्वारा उस तक (वि आनशुः) पहुंचते हैं । इसी प्रकार वे (होत्राभिः) नाना वाणियों से इन्द्रं वावृधुः) ऐश्वर्यवान् प्रभु की महिमा बढ़ाते और उन (होत्राभिः) गुरु-शिष्यों द्वारा देने-लेने योग्य वेद-वाणियों से उसको (व्यानशुः) विविध प्रकार से प्राप्त करते । इति चतुर्थो वर्गः ॥

महीर॑स्य प्रणी॑तयः पूर्वीरु॒त प्रश॑स्तयः ।
विश्वा॒ वसू॑नि दा॒शुषे॒ व्या॑नशुः ॥ २१ ॥

भा०—(अस्य) इसकी (महीः) बड़ी २ (प्र-णीतयः) व्यवस्थाएं और (पूर्वीः) पूर्व भी विद्यमान, (प्रशस्तयः) स्तुतियां, ज्ञानानुशासक वेद-वाणियां (विश्वा वसुनि दाशुषे) ऐश्वर्यों के दाता उसी प्रभु के वर्णन के लिये (वि आनशुः) विशेष प्रकार से उसी तक पहुँचती हैं।

इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे दे॒वासो॑ दधिरे पु॒रः ।
इन्द्रं॒ वाणी॑रनूषता॒ समोज॑से ॥ २२ ॥

भा०—(देवासः) विद्वान् (वृत्राय) बढ़ते या अन्तःकरण को आवरण करने वाले अज्ञान के (हन्तवे) नाश के लिये (इन्द्रं) सूर्यवत् अन्धकार विदारक, प्रभु-रूप सूर्य को (पुरः दधिरे) सदा समक्ष रखते हैं, उसका ध्यान करते हैं और (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिये (इन्द्रं) उसी तेजस्वी प्रभु की (वाणीः) वाणियों द्वारा (सम् अनूषत अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं।

म॒हान्तं॑ महि॒ना व॒यं स्तोमे॑भिर्हव॒नश्रु॑तम् ।
अ॒र्कैर॒भि प्र णो॑नुमः॒ समोज॑से ॥ २३ ॥

भा०—(महिना महान्तं) अपने महान् सामर्थ्य से बड़े (हवन-श्रुतम्) आह्वानों, उपासक की पुकारों को श्रवण करने वाले, वा 'हवन' दानों से सर्वत्र प्रसिद्ध उस प्रभु की हम (स्तोमेभिः) स्तुतियों और (अर्कैः) अर्चना करने योग्य वेदमन्त्रों और यज्ञों से (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिये (अभि सं प्र नोनुमः) साक्षात् खूब स्तुति करें।

न यं वि॑वि॒क्तो रोद॑सी॒ नान्तरि॑क्षाणि व॒ज्रिण॑म् ।
अ॒मादिद॑स्य तित्विषे॒ समोज॑सः ॥ २४ ॥

भा०—(यं) जिसको (रोदसी) भूमि और आकाश (न विविक्तः) विवेचन नहीं कर सकते और (यं) जिस (वज्रिणम्) बलशाली, प्रभु

को (अन्तरिक्षाणि न विविक्तः) नाना अन्तरिक्ष भी विवेचन नहीं कर सकते अर्थात् आकाश, भूमि और अन्तरिक्ष के नाना सर्ग, सूर्य, समुद्रादि भी जिसके शक्तिशालीरूप का विवेचन नहीं करा सकते, उसी (अस्य ओजसः) बलस्वरूप प्रभु के (अमात् इत्) बल से ही यह समस्त जगत् (तित्विषे) प्रकाशित होता है।

यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २५ ॥ ॥ ५ ॥

भा०—(पृतनाज्ये) सेनाओं से विजय योग्य संग्राम में जैसे (देवाः) विजिगीषु लोग (इन्द्रं पुरो दधिरे) राजा या सेनापति को आगे रखते हैं (हर्यता हरी ववक्षतुः) वेगवान् सुन्दर दो घोड़े उसको आगे ले जाते हैं, वैसे ही (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (यत् त्वा) जिस तुझको (देवाः) विद्वान् एवं नाना कामनावान् मनुष्य (पृतनाज्ये) मनुष्यों से प्राप्य ऐश्वर्य के लिये (पुरः दधिरे) अपने समक्ष साक्षी एवं उपास्यवत् स्थापित करते हैं (आत् इत्) अनन्तर उसी (ते) तुझे (हर्यता हरी) तेरी कामना वाले ज्ञानी-अज्ञानी, स्त्री-पुरुष, वा कर्मी मनुष्य, (ववक्षतुः) हृदय में धारण करते हैं। इति पञ्चमो वर्गः ॥

यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २६ ॥

भा०—जैसे सूर्य वा विद्युत् (नदीवृतं-वृत्रं) गरजती मेघ मालाओं में विद्यमान जल को (शवसा अवधीत्) बलपूर्वक आघात करता और उस विद्युत् को हरणशील कान्तियुक्त धन ऋण दोनों प्रकार की धाराएं धारण करती हैं वैसे ही (यदा) जब (नदीवृतं) नदी-जलवत् गतिशील आत्मा की धारा में विद्यमान (वृत्रम्) आवरणकारी अज्ञान को, हे (वज्रिन्) ज्ञानवज्र के स्वामिन्! तू (शवसा) अपने ज्ञान-प्रकाश से (अवधीः) नष्ट करता है (आत् इत्) अनन्तर ही (हर्यता) तुझे चाहने

वाले (हरी) स्त्री-पुरुष वा मन और आत्मा (ते) तेरे विषयक ज्ञान को (ववक्षतुः) धारण करते हैं।

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः॥ २७॥

भा०—हे प्रभो! (यदा) जब (ते) तेरे (ओजसा) दिये सामर्थ्य से (विष्णुः) देह में प्रविष्ट आत्मा (त्रीणि) तीनों (पदा) प्राप्तव्य लोकों को (विचक्रमे) पार कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर (हर्यता हरी) हरणशील आत्मा, मन दोनों (ते) तुझ तक (ववक्षतुः) पहुँचाते हैं।

यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ २८॥

भा०—(यदा) जब (हर्यता हरी) कान्तियुक्त सूर्य और भूमि (ते) तेरे बल से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (वावृधाते) बढ़ते हैं (आत इत्) अनन्तर ही (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियम में बंधते हैं।

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ २९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! (यदा) जब (ते) तेरे अधीन (मारुतीः) 'मरुत्' अर्थात् प्राणों से प्राणित (विशः) प्रजाएं, (तुभ्यम्) तेरे ही (नियेमिरे) नियम में बद्ध हैं, (आत् इत्) अनन्तर और (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक भी (ते येमिरे) नियम में व्यवस्थित हैं।

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ ३०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यदा) जब तू (अमुं सूर्यम्) उस सूर्य को और (दिवि) सूर्य में (शुक्रं ज्योतिः) शुद्ध तेज और अन्तरिक्ष में विद्युत् को (अधारयः) स्थापित करता है, (आत् इत्) फलतः (ते) तेरे ही अधीन, (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियन्त्रित हैं।

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥ ३१ ॥

भा०—(अध्वरे पिप्रतीं जामिं पदा इव) यज्ञ में प्रसन्न होती हुई बन्धुभूत पत्नी को वर वा विद्वान् पुरोहित जैसे सप्तपदी के पैर चलने को (प्र इयर्त्ति) प्रेरणा करता है, वैसे ही हे (इन्द्र) प्रभो! (विप्रः) विद्वान् पुरुष (ते) तेरी (इमां सु-स्तुतिम्) इस उत्तम स्तुति योग्य नीति को (धीतिभिः) वाणियों और कर्मों से (प्र-इयर्त्ति) अच्छी प्रकार वर्णन करता है।

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन्।
नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥ ३२ ॥

भा०—(यद्) जब (अस्य) इस परमेश्वर के (प्रिये) प्रिय, (धामनि) सर्वाश्रय तेज या ब्रह्मपद में (समीचीनासः) सुसंगत विद्वान् लोग (अस्वरन्) स्तुति करते हैं, तब (यज्ञस्य) परमेश्वर के (अध्वरे) हिंसारहित, अखण्ड, (नाभा) सबको बांधने वाले, (दोहना) सुखों के दाता (धामनि) तेजोमय रूप में ही वे आनन्द लाभ करते हैं।

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः।
होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! जैसे (अध्वरे पूर्वचित्तये होता इव) यज्ञ में पूर्ण ज्ञानवान् पुरुष के उपकारार्थ दानशील यजमान, उत्तम गौ आदि धन देता है वैसे ही प्रभो! तू (नः) हमें (पूर्व-चित्तये) पूर्व विद्यमान पदार्थों के ज्ञान के लिये, (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त, (सु-अश्व्यं) उत्तम आशुगामी मन से युक्त, (सुगव्यम्) उत्तम इन्द्रियगण (दद्धि) प्रदान करता है। इति षष्ठो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[१३]

नारदः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१,५,८,११,१४,१९,२१,

२२, २६, २७, ३१, त्रिचृदुष्णिक् । २—४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५—१८, २०, २३—२५, २८, २९, ३२, ३३ उष्णिक् । ३०, आर्षी विराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षसो महान् हि षः ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी प्रभु (सुतेषु सोमेषु) शिष्यों में गुरु के समान निष्काम उपासकों में (क्रतुम्) कर्म, ज्ञान और (उक्थ्यम्) वचन को भी (पुनीते) रसवत् स्वच्छ करता है। वैसे ही वह उपासक (वृधस्य) वर्धक और (दक्षसः) बल की (विदे) प्राप्ति के लिये यत्न करता है, क्योंकि (सः) वह प्रभु (महान् हि) बहुत बड़ा पूज्य है।

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (प्रथमे) सर्वोत्तम (व्योमनि) विशेष रक्षा और ज्ञानमय (देवानां) विद्वानों को (सदने) उनके स्थान में (वृधः) बढ़ाने वाला, (सुपारः) दुःखों से तारने वाला, (सुश्रवः-तमः) उत्तम ऐश्वर्य, ख्याति आदि से सम्पन्न और (अप्सु-जित्) अन्तरिक्ष में सूर्यवत् वर्त्तमान और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं, जीवों पर भी वश करता है।

तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (तम् इन्द्रं) अपार ऐश्वर्यवान् उस प्रभु को (वाज-सातये) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने और सबमें निष्पक्ष होकर विभक्त करने और (भराय) भरण पोषण के लिये (शुष्मिणम्) उस बलवान् प्रभु को (अह्वे) बुलाता हूँ। हे प्रभो! तू (नः सुम्ने) हमारे सुख और (वृधे) वृद्धि के लिये (अन्तमः सखा भव) अति समीपतम, मित्र हो।

इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणियों के देने और सेवन करने हारे ! (सुन्वतः) जगत् पर आधिपत्य करने वाले (ते) तेरा ही (रातिः) दान, (क्षरति) मेघ से वृष्टिवत् बरसता है। और (मन्दानः) स्वयं आनन्दमय और (अस्य बर्हिषः) इस महान् विश्व को (मन्दानः) तृप्त करता हुआ (वि-राजसि) विशेष रूप से चमकता है।

नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे ।
रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (सुन्वन्तः) यज्ञादि करते हुए, (यत्) जिस (स्वर्विदम्) सुख प्रापक, (चित्रम्) आश्चर्यजनक (रयिं) ऐश्वर्य को (त्वा ईमहे) तुझसे मांगते हैं (नः) हमें (नूनं) अवश्य (तत् दद्धि) उस को प्रदान कर। वह धन हमें (आ भर) ला, दे। इति सप्तमो वर्गः ॥

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः ।
वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (विचर्षणिः स्तोता) विशेष २ गुणों का प्रबल उपासक पुरुष (गिरः) वेदवाणियों को (अति-प्रशर्धयत्) बहुत अधिक रूप से कहता है, वे (यत् जुषन्त) जब प्रेम से सेवन करते हैं (वयाः इव) शाखाओं के समान (अनु रोहते) तेरे गुणों के अनुरूप ही बढ़ते हैं।

प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् ।
मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (जरितः) स्तुति कर्ता की (गिरः) वाणियों को (प्रत्नवत्) वृद्ध गुरु के समान (जनय) प्रकट कर और (हवम्) उसके आह्वान को (श्रृणुधि) श्रवण कर। (मदे-मदे) प्रत्येक हर्ष के अव-

सर पर (सुकृत्वने) शुभ कर्म करने वाले जन के हितार्थ (ववक्षिथ) तू उत्तम उपदेश देता है।

क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः॥ ८॥

भा०—(यः) जो (अया धिया) इस धारणावती बुद्धि या वाणी से (दिवः पतिः उच्यते) ज्ञान-प्रकाश और जगत्-व्यवहार का पालक कहा जाता है (अस्य) उस की (सूनृता) उत्तम सत्य वाणियां, रस-धारायें, (प्रवता) निम्न मार्ग से (यतीः) बहते (आपः न) जलों के समान (प्रवता) उत्तम मार्ग से ही (क्रीडन्ति) खेलती हुई सी विचरती हैं।

उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी।
नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण॥ ९॥

भा०—(उतो) और (यः) जो (नमो-वृधैः) आदर वचनों से बढ़ने वाले विनीत, वृद्ध और (अवस्युभिः) रक्षा, ज्ञानादि के इच्छुक पुरुषों द्वारा (एकः) अद्वितीय (इत्) ही (कृष्टीनाम्) आकर्षण कर्ता सूर्यादि लोकों, मनुष्यों का (पतिः) स्वामी और (वशी) सबको वश करने द्वारा (उच्यते) कहा जाता है, हे मनुष्य! तू (सुते रण) इस उत्पन्न जगत् में उसी की स्तुति कर।

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा।
गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः॥ १०॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् मनुष्य! (यस्य) जिस परमेश्वर के (हरी) सेनापति के बलवान् दो अश्वोंवत् (हरी) मनोहर और संहारक दोनों रूप (प्रसक्षिणा) सज्जन, दुर्जन, दोनों को जीत लेते हैं तू उसी (श्रुतं) वेदों द्वारा गुरुमुखों से श्रवण किये, (विपश्चितं) विद्वानों और वेद-वाणी से ज्ञातव्य प्रभु की (स्तुहि) स्तुति कर और (नमस्विनः) विनयादि से

१७ प.

पूर्णं (दाशुषः) दानी पुरुष के (गृहं गन्तारा) गृह में प्राप्त होने वाले पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर। इत्यष्टमो वर्गः ॥

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥ ११ ॥

भा०—जैसे (तू तुजानः) शत्रुनाशक सेनापति (प्रुषित-प्सुभिः) परिपक्व रूप वाले, सुदृढ़-शरीर (आशुभिः अश्वेभिः यज्ञम् आयाति) अश्वारोहियों से संगति करता है, वैसे ही हे (महेमते) बड़ी भारी मति, ज्ञान संकल्प वाले! तू (तूतुजानः) विश्व का पालन करता हुआ (प्रुषित-प्सुभिः) अग्नि, सूर्यादि से प्रुषित, परिपक्व वा घृतादि से सेचित अन्न का भोजन करने वाले अथवा तपस्वी देह वाले (आशुभिः) तीव्रबुद्धि, कर्म-कुशल (अश्वेभिः) विद्वान् पुरुषों और अंगों द्वारा (यज्ञम्) उपास्य प्रभु और यज्ञ आदि को प्राप्त हो। हे विद्वान् पुरुष! (ते) तुझे इस प्रकार (शम् इत् हि) अवश्य शान्ति प्राप्त होगी।

इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे (शविष्ठ) बलशालिन्! हे (सत्-पते) सत्पदार्थों, सत्य ज्ञान, सत्पुरुषों के पालक! तू (गृणत्सु) विद्वान् उपदेशकों, स्तुतिकर्त्ता भक्त जनों में, उनके निमित्त (रयिं धारय) ऐश्वर्य धारण करा। (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (श्रवः) ज्ञान और (अमृतं) मोक्ष और (वसुत्वनम्) ऐश्वर्य (धारय) धारण करा।

हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः ।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो! तू (सप्तिभिः) सर्पणशील, वेगवान् सूर्यादि के प्रकाशादि सुखों से (नः जुषाणः) हमें प्रेम करता हुआ (आगहि) प्राप्त हो। हे प्रभो! हमें (उदिते) उदय हुए और (मध्यन्दिने)

दोपहर में विद्यमान (दिवः सूरे) ज्ञान प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी, प्रखर पाप के नाशक स्वरूप (त्वा हवे) तुझ से प्रार्थना करता हूँ और (त्वा हवे) तुझे ही स्वीकार करता हूँ।

आ तू गंहि प्र तु द्रंव मत्स्वा सुतस्य गोमंतः।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथां विदे॥ १४॥

भा०—हे प्रभो! तू (आ गहि तु) आ, प्राप्त हो, (प्र द्रव तु) खूब दयापूर्ण होकर मेघवत् आनन्द-रस बरसा, (गोमतः सुतस्य) इन्द्रियों से युक्त उत्पन्न जीव को (मत्स्व) आनन्दित कर। (पूर्व्यं) पूर्व से विद्यमान (तन्तुं) सूत्रवत् अविच्छिन्न सृष्टि को (तनुष्व) विस्तृत कर (यथा) जिससे मैं जीव भी (विदे) ज्ञान प्राप्त करूं।

यच्छक्रासि परावति यदंर्वावति वृत्रहन्।
यद्वां समुद्रे अन्धंसोऽवितेदंसि॥ १५॥ ९॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हे (वृत्रहन्) अन्धकारादि नाशक! (यत् परावति) जो तू दूर देश में (यत् अर्वावति) जो तू पास में और (यद् वा समुद्रे) जो तू आकाश में है, तू (अन्धसः) प्राणधारी का (अविता इत् असि) रक्षक ही है। इति नवमो वर्गः॥

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दंवः।
इन्द्रे हुविष्मतीर्विशों अराणिषुः॥ १६॥

भा०—(नः) हमारी वाणियां (इन्द्रं वर्धन्तु) ऐश्वर्यदाता प्रभु को बढ़ावें, उसका गुण-गान करें। ऐसे ही (सुतासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ वा जीव (इन्द्रं वर्धन्तु) इन्द्र को बढ़ावें, उसकी महिमा बतलावें। (हविष्मतीः विशः) अन्नादि से समृद्ध प्रजाएं (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् प्रभु में (अराणिषुः) रमण करें।

तामिद्विप्रां अवस्यवः प्रवत्वंतीभिरूतिभिः।
इन्द्रं क्षोणीरंवर्धयन्वया इंव॥ १७॥

भा०—(अवस्यवः) रक्षण और ज्ञान की कामना वाले (क्षोणीः) जन (प्रवत्वतीभिः ऊतिभिः) उत्तम साधनों से युक्त बलवती सेनाओं से (इन्द्रं) सेनापति के समान प्रबल रक्षाओं से सम्बद्ध (तम् इत् इन्द्रं) उस ही परमेश्वर को (क्षोणीः) मनुष्य और भूमियां (वयाः इवः) शाखाओं के समान (अवर्धन्) उसकी ही महिमा को बढ़ाती हैं।

त्रिकंद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥ १८ ॥

भा०—(देवासः) विद्वान् गण और सूर्य आदि लोक भी (त्रि-कद्रु-केषु) तीनों लोकों में (तम् इत् चेतनं) उस ही, चेतन (यज्ञं) सर्वोपास्य प्रभु को (अत्नत) फैला रहे हैं, उसी के गुणों का विस्तार कर रहे हैं। उस (सदावृध) सदा वृद्धिशील, महान् प्रभु को (नः गिरः वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां भी बढ़ावें, उसी की जयकार करें।

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दुधे ।
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जैसे (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता (ते अनु-व्रतः) तेरे अनुकूल व्रत-आचरण करता हुआ, (ऋतुथा) भिन्न २ कालों में (उक्थानि) वेद-वचनों को (दधे) धारण करता है। हे भगवन्! (सः) वह तू (शुचिः) शुद्ध, (पावकः) पावन, (अद्भुतः) आश्चर्यकारक और अजन्मा (उच्यते) कहा जाता है।

तद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ।
मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥ २० ॥ १० ॥

भा०—(रुद्रस्य) दुःखों के दूर करने वाले प्रभु का (तत् इत्) वही (यह्वं) महान्, सामर्थ्य (प्रत्नेषु धामसु) पुरातन सूर्यादि लोकों में (चेतति) जाना जाता है (यत्र) जिसमें (वि-चेतसः) विज्ञजन (मनः विदधुः) मन लगाते और (तत् दधुः) उसको जानते हैं। इति दशमो वर्गः ॥

यदि मे सुख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः ।
येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रभो ! (यदि) यदि तू (मे सख्यम् आ-वरः) मेरे मित्र भाव को स्वीकार करता है तो (इमस्य अन्धसः) इस प्राणधारी सृष्टि का (पाहि) पालन कर । (येन) जिससे (विश्वाः द्विषः) समस्त द्वेष भावों और शत्रुओं को हम (अति अतारिम) पार करें ।

कुदा तं इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः ।
कुदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) 'गिरा' अर्थात् वेद वाणी से स्तवन योग्य, हे वेदवाणी के दातः ! हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! (ते स्तोता) तेरी स्तुति करने वाला (शन्तमः कदा भवाति) शान्तियुक्त कब होता है ? और (नः) हमें (गव्ये) गौ आदि पशु, इन्द्रियों और वाणी से समृद्ध (अश्व्ये वसौ) अश्वों, विद्वानों और मन आदि साधनों से युक्त भूमि, देह, ज्ञान एवं निवास योग्य गृह, राष्ट्र तथा प्रभु-शरण में (कदा दधः) कब रक्खेगा ?

उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् ।
अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यम्) जिस सुख को हम (ईमहे) याचना करते हैं । (अजुर्यस्य) अविनाशी, जरादि रहित (ते) तेरे (रथम्) रमण-योग्य, सुखप्रद (मदिन्तमम्) अति हर्षदायक, ऐश्वर्यमय उस तेरे स्वरूप या ज्ञानोपदेश को रथ के घोड़ों के समान (सु-स्तुता) उत्तम प्रशंसित और शिक्षित (वृषणा) बलवान् (हरी) स्त्री-पुरुष ही (वहतः) धारण करते हैं ।

तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता ॥ २४ ॥

भा०—हम लोग (पुरु-स्तुतम्) बहुतों से स्तुति-योग्य (बृहत्) महान् (तम्) उस प्रभु को (प्रत्नाभिः) सनातन से विद्यमान (ऊतिभिः) ज्ञान-वाणियों से (ईमहे) प्रार्थना करते हैं, (अध) और वह (प्रिय) अतिप्रिय (बर्हिषि) वृद्धिशील संसार में, राष्ट्र में राजा के समान (द्विता) दोनों ही प्रकार से (नि सदत्) विराजता है, प्रभु के दो रूप, सज्जनों का पालक और दुष्टों का दण्डदाता।

वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः।
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥ २५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति-योग्य प्रभो! बहुतों द्वारा राजपद के लिये प्रस्तुत राजन्! तू (ऋषि-स्तुताभिः) विद्वान् तत्व-ज्ञानी पुरुषों से स्तुति की गई वा उपदिष्ट (ऊतिभिः) ज्ञानवाणियों वा रक्षा के उपायों से (वर्धस्वः) बढ़! तू (पिप्युषीम्) तृप्तिकारक (इषम्) अन्नसम्पदा को (धुक्षस्व) पृथ्वी से प्राप्त कर, दे और (नः अव च) हमारी रक्षा कर। इत्येकादशो वर्गः॥

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः।
ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! स्वामिन्! हे (अद्रिवः) अविदीर्ण, अखण्ड शक्ति के मालिक! तू (इत्था स्तुवतः) इस प्रकार स्तुति करने वाले का (अविता इत् असि) रक्षक ही है। (ऋतात्) सत्य ज्ञानमय वेद से मैं (ते) तेरे उपदिष्ट (मनोयुजं) मन के साथ योग करने वाले, वा ज्ञान की सहयोगिनी, (धियं) वाणी और कर्म को (इयर्मि) प्राप्त करूं।

इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये।
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥ २७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सोमपीतये) ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (सधमाद्या) एक साथ आनन्द लेने वाले (त्या)

इन दोनों (प्रतद्-वसू) उत्तम विस्तृत ऐश्वर्यों के स्वामी (हरी) स्त्री-पुरुषों को (इह) इस जगत् में (युजानः) रथ में अश्वों के समान सन्मार्ग में नियुक्त करता हुआ (अभि स्वर) उपदेश कर।

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम्।
उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! (ये) जो (रुद्रासः) दुःख दूर करनेवाले, दुःखी को देख कर आंसू बहाने वाले, एवं दुष्टों को रुलाने वाले पुरुष (तव अभि) तेरे गुणों का साक्षात कर (स्वरन्तु) स्तुति करते, उपदेश करते हैं वे (श्रियं सक्षत) लक्ष्मी आदि प्राप्त करते हैं। (उतो) और (मरुत्वतीः विशः) वे प्राणों, विद्वानों, वीरों और वैश्य जनों से युक्त प्रजाओं को भी (प्रयः अभि) अन्न आदि सुखकारक पदार्थ प्राप्त करावें।

इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद्दिवि।
नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥ २९॥

भा०—(इमाः) ये (अस्य) इस राजा की (प्र-तूर्तयः) उत्तम रीति से शत्रु की नाशक सेनाएं और उत्तम, कार्य-कुशल प्रजाएं (यत्) जो (दिवि) भूमि में (पदं) स्थान (जुषन्त) प्राप्त करती हैं वे (यथा विदे) यथावत् श्रम-अनुसार द्रव्य लाभ के लिये (नाभा) नाभिवत् राष्ट्र के उत्तम प्रबन्धक पुरुष के अधीन, (यज्ञस्य सं दधुः) परस्पर दान-प्रतिदान, संगति, मान-सत्कार आदि व्यवहार करती हैं।

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे।
मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥ ३० ॥ १२ ॥

भा०—(अयम्) यह विद्वान् (प्राचि) उत्तम रीति से पूज्य (अध्वरे) हिंसादि-रहित, (प्रयति) यत्न से प्राप्तव्य यज्ञमय प्रभु के आश्रय ही (दीर्घाय) बड़े विस्तृत (चक्षसे) तत्वज्ञान के लाभ के लिये (वि-चक्ष्य) विशेष रूप से देख कर (आनुषक्) निरन्तर (यज्ञम् मिमीते) देव-

पूजा, दान करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

वृषायमिन्द्र ते रथं उतो ते वृषणा हरी।
वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (अयम्) यह (ते) तेरा (रथः) रमणीय रूप (वृषा) सुदृढ़ है। (ते हरी) तेरे अश्ववत् भक्त स्त्री पुरुष वर्ग वा सर्जन और संहार बल (वृषणा) बलवान् हैं। हे (शतक्रतो) अनेक प्रज्ञा और कर्म वाले ! (त्वं वृषा) तू बलवान् है। तेरा (हवः) आह्वान, दान, नाम-स्मरणादि (वृषा) सुखों का दाता है।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः।
वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥ ३२ ॥

भा०—(ग्रावा वृषा) मेघवत् उपदेष्टा, विद्वान् और प्रस्तरवत् शत्रुनाशक क्षात्रबल बलवान् हो। हे राजन् ! (मदः वृषा) तेरा वह हर्ष, प्रसन्नता भी (वृषा) सुखप्रद हो। (अयं सुतः) यह उत्पन्न (सोमः) राष्ट्र वा अभिषिक्त शासक पुरुष (वृषा) बलवान् हो। (यज्ञः) परस्पर का मेल, दान-प्रतिदान, व्यवहार (यम् इन्वसि) जिसको तू करता है, वह (वृषा) दृढ़, सुखप्रद हो। (हवः वृषा) शत्रु के साथ प्रतिस्पर्द्धा और ललकार भी (वृषा) सुखप्रद और दृढ़ हो।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः।
वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥ ३३ ॥ १३ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन् (चित्राभिः) आश्चर्यजनक नाना (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं वा रक्षाओं से युक्त (वृषणं) बलवान् तुझ को (वृषा) मैं प्रजाजन (हुवे) स्वीकार करता हूँ। तू (वृषा) सब सुखों का दाता और (हवः) शत्रुओं के साथ प्रतिस्पर्द्धाशील होकर ही (प्रतिस्तुतिं वावन्थ हि) सर्वत्र स्तुति को प्राप्त कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१४]

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ ऋषी: ।। इन्द्रो देवता ।। छन्दः—१, ११ विराड् गायत्री । २, ४, ५, ७, १५ निचृद्गायत्री । ३, ६, ८—१०, १२—१४ गायत्री ।। पंचदशं सूक्तम् ।।

यदि॑न्द्रा॒हं यथा॒ त्वमीशी॑य॒ वस्व॒ एक॒ इत् ।
स्तो॒ता मे॒ गोष॑खा स्यात् ।। १ ।।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जैसे (त्वम् एकः इत्) तू एक अद्वितीय ही (वस्वः ईशीय) ऐश्वर्य और बसे जीवगण का स्वामी है, (यद् अहं) वैसा ही जो मैं होऊं, फिर जैसे तेरा (स्तोता गो-सखा) स्तुतिकर्त्ता उत्तम वाणियों और इन्द्रियों का मित्र होता है वैसे ही इस लोक में तुझ जैसे ऐश्वर्यसम्पन्न (मे) मेरा (स्तोता) उपदेष्टा विद्वान् भी (गो-सखा) भूमि, वाणी गोसम्पदा और धनुष और डोरी का मित्र, अर्थात् भूमि, वाणी, पशु, शस्त्रादिसम्पन्न (स्यात्) हो ।

शिक्षे॑यमस्मै॒ दित्से॑यं॒ शची॑पते मनी॒षिणे॑ ।
यद॒हं गोप॑तिः॒ स्याम् ।। २ ।।

भा०—हे (शचीपते) वाणियों के स्वामिन् ! (यद् अहं गोपतिः स्याम्) जो मैं 'गो, भूमि, वाणियों का स्वामी, विद्वान्, धनुर्धर होऊं तो (अस्मै मनीषिणे शिक्षेयं) मन पर वश करने वाले इस मनस्वी शिष्य को ज्ञान की शिक्षा दूं अथवा ज्ञानदाता इस विद्वान् को (दित्सेयं) धनादि देने की इच्छा करूं और (शिक्षेयं) दूं भी ।

धे॒नुष्ट॑ इन्द्र सू॒नृता॒ यज॑मानाय सुन्व॒ते ।
गामश्वं॑ पि॒प्युषी॑ दुहे ।। ३ ।।

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! गुरो ! विद्वन् ! (सुन्वते) शुभकर्म करने, ज्ञान-स्नान करने वाले (यजमानाय) देवपूजा, सत्संग, शील के

लिये (सूनृता) उत्तम सत्य, न्याययुक्त (ते धेनुः) तेरी वाणी (पिप्युषी) उसे बढ़ाती हुई (गाम् अश्वं दुहे) गौ अश्वादि सम्पदा देती है।

न तें वर्तास्ति राधस इन्द्रं देवो न मर्त्यः।
यादित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन्! तू (स्तुतः) स्तुति किया जाकर (यत्) जब (मघं दित्ससि) उत्तम ऐश्वर्य देना चाहता है तो (ते राधसः) तेरे दिये धन का (वर्त्ता) वरण करने वाला (न देवः न मर्त्यः) न कोई देव, न विद्वान् और न साधारण मनुष्य है।

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि ।५।१४।

भा०—(दिवि) आकाश में (ओपशं) मेघ को (चक्राणः) उत्पन्न करता हुआ (यत् यज्ञः) जो यज्ञ (भूमिं वि-अवर्त्तयत्) भूमि को विविध सस्यादि से सम्पन्न करता है, वह ही (इन्द्रम् अवर्धयत्) सूर्यवत् प्रभु की महिमा को बढ़ाता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—(विश्वा धनानि) समस्त धनों को (जिग्युषः) जीतने और (वावृधानस्य) निरन्तर बढ़ने वाले (ते) तेरी (ऊतिं) रक्षा को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वयं वृणीमहे) हम वरण करते हैं।

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥७॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (यत्) जब (वलम्) घेरने वाले शत्रु को (अभिनत्) छिन्न-भिन्न करता है तब वह (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य-प्राप्ति वा राष्ट्र-लाभ-रूप हर्ष में (रोचना) रुचियुक्त होकर (अन्तरिक्षम् वि-अतिरित्) अन्तःकरण को आकाशवत् बड़ा कर लेता है; उदार हो जाता है।

उदुगा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ८ ॥

भा०—वह परमेश्वर (अंगिरोभ्यः) विद्वानों वा प्राणधारी जीवों के उपकार के लिये (गुहा सतीः) अन्तःकरण में प्राप्त (गाः) वेद-वाणियों को शिष्यों के प्रति गुरु के तुल्य (आविष्कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (उत आजत्) उदित करता है, और (अर्वाञ्चं) आगे आये (वलम्) आत्मा को घेरने वाले अज्ञान को (नुनुदे) भगा देता है ।

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रेण) परमेश्वर ने (दिवः) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश के (रोचना) रुचिकारक पदार्थ (दृढानि) दृढ किये और (दृंहितानि) बढ़ाये, (स्थिराणि) स्थिर रहने वाले बनाये, (न पराणुदे) जो चिरकाल तक नष्ट न हों ।

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषुः ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (स्तोमः) स्तुतिप्रवाह (मदन्) उछलते (अपाम् ऊर्मिः इव) समुद्रों के तरंग वा प्राणों के तरंगवत् (अजिरायते) वेग से उठता है, (ते मदाः) तेरे आनन्द प्रवाह (वि अराजिषु) विविध प्रकार से विराजते हैं । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ११

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (स्तोतॄणाम्) स्तुतिकर्त्ता जनों के (हि) अवश्य (स्तोम-वर्धनः) स्तुति समूह को बढ़ाने और (उक्थ-वर्धनः) उत्तम वचन को बढ़ाने (उत) और (भद्रकृत्) कल्याण करने वाला है ।

इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् १२

भा०—जैसे (केशिना हरी इन्द्रम् वक्षतः) केशों वाले अश्व ऐश्वर्यवान् पुरुष को ढोते हैं वैसे ही (केशिना हरी) क्लेशों वाले स्त्री पुरुष (सोम-पेयाय) सुखैश्वर्य-प्राप्ति और उसके उपभोग के लिये (इन्द्रम् इत् वक्षतः) परमेश्वर को हृदय में धारण करते, स्तुति करते हैं। वे दोनों, (सु-राधसम्) उत्तम आराधना योग्य (यज्ञम् उप) प्रभु की उपासना करते हैं।

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (यत्) जब (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्धाओं, द्वेषों, कामनाओं को (अजयः) जीत लेता है, तब तू (अपां) प्राणों के (फेनेन) बल से (नमुचेः) न छूटने वाले देह के (शिरः) शिरो भाग की ओर (उत् अवर्त्तयः) ऊर्ध्व गति करता है।

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः। अव दस्यूँरधूनुथाः १४

भा०—हे (इन्द्र) सत्यदर्शिन्! तू (मायाभिः) नाना बुद्धियों से (उत्-सिसृप्सतः) ऊपर जाना चाहते हुए और (द्याम्) तेजोयुक्त प्रभु-पद वा शिरोभाग के मूर्धा स्थान की ओर (आरुरुक्षतः) आरोहण करने वाले सज्जनों की रक्षा कर और (मायाभिः) छल कपटादि से ऊंचे जाने वाले (द्याम्) भूमि राज्य पर (उत्सिसृप्सतः आरुरुक्षतः) आरूढ होने वाले (दस्यून् अव अधूनुथाः) दस्युओं को नीचे गिरा।

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! दुष्टों के नाशक! तू (सोम-पाः) राष्ट्र, प्रजाजन आदि का रक्षक (उत्तरः) सबको पार ले जाने वाला (भवन्) होकर (असुन्वां) ऐश्वर्य न उत्पन्न करने और (विषूचीम्)

विपरीत, अराजक दिशा से जाने वाली (संसदं) राज सभा वा जन-सभा को (वि-अनाशयः) विशेषतः नष्ट कर। इति षोडशो वर्गः॥

[१५]

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१—३, ५—७; ११, १३ निचृदुष्णिक्। ४ उष्णिक्। ८, १२ विराडुष्णिक्। ९, १० पादनिचृदुष्णिक्॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत॥ १॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप (तम् उ) उसी (पुरु-हूतं) बहुतों से स्वीकृत, (पुरु-स्तुतम्) बहुतों से स्तुत्य (तविषम्) बलशाली (इन्द्रं) परमेश्वर का (अभि प्र गायत) उत्तम गान करो। (गीर्भिः) वाणियों से उसकी (आ विवासत) आदर पूर्वक उपासना करो।

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना॥ २॥

भा०—(द्वि-बर्हसः) आकाश, भूमि दोनों के धारक, दोनों के स्वामी (यस्य बृहत् सहः) जिसका बल बहुत बड़ा है वह (वृषत्वना) भारी सामर्थ्य से (रोदसी दाधार) आकाश, भूमि को धारण करता है, वह (अज्रान् गिरीन्) वेग से जाने वाले मेघों, (अपः) समुद्र वा आकाश के जलों और (स्वः) सूर्य वा प्रकाश को (दाधार) धारण करता है।

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! (सः) वह तू (पुरु-स्तुतः) बहुतों से प्रशंसित, (एकः) अद्वितीय रहकर (राजसि) राजा के समान है। वह तू ही (जैत्रा श्रवस्या) विजय करने और श्रवण

करने योग्य धनों, अन्नों और ज्ञानों को (यन्तवे) देने के लिये (वृत्राणि जिघ्नसे) मेघों को विद्युत्वत्, आवरणकारी अज्ञानों को नष्ट करता है।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्।

उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वीर्यवन्! (ते) तेरे (तं) उस (वृषणं) शक्तिसम्पन्न, सुखों के दाता, (पृत्सु सासहिं) संग्रामों में शत्रु को पराजय करने वाले (लोक-कृत्नुम्) लोकों को बनाने और (हरि-श्रियम्) सूर्यादि लोकों के आश्रय योग्य (मदं) परमानन्द की हम (गृणीमसि) स्तुति करते हैं।

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ।

मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर! तू (येन) जिस के द्वारा (आयवे) संसार में पुनः २ आने वाले (मनवे) मननशील जीव-संसार को (ज्योतींषि) चमकने वाले वेदमय ज्ञान-प्रकाश को (विवेदिथ) प्राप्त कराता है वह तू (मन्दानः) आनन्दमय होकर (अस्य बर्हिषः) इस संसार में (वि राजसि) विविध प्रकार से चमकता है। इति सप्तदशो वर्गः॥

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।

वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(तत्) वे विद्वान् जन (अद्य चित्) आज भी (पूर्वथा) पूर्ववत् (उक्थिनः) मन्त्रों के ज्ञाता (ते) तेरे यश का (अनु स्तुवन्ति) नित्य स्तवन करते हैं। हे बलशालिन्! (दिवे दिवे) प्रति दिन, (वृषपत्नीः) बलवान् पुरुषों द्वारा पालने योग्य (अपः) प्रकृति के परमाणुओं को (जय) वश करता है।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव शुष्ममुत क्रतुम्।

वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! (तव) तेरे (त्यत् इन्द्रियम्) उस इन्द्रिय अर्थात् महान् सामर्थ्य को और (तव) तेरे उस (बृहत् शुष्मम्) बड़े बल और (क्रतुम्) ज्ञान और कर्म को और तेरे (वरेण्यम् वज्रम्) वरणीय बल को (धिषणा) बुद्धि वा ज्ञान ही (शिशाति) तीक्ष्ण कर रहा है, प्रबलता से दिखाता है।

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन्! (तव पौंस्यं) तेरे महान् पौरुष, बल वा पुरुष भाव को (द्यौः) सूर्य और (श्रवः) तेरे यश को (पृथिवी) अन्नवत् यह पृथिवी (वर्धंति) बढ़ा रही है। (आपः) जल और (पर्वतासः च) मेघगण (त्वाम् हिन्विरे) तेरी बड़ाई करते हैं।

त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (विष्णुः) प्रकाशमान सूर्य (बृहन्) महान् (क्षयः) सबको अपने में बसाने वाला, गृह के समान आश्रय (मित्रः) स्नेहवान् जन, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ जन (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति करता है। और (मारुतं शर्धः) वायुओं का बल भी (त्वाम् अनु मदति) तेरे बल पर क्रीड़ा करता है।

त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे।
सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन्! (त्वं) तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (वृषा) वीर्यसेचक के तुल्य सबका पिता, सुखों का दाता और (मंहिष्ठः) सबसे पूज्य होकर (जज्ञिषे) जगत् को उत्पन्न करता है। (सत्रा) साथ ही, वा सदा तू (विश्वा) समस्त लोकों को (सु-अपत्यानि)

उत्तम सन्तानों के तुल्य (दधिषे) धारता और पालता है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

सत्रा त्वं पुरुष्टुत एको वृत्राणि तोशसे ।
नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति ॥ ११ ॥

भा०—हे प्रभो ! (त्वं) तू (सत्रा) सत्य के बल से (पुरु-स्तुतः) बहुतों से स्तुति योग्य होता है । वह तू (एकः) अद्वितीय, शक्तिशाली होकर (वृत्राणि) शत्रु सैन्यों के समान घेर लेने वाले विघ्नों को विद्युत्-वत् (तोशसे) मारता, गिरा देता है । (इन्द्रात् अन्यः) उस परमैश्वर्यवान् से दूसरे किसी भी (भूयः करणं) अधिक क्रियासाधक साधन को (न इन्वति) नहीं प्राप्त कर सकता है ।

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् त्वा) जिस तुझको (नाना) बहुत से जन (मन्मशः) मनन योग्य मन्त्रों से (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये (हवन्ते) पुकारते हैं वह तू (अत्र) इस जगत् में (अस्माकेभिः) हमारे (नृभिः) मनुष्यों सहित (स्वः) समस्त सुख को (जय) सर्वोपरि प्राप्त हो ।

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् ।
इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥ १३ ॥ १९ ॥

भा०—हे प्रभो ! (नः) हमारे (महे क्षयाय) बड़े ऐश्वर्य के लिये (विश्वा रूपाणि) सब कान्तियुक्त पदार्थ, (अरं आविशन्) खूब प्राप्त हों । हे विद्वान् ! (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति के तुल्य तेजस्वी प्रभु को (जैत्राय) सब अन्तःशत्रुओं और प्राकृतिक ऋद्धियों पर विजय करने के लिये उस (शचीपतिम्) शक्तियों के पालक प्रभु को (हर्षय) प्रसन्न कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ९—१२ गायत्री । २—७ निचृद् गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

भा०—(चर्षणीनाम् सम्राजं) ज्ञानदर्शी मनुष्यों के बीच प्रदीप्त, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (नव्यं) स्तुति योग्य (नरं) नायक, परम पुरुष (नृ-षाहं) मनुष्यों को वश करने वाले (मंहिष्ठम्) अतिदानशील पुरुष, प्रभु का (गीर्भिः स्तोत) वेद वाणियों से स्तुति करो ।

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥

भा०—(समुद्रे अपाम् अवः) जैसे समुद्र में जलों के नाना प्रवाह वा तरंग आते और इसी में लीन हो जाते हैं वैसे ही (यस्मिन्) जिस प्रभु में (विश्वानि उक्थानि) समस्त स्तुति-वचन और (विश्वानि श्रवस्या च) सब प्रकार के श्रवण-योग्य कीर्त्ति वचन (रण्यन्ति) रमते हैं, (तम् सुस्तुत्या विवासे) उस प्रभु का मैं स्तुति द्वारा भजन, वा प्रकाश करूं ।

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (ज्येष्ठ-राजं) बड़ों २ के राजा, वा सूर्यादि में प्रकाशमान, (भरे कृत्नुम्) भरण पोषण योग्य संसार में जगत् को बनाने वाले (महः वाजिनम्) बड़े बल, ज्ञान, ऐश्वर्य के स्वामी को मैं (सनि-भ्यः) नाना भागों या दानों के लिये (सुस्तुत्या आविवासे) उत्तम स्तुति से उसकी सेवा, अर्चा और पूजा तथा उसके गुणों का प्रकाश करूं ।

यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः । हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥४॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु के (मदाः) आनन्ददायक व्यवहार और आनन्द युक्त पुरुष (अनूनाः) किसी प्रकार भी न कम, परिपूर्ण, (गभीराः) गंभीर, (उरवः) बड़े २ और (तरुत्राः) वृक्षों के इर्द गिर्द लगी बाड़ के समान प्राण रक्षा करने वाले, वा संसार से पार उतारने वाले हैं, जो (शूर-सातौ) शूरवीरों के प्राप्ति के अवसर, संग्रामादि में भी (हर्षु-मन्तः) हर्षयुक्त हैं, वह परमेश्वर सबका पालक है ।

तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ ५ ॥

भा०—(हितेषु धनेषु) कल्याणजनक धनों को प्राप्त करने के निमित्त (अधिवाकाय) आज्ञा वा निर्णय वचन कहने वाले अध्यक्ष पद के लिये विद्वान् लोग (तम् इत् हवन्ते) उसी से प्रार्थना करते हैं कि वह न्याय करे । (येषाम् इन्द्रः) जिनके पक्ष में 'इन्द्र' सत्य, न्याय का द्रष्टा होता है (ते) वे (जयन्ति) विजय प्राप्त करते हैं ।

तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः ।
एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(एषः इन्द्रः) यह ऐश्वर्य का स्वामी, तेजस्वी प्रभु (वरिव-स्कृत्) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करता है । (तम् इत्) उसको (च्यौत्नैः) बलों, ज्ञानों और (कृतेभिः) सत्कर्मों से (चर्षणयः) सब मनुष्य (आ-र्यन्ति) प्राप्त करते, उसको स्वामी बनाते हैं, प्रार्थना करते हैं । इति विंशो वर्गः ॥

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः ।
महान्महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥

भा०—इन्द्र का लक्षण और नाना भेद । (इन्द्रः ब्रह्मा) ज्ञान का साक्षात् दर्शन करने से, चारों वेदों का ज्ञाता पुरुष 'इन्द्र' है । (ऋषिः

इन्द्रः) यथार्थ ज्ञान का तत्वदर्शी इन्द्र है। वह (पुरुहूतः) बहुतों से आदर प्राप्त करता है। वह (महोभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियों के कारण (महान्) महान् है और (पुरु) बहुत प्रकार से विराजता है। परमेश्वर महान् होने से 'ब्रह्म' है, सर्वद्रष्टा होने से 'ऋषि' है और बड़ी २ शक्तियों से 'महान्' है।

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः।
एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (स्तोम्यः) स्तुति वचनों से स्तुति-योग्य है। (सः हव्यः) वह प्रार्थनादि से सत्कार-योग्य है। वह (सत्यः) सत्य स्वरूप, (सत्वा) बलवान्, (तुवि-कूर्मिः) बहुत कर्म करने हारा है। वह (एकः चित्) अकेला, (सन्) होता हुआ (अभि-भूतिः) विघ्नों का पराजयकारी है।

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः।
इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥

भा०—(तम् इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को (चर्षणयः क्षितयः) ज्ञान के द्रष्टा विद्वान् लोग (अर्केभिः) अर्चना योग्य मन्त्रों से और (तं सामभिः) उसी को साम गानों से और (तं गायत्रैः) उसी को गायत्री आदि नाना छन्दों से (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं, उसकी महिमा का विस्तार करते हैं।

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १० ॥

भा०—और वे मनुष्य (वस्यः) उत्तम ऐश्वर्य को (अच्छ प्रणेतारम्) साक्षात् देने वाले और (समत्सु) भययुक्त संकट के अवसरों में भी (ज्योतिः कर्त्तारम्) प्रकाश देने वाले, (युधा) युद्ध द्वारा (अमित्रान् सस-ह्वांसं) शत्रुवर्ग के पराजित करने वाले की विद्वान् लोग स्तुति करते हैं।

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ११ ॥

भा०—(सः पुरुहूतः) वह बहुतों से पुकारे जाने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, परमैश्वर्यवान् प्रभु, (पप्रिः) सबका पालक (विश्वाः द्विषः) सब अप्रीति कर शत्रुओं वा संकटों से (नावा) नौका से नदियों के समान (नः) हमें (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक, सुख से (अति पारयति) पार करे ।

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ १२ ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! प्रभो ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः) नाना ऐश्वर्यों और बलों करके (दशस्य) सुख प्रदान कर और (गातुया च) उत्तम सुख की ओर मार्ग दिखा । (अच्छ च नः सुम्नं नेषि) हमें सुख की ओर ले चल । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१७]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१-३, ७, ८ गायत्री । ४-६, ९-१२, निचृद् गायत्री । १३ विराड् गायत्री । १४ आसुरी बृहती । १५ आर्षी भुरिग् बृहती ॥ पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे विद्वन् ! तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो, (ते) तेरे लिये हम (इमं सोमं) इस ऐश्वर्य को (सु-सुम) उत्पन्न करते हैं । हे प्रभो ! तेरे लिये ही इस सोम, आत्मा को संमार्ग पर चलाते हैं, (इमं पिब) इसकी रक्षा कर । (इदं बर्हिः मम) यह वृद्धियुक्त प्रजाजन एवं आसनवत् है, (सदः) उस पर (आ सदः) आप विराजिये ।

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

भा०—जैसे (केशिना हरी) केशों वाले दो अश्व रथ को ले जाते हैं वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ब्रह्म-युजा) वेद-ज्ञान के सहयोगी (केशिना हरी) केशोंवत्, तेजों के धारण स्त्री पुरुष, (त्वा आ वहताम्) तुझे अपने में धारण करें । तू (नः ब्रह्माणि) हमारे वेद-मन्त्रों को (उप शृणु) सुन ।

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—(वयं ब्रह्माणः) हम स्तुतिकर्त्ता एवं ब्रह्मचारी जन, (सोमिनः) ज्ञान, अन्न, सन्तान से युक्त और (सुतवन्तः) उत्तम पुत्रादिमान् होकर (युजा) योग द्वारा (सोमपां त्वाम्) शिष्यादि के पालक तुझको (हवामहे) प्रार्थना करते हैं । इसी प्रकार हे राजन् ! हम (ब्रह्माणः) धन अन्नादि सम्पन्न होकर तुझे ऐश्वर्य पालक स्वीकार करें ।

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप ।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ ४ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) उत्तम मुकुट वा उत्तम मुख नासिका वाले, सौम्यमुख विद्वान् ! राजन् ! तू (सुतावतः नः) पुत्रवान् एवं ऐश्वर्यादि युक्त हमें (आ याहि) प्राप्त हो । (अस्माकं सुस्तुतीः उप) हमारी उत्तम स्तुतियों को सुन वा हमें उत्तम उपदेश प्रदान कर । (अन्धसः सुपिब) अन्नों का उत्तम भोजन कीजिये । आप प्राणधारकजीव का पालन करें ।

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—जैसे अन्न ओषधि रस (कुक्ष्योः) कोखों या उदर में जाकर

अंश २ में जाता है और मनुष्य जिह्वा से (मधु) अन्न ग्रहण करता है वैसे ही हे विद्वान् शिष्य ! मैं (ते) तेरे (कुक्ष्योः) कोखों को (आसिञ्चामि) जल से शुद्ध करता हूँ। वह जल (गात्रा अनु वि धावतु) अंगों को प्राप्त होकर पवित्र करे। इस प्रकार शुद्ध होकर, हे शिष्य ! तू (जिह्वया) वाणी से (मधु) ब्रह्मज्ञान, वेद को (गृभाय) धारण कर। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३तवं ।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (सोमः स्वादुः तन्वे मधुमान्, हृदे शम्) अन्नादि ओषधिरस स्वादु, शरीर को पोषणप्रद और हृदय को शान्तिदायक होता है वैसे ही हे विद्वन् ! यह (सोमः) शिष्य (संसुदे स्वादुः) उत्तम ज्ञान के दाता तुझ गुरु के ज्ञान को उत्तम रीति से ग्रहण करने हारा हो। और वह (तव तन्वे) तेरी शरीर सेवा वा विस्तृत ज्ञान के लिये (मधुमान्) वेदज्ञान से युक्त हो। वह (ते हृदे) तेरे हृदय के लिये (शम्) शान्तिदायक हो।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः ।
प्र सोमं इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

भा०—(जनीः इव संवृतः अभि) जैसे स्त्रियें वस्त्र आभरणादि से युक्त होकर, वरण किये पति के अभिमुख होती हैं वैसे ही हे (इन्द्र) आचार्य ! हे (विचर्षणे) विविध विद्याओं के द्रष्टः ! (अयम् सोमः) यह शिष्य वा, सावित्री माता के गर्भ में उत्पन्न पुत्र (संवृतः) तेरे द्वारा अच्छी प्रकार वृत, स्वीकृत होकर (त्वा अभि सर्पतु) तुझे प्राप्त हो और (प्र सर्पतु) विद्या, चरित्र के मार्ग में आगे बढ़े।

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ८ ॥

भा०—वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन। जैसे (सु-बाहुः) उत्तम बाहु अंगुलि आदि वाला (तुवि-ग्रीवः) विस्तृत, बहुत गर्दनों वाला, (वपोदरः) स्थूल, दृढ़ होकर (वृत्राणि जिघ्नते) बाधक विघ्नों का नाश करता है वैसे ही (इन्द्रः) शत्रुबलों का नाशक राजा, (तुविग्रीवः) बड़ी ग्रीवा वाला दृढ़ स्कन्ध, नाना सैन्य बलों से युक्त, (वपोदरः) 'वपा' छेदन भेदन की शक्ति को राष्ट्र में धारण करता हुआ (सुबाहुः) उत्तम बाहुमान्, (अंधसः मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होकर, (वृत्राणि) राज्य के बाधक कारणों को (जिघ्नते) नष्ट करे; राजा की सेनाएं शरीर में बाहुवत् हैं, यह श्लेष से कहा है।

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इंद्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (पुरः प्र इहि) सामने आ, तू (ओजसा) बल से (विश्वस्य ईशानः) सब जगत् का स्वामी है। हे (वृत्रहन्) सूर्यवत् मेघों को लाने और दुष्टों को ताड़ने हारे! तू (वृत्राणि जहि) दुष्टों को दण्ड दे।

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि।
यजमानाय सुन्वते ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे राजन्! (येन) जिस बल से तू (सुन्वते यजमानाय) अन्नादि उत्पन्न करने वाली प्रजा के हितार्थ (वसु प्रयच्छसि) ऐश्वर्य देता है वह (ते अंकुसः) तेरा अंकुश, शत्रुरूप गज का वशकारी साधन, शासन बल (दीर्घः अस्तु) बहुत विस्तृत हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! गुरो! (ते) तेरा (अयं) यह (बर्हिषि) उत्तम शासन वा यज्ञ में (निपूतः) निरन्तर पवित्र (सोमः)

शिष्य है, (ईम् अस्य आ इहि) उसको तू प्राप्त हो (आ द्रव, आ पिब) उस पर कृपा कर और उसे रक्षा में रख।

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ १२ ॥

भा०—(शाचि-गो) शक्तिशाली बैलों, अश्वों, धनुषों और वाणियों वाले राजन्! विद्वन्! प्रभो! हे (शाचि-पूजन) शक्तियों या शक्तिशाली सेनाओं के कारण पूजनीय, हे (आखण्डल) शत्रुओं को सब ओर छिन्न भिन्न करने हारे! (अयं) यह (सुतः) ऐश्वर्य देने वाला प्रजाजन (ते रणाय) तेरे ही रमण के लिये है। तू (प्र हूयसे) बड़े आदर से बुलाया जाता है।

यस्ते शृङ्गवृषो नपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः।
न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥ १३ ॥

भा०—हे (शृङ्गवृषः नपात्) हिंसाकारी बाणों के वर्षक! प्रबल सैन्य को न गिरने देने वाले! (यः) जो (ते) तेरा (प्रणपात्) पुत्रवत् पालनीय (कुण्ड-पाय्यः) कुण्डों के जलादि से पालन-योग्य राष्ट्र, ऐश्वर्य है (अस्मिन्) उसमें ही (मनः आ दध्रे) मनोयोग रख।

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम्।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ १४ ॥

भा०—हे (वास्तोष्पते) 'वास्तु' अर्थात् नगरादि के पालक! जैसे गृह का (स्थूणा ध्रुवा) मुख्य स्तम्भ सर्वाश्रय हो उसी प्रकार तेरे राष्ट्र में (ध्रुवा) तू पृथिवीवत् (स्थूणा) मुख्य स्तम्भवत् सबका स्थिर आश्रय है। (सोम्यानां) ऐश्वर्य पाने योग्य शासकों, वा शिष्यों के हितैषी ज्ञानी पुरुषों का (अंसत्रं) कन्धों के कवचवत् रक्षक हो। (द्रप्सः) द्रुत-गति से आक्रमण करने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (शश्वतीनां

पुरां) बहुत से शत्रु नगरों का (भेत्ता) तोड़ने वाला हो और वह (मुनीनां) मनन करने वाले ज्ञानविचारक मनुष्यों का (सखा) मित्र हो।

पृदा॑कुसानुर्यज॒तो ग॒वेष॑ण॒ एक॒: सन्न॒भि भूय॑सः ।
भूर्णि॒मश्वं॑ नयत्तु॒जा पु॒रो गृ॑भेन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ १५ ॥२४॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा (पृदाकु-सानुः) 'पृत्' अर्थात् संग्रामों के अवसरों में सन्मार्ग को बतलाने वाला, उन्नति-पद पर स्थित, (यजतः) पूज्य और (गवेषणः) राष्ट्र को चाहने वाला होकर (भूयसः अभि) बहुत से शत्रुओं पर (एकः सन्) अकेला रहकर भी (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (पुरः) अपने समक्ष (तुजा गृभा) शत्रुहिंसा-कारी पकड़ या वशीकरण-सामर्थ्य से (भूर्णिम्) सबके भरण-पोषण में समर्थ (अश्वं) राष्ट्र वा सैन्य और (इन्द्रं) ऐश्वर्य को (नयत्) चलावे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१८]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१–७, १०–२२, आदित्याः । ८ अश्विनौ ॥ ९ अग्निसूर्यानिलाः ॥ छन्दः—१, १३, १५, १६ पादनिचृदुष्णिक् ॥ २ आर्ची स्वराडुष्णिक् । ३, ८, १०, ११, १७, १८, २२ उष्णिक् । ४, ९, २१ विराडुष्णिक् । ५–७, १२, १४, १९, २० निचृदुष्णिक् ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इ॒दं ह॑ नू॒नमे॑षां सु॒म्नं भि॑क्षेत॒ मर्त्यः॑ ।
आ॒दि॒त्याना॒मपू॑र्व्यं॒ सवी॑मनि ॥ १ ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (आदित्यानां) आदित्यवत् तेजस्वी ब्रह्म-ज्ञानी पुरुषों के (सविमनि) शासन में रहकर (एषां) इनके (सुम्नं) सुखकारक (अपूर्व्यम्) अपूर्व ज्ञान की (ह नूनं) अवश्य (भिक्षेत) याचना करे।

अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् ।
अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥ २ ॥

भा०—(एषां हि) इन (आदित्यानां) तेजस्वी पुरुषों के (पन्थाः) मार्ग (अनर्वाणः) निर्दोष, निष्कण्टक, (अदब्धाः) अहिंसित, अक्षय, (पायवः) पालक और (सुगे-वृधः) सुख बढ़ाने वाले (संति) होते हैं।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(सविता) उत्पादक माता पिता, (भगः) सेवा योग्य ऐश्वर्यवान्, स्वामी (वरुणः) दुःखवारक राजा, (अर्यमा) शत्रुओं का नियंता, अध्यक्ष, ये सब (स-प्रथः) अति विस्तृत (यत्) जो (शर्म) सुख, शांति वा आश्रय हम (ईमहे) चाहते हैं (यच्छंतु) प्रदान करें।

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि ।
स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अदिते) अखण्ड चरित्र वाली ! भूमिवत् वा मातावत् पालन करने वाली ! हे (पुरुप्रिये) बहुतों को प्रिय लगने हारी, (देवि) विदुषि ! हे (अरिष्टभर्मन्) सुखों को पूर्ण करने वाली, (देवेभिः) शुभ गुणवान् (सूरिभिः) विद्वान्, (सु-शर्मभिः) उत्तम गृहस्थों सहित (स्मत् आगहि) अच्छी प्रकार, आदर से प्राप्त हो।

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे ।
अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(ते हि) वे (अदितेः पुत्रासः) भूमि के पुत्र वा तेजस्वी पुरुष, (उरु-चक्रयः) बड़े २ कार्य करने वाले (अनेहसः) निष्पाप लोग (अंहोः-चित्) पापी के भी (द्वेषांसि) अप्रीतिकारक द्वेषों को (योतवे विदुः) दूर करने का उपाय जानते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अदि॑तिर्नो दि॒वा प॒शुमदि॑तिर्न॒क्तमद्व॑याः ।
अदि॑तिः पा॒त्वंह॑सः स॒दावृ॑धा ॥ ६ ॥

भा०—(अद्वयाः) अद्वितीय वा बाहर-भीतर में दो भाव न रखती हुई, (अदितिः) विदुषी माता (नः) हमारे (पशुम्) पशुओं की रक्षा करे। वह (अदितिः) अखण्ड और अदीन राजशक्ति (नक्तम्) रात को भी (पातु) पालन करे। वह (सदावृधा) प्रजाजनों को बालकवत् पुष्ट करने वाली होकर (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे।

उ॒त स्या नो॒ दिवा॑ म॒तिरदि॑तिरू॒त्या ग॑मत् ।
सा शन्ता॑ति॒ मय॑स्कर॒दप॒ स्रिधः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (अदितिः) अदीन भाव से रहने वाली शक्ति, (मतिः) बुद्धिमती होकर (नः) हमें (दिवा) दिन के समय (ऊत्या) रक्षा और ज्ञानसहित (आ गमत्) आवे। (सा) वह (शंताति) शांतिदायक (मयः) सुख (करत्) प्रदान करे और (स्रिधः) हिंसक शत्रुओं को (अप करत्) दूर करे।

उ॒त त्या दैव्या॑ भि॒षजा॒ शं नः॑ करतो अ॒श्विना॑ ।
यु॒यु॒याता॑मि॒तो रपो॒ अप॒ स्रिधः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(उत) और (त्या) वे (दैव्या) 'देव' अर्थात् दिव्यगुण युक्त पदार्थों में कुशल, (भिषजा) दोनों प्रकार के रोगचिकित्सक (अश्विना) विद्या के क्षेत्र में विस्तृत ज्ञान वाले (नः शं करतः) हमें शांति दें। (इतः) इस देह या राष्ट्र से (रपः) दुःख वा पाप को (युयुयाताम्) अलग करें और (स्रिधः अपः) बाधक विघ्नों और रोगादि को भी दूर करें।

शम॒ग्निर॒ग्निभिः॑ कर॒च्छं न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑ ।
शं वातो॑ वात्वर॒पा अप॒ स्रिधः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि तत्व (अग्निभिः) व्यापन और दाह आदि

गुणों से युक्त तत्वों से (नः शम् करत्) हमें शांति दें। (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें शांति, सुखदायक और रोगनाशक होकर (तपतु) तपे। (वातः) वायु (अरपाः) रोग रहित होकर (नः शं वातु) हमें शांतिदायक होकर बहे। (स्त्रिधः अप) रोगादि पीड़ाएं दूर हों।

अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम्।
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) माता पिता गुरु आदि के पुत्रो! एवं पुत्रों के पिता मातादि गुरुजनो! आप (अमीवाम् अप) रोग को दूर करो। (स्त्रिधम्) नाशकारी (दुर्मतिम्) दुष्टमति को (अप सेधत) दूर करो और (नः अंहसः युयोतन) हमारे पापों को दूर करो। इति षड्विंशो वर्गः॥

युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम्।
ऋधग्द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों के जानने वाले (आदित्यासः) आदित्यवत् तेजस्वी, एवं संसार के समस्त पदार्थों से ज्ञान और उपयोगी तत्व लेने वाले पुरुषो! आप लोग (अस्मत् शरुं) हमसे हिंसक और हिंसाभाव (उत) तथा (अमतिम्) मूर्ख और मूर्खता को (युयोत) पृथक् करो और (द्वेषः) द्वेष को भी (ऋधक् कृणुत) पृथक् करो।

तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति।
एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः॥ १२ ॥

भा०—हे (आदित्याः) आदित्य के समान तेजस्वी, एवं अदिति अर्थात् अखण्ड परब्रह्म के उपासक वा वेदवाणी में निष्णात विद्वान् पुरुषो! हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील जनो! (यत्) जो (एनस्वतं चित्) पापी को (एनसः मुमोचति) पाप से मुक्त कर देता है, आप

(तत् शर्म) वह शांति सुखदायक, शरण वा दण्डव्यवस्था (नः यच्छत) हमें प्रदान करो।

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः।
स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (कश्चित्) कोई (मर्त्यः) मनुष्य (रक्षस्त्वेन) हिंसक स्वभाव से (नः) हमें (रिरिक्षति) मारना, पीड़ित करना चाहता है (सः) वह (युः) दुःखदायी (जनः) मनुष्य (स्वैः एवैः) अपने आचरणों से (रिरिषीष्ट) पीड़ित होता है। हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः॥

समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम्।
यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मत्रा) हम लोगों में (दुर्हणावान्) दुःखदायी, और (द्वयुः) हमारे प्रति दो प्रकार का भाव—बाहर और भीतर वा प्रत्यक्ष और परोक्ष में भिन्न २ भाव—रखता है, (तं) उस (दुःशंसं) दुर्गृहीत नाम वाले, बुरी बात कहने वाले (रिपुम् मर्त्यम्) पापी पुरुष को (अघम् सम्-अश्नवत्) पाप व्याप लेता और नष्ट कर देता है।

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम्।
उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! हे (वसवः) माता पिता, गृहस्थादि आश्रमों में रहने वाले मनुष्यो! आप (पाकत्रा) परिपक्व ज्ञान वाले जनों के अधीन (स्थन) रहो और (द्वयुं अद्वयुं च) दो भावों वाले, कपटी और दो भावों से न रहने वाले निष्कपट (मर्त्यं) मनुष्य को (हृत्सु उप जानीथ) हृदयों तक में खूब जानो। इति सप्तविंशो वर्गः॥

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे।
द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (द्यावाक्षाम) सूर्य और पृथिवीवत् तेजस्वी, क्षमाशील, गुरु जनो ! हम लोग (पर्वतानां) मेघों वा पर्वतों के और (अपां) जलों के बीच (शर्म) सुखदायक, गृह के समान (पर्वतानां अपां) पालक साधनों वाले पुरुषों और आप्तजनों के बीच (शर्म वृणीमहे) शान्ति प्राप्त करें। आप (रपः) पाप को (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (कृतम्) करो।

ते नो॑ भ॒द्रेण॒ शर्म॑णा यु॒ष्माकं॑ ना॒वा व॑सवः ।
अति॒ विश्वा॑नि दुरि॒ता पि॑पर्तन ॥ १७ ॥

भा०—हे (वसवः) आश्रमों में बसे माता पितादि जनों (ते) वे आप (युष्माकं) अपने (भद्रेण शर्मणा) शान्तिदायक कर्म से (विश्वानि दुरिता) सब विघ्नों से (नावा) नौका से जलों के तुल्य (अति पिपर्तन) पार करो।

तु॒चे तना॑य॒ तत्सु॑ नो॒ द्राघी॑य॒ आयु॑र्जी॒वसे॑ ।
आदि॑त्यासः सुमहसः कृ॒णोत॑न ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) शरण में लेने वाले एवं तेजस्वी और हे (सु-महसः) उत्तम प्रकाशवान्, ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (तुचे तनयाय) पुत्र पौत्र के (जीवसे) जीवन के लिये (तत्) वह (द्राघीयः आयुः कृणोतन) अति दीर्घ आयु करो।

य॒ज्ञो हीळो॑ वो॒ अन्त॑र॒ आदि॑त्या॒ अस्ति॑ मृ॒ळत॑ ।
यु॒ष्मे इद्वो॒ अपि॑ ष्मसि सजा॒त्ये॑ ॥ १९ ॥

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य-किरणोंवत् ज्ञानों का प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (हीडः) प्राप्त करने योग्य (यज्ञः) सत्संग, विद्या, दान सदा (अन्तरे अस्ति) आपके समीप ही रहता है। अतः आप लोग (मृडत) सुखी करो (युष्मे इत्) हम आप

लोगों के अधीन (अपि) भी (वः सजात्ये स्मसि) आपके पुत्र के समान हैं।

बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना।
मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये॥ २०॥

भा०—हम लोग (स्वस्तये) सुख कल्याण के लिये (बृहद् वरूथं) बड़े कष्टनिवारक गृह के समान शरण योग्य (मरुतां) मनुष्यों वा सैन्य जनों के बीच (देवं) सूर्यवत् तेजस्वी और (अश्विना) व्यापक सामर्थ्यवान् माता पिता, (मित्र) स्नेही बन्धुजन और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (ईमहे) प्राप्त करें, आप लोगों से हम गृहादि की याचना करें।

अनेहो मित्रार्यमन्नृवद्वरुण शंस्यम्।
त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः॥ २१॥

भा०—हे (मित्र) प्राणवत् प्रिय ! हे (वरुण) श्रेष्ठ ! हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन् ! आप (नः) हमें (त्रिवरुथं) तीन गृहों से युक्त, शीत, आतप, वर्षा तीनों से बचाने वाला (अनेहः) विघ्न बाधा से रहित (छर्दिः) गृह, (यन्त) दें।

ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि।
प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन॥ २२॥ २८॥

भा०—हे (आदित्याः) अदिति, परमेश्वर के उपासको ! सूर्य की किरणों के तुल्य ज्ञान के प्रकाशक एवं शोकादि को अन्धकारवत् दूर करने हारे तपस्वी जनो ! (ये चित् हि) जो हम (मृत्यु-बंधवः) मौत के बंधु होकर (मनवः स्मसि) मननशील मनुष्य हैं अतः तुम (नः आयुः) हमारी आयु को (जीवसे प्र तिरेतन) दीर्घ जीवन के लिये बढ़ाओ। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

[१९]

सोभरिः काण्व ऋषिः॥ देवता—१—३३ अग्निः। ३४, ३५ आदित्याः।

३६, ३७ असदस्योर्दानस्तुतिः ।, छन्दः—१, ३, १५, २१, २३, २८, ३२ निचृदुष्णिक् । २७ भुरिगार्ची विराडुष्णिक् । ५, १६, ३० उष्णिक् ककुप् । १३ पुर उष्णिक् । ७, ९, ३४ पादनिचृदुष्णिक् । ११, १७, ३६ विराडुष्णिक् । २५ आर्चीस्वराडुष्णिक् । २, २२, २९, ३७ विराट् पंक्तिः । ४, ६, १२, १६, २०, ३१ निचृत् पंक्तिः । ८ आर्ची भुरिक् । पंक्तिः । १० सतः पंक्तिः । १४ पंक्तिः । १८, ३३ पादनिचृत् पंक्तिः । २४, २६ आर्ची स्वराट् पंक्तिः । ३५ स्वराड् बृहती ॥ सप्तत्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमोहिरे ॥ १ ॥

भा०—जिस (देवं) तेजस्वी, परम पुरुष को (देवासः) सब मनुष्य और सूर्यादि गण (अरतिं) अपना स्वामी और सबसे अधिक ज्ञानवान् रूप से (दधन्विरे) धारण करते हैं और जिसको वे (देवत्रा) दानियों और ज्ञानप्रकाशकों में से (हव्यम् आ ऊहिरे) सत्य मानते हैं (तं) उस (स्वः-नरं) सबके नायक एवं सूर्य और प्रकाश को लाने और मोक्ष वा सूर्यवत् प्रभु-पद तक पहुँचाने वाले की (गूर्धय) स्तुति करो ।

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन् ! हे (सोभरे) उत्तम रीति से प्रजा के पोषण करने हारे ! तू (इम्) इस (अध्वराय) यज्ञ और अविनाश के लिये (पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान एवं विद्या, बल में पूर्ण (अस्य सोम्यस्य) पुत्र, शिष्यादि के हितकारी ऐश्वर्य से सम्पाद्य इस (मेधस्य) सत्संग, यज्ञ के (यंतुरं) नियंता, (विभूत-रातिं) प्रचुर दानशील, (चित्र-शोचिषम्) अद्भुत तेजस्वी, (अग्निम्) अग्निवत् ज्ञानप्रकाशक को (प्र ईळिष्व) अच्छी प्रकार आदर कर ।

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य यज्ञस्य) इस यज्ञ के (सु-क्रतुम्) उत्तम रीति से बनाने वाले, (होतारम्) ऐश्वर्यदाता, (अमर्त्यम्) अविनाशी, (देवत्रा देवं) प्रकाशमान सूर्यादि के भी प्रकाशक, दाताओं के भी दाता, (यजिष्ठं) पूज्य, (त्वा) तुम स्वामी को हम (ववृमहे) अपनाते, स्तुति करते हैं ।

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥

भा०—जैसे अग्नि, विद्युत् बल को नष्ट न होने देने वाला उत्तम ऐश्वर्य, प्राण अपान देह के रक्तादि में भी सुख देता है, वैसे ही तू (ऊर्जः नपातम्) बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, अन्न पालक, सैन्य बल को नाव के समान पार ले जाने वाले, (सु-भगं) उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुख से सेवने योग्य (श्रेष्ठ-शोचिषम्) उत्तम कान्तियुक्त, को (दिवि) ज्ञान और व्यवहार के लिये (प्र ईडिष्व) अच्छी प्रकार उपासना कर । (सः) वह (नः) हमें, (मित्रस्य) स्नेही मित्र, (वरुणस्य) वरण योग्य राजा और (सः) वह (अपां) सुखदायक आप्तजन का (सुम्नं) सुख (यक्षते) देता है ।

यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये ।
यो नमसा स्वध्वरः ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसक, (मर्त्तः) पुरुष (नमसा) अन्न से, या श्रद्धा से, (यः) जो (समिधा) काष्ठ से, (यः आहुती) जो आहुति से, (यः वेदेन) जो वेद से, वेद के अध्ययन, मनन, श्रवणादि करते हुए (अग्नये) अग्नि में आहुतिवत्, उस सर्वगुरु परमेश्वर

१९ प.

के हाथों अपने को (ददाश) प्रदान करता है वैसे ही जो राष्ट्रजन तेजस्वी राजा के हाथ अपने को सौंप देता है, उसके ही—इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥ ६ ॥

भा०—(तस्य इत्) उसके ही (आशवः अर्वन्तः) वेग से जाने वाले अश्व (रंहयन्ते) वेग से जाते हैं, (तस्य) उसका ही (यशः द्युम्नि तमम्) यश अति उज्वल होता है, (तम्) उस तक (देवकृतं) विद्वानों और (मर्त्यकृतं) मनुष्यों का किया (अंहः) अपराध (कुतः चन न नशत्) किसी प्रकार नहीं प्राप्त होता अर्थात् यज्ञशील को पाप स्पर्श नहीं करता ।

स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते ।
सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक ! हे (ऊर्जां पते) सैन्यों के पालक ! हे (अग्नयः) तेजस्वी पुरुषो ! हम लोग (वः अग्निभिः) तुम्हारे अग्रणी पुरुषों द्वारा (सुअग्नयः) प्रधान नायकों से युक्त (स्याम) हों । हे अग्रणी ! (त्वम्) तू (अस्मयुः) हमें चाहने वाला (सुवीरः) उत्तम वीर है ।

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो ! विद्वन् ! तू (अतिथिः न) अतिथि के तुल्य पूज्य, (प्रशंसमानः) उत्तम रीति से उपदेश करता हुआ, (मित्रियः) मित्र होने योग्य, (अग्निः) तेजस्वी, (रथः न) रथवत् रमणीय, (वेद्यः) परम गम्य है । (त्वे) तुझ में (क्षेमासः) निवास करने वाले (साधवः) साधक लोग (अपि सन्ति) निमग्न रहते हैं । (त्वं) तू (रयीणां राजा) धनों का राजा है ।

सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः ।
स धीभिरस्तु सनिता ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सः) वह पुरुष (अद्धा) वस्तुतः (दाश्वध्वरः) दानशील, सफल यज्ञ वाला (मर्त्तः) मनुष्य होता है और (सः प्रशस्यः) वही प्रशंसनीय है, (सः) वही (धीभिः) कर्मों और उत्तम बुद्धियों से (सनिता अस्तु) दान देने और ऐश्वर्य का विभाग करने वाला (अस्तु) हो ।

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् १०।३०

भा०—हे (अग्ने) नायक ! (यस्य अध्वराय) जिसको नाश न होने देने वा जिसके यज्ञ की रक्षा के लिये (क्षयद्-वीरः) शत्रुओं, वा अधीन रहने वाले वीरों का स्वामी होकर (त्वं) तू (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि अध्यक्ष होकर (तिष्ठसि) विराजता है, (सः) वह ही (अर्वद्भिः) वीर विद्वानों और (सः विपन्युभिः) वह विशेष व्यवहारयज्ञों और (सः शूरैः) वह शूरवीरों सहित (सनिता) ऐश्वर्य का भोक्ता और (सः सनिता) वही दाता होकर (कृतं साधते) कार्य सिद्ध करता है । इति त्रिंशो वर्गः ॥

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः ।
हव्या वा वेविषद्विषः ॥ ११ ॥

भा०—जैसे (अग्नि गृहे चनः दधीत हव्या वेविषत्) घर में आग पाचन करता है, नाना अन्न प्राप्त कराता है, वैसे ही (यस्य) जिस पुरुष के (गृहे) घर में (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (वपुः) संशयों को छेदन में कुशल और (विश्व-वार्यः) सबसे वरण योग्य होकर (चनः स्तोमं) प्रवचन, वा मन्त्र-समूह को (दधीत) धारण करता है और (विषः)

विविध प्रकार से उपभोग्य नाना (हव्या वा) भोज्य अन्नों और ज्ञानों को (वेविषद्) प्राप्त कराता है। चनः--पचतेर्वा-वचेर्वा। पचनः, वचनः। वर्णलोपश्छान्दसः।

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः॥ १२॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में वसने वाले विद्वन्! हे (सहसः यहो) बलवान् पिता के पुत्र! शिष्य! तू (स्तुवतः) उपदेष्टा (विप्रस्य) बुद्धिमान् और (विविदुषः) विशेष विद्यावान्, ज्ञानी पुरुष के (वचः) वचन को (अवः-देवम्) परमेश्वर से नीचे और (उपरिमर्त्यं) साधारण मनुष्यों से ऊपर (कृधि) कर और (मक्षूतमस्य) अति कुशल पुरुष के (रातिषु) दानों में से (वचः) वचन, उपदेश को तू ईश्वर से न्यून और सामान्य मानवों से अधिक जान।

यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमा विवासति।
गिरा वाजिरशोचिषम्॥ १३॥

भा०—(यः) जो (हव्य-दातिभिः) चरु आदि हव्य पदार्थों की आहुतियों से (अग्निम्) जैसे अग्नि की (आ विवासति) यजमान सेवा करता है वैसे ही (यः) जो पुरुष (अग्निम्) तेजस्वी, (सुदक्षम्) कार्यकुशल पुरुष को (हव्य-दातिभिः) उत्तम ग्राह्य पदार्थों के दानों और (नमोभिः) नमस्कार आदि सत्कार वचनों वा अन्नों से (आ विवासति) परिचर्या करता है, (वा) और जो (अजिर-शोचिषम्) अविनाशी दीप्ति से युक्त प्रकाशस्वरूप आत्मा को (गिरा) वाणी द्वारा (अविवासति) साक्षात् करता है वही पुरुष वस्तुतः अग्निहोत्र, आत्मदर्शन वा उपासना करता है।

समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः।
विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत्॥१४॥

भा०—(समिधा अग्निम्) काष्ठ की समिधा से अग्नि की जैसे परिचर्या करता है वैसे ही (यः) जो पुरुष (निशिती) तीक्ष्ण बुद्धि से (अदितिं) अखण्ड प्रभु की (दाशत्) सेवा करता है (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (अस्य धामभिः) उसके तेजों वा धारण-सामर्थ्यों से (धीभिः) कर्मों के अनुसार (द्युम्नैः) ऐश्वर्यों से (विश्वा इत् जानन्) समस्त जनों को (उद्नः इव अति तारिषत्) जलों के समान पार कर जाता है और (सुभगः) वह उत्तम ऐश्वर्यवान् भी हो जाता है।

तद॑ग्ने द्यु॒म्नमा भ॑र॒ यत्सा॒सह॒त्सद॑ने॒ कं चि॑द॒त्रिण॑म् ।
म॒न्युं जन॑स्य दू॒ढ्यः॑ ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! प्रभो! नायकवर! तू (तत् द्युम्नं) वह उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश और तेज (आ भर) धारण करा, (यत्) जो (सदने) घर में, देह में, (कं चित् अत्रिणं) किसी भी खाजाने वाले, दुःखदायी लोभ को (सासहत्) पराजित कर सके और जो (दूढ्यः जनस्य) दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य के (मन्युं-सासहत्) क्रोध पर विजय पा सके।

येन॒ चष्टे॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा येन॒ नास॑त्या॒ भगः॑ ।
व॒यं तत्ते॒ शव॑सा गातु॒वित्त॑मा॒ इन्द्र॑त्वोता विधेमहि ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (येन) जिस (शवसा) बल और ज्ञान से (वरुणः मित्रः अर्यमा) श्रेष्ठ, स्नेही और दुष्ट पुरुषों का नियन्ता पुरुष (चष्टे) न्यायानुकूल प्रजाजन को देखता है और (येन शवसा) जिस ज्ञान और बल से (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुष और (भगः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (चष्टे) अधीनस्थों को देखता और वचन कहता है हम (इन्द्र-त्वोताः) तुझ तेजस्वी, प्रचण्ड विद्वान् और वीर पुरुष द्वारा सुरक्षित रहकर (ते शवसा) उसी तेरे बल से (गातुवित्-तमाः) खूब भूमि और वाणी के धन को प्राप्त कर (ते) तेरे (तत् विधेमहि) उसी बल और ज्ञान का सम्पादन करें।

ते घेदंग्ने स्वाध्यो३ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् ।
विप्रासो देव सुक्रतुम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (विप्र) विद्वन् ! (ये) जो (त्वा) तुझको (नृ-चक्षसम्) समस्त मनुष्यों पर द्रष्टा रूप से (निदधिरे) नियत करते हैं, हे (देव) सत्यप्रकाशक ! और (ये विप्रासः) जो विद्वान् लोग (त्वा सुक्रतुं निदधिरे) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले तुझको स्थिर करते हैं (ते घ इत्) वे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (स्वाध्यः) सुख पूर्वक तेरा ध्यान करने वाले होते हैं ।

त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे प्रभो ! (ये) जो (कामम्) इच्छा वाले आत्मा वा मन को (त्वे नि-एरिरे) तेरे अधीन, तेरे ही में प्रेरित करते हैं (ते) वे (इत्) ही हे (सुभग) उत्तमैश्वर्यवन् ! (वेदिम् चक्रिरे) वेदि बनाते, (ते आहुतिं चक्रिरे) वे आहुति करते और (दिवि) इस भूमि पर (ते सोतुं चक्रिरे) वे हवन यज्ञ करते हैं । ऐसे ही वे (वेदिं) ज्ञान करते, (आहुतिं) दान-आदान करते, (सोतुं) ऐश्वर्य उत्पन्न करते । (ते इत्) वे ही (वाजेभिः) ज्ञानों, सैन्यादि बल से (महद् धनं जिग्युः) बड़े धन को जीतते हैं ।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

भा०—(आहुतः अग्निः) आहुति किया अग्नि और आदरपूर्वक बुलाया गया और सत्कृत विद्वान् (नः भद्रः) हमारे लिये सुखदाता हो । (रातिः भद्रा) हमारा दान सुखकारी हो । हे (सु-भग) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् ! (नः अध्वरः) हमारा यज्ञ (भद्रः) कल्याणजनक हो । (उत) और (प्र-शस्तयः) उत्तम उपदेश हमें (भद्राः) कल्याणकारी हों ।

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः २०।३२

भा०—हे प्रभो ! तू (वृत्रतूर्ये) दुष्ट नाशकारी संग्राम में (येन) जिस ज्ञान और बल से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) शत्रुओं को हराता है, तू उसी (मनः) मन और ज्ञान को (भद्रं) हमें सुखदायक कर और (शर्धतां) बली हिंसक शत्रुओं के (स्थिरा) दृढ़ सैन्यों का भी (अव तनुहि) नाश कर। जिससे हम (अभिष्टिभिः) अभिलषित सुखों से (ते वनेम) तेरी सेवा करें।

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे ।
यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥ २१ ॥

भा०—(यम्) जिस (यजिष्ठं) अति पूज्य (हव्य-वाहनम्) हव्य, उत्तम अन्न ग्रहण करने वाले, (दूतम्) दुष्टों के उपतापक और विद्वानों से उपासित (अरतिं) अति मतिमान् स्वामी की (देवाः) नाना अर्थों के अभिलाषी होकर (नि ऐरिरे) स्तुति करते हैं (मनुर्हितम्) मननशील पुरुषों द्वारा धारित उस पूज्य की मैं (गिरा ईडे) वाणी से स्तुति करूं।

तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः ॥ २२ ॥

भा०—जैसे (घृतेभिः आहुतः अग्निः) घी की धाराओं से आहुति पाकर अग्नि (सूनृताभिः) सत्य-वाणियों सहित (सुवीर्यं पिंशते) उत्तम वीर्य रूप प्रकट करता है और जैसे (घृतेभिः आहुतः) जलों द्वारा प्राप्त (अग्निः) विद्युत् (सूनृताभिः) उत्तम विज्ञान युक्त क्रियाओं द्वारा वा मेघस्थ विद्युत् उत्तम बल, अन्नादि युक्त धाराओं से (सुवीर्यं) उत्तम बलयुक्त रूप प्रकट करता है, वैसे ही (घृतेभिः आहुतः अग्निः) तेज या स्नेहों से आदृत होकर तेजस्वी ज्ञानी पुरुष, वा प्रभु (सूनृताभिः) उत्तम

वाणियों से (सुवीर्यम्) उत्तम रीति से उपदेश योग्य ज्ञान को (पिंशते) प्रकट करता है, उस (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्णमुख, दुष्ट हनन के लिये तीक्ष्ण हिंसा साधनों से युक्त, (तरुणाय) सदा युवा, बलवान्, (राजते) राजा के समान आचरण वाले (अग्नये) ज्ञानी पुरुष के लिये (प्रयः) प्रीतिकारक स्तुति का (गायसि) गान कर।

यदीं घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च।
असुर इव निर्णिजम्॥ २३॥

भा०—(यदि) जैसे (घृतेभिः आहुतः) घृत-धाराओं से आहुति प्राप्त (अग्निः) अग्नि (उत् च अव च) ऊपर और नीचे (वाशीम् भरते) कान्ति प्रदान करता है तब वह (असुरः इव) प्राणों के दाता वायु या सूर्य के तुल्य (निर्णिजम्) रूप को (भरते) धारण करता है, अर्थात् सुसुर-प्राणप्रद पवन भी जलों से युक्त होकर (वाशीं भरते) कान्तिमती विद्युत्, उसकी माध्यमिक वाणी-गर्जना को धारण करती है, सूर्य (घृतैः) तेजों से युक्त होकर (वाशीं भरते) दीप्ति को धारता है, वैसे ही वह प्रभु और विद्वान् नायक भी (यदि) जब (घृतेभिः आहुतः) स्नेहों से उपासित होकर (वाशीम्) उत्तम वाणी को (उत् च अव च) ऊपर और नीचे स्वरों के आरोहावरोह-क्रम सहित (भरते) धारण करता है, तब वह (असुरः इव) 'असुर' अर्थात् बलवान् पुरुष का (निर्णिजं भरते) रूप धरता है, वीर पुरुष भी (वाशीं) वशकारिणी शक्ति, खड्ग आदि को ऊपर नीचे चलाता है।

यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना।
वि वासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः॥ २४॥

भा०—जैसे (देवः) दीप्त अग्नि, (हव्यानि) हव्य चरुओं को सुगन्धिना आसा) उत्तम गन्धयुक्त ज्वाला रूप मुख से (ऐरयत) दूर २ तक भेजता है (वार्याणि वि वासते) ग्राह्य उत्तम २ प्रकाशों को प्रकट

करता है, वैसे ही (यः) जो (मनुः-हितः) स्वयं मननशील, विद्वान् (देवः) मनुष्य होकर (सुगन्धिना) पुण्य गन्ध, उत्तम शिक्षा युक्त (आसा) मुख से (हव्यानि) ग्राह्य-वचनों को (ऐरयत) उच्चारण करता है वह (सु-अध्वरः) उत्तम यज्ञशील (देवः) दानी (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न होकर (वार्याणि वि वासते) वरणीय गुणों, ज्ञानों को प्रकट करता है।

यद॑ग्ने॒ मर्त्य॒स्त्वं स्याम॒हं मि॑त्रमहो॒ अम॑र्त्यः ।
सह॑सः सूनवाहुत ॥ २५ ॥ ३३ ॥

भा०—जैसे अग्नि में जो कुछ पड़ता है वह अग्नि ही हो जाता है वैसे ही हे (आहुत) उपासनीय ! हे (सहसः सूनो) बल के उत्पन्न करने। (अग्ने) हे ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! हे (मित्र-महः) मित्रों से पूजनीय ! (यत्) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊं इस प्रकार उपासना करता है वह भी (अमर्त्यः) अन्य मरणधर्मा प्राणियों से भिन्न, तेरे समान हो जाता है।

न त्वा॑ रासीयाभिश॑स्तये वसो॒ न पा॑प॒त्वाय॑ सन्त्य ।
न मे॑ स्तो॒ताम॒तीवा न दुर्हि॑तः॒ स्याद॑ग्ने॒ न पा॒पया॑ ॥ २६ ॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने हारे स्वामिन् ! मैं जैसे (अभिशस्तये) निन्दा, अपवाद और (पापत्वाय) पाप के लिये (न रासीय) धन को नहीं दूं, वैसे ही (त्वा) तुझे भी (अभिशस्तये) निन्दा, परापवाद और (पापत्वाय) पाप के लिये (न रासीय) त्याग न करूं। हे (सन्त्य) भजनीय ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! (मे स्तोता) मेरी स्तुति करने वाला (अमतिवा) मतिहीन (न) न हो और (दुर्हितः) दुष्टाशय (न) न हो और (न पापः स्यात्) वह पापाचारी भी न हो।

पि॒तुर्न पु॒त्रः सुभृ॑तो दुरो॒ण आ दे॒वाँ ए॑तु॒ प्र णो॑ ह॒विः ॥ २७ ॥

भा०—(सु-भृतः) उत्तम रीति से भरण-पोषण-प्राप्त, (पुत्रः) पुत्र

जैसे (दुरोणे) गृह में (पितुः) पिता का भी पालक होता है, वैसे ही (अग्निः) तेजस्वी, परमेश्वर, राजा, गृहपति भी (पितुः न) अन्न के समान (पुत्रः) बहुतों की रक्षा में समर्थ, (सु-भृतः) उत्तम रीति से प्रजा-पोषक होकर (दुरोणे) अन्यों से कठिनता से प्राप्त करने योग्य, राष्ट्र-पति वा मोक्ष पद पर है। वह (देवान् आ एतु) विद्वानों और दिव्य पदार्थों को प्राप्त हो और वह (नः हविः प्र एतु) हमारे स्तुतिवचन, वा कर आदि को प्राप्त करे।

तवाहमंग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वंसो।
सदां देवस्य मर्त्यः ॥ २८ ॥

भा०—हे (वसो) प्राणियों, लोकों को बसाने और उनमें बसाने हारे! (अग्ने) तेजस्विन्! अंग २ में व्यापक! (सदा) सर्वदा, सब कालों में (मर्त्यः) मैं, मरणधर्मा जीव (देवस्य तव) सर्व सुखदाता, सर्व-प्रकाशक तेरी (नेदिष्ठाभिः मतिभिः) अति समीपतम रक्षाओं, मतियों से रक्षित होकर (तव जोषम् आ सचेय) तेरे प्रेम और सेवा का लाभ करूं।

तव क्रत्वां सनेयं तवं रातिभिरग्ने तव प्रशंस्तिभिः।
त्वामिदांहुः प्रमंतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातंवे ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् सर्व प्रकाशक! (क्रत्वा) उत्तम कर्म, यज्ञ से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। (रातिभिः) दानों और (प्रश-स्तिभिः) स्तुतियों से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। हे (वसो) प्राणवत् सबमें वसने हारे! विद्वान् (त्वाम् इत् प्रमतिम्) तुझको सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला (आहुः) कहते हैं। हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक! तू (मम दातवे) मुझे देने के लिये (हर्षस्व) प्रसन्न हो, वा मुझे दान देने के लिये प्रेरित कर।

प्र सो अंग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजंभर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमावरः ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक ! स्वामिन् ! (वाजभर्मभिः) बल, अन्नादि की पोषक (सुवीराभिः) उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाओं और दीप्तियों से (सः प्र तिरते) वह बढ़ा करता है (यस्य सख्यं) जिसके मित्र भाव को (तू आवरः) स्वीकार कर लेता है।

तव॑ द्र॒प्सो नील॑वान्वा॒श ऋ॒त्विय॒ इन्धा॑नः सिष्ण॒वा द॑दे ।
त्वं म॒हीना॑मु॒षसा॑मसि प्रि॒यः क्ष॒पो वस्तु॑षु राजसि ॥ ३१ ॥

भा०—जैसे अग्नि (इन्धानः) चमकने वाला, (द्रप्सः) द्रुतगति से काष्ठों को खाने वाला, (नीलवान्) नील धुएं वाला, (वाशः) कान्ति-युक्त, (ऋत्वियः) ऋतु २ में यज्ञ करने योग्य और (सिष्णुः) प्रति-आहुति घृत सेचने योग्य होता है। वैसे ही (महीनाम् उषसां प्रियः) वह बहुत सी कामना युक्त प्रजाओं या दाहक शक्तियों का प्रिय होता और (क्षपः वस्तुषु राजति) रात को बसे घरों में गार्हपत्याग्नि, अन्वा-हार्यपचन और दीपक रूप में चमकता है वैसे ही हे (सिष्णो) प्रेम से सबको सेचन करने वा प्रकृति में जगत् बीज को आसेचन करने वाले, मेघवत् सुखवर्षक प्रभो ! (तव द्रप्सः) तेरा आनन्दप्रद रूप, (नील-वान्) सबको आश्रयदाता, विश्व को अपने में लीन करने वाला, (वाशः) स्तुत्य और जगत् का वश करने वाला, (ऋत्वियः) प्राणों द्वारा वा वायु, जलादि शक्तियों से जानने योग्य, (इन्धानः) सूर्यादिवत् देदीप्य-मान रूप से (आ ददे) जाना जाता है। (त्वं) तू (महीनाम्) भूमियों और (उषसाम्) दाहक सूर्यादि को भी (प्रियः) पूर्ण और तृप्त करने वाला, (असि) है और (क्षपः) संसार का संहारक और सब (वस्तुषु) पदार्थों और लोकों में (राजसि) प्रकाशमान है।

तमाग॑न्म॒ सोभ॑रयः स॒हस्र॑मुष्कं स्वभि॒ष्टिमव॑से ।
स॒म्राजं॒ त्रास॑दस्यवम् ॥ ३२ ॥

भा०—हे (सोभरयः) उत्तम रीति से पोषण करने वालो ! हम

लोग (अवसे) रक्षा के लिये (तम्) उस (सु-अभिष्टिम्) उत्तम अभिलाषा वाले, (त्रासदस्यवम्) दुष्ट पुरुषों को भयकारी, (सहस्रमुष्कं) हजारों के पोषक, सूर्यवत् दुःखहारी, नाना तेजः-सामर्थ्यों से सम्पन्न, (सम्राजं आ अगन्म) सम्राटवत् सर्वत्र दीप्तियुक्त प्रभु को प्राप्त हों।

यस्य॑ ते अग्ने अ॒न्ये अ॒ग्नय॑ उप॒क्षितो॑ व॒या इ॑व।
विपो॒ न द्यु॒म्ना नि यु॑वे॒ जना॑नां॒ तव॑ क्ष॒त्राणि॑ व॒र्धय॑न् ॥३३॥

भा०—जैसे एक ही अग्नि से अन्य अग्नियें प्रज्वलित होकर उसकी नाना शाखा के समान होती हैं वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् (यस्ते) जिस तेरे (अन्ये अग्नयः) दूसरे तेजस्वी पुरुष (उपक्षितः) समीप रहने वाले (वयाः इव) शाखा समान विराजते हैं उस (तव) तेरे (जनानां) मनुष्यों के (क्षत्राणि) वीर्यों और धनों को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ मैं (विपः न) वाणियों के समान (द्युम्ना) बहुत से धनों वा यशों को (नि युवे) प्राप्त करूं।

यमा॑दित्यासो अद्रुहः पा॒रं नय॑थ॒ मर्त्य॑म्।
म॒घोनां॒ विश्वे॑षां सुदानवः ॥ ३४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) सूर्यकिरणोंवत् ऐश्वर्यादि का संचय करने वाले, हे (सु-दानवः) उत्तम रीति से जलवत् सञ्चित को उपकारार्थ देने वाले, हे (अद्रुहः) द्रोहरहित पुरुषो! आप लोग (यम् मर्त्यम्) जिस मनुष्य को (पारं नयथ) ज्ञानसागर के पार कर देते हो वह (विश्वेषां मघोनां) समस्त ऐश्वर्यवानों में पूज्य हो जाता है।

यू॒यं रा॑जानः॒ कं चि॑च्चर्षणीसहः॒ क्षय॑न्तं॒ मानु॑षाँ॒ अनु॑।
व॒यं ते वो॒ वरु॑ण॒ मित्रार्य॑म॒न्त्स्यामेदृ॒तस्य॑ र॒थ्यः॑ ॥ ३५ ॥

भा०—हे (चर्षणीसहः) शत्रुकर्षक सेनाओं, वा शत्रु जनों को दबाकर वश में रखने में समर्थ (राजानः) राजा लोगो! (यूयं) आप

लोग (कं चित्) किसी (मानुपान् क्षयन्तं) मनुष्यों के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले पुरुष के (अनु) पीछे रहो। हे (मित्र अर्यमन् वरुण) स्नेही, न्याय-कारी और सर्वश्रेष्ठ जनो! (ते वयं) वे हम लोग (वः) आप लोगों के (ऋतस्य) सत्य, न्याय, सत्यमार्ग के (रथ्यः) रथारोही के समान (स्याम इव) अग्रेसर होवें।

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम्।
मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः॥ ३६॥

भा०—(पौरुकुत्स्यः) बहुत से वज्र अर्थात् हथियारबन्द वीर पुरुषों का स्वामी (त्रसदस्युः) दुष्टों को भयभीत करने वाला राजा (मंहिष्ठः) अति दानशील, पूज्य, (अर्यः) स्वामी (सत्पतिः) सज्जनों का पालक है। वह (मे) मुझ प्रजाजन को धारण करने वाली (पञ्चाशतं) ५०, वा, १०५, वा ५०० वा पचासों सेनाएं (अदात्) प्रदान करे।

उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः॥३७॥३५॥

भा०—(सुवास्त्वाः) उत्तम भवनों वाली नगरी के (तुग्वनि अधि) शत्रुहिंसक बल या सैन्य के ऊपर (उत) और (प्रयियोः) प्रयाण करने वाले सैन्य और (वयियोः) तन्तु अर्थात् सन्तान-विस्तार करने वाले, बसे (मे) मुझ प्रजाजन के (तुग्वनि) पालनकारी पद पर विराजमान (श्यावः) ज्ञानी और वीर पुरुष (तिसृणां सप्ततीनां) ७०।७० की तीन पंक्तियों का (प्रणेता) मुख्य नायक होकर (दियानां पतिः) करप्रद प्रजाओं का पालक और (वसुः भुवत्) 'वसु' हो जाता है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

[२०]

सोभरिः काण्व ऋषिः। मरुतो देवता॥ छन्दः—१, ५, ७, १९, २३ उष्णिक् ककुप्। ९, १३, २१, २५ निचृदुष्णिक्। ३, १५; १७ विरा-

उष्णिक् । २, १०, १६, २२ सतः पंक्तिः । ८, २०, २४, २६ निचृद् पंक्तिः । ४, १८, विराट् पंक्तिः । ६, १२ पादनिचृत् पंक्तिः । १४ आर्ची भुरिक् पंक्तिः ॥ षड्विंशचं सूक्तम् ॥

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः ।
स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! (आ गन्त) आप लोग आवो ! (मा रिषण्यत) पीड़ित मत करो । हे (प्रस्थावानः) प्रधान पद पर स्थित पुरुषों ! हे (समन्यवः) समान क्रोध वा ज्ञान वाले वीरो ! आप लोग (मा अप स्थात) दूर २ मत रहो । आप लोग (स्थिरः चित) स्थिर, बहुत देर के जमे हुए शत्रुओं को भी (नमयिष्णवः) झुकाने में समर्थ होवो ।

वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।
इषा नो अद्या गंता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने वालो ! हे (ऋभुक्षणः) महान् बल वालो ! हे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने वालो ! हे (पुरु-स्पृहः) बहुत प्रजावर्गों के प्रेमी ! हे (सोभरीयव) उत्तम पालक नायकों को चाहने वालो ! आप लोग (वीडुपविभिः) दृढ़ शस्त्रों, चक्रधाराओं और (सु-दीतिभिः) उत्तम कान्तियों से युक्त होकर (अद्य) आज (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (इषा आ गत) सुभिक्ष और सुवृष्टिसहित पवनों के समान (आ गत) प्राप्त होवो ।

विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।
विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (रुद्रियाणां) जनता में फैले रोगों को वेग से उड़ा लेने वाले प्रचण्ड (मरुतां शिमीवताम्) वातों और कर्मकारी यन्त्रादि

सञ्चालक वेगों का (उग्रं शुष्मम्) बड़ा बल होता है, वैसा ही (एपस्य) अभिलषणीय (विष्णो) सब ओर विशेष बरसने वाले जल को (मीढुषां) वृष्टि रूप से भूमि पर सेचने वाले वायुओं के तुल्य (रुद्रियाणां शिमीवताम् मरुताम्) भव-पीड़ाओं के नाशक गुरुओं के शिष्यों और (शमीवताम्) कर्मनिष्ठ विद्वानों के उग्र बल को और (विष्णोः एपस्य) सूर्य के प्रेरक तत्व को (विद्म हि) जाने।

वि द्वी॒पानि॒ पाप॑त॒न्तिष्ठ॑द्दु॒च्छुनो॒भे यु॑जन्त॒ रोद॑सी।
प्र धन्वा॑न्यैरत शुभ्रखादयो॒ यदेज॑थ स्वभानवः॥ ४॥

भा०—जैसे वायुगण, (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों में घूमते, (उभे रोदसी) आकाश और पृथ्वी को (दुच्छुना) दुःख क्षोभ से युक्त करते हैं और (तिष्ठत्) भूमिस्थ वृक्षों को (दुच्छुना) दुःखदायी पतनादि से युक्त करते हैं। वे (स्वभानवः) कान्ति से युक्त (शुभ्र खादयः) शुभ्र दीप्ति वाले होकर (धन्वानि ऐरत) जलों को नीचे गिराते हैं ऐसे ही हे विद्वान् वीर पुरुषो! आप लोग (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों को विजयादि के लिये जाओ (उभे रोदसी) स्वपक्ष परपक्ष दोनों को (दुच्छुना युजन्त) दुःख, शोक, क्षोभ से युक्त करते रहो। आप (स्व-भानवः) स्वयं की दीप्ति से युक्त, (शुभ्र-खादयः) स्वच्छ भोजन और स्वच्छ खड्गादि वाले (यत् एजथः) जब जाते हो तो (धन्वानि प्र ऐरत) धनुषों को आगे बढ़ाओ और जलधाराओं को चलाओ।

अच्यु॑ता चिद्वो॒ अज्म॒न्ना नान॑दति॒ पर्व॑तासो॒ वन॒स्पतिः॑।
भूमि॒र्यामे॑षु रेजते॥ ५॥ ३६॥

भा०—जैसे पवनों के चलने पर (पर्वतासः अच्युतासः वनस्पतिः भूमिः रेजते) दृढ़ पर्वतवत्, मेघ गर्जते, वनस्पति और भूमि कांपती है, वैसे ही हे वीरो! (वः अज्मन् यामेषु) आपके संग्राम में प्रयाण

होने पर (अच्युता चित् पर्वतासः) दृढ़ पर्वत भी (आ नानदति) प्रतिध्वनि करते हैं। (वनस्पतिः) वन के स्वामी वृक्षोंवत् ऐश्वर्यपालक शत्रु और (भूमिः) भूमि भी (रेजते) कांपती है। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

अमा॑य वो मरुतो॒ यात॑वे॒ द्यौर्जिही॑त॒ उत्त॑रा बृ॒हत्।
यत्रा॒ नरो॒ देदि॑शते त॒नूष्वा त्वक्षां॑सि बा॒ह्वो॑जसः॥ ६॥

भा०—जैसे वायुओं के (अमाय यातवे) बलपूर्वक जाने के लिये (द्यौः उत्तरा बृहत् जिहीते) ऊपर का आकाश बीच के बड़े अन्तरिक्ष को देता है, वैसे ही हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने में निपुण वीर पुरुषो! (वः अमाय) आप लोगों के बल प्रयोग के लिये और (यातवे) युद्धार्थ प्रयाण करने के लिये (उत्तरा द्यौः) सर्वोपरि शासक शक्ति, (बृहत्) बड़ा स्थान वा पद (जिहीते) दे, (यत्र) जिस पर स्थित होकर (बाह्वोजसः) बाहुओं में बल पराक्रम धारने (नराः) नायक लोग (तनूषु) अपने शरीरों पर (त्वक्षांसि) जरावक्तर वा दीप्तियुक्त पदक आदि (आ देदिशते) धारण करते हैं।

स्व॒धाम॒नु श्रियं॒ नरो॒ महि॑ त्वे॒षा अम॑वन्तो॒ वृष॑प्सवः।
वह॑न्ते॒ अह्रु॑तप्सवः॥ ७॥

भा०—वे (नरः) नायक वीर (त्वेषाः) तीक्ष्ण कान्तियुक्त (अमवन्तः) बलवान्, (वृषप्सवः) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट शरीर के, और (अह्रुतप्सवः) सरल प्रकृति वाले, निष्कपट होकर (स्वधाम् अनु) अपने सामर्थ्य अनुसार (महि श्रियम् वहन्ते) बड़ी राजलक्ष्मी धारण करते हैं।

गोभि॑र्वा॒णो अ॑ज्यते॒ सोभ॑रीणां॒ रथे॒ कोशे॑ हिर॒ण्यये॑।
गोब॑न्धवः सुजा॒तास॑ इ॒षे भु॒जे म॒हान्तो॑ नः॒ स्पर॑से॒ नु॥८॥

भा०—(सोभरीणां) प्रजा के उत्तम रीति से पालक क्षत्रियों और

राजाओं के (हिरण्यये कोशे) सुवर्णादि से पूर्ण खजाने में (गोभिः) भूमियों द्वारा (वाणः) देने और सेवने योग्य ऐश्वर्य (अज्यते) प्राप्त किया जाता है और (हिरण्यये) तेजोमय आत्मा के (कोशे रथे) आनन्द-मय, विज्ञानमय, प्राणमय, मनोमय, अन्नमय रथवत् बने कोश अर्थात् देह में (गोभिः) इन्द्रियों सहित (वाणः) भोक्ता आत्मा (अज्यते) प्रकट होता है। (गोभिः वाणः अज्यते) वाणियों से शब्द ज्ञानमय रस प्रकट होता है।

प्रति॑ वो॒ वृष॑दञ्जयो॒ वृष्णे॒ शर्धा॑य॒ मारु॑ताय भरध्वम् ।
ह॒व्या वृष॑प्रयाव्णे ॥ ९ ॥

भा०—(वृषद्-अञ्जयः) बरसते मेघों से प्रकट होने वा उन सहित आने वाले पवन जैसे वर्षा करने वाले मेघ के वायु लिये जलराशि धारण करते हैं। वैसे ही हे (वृषद्-अञ्जयः) प्रजा पर सुखों के वर्षक, प्रबन्धकारक, विशेष स्वरूप वाले वीर पुरुषो ! (वः) आप में से वा अपने बीच में विद्यमान (वृष्णे) बलवान्, (शर्धाय) शत्रुहिंसक शस्त्रास्त्र बल के धारण में समर्थ क्षत्रपति (मारुताय) मनुष्यों के हितैषी, (वृष प्रयाव्णे) बलवान् पुरुषों के साथ प्रयाण करने वाले सेनापति की वृद्धि के लिये (हव्यः) उत्तम स्तुत्य वचन और आवश्यक अन्न, धनादि नाना पदार्थ (प्र भरध्वम्) लाओ।

वृ॒ष॒णश्वे॑न मरुतो॒ वृष॑प्सुना॒ रथे॑न॒ वृष॑नाभिना ।
आ श्ये॒नासो॒ न प॒क्षिणो॒ वृथा॑ नरो ह॒व्या नो॑ वी॒तये॑ गत ॥ १० ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर मनुष्यो ! (श्येनासः पक्षिणः न) बाज नाम के पक्षी जैसे वेग से जाते हैं वैसे ही आप लोग (वृषणश्वेन) बल-वान् अश्व वाले (वृष-प्सुना) सुदृढ़ रूप वाले, (वृष-नाभिना) सुदृढ़ चक्रनाभि वाले (रथेन) रथ से (वृथा) अनायास ही (नः वीतये) हमारी

रक्षा के लिये (हव्या आ गत) यज्ञों, युद्धों में आया जाया करो।
इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु ।
दविद्युतत्यृष्टयः ॥ ११ ॥

भा०—(एषां) इन वीर पुरुषों के (अञ्जि) रूप, पोशाक और चिह्नादि सब (समानम्) समान हों । (बाहुषु अधि) बाहुओं पर (रुक्मासः) सुवर्णीय, बैज (वि भ्राजन्ते) विशेष चमकें और (बाहुषु) बाहुओं में ही (ऋष्टयः) शत्रुनाशक शस्त्र भी (दविद्युतति) चमकें।

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥ १२ ॥

भा०—(ते) वे (उग्रासः) भयानक, (वृषणः) बलवान्, (उग्रबाहवः) प्रचण्ड बाहुबल वाले, वीर पुरुष (तनूषु) शरीरों के निमित्त (नकिः येतिरे) कोई श्रम न करें । इनको आजीविका के लिये अन्य यत्न आवश्यक नहीं। (रथेषु) उनके रथों पर (धन्वानि आयुधा) धनुष आदि हथियार (स्थिरा) स्थिर हों। हे वीर पुरुषो ! (वः अनीकेषु अधि) आप की सेनाओं के आधार पर ही (श्रियः) राष्ट्र की लक्ष्मियां स्थिर हैं।

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे ।
वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥

भा०—(पित्र्यं वयः न) जैसे पिता पितामह का सञ्चित अन्न वा (अर्णः न सप्रथः) जल के समान विस्तृत धन (एकम् इत् भुजे) एक भी प्रजा के भोग के लिये पर्याप्त होता है वैसे ही (येषाम्) जिन वीरों के (अर्णः न) सागर के जल के समान धन, (सप्रथः नाम) विख्यात, शत्रुओं को झुकाने वाला अपार बल, (त्वेषं) तेज और (पित्र्यं वयः) पिता, वा राष्ट्रपालक होने योग्य पिता तुल्य वयस्, उमर और रक्षा

बल तथा (सहः) पराक्रम है, उनको—

तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रजाजन ! (तान् मरुतः) उन बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को (वन्दस्व) आदर सत्कार कर (तान् उप स्तुहि) उनकी स्तुति कर । (तेषां हि) उन शत्रुओं के (धुनीनाम्) कंपा देने वाले वा शास्त्र के उपदेष्टाओं और (अराणां) चक्र में लगे अरों, दण्डों के तुल्य व्यूह में बद्ध, अर्थात् स्वयं गमन करने और औरों को आगे ले जाने वालों में से (चरमः न) कोई भी व्यक्ति चरम या अधम नहीं । (एषां दाना तत्) उनके दिये ज्ञान, दान, ऐश्वर्यादि और वे शत्रुनाश आदि नाना कार्य सब (एषाम् मह्ना) इनके ही महान् सामर्थ्यों से होते हैं ।

सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु ।
यो वा नूनमुतासति ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(उत) और (यः वा) जो मनुष्य हे (मरुतः) वीरो, विद्वानो ! (नूनम्) अवश्य (पूर्वासु व्युष्टिषु) पूर्व अर्थात् प्रारम्भ के दिनों, वा ब्रह्मचर्य पालन के वयस् में (वः ऊतिषु) आप लोगों की रक्षाओं में (आस) पहुँच जाता है, (उत असति) वा निरन्तर रहता है (सः सुभगः) वह उत्तम ऐश्वर्य युक्त, सुखी, होता है । इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥१६॥

भा०—हे (नरः) वीर नायक जनो ! (वा) और (यस्य वाजिनः) जिस बलवान्, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की (वीतये) रक्षा के लिये (यूय) आप लोग (वाजिनः) बलशाली होकर (हव्या प्रति आ गथ) अन्नों, युद्धोपयोगी पदों और हथियारों को प्राप्त करते हो, हे (धूतयः) शत्रु-कंपक

वीरो ! और हे रागादि त्यागने वाले विद्वानो ! (सः) वह (द्युम्नैः) नाना ऐश्वर्यों और (वाज-सातिभिः) ज्ञान, बलादि की वाणियों सहित (वः सुम्नानि अभिनशत्) आप लोगों के सुखों को प्राप्त करता है।

यथा॑ रु॒द्रस्य॑ सू॒नवो॑ दि॒वो वश॒न्त्यसु॑रस्य वे॒धसः॑ ।
युवा॑न॒स्तथेद॑सत् ॥ १७ ॥

भा०—(रुद्रस्य सूनवः) गर्जना वाले मेघ के प्रेरक वायुगण जैसे (असुरस्य वेधसः) जलप्रद मेघ को उत्पन्न करते और (दिवः वशन्ति) अन्तरिक्ष पर वश, वा भूमि को कान्तियुक्त करते हैं वैसे ही (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले राजा के (सूनवः) सञ्चालक और (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले और प्रजाओं को जीवनवृत्ति देने वाले राजा को (वेधसः) बनाने वाले विद्वान् और (युवानः) बलवान् पुरुष (दिवः यथा वशन्ति) भूमि या राजसभा की जैसा नियन्त्रण करते या जैसी कामनाएं चाहते हैं (तथा इत् असत्) उसी प्रकार हो।

ये चा॒र्हन्ति॑ म॒रुतः॑ सु॒दान॑वः॒ स्मन्मी॒ळ्हुष॒श्चर॑न्ति॒ ये ।
अत॑श्चि॒दा न॒ उप॒ वस्य॑सा हृ॒दा युवा॑न॒ आ व॑वृध्वम् ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (सु-दानवः) दानशील (मरुतः) मनुष्य (मीढ्षः) धनदाता, वीर्यादि के सेक्ता माता पिता, स्वामी आदि की (अर्हन्ति) पूजा करते हैं और (ये च स्मत्) जो अच्छी प्रकार (चरन्ति) आचरण करते हैं वे (युवानः) युवा पुरुष (अतः चित्) इसी प्रकार (वस्यसा हृदा) उत्तम हृदय से (नः उप आ ववृध्वम्) हमें आप लोग प्राप्त होओ।

यू॒न ऊ॒ षु नवि॑ष्ठया॒ वृष्णः॑ पाव॒काँ अ॒भि सो॑भरे गि॒रा ।
गाय॒ गा इ॑व॒ चर्कृ॑षत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सोभरे) उत्तम रीति से पालन करने हारे ! हे उत्तम

ज्ञान देने हारे गुरो ! विद्वन् ! जैसे (चर्कृषत्) खेती करने हारा (गाइव) बैलों वा भूमियों को, वा (वृष्णः अभि) बरसते बादलों को देखकर, (गिरा) वाणी से उनकी (गायति) स्तुति करता है वैसे ही तू भी (गाः इव चर्कृषत्) शिष्यों को भूमियों के तुल्य ज्ञान ग्रहण कराता हुआ (वृष्णः) बलवान् (पावकान्) पवित्र आचार वाले तेजस्वी (यूनः) युवा पुरुषों के (अभि) प्रति (नविष्ठया गिरा) अति स्तुत्य वाणी से उन्हें (अभि गाय) उपदेश कर ।

साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥२०॥३६॥

भा०—(विश्वासु पृत्सु) जैसे समस्त युद्धों में या समस्त (होतृषु पृत्सु) ललकारने वाले मनुष्यों में (मुष्टिहा इव हव्यः) मुक्के से वा मुट्ठी के समान पांचों जनों को मिलाकर संघ शक्ति से शत्रु को मारने वाला उत्तम युद्धकुशल होता है वैसे ही (ये) जो (विश्वासु पृत्सु) सब संग्रामों या सब मनुष्यों में, (होतृषु) गुरुजनों के अधीन (सहाः सन्ति) शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं उन (वृष्णः) बलवान् (चन्द्रान्) प्रजाओं को प्रसन्न रखने वाले, (सुश्रवस्तमान्) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी (मरुतः) वीरों, विद्वान् पुरुषों को (अह) भी (वन्दस्व) स्तुति, आदर प्रदान कर । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

गावश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
रिहते ककुभो मिथः ॥ २१ ॥

भा०—जैसे (गावः चित् सजात्येन मिथः रिहते) गौवें एक जाति की होने से प्रेम से एक दूसरे को चाटती है, और जैसे (मरुतः ककुभः रिहते) सजल वायुगण दिशाओं का स्पर्श करते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वायुवत् बलवान्, शत्रुनाशक, राष्ट्र के प्राणवत् पुरुषो ! आप लोग

(गावः चित्) गौओं के तुल्य परस्पर प्रेमी और किरणों के तुल्य तेजस्वी होकर (स-मन्यवः) ज्ञानयुक्त एवं (सः-जात्येन) एक देश में, एक ही समान उत्पन्न होने से (स-बन्धवः) बन्धु वर्ग सहित होकर (मिथः) परस्पर मिलकर (ककुभः) दिशाओं के समान गुणों में विशाल होकर (रिहते) एक दूसरे के साथ स्नेह का वर्त्ताव करें।

मर्तंश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥२२॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने वा वायुवत् प्रबल होकर शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ वीर पुरुषो ! हे (नृतवः) उत्तम मार्ग में ले जाने वाले नायक जनो ! हे (रुक्म-वक्षसः) वक्षः-स्थल पर सुवर्णहार आदि आभूषण धारण करने वाले वीर पुरुषो ! (मर्तः चित्) साधारण मनुष्य भी (वः भ्रातृत्वम् उप आयति) आप लोगों का भ्रातृत्व प्राप्त करता है और (हि) क्योंकि (वः) आप लोगों का (आपित्वम्) परस्पर-बन्धुत्व (निध्रुवि) नित्य ध्रुव राजा के अधीन, राष्ट्र में (अस्ति) है अतः आप लोग (नः) हम लोगों पर (अधि गात) अध्यक्ष होकर शासन करो।

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः ।
यूयं सखायः सप्तयः ॥ २३ ॥

भा०—वायुएं जैसे हमें प्राण-सम्बन्धी, रोगनाशक सामर्थ्य देते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीर और विद्वान् पुरुषो ! (सखायः) परस्पर मित्र, (सप्तयः) वेग से जाने आने वाले, अश्ववत् तीव्रगामी, (सु-दानवः) उत्तम दानशील होकर (मारुतस्य भेषजस्य) मरुत् अर्थात् वायुओं से प्राप्त होने योग्य, नाशक उपाय के समान वीर पुरुषों से प्राप्त होने योग्य शत्रुनाशक उपाय को (नः आवहत) हमें प्राप्त कराओ।

याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥ २४ ॥

भा०—जैसे वायुगण वा प्राण (सिन्धुम् अवन्ति) अन्तरिक्ष, वा देह में रक्तप्रवाह की रक्षा करते, (तूर्वन्ति) रोग नाश करते, (क्रिविं दशस्यन्ति) कर्त्ता आत्मा को बल देते, (शिवाभिः ऊतिभिः मयोभुवः) गतियों से नाना सुख देते हैं, वैसे ही हे वीरो ! विद्वान् पुरुषों ! आप लोग (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षा-साधनों से (सिन्धूम्) समुद्र के तुल्य गंभीर सेनापति वा सैन्य-समूह की (अवथ) रक्षा करते हो और (याभिः तूर्वथ) जिन उपायों से शत्रुओं का नाश करते हो और (याभिः) जिन उपायों से (क्रिविं दशस्यथ) जलाशय आदि प्रदान करते हो, उन (शिवाभिः ऊतिभिः) कल्याणकारी क्रियाओं से (मयोभुवः) सुखोत्पादक आप लोग (असचद्विषः) समवाय-रहित शत्रुओं वाले होकर (नः मयः भूत) हमारे लिये सुखकारी होवो ।

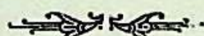
यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (सु-बर्हिषः) उत्तम यज्ञ और ओषधियों वाले (मरुतः) पुरुषो ! (यत्) जो (भेषजम्) रोगनाशक पदार्थ (सिन्धौ) नदी प्रवाह में और यत् (असिक्न्यां) रात्रि काल में, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्रों में और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों में हैं उनको (आवहत) प्राप्त कराओ ।

विश्वं पश्यन्तो विभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६॥४०।१।३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे (मरुतः) प्राणवत् सुखकारी जनो ! आप लोग (तनूषु) शरीरों में (विश्वं पश्यन्तः) विश्व को ज्ञानपूर्वक देखते हुए (विभृथ) समस्त प्राणी वर्ग वा देह में आत्मा को धारण

कराओ। (तेन पश्यन्तः) उसे ज्ञान पूर्वक देखें, विवेक से (न अधि-वोचत) हमें उपदेश करो। (नः) हममें से (आतुरस्य) व्याधिपीड़ित मनुष्य के (रपः) दुःखदायी कारण की (क्षमा) शान्ति हो और (नः) हमारे शरीरों में (वि-ह्रुतम्) विपरीत भाव से प्राप्त अङ्गों में कुटिल भाव हो तो उसे (पुनः इष्कर्त्ता) फिर से ठीक कर दो। इति चत्वारिंशो वर्गः॥ इत्यष्टमे मण्डले तृतीयोऽनुवाकः॥ इति षष्ठेऽष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः॥



द्वितीयोऽध्यायः। चतुर्थोऽनुवाकः

[२१]

सोभरिः काण्व ऋषिः॥ १—१६ इन्द्रः। १७, १८ चित्रस्य दानस्तुतिर्देवता॥ छन्दः—१, ३, १५ विराडुष्णिक्। १३, १७ निचृदुष्णिक्। ५, ७, ९, ११ उष्णिक् ककुप्। २, १२, १४ पादनिचृत् पंक्तिः। १० विराट् पंक्तिः। ६, ८, १६, १८ निचृत् पंक्तिः। ४ भुरिक् पंक्तिः॥

व॒यमु॑ त्वाम॑पूर्व्य स्थू॒रं न कच्चि॒द्भर॑न्तोऽव॒स्यवः॑।
वाजे॑ चि॒त्रं ह॑वामहे॥ १॥

भा०—हे (अपूर्व्य) अपूर्व! सबसे अधिक पूर्ण! (वयम् उ) हम लोग (अवस्यवः) रक्षा और ज्ञान, प्रेम और आनन्द को चाहते हुए और (स्थूरं कत् चित्) किसी बड़े आश्रय को (न भरन्तः) न धारण करते हुए (वाजे) संग्राम और ऐश्वर्य के लिये (चित्रं) आश्चर्यकारक (त्वा) तुझ प्रभु को (हवामहे) पुकारते हैं।

उप॑ त्वा॒ कर्म॑न्नू॒तये॒ स नो॒ युवो॒ग्रश्च॑क्राम॒ यो धृ॒षत्।
त्वामिद्ध्य॑वि॒तारं॑ ववृ॒महे॒ सखा॑य इन्द्र सान॒सिम्॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तू (धृषत्) दुष्टों को पराजित करने वाला, (युवा) बलवान् और (उग्रः) भयंकर होकर (नः चक्राम) हमें प्राप्त होता है, उस (त्वा) तुझको हम (ऊतये) रक्षा के लिये (कर्मन्) प्रत्येक कार्य में (उप ब्रूमहे) स्वीकार करते हैं और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम (सखायः) मित्रजन (सानसिम्) सेवा योग्य, उपास्य (त्वाम् इत्) तुझको ही (अवितारं) रक्षक रूप से (वृणीमहे) वरण करते हैं।

आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्व-पते) इन्द्रियों और लोकों के पालक ! स्वामिन् ! हे (गो-पते) गौवों, वाणियों और भूमियों के पालक ! हे (उर्वरा-पते) उत्पादक भूमि के स्वामिन् ! हे (सोम-पते) उत्पन्न अन्न ओषधिवत् शिष्यपुत्रादि एवं जगत् के पालक ! आत्मन् ! प्रभो ! विद्वन् ! तू (आ याहि) आ, प्राप्त हो, (इमे इन्दवः) ये ऐश्वर्य वा, स्नेहयुक्त प्रजाजन हैं तू उनका (पिब) पालन कर।

वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (वयं विप्रासः) हम विद्वान् लोग (अबन्धवः) विना बन्धु के, निःस्सहाय वा बन्धनरहित, (बन्धुमन्तं त्वा) बन्धु वाले तुझको ही (येमिम) अपने साथ बांधते हैं। हे (वृषभ) बलशालिन् ! (या ते धामानि) जो तेरे नाना धारण सामर्थ्य, तेज हैं तू (तेभिः विश्वेभिः) उन सबों से (सोमपीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालन के लिये राजा के तुल्य, ओषधि रसवत् आत्मानन्दरस पान कराने के लिये (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा वयः) जैसे पक्षीगण (गो-श्रीते = गोश्रिते) भूमि पर आश्रित वा सूर्य द्वारा परिपक्व, फलवान्, (विवक्षणे) विविध स्कन्धों वाले, वृक्ष पर, (मदिरे मधौ) आनन्दमय वसन्त में (सीदन्तः अभिनोनुवन्ति) बैठे हुए सब तरफ कलरव करते हैं वैसे ही हम भी (ते) तेरे (गो-श्रीते) वाणियों द्वारा आश्रय करने या सेवने योग्य, (मदिरे) हर्षजनक, (विवक्षणे) विविध प्रकार से कथनोपकथन करने योग्य (मधौ) मधुर ज्ञानमय वेद, एवं तेरे रूप में (सीदन्तः) आश्रय लेते हुए (त्वाम् अभि नोनुमः) तेरी साक्षात् स्तुति करें।

अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद्वि दीधयः।
सन्ति कामासो हरिवो दुदिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः॥६॥

भा०—हे (हरिवः) लोकों के स्वामिन् ! हम (त्वा एना नमसा अच्छ वदामसि) तुझे लक्ष्य कर इस विनय से प्रार्थना करते हैं। (मुहुः) बार २ तू भी (किं वि दीधयः चित्) क्या विचारता है कि भला हम क्यों तेरी स्तुति करते हैं। (कामासः सन्ति) हमारी बहुत अभि-लाषाएं हैं और (त्वं ददिः) तू ही उनका दाता है। (त्वा अच्छ वयं स्मः) हम भी तेरे सन्मुख याचक हैं। (नः धियः सन्ति) हमारे उत्तम कर्म उत्तम बुद्धियें हैं।

नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः।
विद्मा पुरा परीणसः॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वा-मिन् ! (वयम्) हम लोग (ते ऊती) तेरी रक्षा में (नूत्ना इव) नये ही,

सदा (अभूम) बने रहें। हे (अद्रिवः) अखण्डशक्ते! (परीणसः) सर्व-व्यापक, महान् (ते) तेरे विषय में (पुरा) पहले के समान अब भी हम (नहि नु विद्म) कुछ नहीं जान पाये। तू अगम्य, महान्, असीम है।

विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१मा ते ता वज्रिन्नीमहे।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥ ८ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक! हम लोग (ते) तेरे (सखित्वम्) मित्र भाव को (विद्म) जानें (उत) और हे (वज्रिन्) वीर्यवन्! हम लोग (ते) तेरे (ता) वे नाना ऐश्वर्य तथा (भोज्यं) भोग, सुख, ऐश्वर्य तथा बल को (ते ईमहे) तुझसे मांगते हैं। हे (वसो) सबमें बसे! (उतो) और हे (सु-शिप्र) उत्तम सुखप्रद तेज देने हारे, सुखमय! तू (गोमति वाजे) इन्द्रियों से युक्त आत्मिक ऐश्वर्य, भूमि से युक्त ऐहिक ऐश्वर्य और वेदवाणी से युक्त (अस्मिन्) इस ज्ञान में (नः) हमें (शम् आ शिशीहि) अच्छी प्रकार अनुशासन कर।

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो! (यः) जो प्रभु (पुरा) पहले भी (नः) हमें (इदम् इदम्) ये ये, नाना गौ, हिरण्य आदि (वस्यः) ऐश्वर्य (आनिनाय) देता रहा है, उसी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (ऊतये) उपासना करने के लिये मैं (वः स्तुषे) आप लोगों को उपदेश करता हूँ।

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥१०।२॥

भा०—(सः हि स्म मघवा) वह ही निश्चय से परमैश्वर्यवान् है (यः अमन्दत) जो स्वयं आनन्दमय होकर संसार को आनन्दित करता है। (सः तु) वही, (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः) हममें से (स्तोतृभ्यः)

स्तुतिकर्ता उपासकों के उपकारार्थ (शतम्) अनेक (गव्यम्) गौ और (अश्व्यम्) अश्वादि-सम्पन्न धन (आ दयति) निरन्तर देता रहता है। मैं उपासक भी (तं) उस (हर्यश्वं) सब मनुष्यों और लोकों में व्यापक, (सत्-पतिम्) सज्जनों और सत्-कारण, प्रकृति के पालक और (चर्षणी-सहं) मनुष्यों को सहने वाले प्रभु की (स्तुषे) स्तुति करता हूँ। इति द्वितीयो वर्गः ॥

त्वयां ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि।
संस्थे जनस्य गोमंतः ॥ ११ ॥

भा०—(गो-मतः) कान, आंख आदि इन्द्रियों और वाणी से युक्त, (जनस्य) मनुष्य के (संस्थे) समीप (श्वसन्तं) और श्वास लेने वाले प्रत्येक प्राणी के (प्रति) प्रति, हे (वृषभ) सुखों के वर्षक! (त्वया ह स्वित् युजा) तुझ सहायक के साथ हम (प्रति ब्रुवीमहि) बातचीत करें।

जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिन्द्र प्र णो धियः ॥ १२ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से स्तुत ! प्रभो ! राजन्! हम (कारिणः) संग्राम में कुशल, एवं कार्यकुशल होकर (कारे) करने योग्य कार्य के अवसर में, वा संग्राम में (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले पुरुषों को (जयेम) पराजित करें और (अभि तिष्ठेम) उनका मुकाबला करें। (वृत्रं) विघ्नकारी शत्रु को (नृभिः हन्याम) उत्तम नेताजनों से दण्डित करें और (शूशुयाम च) हम बढ़ें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः धियः) हमारी बुद्धियों और कर्मों की (प्र अवेः) अच्छी प्रकार रक्षा कर।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना)

नेता रहित और (सनात्) अनादि काल से (जनुषा) स्वभावतः (अनापिः असि) बन्धुरहित है। तू (युधा इत्) युद्ध द्वारा ही (आपित्वम् इच्छसे) बन्धुता चाहता है।

नकी॑ रे॒वन्तं॑ स॒ख्याय॑ विन्दसे॒ पीय॑न्ति ते सु॒रा॒श्वः॑।
य॒दा कृ॒णोषि॑ नद॒नुं सम्ू॑ह॒स्यादित्पि॒तेव॑ हूयसे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (रेवन्तं) धनसम्पन्न पुरुष को (सख्याय) मित्रभाव के योग्य (नकिः विन्दसे) कभी नहीं पाता। धन सम्पन्न जन (सुराश्वः) 'सुरा', मद्य पी कर घमण्ड में फूले मदमत्त होकर (ते पीयन्ति) तेरे भक्तों को पीड़ित करते हैं और जब तू उनको (नदनुं) स्तुति करने वाला (कृणोषि) कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर ही तू उन्हें (सम् ऊहसि) अच्छी प्रकार अपने साथ लेता है, और (पिता इव हूयसे) पिता के समान पुकारा जाता है।

मा ते॑ अमा॒जुरो॑ यथा मू॒रास॑ इन्द्र स॒ख्ये त्वाव॑तः।
नि ष॑दाम॒ सचा॒ सु॒ते ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(मूरासः यथा अमा-जुरः) मूढ, मरणोन्मुख मनुष्य जैसे रोग पीड़ाओं वा जड़, गृह वा पुत्र पौत्रादि, 'अ-मा' अर्थात् अज्ञान से जीवन भर अज्ञानी रहकर बूढ़े हो जाते हैं, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वैसे ही (त्वावतः ते सख्ये) तेरे जैसे, तुझ, प्रभु के मित्रभाव में रहकर हम लोग वैसे (मा) कभी न हों। प्रत्युत (सुते) ऐश्वर्य होने पर भी हम (सचा) तेरे साथ (नि सदाम) स्थिर होकर रहें। इति तृतीयो वर्गः ॥

मा ते॑ गोदत्र॒ निर॑राम॒ राध॑स॒ इन्द्र॒ मा ते॑ गृहामहि।
दृ॒ळ्हा चि॑द॒र्यः प्र मृ॑शा॒भ्या भ॑र॒ न ते॑ दा॒मान॑ आ॒दभे॑ ॥१६॥

भा०—हे (गोदत्र) भूमियों, वाणियों, इन्द्रियों के दाता प्रभो ! हम (ते राधसः) तेरे दिये धन से (मा नि रराम) वञ्चित न हों। हे

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम (ते) तेरे होकर (मा गृहामहि) दूसरे का ग्रहण न करें। तू (अर्यः) स्वामी होकर (दृढा) स्थिर धनों का (प्र मृश) प्रदान कर। (अभि आ भर) हमें उत्तम रीति से पालन कर, (ते दामानः) तेरे दान और बन्धन (न आ-दभे) कभी विनष्ट नहीं होते।

इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु।
त्वं वा चित्र दाशुषे ॥ १७ ॥

भा०—हे (चित्र) आश्चर्यजनक शक्ति वाले प्रभो ! तू (दाशुषे) दानशील उपासक को (इन्द्रः वा) ऐश्वर्यवान् के समान (घ) ही (इयत् मघं ददिः) इतना धन देता और तु (सरस्वती वा सुभगा) सौभाग्यवती सरस्वती, उत्तम ज्ञान वाली विदुषी स्त्री वा उत्तम जल वाली नदी के समान (इयत् वसु ददिः) जलवत् अपरिमित ऐश्वर्य देता है कि पारावार नहीं।

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु।
पर्जन्यइव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥ ४ ॥

भा०—(यके) जो (सरस्वतीम्) नदीवत् प्रशस्त ज्ञान से सम्पन्न प्रभु के (अनु) ऊपर निर्भर हैं वे (अन्यके राजकाः इत्) और छोटे २ राजाओं के तुल्य स्वप्रकाश आत्मा है और (चित्र इत्) सबको चेतना देने वाला प्रभु (राजा) राजा तुल्य प्रकाशमान है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२२]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती। ३, ५ निचृद् बृहती। ७ बृहती पथ्या। २ विराट् पंक्तिः। ६, १६, १८ निचृत् पंक्तिः। ४, १० सतः पंक्तिः। २४ भूरिक् पंक्तिः। ८ अनुष्टुप्। ९, ११, १७ उष्णिक्। १३ निचृदुष्णिक्। १५ पादनिचृदुष्णिक्। १२ निचृत् त्रिष्टुप्। अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः॥ १॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वों के स्वामीवत् जनो! हे (सुहवा) उत्तम नाम और वचन वाले, (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापतिवत् स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (यं) जिस (दंसिष्टं) दुष्ट-नाशक और कर्म में समर्थ, (रथम्) सुखजनक रथवत् गृहस्थ पर (सूर्यायै) सूर्य की कान्ति के तुल्य दीप्तिमती कन्या, वधू वा माता की (ऊतये) रक्षा के लिये (आ तस्थथुः) स्थित होते हैं (ओ) हे स्त्री पुरुषो! मैं (त्यं रथम्) उस रमण योग्य गृहस्थ रथ का (अह्वे) वर्णन करता हूँ।

पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम्।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम्॥ २॥

भा०—गृहस्थ रथ का वर्णन। हे (सोभरे) प्रजा के उत्तम रीति से पोषण में समर्थ पुरुष! मैं तुझे ऐसे उस रथ का उपदेश करता हूँ जो (पूर्व-आ-पुषम्) अपने पूर्वज जन को पुष्ट करता, उनकी वंश-वृद्धि करता है, (सु-हवं) शुभ नाम वाला, (पुरु-स्पृहं) बहुतों के साथ स्नेह करने वाला, (वाजेषु पूर्व्यम्) ऐश्वर्यों और ज्ञानों से पूर्ण, (सचनावन्तं) आसक्ति और प्रेम से युक्त, (भुज्युं) भोगों की कामना वाला, (वि-द्वेषसम्) परस्पर के द्वेष से रहित, (अनेहसम्) पापों, अपराधों से रहित हैं, उस गृहस्थ रथ का मैं (अह्वे) उपदेश करूं।

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम्॥ ३॥

भा०—(इह) यहां (दाशुषः) अतिथ्यादि देने वाले के (गृहं गन्तारा) गृह पर जाने वाले, (पुरु-भूतमा) बहुतों के प्रति सद्भावना वाले, (देवा) उत्तम गुणों से अलंकृत (त्या) उन दोनों (अश्विना) जिते-

इन्द्रिय स्त्री-पुरुषों को (अवसे) उत्तम रूप से प्रसन्न करने के लिये, (नमोभिः) अन्नों, और आदर वचनों से (सु करामहे) सत्कार करें।

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥

भा०—गृहस्थ रथ के दो चक्र। हे (ईर्मा) शरीर में लगे दो बाहुओं के समान (शुभः-पती) उत्तम व्रतपालक, शोभायुक्त पति-पत्नी! (युवोः रथस्य चक्रम्) तुम दोनों के रथ अर्थात् रमणीय रथवत् गृहस्थ का एक चक्र-पुरुष, (परि ईयते) सर्वत्र बाहर जाता है और (वाम् अन्यत्) तुम दोनों में दूसरा चक्र स्त्री, केवल (इषण्यति) चाहना करती है। (वां सु-मतिः) तुम दोनों की उत्तम बुद्धि (धेनुः इव) गौ के समान (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हमें भली प्रकार प्राप्त हो।

रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५॥५॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) गृहस्थ रूप रथ है (त्रि-बन्धुरः) तीन ऋण-रूप बन्धनों के समान कायिक, मानसिक और वाचिक तीनों बन्धनों से युक्त है, इसमें (हिरण्याभीशुः) हित, रमणीय वचन ही लगाम के समान है। वह (श्रुतः) गुरुपदेशादि श्रवण की विद्या से सम्पन्न होकर (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि के सदृश (परि भूषति) सुशोभित होता है। हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले आप दोनों (तेन) उसी रथ से (आ गतम्) आओ, जाओ, संसार यात्रा करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६॥

भा०—आप दोनों (दशस्यन्ता) दानशील होकर (मनवे) मनुष्यों

के हितार्थ, (पूर्व्यं यवं) पूर्वों से उपदिष्ट यव आदि धान्य की (दिवि) भूमि पर (वृकेण कर्षथः) हल द्वारा कृषि करो। हे (शुभः-पती) शोभा-युक्त! हे (अश्विना) रथी-सारथिवत् पति पत्नी! (ता) उन (वाम्) तुम दोनों को हम (सु-मतिभिः) उत्तम बुद्धियों से (प्र स्तुवीमहि) उत्तम उपदेश करें।

उप॑ नो वाजिनीवसू यातमृतस्य॑ पथिभिः।
येभि॑स्तृक्षिं वृ॑षणा त्रासदस्यवं म॒हे क्ष॒त्राय॒ जिन्व॑थः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञानवाली, बलवती और अन्नवती, बुद्धि, सेना और कृषि रूप धन के धनी स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (येभिः) जिन (ऋतस्य पथिभिः) सत्य, ज्ञान और न्याय के उपायों से (त्रास-दस्यवं) भयभीत शत्रुओं को उखाड़ने और दुष्टों को भयदाता सैन्य बल के (तृक्षिं) विजिगीषु नायक को (महे क्षत्राय) बड़े बल की प्राप्ति के लिये (जिन्वथः) बढ़ा सकते हो, आप दोनों (वृषणा) बलवान् हो-कर उन ही (ऋतस्य पथिभिः) सत्य, न्यायादि मार्गों से (नः उप यातम्) हमें प्राप्त होवो।

अ॒यं वा॒मद्रि॑भिः सु॒तः सोमो॑ नरा वृषण्वसू।
आ या॑तं॒ सोम॑पीतये॒ पिब॑तं दा॒शुषो॑ गृ॒हे ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) सुख की वर्षा करने वाले जनो! हे (नरा) नायक-नायिका जनो! (वाम्) आप दोनों का (अयम्) यह (सुतः) उत्पादित ऐश्वर्य (अद्रिभिः) मेघों से उत्पादित, वा पाषाणादि से पीस कर तैयार किये अन्न के समान (अद्रिभिः) अखण्ड बलों से उत्पन्न किया जाता है। आप दोनों (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (दाशुषः गृहम्) दानशील यज्ञकर्त्ता पुरुष के गृह पर (आ यातम्) आवो और (पिबतम्) उसका उपभोग करो।

आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् साधनों के स्वामी जनो ! हे (वृषण्वसू) बलशाली पुरुषों के बीच बसने वालो ! आप दोनों (रथे) रथ-समान सुखजनक (हिरण्यये) सुवर्ण से (कोशे) खजाने पर (आरुहतम्) स्थिर होवो और (पीवरीः इषः) सम्पन्न अन्नों का (युञ्जाथाम्) प्रयोग करो।

याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१०॥६॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व-रथादि के स्वामी जनो ! आप दोनों (याभिः) जिन उपायों से (पक्थम् अवथः) पके अन्न की रक्षा करते हो और (याभिः) जिन उपायों से (अध्रिगुं अवथः) अस्थिर गति वाले, दीन जन की रक्षा करते हो और (याभिः) जिन उपायों से (वि-जोषसम्) विशेष प्रीति-युक्त (बभ्रुं) भरण-पोषणकारी माता पितावत् पालक, एवं सेवक-जन की रक्षा करते हो, (ताभिः) इन सब साधनों सहित (नः) हमें (मक्षु तूयम्) शीघ्रातिशीघ्र (आ गतम्) आओ और (यत् आतुरम्) जो पीड़ित जन हो उसके (भिषज्यतम्) दुःखों को दूर करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।
वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अध्रि-गू) इन्द्रियों पर अधिकार करने वाले ! हे (अश्विना) अश्ववत् वेगवान् मन पर वश करने वाले जनो ! (यत्) जब हम (अध्रि-गावः) वाणियों पर वशी (विपन्यवः) स्तुतिकर्त्ता हों। (अह्नः चित् इदा) दिन के उसी समय में आप दोनों की (गीर्भिः हवामहे) वाणियों से स्तुति करें, आपको आदर से बुलावें, उपदेश करें।

ताभि॒रा या॑तं वृषणोप॑ मे॒ हवं॑ वि॒श्वप्सुं॑ वि॒श्ववा॑र्यम् । इ॒षा मंहि॑ष्ठा पुरु॒भूत॑मा नरा॒ याभिः॒ क्रिविं॑ वावृ॒धुस्ताभि॒रा ग॑तम् ॥१२

भा०—हे (वृषणा) बलवान्, मेघ-पवनवत् स्त्री पुरुषो ! आप (विश्व-प्सुं) नाना रूप के (विश्ववार्यं) सब साधनों से युक्त कष्टवारक, (मे हवं) मेरे यज्ञ को (ताभिः) उन शक्तियों-सहित (आयातम्) आवो (याभिः) जिनसे आप दोनों (इषा) इच्छावान्, (मंहिष्ठा) दानशील (पुरुभूतमा) अधिक सामर्थ्यवान् (नरा) नायक होकर (क्रिविं वावृधुः) शत्रुनाशक स्वामी की वृद्धि करते हो, (ताभिः) उन सहित ही (आ गतम्) आवो ।

ताविदा चि॒दहा॑नां ताव॒श्विना॒ वन्द॑मान॒ उप॑ ब्रुवे ।
ता ऊ॒ नमो॑भिरीमहे ॥ १३ ॥

भा०—(अहानां इदा चित्) दिनों के वर्त्तमान काल में, सदा, (तौ) उन दिनों की मैं स्तुति करूं और (तौ अश्विनौ) उन दोनों जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों को (वन्दमानः) नमस्कार करता हुआ (उप ब्रुवे) उनके पास वचन कहूँ । (नमोभिः) हम आदर वचनों से (ता उ ईमहे) उनसे प्रार्थना करें ।

ताविद्दो॒षा ता उ॒षसि॑ शु॒भस्पती॒ ता याम॑न्रु॒द्रव॑र्तनी ।
मा नो॒ मर्ता॑य रि॒पवे॑ वाजिनीवसू प॒रो रु॑द्रा॒वति॑ ख्यतम् ॥ १४ ॥

भा०—(तौ इत् दोषा) वे दोनों रात्रि में, (ता उषसि) वे दोनों, प्रभात में, (शुभः-पती) शुभ गुणों, कर्मों, शोभा और अन्न जलादि के पालक पति-पत्नी हों । (यामन्) मार्ग में, वा नियम-व्यवस्थाओं में (ता) वे दोनों (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने, और उपदेष्टा के समान उत्तम व्यवहार वाले हों । हे (वाजिनीवसू) बल, ज्ञान, अन्नादि युक्त प्रजा के धनी जनो ! हे (रुद्रौ) दुष्टों को रुलाने वालो ! आप दोनों (नः)

हमें (रिपवे मर्त्ताय) पापी मनुष्य के लाभ के लिये (मा अति ध्यतम्) मत परित्याग करें।

आ सुम्र्याय सुम्र्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।
हुवे पितेव सोभरी ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सक्षणी) एक साथ रहने वाले, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप (प्रातः) प्रातःकाल, (सुम्र्याय) सुख प्राप्ति के लिये (सुम्र्यं) सुखपूर्वक (रथेन) रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ से (आ) जीवन व्यतीत करो। मैं (सोभरी) उत्तम रीति से पोषण करने वाला (पिता इव) पिता के समान तुम दोनों को (हुवे) उपदेश करता हूँ।

इति सप्तमो वर्गः ॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुङ्गमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥ १६ ॥

भा०—हे (मनो-जवासा) मन के वेग से जाने वाले, (वृषणा) वीर्यसेचन में समर्थ, पूर्ण युवा, (मदच्युता) शत्रुओं के मद को दूर करने में समर्थ और (पुरुभोजसा) बहुतों के रक्षक आप दोनों (अस्मे अवसे) हमारी रक्षा के लिये, (पूर्वीभिः) पूर्व विद्यमान, बल से पूर्ण (मक्षुं-गमाभिः) अति वेग से जाने वाली (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं सहित (आरात्तात् चित्) हमारे अति समीप और दूर भी (भूतम्) होवो।

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा ।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

भा०—हे (मधु-पातमा) मधुर अन्न आदि पदार्थों के उपभोग करने वाले (नरा) स्त्री पुरुषो! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो! आप दोनों (नः) हमारे (अश्वावत्) अश्वों, (गोमद्) गौओं और (हिरण्यवत्) सुवर्ण से समृद्ध (वर्त्तिः) गृह में (आ यासिष्टम्) आओ, आतिथ्य स्वीकार करो।

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वांमायाने वाजिनीवसू विश्वां वामानि धीमहि ॥१८॥८

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्य सम्पन्न, विद्या, सेना, कृषि, राज्यलक्ष्मी आदि के धनी स्त्री पुरुषो! हम लोग (रक्षस्विना अनाधृष्टं) 'रक्षस्' अर्थात् दुष्ट जनों के सर्दार द्वारा किये बलात्कार से न पराजित, (सुष्ठु) उत्तम (वार्यं) धन और (सु-प्रावर्गं) शत्रुओं को वर्जने वाला (सु-वीर्यं) उत्तम बल युक्त, सैन्य और (वाम् आयाने) आप दोनों के आ जाने पर (अस्मिन्) इस राष्ट्र में (विश्वा वामानि) समस्त उत्तम पदार्थ हम लोग (आ धीमहि) धारण करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२३]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, १०, १४—१६, १९—२२, २६, २७ निचृदुष्णिक् । २, ४, ५, ७, ११, १७, २५, २९, ३० विराडुष्णिक् । ६, ८, ९, १३, १८ उष्णिक् । १२, २३, २८ पादनिचृदुष्णिक् । २४ आर्ची स्वराडुष्णिक् । त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं१ यजस्व जातवेदसम् ।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ १ ॥

भा०—जैसे अग्नि (प्रतीव्यः) प्रत्यक्ष में कान्तियुक्त (जातवेदाः) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान, (चरिष्णु-धूमः) फैलने वाले धूम वाला, (अगृभीत-शोचिः) न स्पर्श करने योग्य ज्वाला वाला होता है वैसे ही! हे मनुष्य ! तू (प्रतीव्यं) कान्तिमान्, तेजोमय (जातवेदसम्) पदार्थों को जानने वाले, (चरिष्णु-धूमम्) व्यापक, सञ्चालक शक्ति वाले, (अगृभीत-शोचिषम्) अपरिचित वा प्रत्यक्ष चक्षुओं से न दीखने योग्य तेज वाले, परमेश्वर की (हि) अवश्य (ईडिष्व) उपासना कर।

दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा।
उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विश्व-चर्षणे) संसार में प्रविष्ट, व्यापक एक ही महान् प्रभु को देखने वाले ! हे (विश्व-मनः) सर्वव्यापक, कामना न करने वाले ! तू (गिरा) वाणी से (वि-स्पर्धसः) विविध स्पर्द्धाएं करने वाले, ऐश्वर्यों के इच्छुक जीव को (रथानां) रमण योग्य देहों के (दामानं) देने वाले (अग्नि) अग्निवत् तेजस्वी परमेश्वर की (उत) भी (स्तुषे) स्तुति कर।

येषामाबाध ऋग्मियं इषः पृक्षश्च निग्रभे।
उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥ ३ ॥

भा०—(ऋग्मियः) वेदमन्त्रों से स्तुति योग्य, (वह्निः) जगत् को धारण करने वाला, (आ-बाधः) दुष्ट पुरुषों को सब प्रकार से पीड़ित करने वाला होकर (इषः पृक्षः च) उनकी इच्छा और अन्नादि को भी (नि-ग्रभे) रोक देता, उन पर प्रतिबन्ध लगा है। वह (उप विदा) विवेक पूर्वक (वसु विन्दते) धन प्राप्त करता है।

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्य१जरम्।
तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) भौतिक अग्नि की ज्वाला ऊपर उठती है, वह (वि-अजरम्) प्रत्येक पदार्थ को विच्छिन्न करके दूर दूर तक फैला देती है, (तपुः-जम्भः) अग्नि का प्रताप ही मानो उसकी दाढ़ों के समान काष्ठादि को खा जाने का साधन है। वह (सु-द्युत्) उत्तम कान्ति-युक्त (गण-श्रीः) गणनीय, दर्शनीय शोभा से युक्त होता है। वैसे ही (अस्य) इस (सु-द्युतः) उत्तम कान्तियुक्त, तेजस्वी, (गण-श्रियः) अनुयायी सैन्य गण का आश्रयणीय, (दीदियुषः) देदीप्यमान, (अस्य) इस राजा वा प्रभु का (वि-अजरम्) विशेष रूप से अविनाशी

वा विविध प्रकार से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (शोचिः) तेजः (उत् अस्थात्) सर्वोपरि विराजता है। (तपुर्जम्भस्य) शत्रुसन्तापक शस्त्रास्त्र बल ही उसकी जम्भ, वा दंष्ट्रा के समान दुष्ट शत्रुओं को हड़प जाने का साधन होता है।

उदु॑ तिष्ठ स्वध्वर॒ स्तवा॑नो दे॒व्या कृ॒पा ।
अ॒भि॒ख्या भा॒सा बृ॑ह॒ता शु॑शु॒क्वनिः॑ ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे नायक ! प्रभो ! राजन् ! विद्वन् ! हे (स्वध्वर) हिंसा-रहित ! प्रजापालक ! तू (देव्या कृपा) तेजोयुक्त, प्रजा को सुखद राजशक्ति से और (अभि-ख्या) स्पष्ट घोषणा करने वाली, वा प्रसिद्ध वाणी, (भासा) कान्ति, (बृहता) बड़े ज्ञान और बल से युक्त होकर (शुशुक्वनिः) निरन्तर अग्निवत् शुद्ध, तेजस्वी और (स्तवानः) स्तुति किया जाकर वा अन्यों को आज्ञावचन कहता हुआ (उत् तिष्ठ उ) उत्तम आसन पर विराज। इति नवमो वर्गः ॥

अग्ने॑ या॒हि सु॑श॒स्तिभि॑र्ह॒व्या जुह्वा॑न आनु॒षक् ।
यथा॑ दू॒तो ब॒भूथ॑ हव्य॒वाह॑नः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे अग्नि (सुशस्तिभिः हव्या आनुषक् जुह्वानः) उत्तम स्तुतियों-सहित हव्यों का ग्रहण करता, (दूतः) तापकारी होकर (हव्य-वाहनः भवति) चरु आदि को दूर २ तक पहुँचाता है वैसे ही हे (अग्ने) राजन् ! तू भी (सु-शस्तिभिः) उत्तम शासनों द्वारा (आनुषक्) निरन्तर (हव्या जुह्वानः) राजा के ग्रहण-योग्य करों और अन्नादि पदार्थों को लेता हुआ (दूतः यथा) दूत के समान (हव्यवाहनः बभूथ) वचन और ज्ञान को पहुँचाने वाला होता है। वह तू (याहि) हमें प्राप्त हो।

अ॒ग्निं वः॑ पू॒र्व्यं हु॑वे॒ होता॑रं चर्षणी॒नाम् ।
तम॒या वा॒चा गृ॑णे॒ तमु॑ वः स्तुषे ॥ ७ ॥

भा०—हे मनुष्यो! मैं (वः) आप लोगों को (चर्षणीनां) ज्ञान-द्रष्टा इन्द्रियों के (होतारं) बलदाता आत्मा के समान (चर्षणीनां) ज्ञानद्रष्टा ऋषियों के (पूर्व्यं) पूर्व विद्यमान, ज्ञान और शक्ति से परिपूर्ण (अग्निम्) प्रभु का (वः हुवे) तुमको उपदेश करता हूँ और (तम्) उस प्रभु की मैं (अया वाचा) इस व्यक्त वेदवाणी में (गृणे) स्तुति करता हूँ और (तम् उ वः स्तुषे) उसका ही मैं आप लोगों को उपदेश करता हूँ।

यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत्।
मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतावनि जने) वेदज्ञान एवं न्यायमार्ग का सेवन करने वाले मनुष्य के बीच (सुधितम्) उत्तम रीति से धारित एवं (मित्रं न) स्नेही जन के समान, प्राणरक्षक रूप से (कृपा) दया एवं जगद्-रचनादि सामर्थ्य से (अद्भुत-क्रतं) अद्भुत ज्ञान, कर्म वाले (यं) जिसकी ओर सब उपासकजन (यज्ञेभिः) उपासनाओं से (सूदयन्त इत्) प्रेमार्द्र होकर जलोंवत् क्षरित हो जाते हैं, मैं उसी का उपदेश करता हूँ।

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा।
उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (ऋतायवः) अन्नार्थी (नमसः पदे) अन्न के पाने के लिये (ऋतावानं जुजुषुः) अन्न के स्वामी की सेवा करते हैं वैसे ही (ऋतायावः) सत्य ज्ञान के इच्छुक, पुरुष (यज्ञस्य साधनम्) यज्ञ को साधने वाले, (ऋतावानम्) सत्य ज्ञान के दाता, (एनं) उसकी ही (नमसः पदे) नमस्कार योग्य पद पर स्थापित करके (गिरा) वेद-वाणी से (उपो जुजुषुः) उपासना करें।

अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः।
होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो (विक्षु) प्रजाओं में (होता) सुखों का दाता और (यशः-तमः) कीर्त्ति में सर्वाधिक (अस्ति) है। उसी (अंगिरस्तमं) ज्ञानी, तपस्वितम पुरुष को (अच्छा) प्राप्त कर (यज्ञासः) यज्ञ और संगठित दल भी (सं-यतः सन्तु) सुसम्बद्ध हों। इति दशमो वर्गः ॥

अग्ने तव त्ये अंजरेन्धानासो बृहद्भाः।
अश्वां इव वृषणस्तविषीयवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! स्वामिन्! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ! (तव) तेरे (त्ये) वे (इन्धानासः) देदीप्यमान (तविषीयवः) बलवान्, (वृषणः) मेघवत् सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करने वाले (बृहद्-भाः) बड़े २ प्रकाशों वाले, (अश्वाः इव) अश्वों वा सूर्यों के समान सुदृढ़ हैं।

स त्वं न ऊर्जां पते र॒यिं रास्व सुवीर्यम्।
प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऊर्जां पते) अन्नों और बलों के स्वामिन्! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (रास्व) प्रदान कर। (समत्सु) संग्रामों में (नः तोके तनये) हमारे पुत्र पौत्रों के निमित्त हमारे धन की (प्र-अव) अच्छी प्रकार रक्षा कर।

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ १३ ॥

भा०—(यत् वै उ विश्पतिः) जब भी प्रजाओं का पालक (शितः) तीक्ष्ण, बलवान्, (सुप्रीतः) प्रसन्न होकर (मनुषः विशि) मनुष्यों के प्रजाजन के बीच विराजता है वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी (विश्वा इत् रक्षांसि प्रति सेधति) समस्त राक्षसों को दूर करता है।

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।
नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥ १४ ॥

भा०—हे (वीर विश्पते) शूरवीर प्रजा के पालक ! (अग्ने) तेज-स्विन् ! तू (मे स्तोमस्य) मेरे स्तुत्य वचन को (श्रुष्टी) श्रवण करके शीघ्र (मायिनः रक्षसः) मायावी, राक्षस, दुष्ट पुरुषों को (नि दह) भस्म कर ।

न तस्य॑ मा॒यया॑ च॒न रि॒पुरी॑शीत॒ मर्त्यः॑ ।
यो अ॒ग्नये॑ द॒दाश॑ ह॒व्यदा॑तिभिः ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (अग्नये) अग्नि में (हव्य-दातिभिः) चरु की आहुतियों द्वारा (ददाश) प्रदान करता है, वैसे ही जो प्रजाजन (अग्नये) तेजस्वी राजा को (हव्य-दातिभिः) ग्राह्य कर आदि अंशों से (ददाश) उसको प्रदान करता है (तस्य) उस पर (रिपुः मर्त्यः) शत्रु मनुष्य (मायया चन) माया, कुटिल बुद्धि से (न चन ईशीत) अधिकार नहीं कर सकता । इत्येकादशो वर्गः ॥

व्य॑श्वस्त्वा वसु॒विद॑मुक्ष॒ण्युर॑प्रीणा॒दृषिः॑ ।
म॒हो रा॒ये तमु॑ त्वा॒ समि॑धीमहि ॥ १६ ॥

भा०—(उक्षण्युः) जैसे जलसेचन मेघ की इच्छा करने वाला, (ऋषिः) तत्वदर्शी पुरुष (वि-अश्वः) विशेष विद्वान् होकर (वसु-विदम्) जीवन प्राप्त कराने वाले सूर्य या अग्नि को (अप्रीणात्) हव्यों से तृप्त करता है, वैसे ही (उक्षण्युः) समस्त संसार के धारक और सुखों के वर्षक प्रभु का इच्छुक (वि-अश्वः) विशेष आनन्द प्राप्त करने वाला (ऋषिः) तत्वदर्शी पुरुष (वसु-विदम्) समस्त ऐश्वर्यों के दाता प्रभु को (अप्रीणात्) प्रसन्न करे । हम (महः राये) बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (तम् उ त्वा) उस तुझको (सम् इधीमहि) हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित करें ।

उ॒शना॑ का॒व्यस्त्वा॒ नि होता॑रमसादयत् ।
आ॒य॒जिं त्वा॒ मन॑वे जा॒तवे॑दसम् ॥ १७ ॥

भा०—(काव्यः) क्रान्तदर्शी पुरुषों का पुत्र वा शिष्य वा स्वयं कवि, प्रभु का उपासक (उशनाः) कामनावान् जीव (मनवे) मनुष्य-मात्र के कल्याणार्थं (होतारं) सुखदाता, (आयजिं) सब प्रकार से पूज्य (जात-वेदसं) सर्वज्ञानी (त्वा) तुझे ही (वि-असादयत्) विशेष रूप से प्राप्त करे।

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत।

श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥ १८ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञानैश्वर्य के दाता! (सः-जोषसः) समान प्रीति से युक्त (विश्वे हि देवासः) सब विद्वान् जन (त्वा) तुझको (दूतम् अक्रत) अपना संदेशहर, ज्ञानदाता स्वीकार करते हैं। हे (देव) देव! तू ही (श्रुष्टि) शीघ्र (प्रथमाः) सबसे प्रथम (यज्ञियः भुवः) सर्वोपास्य है।

इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः।

पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥ १९ ॥

भा०—(वीरः मर्त्यः) विशेष विद्वान् मनुष्य (पावकं) पवित्र करने वाले (कृष्ण-वर्त्तनिम्) पापों के नाशक वा चित्ताकर्षक मार्ग वाले, वा आकर्षणशील सूर्यादि लोकों को स्व-स्व मार्गों से संचालन करने वाले, (विहायसं) महान् आकाशवत्, व्यापक (इमं घ) इस प्रभु को ही (दूतं) उपास्य (कृण्वीत) बनावे।

तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम्।

विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥ २० ॥ १२ ॥

भा०—(सु-भासं) उत्तम कान्तिमान्, (शुक्र-शोचिषम्) शुद्ध प्रकाशवान्, (तम्) उसी (विशाम् अग्निम्) प्रजाओं वा देह में प्रविष्ट जीवों को नायकवत् कर्म व्यवस्था में संचालक, (अजरं) अविनाशी, (प्रत्नम्)

सद्यातन, (ईड्यम्) स्तुत्य प्रभु को हम (यत-स्रुचः) स्रुच् आदि यज्ञ-साधनों के समान अपने प्राणों को संयम करके (हुवेम) उसकी उपासना करें। इति द्वादशो वर्गः॥

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत्।
भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः॥ २१॥

भा०—(यः) जो (मर्तः) मनुष्य (अस्मै) इस अग्नि की (हव्य-दातिभिः) चरु की आहुतियों द्वारा (आहुतिं) आहुति, यज्ञ, (अविधत्) करता है, ऐसे ही जो (अस्मै) उस प्रभु का (हव्य-दातिभिः) स्तुत्य वचनों द्वारा (आहुतिं) प्रार्थनोपासना (अविधत्) करता है, (सः) वह (भूरि-पोषं धत्ते) बहुत पुष्टिकारक अन्न, धन धारण करता है और (वीर-वद् यशः धत्ते) वीर पुत्रादि से युक्त यश भी प्राप्त करता है।

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम्।
प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती॥ २२॥

भा०—जैसे (यज्ञेषु अग्निं प्रति हविष्मती स्रुग् नमसा प्रति एति) यज्ञों में अग्नि को लक्ष्य कर हविष्य युक्त स्रुक्, नमसा नमस्कारयुक्त मन्त्र से आता है वैसे ही (यज्ञेषु) उपास्य एवं सत्संग-योग्य जनों में (पूर्व्यम्) पूर्व एवं ज्ञानशक्ति आदि में पूर्ण (प्रथमं) सबसे प्रथम विद्यमान (जातवेदसम्) सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर (हविष्मती) ज्ञान से युक्त (स्रुक्) बुद्धि, वाणी (नमसा) आदरपूर्वक (प्रति एति) प्राप्त होती और उसका ज्ञान करती है।

आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत्।
मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे॥ २३॥

भा०—हम (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेज वाले, प्रकाशस्वरूप (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (व्यश्ववत्) विशेष संयतेन्द्रिय वा ज्ञानवान्

होकर (ज्येष्ठाभिः) सर्वश्रेष्ठ (मंहिष्ठाभिः) अतिपूज्य, ज्ञानप्रद (आभिः) इन (मतिभिः) वाणियों, बुद्धियों से (विधेम) उपासना करें।

नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत्।
ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये॥ २४॥

भा०—हे (वैयश्व ऋषे) जितेन्द्रिय! ज्ञानदर्शिन्! तू (दम्याय अग्नये) गृह में स्थापना योग्य गार्हपत्याग्नि के समान (दम्याय अग्नये) सब संसार को दमन करने में समर्थ, ज्ञानवान् (विहायसे) महान् प्रभु की (स्थूर-यूपवत्) बड़े २ यूपों से युक्त यज्ञ के समान (नूनम्) अवश्य (स्तोमेभिः) वेदमन्त्रों से (अर्च) उपासना कर।

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम्।
विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते॥ २५॥ १३॥

भा०—(मानुषाणाम्) मननशील विद्वानों में (अतिथिम्) अतिथि-वत् पूज्य (वनस्पतीनाम्) सूर्यों और वनस्पतियों के (सूनुं) सञ्चालक, उत्पादक (प्रत्नम् अग्निम्) सनातन ज्ञानवान् प्रभु की (विप्राः) विद्वान् पुरुष (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (ईडते) स्तुति करते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः॥

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा।
अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि॥ २६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! तू (महतः विश्वान् सतः) बड़े २ विश्वों और पदार्थों को (अभि सत्सि) व्यापता है। तू (मानुषा हव्या अभि सत्सि) मनुष्यों के वचनों को स्वीकार करता है। हे प्रभो! तू (अधि बर्हिषि) इस महान् संसार में (नमसा) बड़े बल के साथ (नि सत्सि) यज्ञ में अन्नसहित अग्नि के समान विराजता है।

वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः।
सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः॥ २७॥

भा०—हे स्वामिन् ! तू (नः) हमें (पुरु-वार्या) बहुत से उत्तमोत्तम धनादि (वंस्व) प्रदान कर और तू हमें (प्रजावतः) प्रजा का उत्पादक (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्य और (यशस्वतः) उत्तम यज्ञ, कीर्त्ति, बल और अन्न से सम्पन्न (नाना रायः वंस्व) अनेक ऐश्वर्य दे।

त्वं व॑रो सु॒षाम्णोऽग्ने॒ जना॑य चोदय ।
सदा॑ वसो रा॒तिं य॑विष्ठ शश्व॑ते ॥ २८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! हे (वरो) वरणीय ! हे (वसो) सब जगत् में वसने वाले ! हे (यविष्ठ) अतिशय बलशालिन् ! (त्वं) तू सदा सब कालों (शश्वते) बहुत से (सु-साम्ने) उत्तम साम गान द्वारा स्तुतिकर्त्ता उपासक (जनाय) मनुष्यों के हितार्थ (रातिं) दान राशि और उत्तम ज्ञान को (चोदय) प्रेरित कर दे।

त्वं हि सु॑प्र॒तूरसि॒ त्वं नो॒ गोम॑ती॒रिषः॑ ।
म॒हो रा॒यः सा॒तिम॑ग्ने॒ अपा॑ वृधि ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! उन्नति मार्ग में ले जाने हारे ! (त्वं हि) तू निश्चय से (सु-प्रतूः असि) उत्तम रीति से धनदाता है। (त्वं) तू (नः) हमें (गोमतीः इषः) इन्द्रियों या वाणी से युक्त इच्छाओं और गवादि पशु समेत अन्न, (महः रायः सातिम्) बड़े ऐश्वर्य के भाग को (अप वृधि) खोल दे।

अग्ने॒ त्वं य॒शा अ॒स्या मि॒त्रावरु॑णा वह ।
ऋ॒तावा॑ना स॒म्राजा॑ पू॒तद॑क्षसा ॥ ३० ॥ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने त्वं यशाः असि) ! ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! तू यशःस्वरूप, कीर्त्तिमान् है। तू (ऋतवाना) सत्यनिष्ठ, (सम्राजा) समान भाव से तेजोयुक्त, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल और ज्ञान वाले, (मित्रा-वरुणा) सर्वस्नेही ब्राह्मण और 'वरुण' अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष क्षत्रिय दोनों

को (महो रायः सातिम्) बड़े धन का विभाग (वह) प्राप्त करा। प्रभु विद्वानों को ज्ञान का और क्षत्रियों को बल का धन देता है।
इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२४]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १—२७ इन्द्रः। २८—३० वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ११, १३, २०, २३, २४ निचृदुष्णिक्। २—५, ७, ८, १०, १६, २५—२७ उष्णिक्। ९, १२, १८, २२, २८, २९ विराडुष्णिक्। १४, १५, १७, ,२१ पादनिचृदुष्णिक्। १९ आर्ची स्वराडुष्णिक्। ३० निचृदनुष्टुप् ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

सखा॑य॒ आ शि॑षामहि॒ ब्रह्मेन्द्रा॑य व॒ज्रिणे॑।
स्तु॒ष ऊ॒ षु वो॒ नृत॑माय धृ॒ष्णवे॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो! (वज्रिणे) सर्वशक्तिमान् (इन्द्राय) सर्वप्रकाशक प्रभु के (आशिषामहि) गुणों का सादर वर्णन करें। मैं (धृष्णवे) दुष्टों को नाश करने, जगत् को धारण करने वाले (नृतमाय) पुरुषोत्तम, सर्वश्रेष्ठ नेता की ही (वः) आप लोगों के प्रति (ऊ सु स्तुषे) अच्छी प्रकार स्तुति करता हूँ।

शव॑सा॒ ह्यसि॑ श्रु॒तो वृ॑त्र॒हत्ये॑न वृत्र॒हा।
म॒घैर्म॒घोनो॒ अति॑ शूर दाशसि ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टनाशक! प्रभो! तू (वृत्र हत्येन) प्रकृति के 'सरिर' मय स्वरूप में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाले, मेघ के आघातकारी विद्युत् के समान (शवसा) बल से (वृत्र-हा) 'वृत्र-हा', दुष्टहन्ता (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है। तू (मघैः) उत्तम २ ऐश्वर्यों से (मघोनः अति) बड़े २ धनवानों से भी अधिक (दाशसि) दान देता है।

स न॑ः स्तवा॑न॒ आ भ॑र र॒यिं चि॒त्रश्र॑वस्तमम्।
नि॒रे॒के चि॒द्यो ह॑रिवो॒ वसु॑र्द॒दिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों व जीवों के स्वामिन्! (सः) वह तू (स्तवानः) ज्ञान उपदेश करता हुआ, (चित्र-श्रवस्तमम्) ज्ञानप्रद एवं गुरुपरम्परा से श्रवण योग्य ज्ञान रूप (रयिं) धन (नः आ भर) हमें प्रदान कर। (यः) जो तू (निरेके) सर्वातिशायी पद पर विराजमान (वसुः चित्) सम्पूज्य, सबको बसाने हारा और (ददिः) सबका दाता है।

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम्।
धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (जनानाम्) मनुष्यों के (प्रियम्) प्रीतिकारी (निरेकम्) सबसे उत्तम धन (आ दर्षि) देता है। हे (धृष्णो) दुष्टों के धर्षक! तू (धृषता) अज्ञान नाशक बल से (स्तवमानः) उपदेश देता हुआ, वा अन्यों से स्तुति किया जाता हुआ (नः आ भर) हमें धन दे।

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः।
न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन्! हे सूर्यादि लोकों के स्वामिन्! (गविष्टिषु) वाणी द्वारा तेरी उपासना करने के अवसर में (आमुरः) अभिमुख आकर मरने वाले शत्रु भी (ते) तुझ बलवान् पुरुष के (न दक्षिणं न सव्यं हस्तं) न दायें, न बायें हाथ को (वरन्त) रोक सकते हैं। वे (गविष्टिषु न परिबाधः) वाणियों द्वारा करने योग्य यज्ञों में भी बाधा नहीं कर सकते। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः।
आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार और पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों के स्वामिन्! (गोभिः व्रजम् इव) बैलों या अश्वों से जैसे कोई गन्तव्य

मार्ग को प्राप्त करता है वैसे ही मैं (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (व्रजं) प्राप्य परम शरणरूप (त्वा) तुझको ही (आ ऋणोमि) प्राप्त होता हूँ। तू (जरितुः) प्रार्थी की (कामं आ पृण स्म) अभिलाषा को पूर्ण कर और (मनः आ पृण) उसके मन को पूर्ण कर वा उसे ज्ञान से भर।

विश्वा॑नि विश्वम॑नसो धि॒या नो॑ वृत्रहन्तम।
उग्र॑ प्रणेतरधि॒ षू व॑सो गहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृत्र-हन्तम) प्रकृति तत्व के सञ्चालक वा दुष्टों के नाशक, हे (उग्र) बलवन्! हे (प्रणेतः) श्रेष्ठ नायक! हे (वसो) जगत् को बसाने वाले! तू (विश्व-मनसः नः) सबमें प्रविष्ट विश्वात्मा प्रभु के प्रति चित्त दिये हम लोगों की (धिया) बुद्धि कर्मानुसार (अधि गहि) हमें प्राप्त हो।

व॒यं ते॑ अ॒स्य व॑त्रहन्वि॒द्याम॑ शूर॒ नव्य॑सः।
वसोः॑ स्पा॒र्हस्य॑ पुरुहूत॒ राध॑सः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक! प्रकृति तत्व के सञ्चालक! प्रवर्तक! हे (शूर) शक्तिशालिन्! हे (पुरु-हूत) सब जनों से स्तुति-योग्य, (वयं) हम लोग (ते) तेरे (अस्य) इस (नव्यसः) अति नवीन वा स्तुतियोग्य (वसोः) सबको अपने भीतर बसाने वाले (स्पार्हस्य) मनोहर, अभिलषणीय (राधसः) धनैश्वर्य का (विद्याम) ज्ञान और लाभ करें।

इन्द्र॒ यथा॒ ह्यस्ति॒ तेऽप॑रीतं नृतो॒ शवः॑।
अमृ॑क्ता रा॒तिः पु॑रुहूत दा॒शुषे॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (नृतो) सबको अपनी इच्छा पर संचालित करने वाले! हे (पुरुहूत) बहुधा स्तुत्य! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यथा) जैसा (ते) तेरा (शवः) बल (अपरीतं अस्ति) तुझसे कभी पृथक् नहीं होता वैसे ही

(दाशुषे) दानशील उपासक के लिये भी तेरा (रातिः) दान (अस्तृता) कभी नष्ट नहीं होता।

आ वृषस्व महामह मुहे नृतम राधसे।
दृळहश्चिद् दृह्य मघवन्मघत्तये ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—(महामह) बड़ों से बड़े! महतो महीयान्! सर्वपूज्य! हे (नृ-तम) सर्वश्रेष्ठ नायक! हे पुरुषोत्तम! तू (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (आ वृषस्व) स्वयं बलवान् बन। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (मघत्तये) ऐश्वर्य दान करने के लिये (दृढः चित्) दृढ़ से दृढ़ को (दृह्य) विदीर्ण कर। उसको दयार्द्र कर। इति षोडशो वर्गः॥

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वामिन्! (नः आशसः) हमारी आशाएं (त्वत् अन्यत्र चित् जग्मुः) तुझसे अन्य में भला क्योंकर जावें। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाकारिणी शक्तियों से तू (नः तत् शग्धि) हमें वही आशाएं या कामनाएं प्रदान कर।

नह्यं१ङ्ग नृतो त्वदुन्यं विन्दामि राधसे।
राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥ १२ ॥

भा०—हे (नृतो) सर्व-नायक! (अंग) हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा पूज्य! मैं (राधसे) आराधना, (राये) ऐश्वर्य, (द्युम्नाय) तेज, और (शवसे) बल-प्राप्ति के लिये (त्वत् अन्यं) तुझसे दूसरे को (न विन्दामि) नहीं पाता हूँ।

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु।
प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥ १३ ॥

भा०—जो परमेश्वर (राधसा) अपनी आराधना और (महित्वना)

महान् सामर्थ्य से (प्र चोदयाति) जगत् और जीव संसार को अच्छी प्रकार प्रेरित करता है और जो (सोम्यं मधु) उत्पन्न होने वाले जगत्, अन्न वा जल को जीव के सदृश (पिबाति) पी लेता वा खा लेता, अपने भीतर लीन कर लेता है, उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (इन्दुम्) इस प्रेमार्द्र आत्मा को उसकी ओर (आ सिञ्चत) प्रवाहित कर।

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् ।
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ १४ ॥

भा०—मैं (हरीणां पतिम्) सूर्यादि लोकों और मननशील पुरुषों के पालक, (दक्षम्) पापों को भस्म करने वाले (पृञ्चन्तम्) सबके स्नेही, प्रभु को लक्ष्य करके (उप ब्रवम् उ) प्रार्थना करता हूँ। (नूनं) निश्चय करके (अश्व्यस्य) इन्द्रियों के द्वारा सुख-दुखों के भोक्ता, वा इन्द्रियादि के स्वामी (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता जीव की तू (श्रुधि) प्रार्थना को सुन।

नह्यं१ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
नकी राया नैवथा न भन्दना ॥ १५ ॥ १७ ॥

भा०—(अंग) हे प्रभो! (पुरा चन) पहले भी और अब भी (त्वत्) तुझसे अधिक (वीरतरः) बड़ा वीर, जगत् संचालक, (नहि जज्ञे) नहीं पैदा हुआ और (नकिः राया) न कोई ऐश्वर्य से (न एवथा) न ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से और (न भन्दना) न जगत् के कल्याण और सुखदायक सामर्थ्य से तुझसे कोई बड़ा है, न होगा। इति सप्तदशो वर्गः ॥

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ १६ ॥

भा०—(वीरः एव हि) वीर, विद्वान् (सदा-वृधः) सदा सबको बढ़ाने वाला ही (स्तूयते) स्तुति योग्य है। हे (अध्वर्यो) अविनाशिन्!

तू (अन्धसः) अन्न के समान प्राणपोषक (मध्वः) जलवत् शान्तिदायक आनन्द रस से (मदिन्तरं) अतिशय आनन्ददायक आत्मा को (आ सिञ्च इव) आ, सेचन कर, उसकी वृद्धि कर।

इन्द्रं स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ १७ ॥

भा०—हे (हरीणां स्थातः) मनुष्यों वा अश्व सेनाओं के बीच सेनापति के समान सर्वोपरि स्थित! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते पूर्व्यं स्तुतम्) तेरी पूर्व विद्यमान और पूर्ण स्तुति को (शवसा) बल या ज्ञान से (नकिः उत् आनंश) कोई प्राप्त नहीं कर सकता और (न भन्दना उत् आनंश) सुख, कल्याण और ऐश्वर्य से भी कोई नहीं बढ़ सकता।

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ १८ ॥

भा०—(अप्रायुभिः) मृत्यु रहित, दीर्घायु पुरुषों और (यज्ञेभिः) उपासनादि सत्कर्मों से (वावृधेन्यम्) वृद्धिशील, (वाजानां पतिम्) सबके ज्ञान, ऐश्वर्यादि के पालक उसको (नः) हम (श्रवस्यवः) कीर्ति और अन्नादि के इच्छुक होकर (अहूमहि) पुकारते हैं।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।
कृष्टीर्योविश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो! (एत उ नु) आप लोग आओ न भला, (स्तोम्यं नरं) स्तुति करने योग्य सर्वप्रणेता पुरुष की (स्तवाम) स्तुति करें, (यः विश्वाः कृष्टीः) जो समस्त मनुष्यों के प्रति (एक इत अभि अस्ति) एक, अद्वितीय, सबके प्रति समान रूप से उपास्य है।

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः।
घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो (अगो-रुधाय) जो पुरुष आप लोगों की वाणी पर रोक न करे और (गविषे) जो आपकी वेद-वाणी को चाहे, उस (द्युक्षाय) तेजस्वी पुरुष के लिये (घृतात् स्वादीयः) घी से भी अधिक स्वादु, शान्तिप्रद और (मधुनः च) मधु वा अन्न से भी अधिक मधुर, पुष्टिप्रद, बलप्रद, (दस्र्यं वचः) दर्शनीय वा ज्ञान के नाशक वचन का (वोचत) उच्चारण करो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यस्यामितानि वीर्या॒३॑ न राधः पर्येतवे ।

ज्योति॒र्न विश्व॑म॒भ्यस्ति॒ दक्षि॑णा ॥ २१ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (वीर्या अमितानि) वीर्य अपरिमित हैं और (राधः) जिनके धनैश्वर्य (पर्येतवे न) पूर्णतया जाने नहीं जा सकते और (यस्य दक्षिणा) जिनका बल और दान भी (ज्योतिः न) सूर्य प्रकाश के समान (विश्वम् अभि अस्ति) सबके प्रति समान रूप से है।

स्तु॒हीन्द्रं॑ व्यश्व॒वदनू॑र्मिं वा॒जिनं॒ यम॑म् ।
अ॒र्यो गयं॒ मंह॑मानं॒ वि दा॒शुषे॑ ॥ २२ ॥

भा०—उस (अनूर्मिम्) तरङ्गों से रहित, अगाध, (वाजिनम्) ऐश्वर्य के स्वामी, (यमम्) नियन्ता, (इन्द्रं) प्रभु को (वि-अश्ववत्) विविध इन्द्रियों से युक्त वा रहित आत्मा के समान ही (स्तुहि) स्तुति कर और (दाशुषे) भक्त को (गयं मंहमानं) प्राण, देह, गृहादि देने वाले उस स्वामी की स्तुति कर जो (अर्यः) स्वामी (वि) विविध प्रकार से ऐश्वर्य देता है।

ए॒वा नू॒नमुप॑ स्तुहि॒ वैय॑श्व दश॒मं नव॑म् ।
सु॒विद्वां॑सं च॒र्कृत्यं॑ च॒रणी॑नाम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (वैयश्व) विविध अश्वों, अश्वसैन्यों वा भोक्ता शासकों से युक्त सेनापति के समान, विविध अश्वों, प्राणों के स्वामिन्! आत्मन्!

तू (नूनम्) अवश्य (दशमं) नव प्राणों के बीच दशवें और (चरणीनाम्) आचरण करने वालों में (सुविद्वांसं) उत्तम विद्वान् और (चर्कृत्यं) कार्य करने वाले कर्मवान् आत्मा की (उप स्तुहि) स्तुति व उपदेश कर।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ २४ ॥

भा०—(शुन्ध्युः) सर्वशोधक सूर्य जैसे (परिपदाम् निर्ऋतीनां) चारों ओर चलने वाली भूमियों के (परिवृजं वेत्ति) परिक्रमा-मार्ग को जानता है वैसे ही हे (वज्र-हस्त) शक्तिशालिन् प्रभो! तू (अहरहः) प्रतिदिन (परिपदाम्) निरन्तर चलने वाले (निर्ऋतीनां) लोकों के (परिवृजं) मार्ग को (वेत्थ) जानने और (शुन्ध्युः) सब दुःखों और पापों का अग्निवत् शोधन करने वाला है।

तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने।
द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय ॥ २५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (दंसिष्ठ) दुष्टों और दुःखों के नाशक! तू (येन) जिस सामर्थ्य से (कृत्वने कुत्साय) कर्म करने में तत्पर स्तुतिकर्त्ता भक्तजन के (द्विता शिश्नथः) इस और उस दोनों लोकों के दुःखों को शिथिल कर देता है तू (तत्) वह (अवः) रक्षा और ज्ञान हमें (आ भर) दे। (नि चोदय) हमें नित्य सन्मार्ग में प्रेरित कर। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे।
स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः ॥ २६ ॥

भा०—हे (दंसिष्ठ) दुःखों के नाशक! (नूनं) निश्चय (त्वा तम् उ) उस पूज्य तुझ (नव्यं) स्तुति योग्य को ही (संन्यसे) सर्व वासना और बन्धनों के त्यागने के लिये, (ईमहे) हम याचना करते हैं। (सः त्वं) वह तू (सक्षणिः) सब दुःखों का नाशक, सबका पराजयकारी होकर

(विश्वाः अभिमातीः) समस्त अभिमानी जीवों को पराजित करता है।

य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिन्धुषु।
वर्धर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः॥ २७॥

भा०—(यः) जो प्रभु (ऋक्षात्) मनुष्यों के नाशक रीछ के समान भयंकर, दुष्ट, दुःखदायी (अंहसः) पाप से (मुचत्) मुक्त करता है (यः वा) और जो (सप्त-सिन्धुषु) वेग से जाने वाले जलों में विद्युत्-बल वा जल को (अर्यात्) प्रेरित करता है, हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू (दासस्य) सूर्य या पवनवत् जलप्रद मेघ में, दुष्ट पुरुष के नाशार्थ (वधः नीनमः) हिंसाकारक अस्त्र का प्रहार कर।

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम्।
व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति॥ २८॥

भा०—हे (वरो) श्रेष्ठ पुरुष! (यथा) जैसे तू (सुषाम्णे) उत्तम साम द्वारा स्तुतिकर्त्ता, निष्पक्षपात और (सनिभ्यः) उत्तम दान पात्रों को (रयिम् आवहः) ऐश्वर्य देता है वैसे ही हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्य-शालिनि! हे (वाजिनी-वति) ऐश्वर्य की स्वामिनि! वधू! तू भी (व्यश्वेभ्यः) विजितेन्द्रिय पुरुषों को (रयिम्) ऐश्वर्य (आ वहः) प्राप्त करा।

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वा एतु सोमिनः।
स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत्॥ २९॥

भा०—(नार्यस्य) मनुष्यों में श्रेष्ठ (सोमिनः) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (दक्षिणा) दान का द्रव्य (वि-अश्वान्) विविध विद्याओं में पारंगत पुरुषों को वा (सोमिनः) पुत्र शिष्यादि के गुरुजनों को (आ एतु) प्राप्त हो और उसका (स्थूरं) स्थायी (शतवत् सहस्रवत्) सौ, हजार संख्या वाला (राधः) धन ऐसे ही पुरुषों को प्राप्त हो।

यस्त्वां पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते ।
एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥ ३० ॥ २० ॥

भा०—(कुहया-कृते) आत्मा वा प्रभु उपास्य कहां है ? ऐसी जिज्ञासा करने वाली हे बुद्धे ! (ईजानः) देवोपासना करने वाला (यः) जो पुरुष (त्वा पृच्छात्) तुझसे पूछता है कि (एषः अपश्रितः) वह संसारबन्धन से दूर देहादि में अनाश्रित (वलः = वरः) वरणीय, सर्व व्यापक प्रभु (कुहया) कहां है, तो सुनो । (एषः) वह (वलः) व्यापक प्रभु (गोमतीम्) इन्द्रिय और वाणी से युक्त चित्त भूमि को (अव) नीचे छोड़कर, (तिष्ठति) उसके ऊपर, अवर्णनीय रूप में विद्यमान है । इति विंशो वर्गः ॥

[२५]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १—९, १३—२४ मित्रावरुणौ । १०—१२ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५—९, १६ निचृदुष्णिक् । ३, १०, १३—१६, २०—२२ विराडुष्णिक् । ४, ११, १२,२४ उष्णिक् । २३ आर्ची उष्णिक् । १७, १० पादनिचृदुष्णिक् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया ।
ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥ १ ॥

भा०—(ता वां) वे आप दोनों (विश्वस्य) समस्त विश्व के (गोपा) पालक (देवेषु) विद्वान् मनुष्यों में (यज्ञिया देवा) पूजा सत्कार योग्य और तेजस्वी हों । आप दोनों (ऋतावाना) न्यायवान्, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल वा ज्ञान वाले जनों की, हे मनुष्य ! तू (यजसे) पूजा कर ।

मित्रा तना न रथ्या३ वरुणो यश्च सुक्रतुः ।
सनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥ २ ॥

भा०—स्त्री पुरुष कैसे हों ? वे दोनों (मित्रा) स्नेहवान् ! (रथ्या

न तना) रथ में लगे दो अश्वों वा रथी-सारथी के समान शरीर में सुशोभित और (वरुणः) वरणीय पुरुष भी ऐसा हो (यः च सुक्रतुः) जो स्वयं उत्तम क्रियावान् हो। वे दोनों (सनात्) सदा (सुजाता) उत्तम वंश और गुणों में शिक्षित और (तनया) माता पिता के उत्तम पुत्र और (धृत-व्रता) व्रत धारक हों।

ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा।
मही जजानादितिर्ऋतावरी ॥ ३ ॥

भा०—(प्र-महसा) उत्तम तेजस्वी (विश्व-वेदसा) समस्त ज्ञानों, धनों के स्वामी (ता) उन दोनों को (ऋतावरी) सत्य व्रत का वरण करने वाली, (अदितिः) अखण्ड व्रतपालनी (मही) पूज्या (माता) जननी ही (असुर्याय) बल पराक्रम के लिये (जजान) पैदा करती है।

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा।
ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥ ४ ॥

भा०—वे दोनों (महान्ता) गुणों में महान्, (सम्राजा) अच्छी प्रकार दीप्तिमान्, तेजस्वी, (देवा) दानशील (असुरा) बलवान्, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, (ऋतावानौ) सत्य ज्ञान से युक्त, दोनों (बृहत् ऋतम् आ घोषतः) बड़े भारी सत्य ज्ञान, वेद और न्याय की घोषणा करें, उसका पठन, पाठन और उपदेश किया करें।

नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू।
सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—दोनों (महः शवसः नपाता) बड़े भारी बल के पालक और (महः दक्षस्य सूनू) बड़े भारी बल और धर्म के उत्पादक और परिचालक (इषः) अन्न के (सृप्रदानू) विस्तृत रूप से देने वाले होकर (वास्तु अधि) बड़े २ गृहों में (क्षितः) निवास करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः
नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ॥ ६ ॥

भा०—(या) जो आप दोनों (दानूनि) दान योग्य वीर्यों, धनों का (सं येमथुः) संयमपूर्वक रक्षा करते हैं उन (वां) आप दोनों को (नभस्वतीः) आकाश की, (दिव्या) अन्तरिक्ष की (वृष्टयः) वृष्टियां और (पार्थिवीः इवः) पृथिवी पर उत्पन्न अन्न (आचरन्तु) प्राप्त हों।

अधि या बृहतो दिवोऽभि यूथेव पश्यतः।
ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥ ७ ॥

भा०—(अभि यूथा इव) जिस प्रकार गौओं के समूहों को उनके पालक देखते हैं उसी प्रकार (या) जो (बृहतः दिवः अधि पश्यतः) बड़ी कामनाओं व अभिलाषाओं को देखते हैं वे दोनों (ऋतावाना) सत्य और धन वाले, (सम्राजा) उत्तम दीप्तिमान् होकर (नमसे) अन्न, बल प्राप्त करने के लिये (हिता) परस्पर हिताचरण करें, स्थिर रहें।

ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू।
धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतावाना) सत्य न्याय के स्वामी होकर (धृत-व्रता) व्रत, नियम के धारण करने वाले (क्षत्रिया) बल और धन के स्वामी (साम्राज्याय) साम्राज्य पालनार्थ (सु-क्रतू) उत्तम कर्म वाले होकर (क्षत्रम् आशतुः) बल, ऐश्वर्य प्राप्त करें।

अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा।
नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥ ९ ॥

भा०—वे (अक्ष्णः चित् गातुवित्-तरा) आंख से भी अधिक मार्ग जानने वाले, वा आंखों, वा इन्द्रियों के इशारों को खूब समझने वाले हों। वे दोनों (अनुल्बणेन चक्षसा) सौम्य दृष्टि वा कोमल, दुःख न देने

वाले वचन से (निमिषन्ता) व्यवहार करने वाले (नि-चिरा) खूब चिरायु होकर (नि चिक्यतुः) सत्कार योग्य होवें।

उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या।
उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—(उत) और (देवी अदितिः) उत्तम सुख देने वाली विदुषी स्त्री, माता और (नासत्या) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें और (वृद्ध-शवसः) बड़े बली और ज्ञानी पुरुष (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वा वायुवत् जीवनप्रद, दूरगामी क्षत्रिय और वैश्य जन (उरुष्यन्तु) हमारी रक्षा करें। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवे।
अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुषो! (ते) वे आप लोग (दिवा नक्तं) दिन और रात (नः नावम्) हमारी नौका वा प्रेरणा योग्य यान की (उरुष्यत) रक्षा करो और हम (अरिष्यन्तः) विना पीड़ित हुए (पायुभिः) पालनकर्त्ताओं के साथ (सचेमहि) संघ बना कर रहें।

अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे।
श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (अरिष्यन्तः) किसी की हिंसा न करते हुए, (अघ्नते) अहिंसक (सु-दानवे) उत्तम दानशील, (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञानी और सबसे पूर्व कर्मकर्त्ता परमेश्वर की स्तुति करें। हे (स्व-यावन्) अपने सामर्थ्य से संसार को चलाने हारे! हे (सिन्धो) समुद्रवत् गम्भीर! तू (श्रुधि) हमारी प्रार्थना श्रवण कर।

तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् ।
मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥

भा०—(यत्) जिस धन और बल की (मित्रः) स्नेहवान्, (यत् वरुणः) जिसकी सब दुःखों का वारक और (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता पुरुष (पान्ति) रक्षा करते हैं हम (तत्) उस (वीर्यं) वरणीय, दुःखों को दूर करने वाले (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (गोपत्ययम्) सबके पालक धन वा बल की (वृणीमहे) याचना करते हैं ।

उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना ।
इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥ १४ ॥

भा०—(अपां सिन्धुः) जलों का बहने वाला प्रवाह, (मरुतः) शत्रुहन्ता बलवान् पुरुष और वैश्यगण (अश्विना) अश्वारोही योद्धा और रथी, सारथी, (इन्द्रः) सेनापति, राजा, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् वा विविध विद्याओं में निष्णात ये सब (मीढ्वांसः) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले और (स-जोषसः) एक समान सबसे प्रीति रखने हारे होकर (नः तत् तत्) हमारे उन २ धनों की रक्षा करें और दें ।

ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् ।
तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(ते हि) वे (भूर्णयः) जगत् पोषक (नरः) नायक, (वनुषः) शत्रुनाशक और सेवा योग्य जन (कयस्य चित् अभिमातिं) किसी भी प्रतिद्वन्द्वी के अभिमान को (तिग्मं क्षोदः न) तीव्र वेग वाले जल के समान (प्रति घ्नन्ति) विनाश कर सकते हैं । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयमेकं इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः ।
तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥ १६ ॥

भा०—(अयम् एकः) यह एक (पुरुः) सबकी इच्छाओं का पूरक, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक (इत्था) इस प्रकार सत्य न्याय को (वः वि चष्टे उ) विशेष प्रकार से तुम सबके व्यवहारों को सुयंवत् देखता है। (तस्य व्रतानि) इस प्रजापति के कृत कर्मों का हम (अनु चरामसि) अनुकरण करते हैं।

अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम।
मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत्॥ १७॥

भा०—(साम्राज्यस्य) साम्राज्य के स्वामी प्रभु के (पूर्वाणि) पूर्व विद्यमान वा पूर्ण (ओक्या) भुवनों के व्यवस्थापक नियमों को (अनु सश्चिम) पालन करें। (मित्रस्य) सर्वस्नेही, (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ (दीर्घ-श्रुतः) दीर्घदर्शी, पुरुष के (व्रता) कर्मों का हम अनुकरण करें।

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः।
उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा॥ १८॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (रश्मिना) तेजोवत् व्यापक सामर्थ्य से (दिवः पृथिव्याः अन्तान्) आकाश और भूमि इनकी परली सीमाओं को (परि ममे) मापता है वही (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (उभे रोदसी) आकाश और भूमि दोनों लोकों को (आ पप्रौ) पूर्ण करता है।

उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः।
अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः॥ १९॥

भा०—(स्यः) वह (दिवः शरणे) प्रकाश को बखेर कर दूर २ तक फैलाने में (सूर्यः) सूर्य के समान (ज्योतिः) स्वयं प्रकाश प्रभु (शरणे) महान् विश्व में (उत् अयंस्त) सब पर वश करता है वह (अग्निः न शुक्रः) अग्नि के समान देदीप्यमान, (समिधा आहुतः न) काष्ठ से आहुति युक्त अग्नि के तुल्य ही (आहुतः) स्तुति किया जाता है।

वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः ।
ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—जो (गोमतः वाजस्य) गौ, भूमि, वाणी और इन्द्रियों से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान और विभूति का (ईशे) स्वामी है जो (अविपस्य) विषरहित (पित्वः) अन्न के (दावने) देने में (ईशे हि) निश्चय से समर्थ है उस (दीर्घ-प्रसद्मनि) महा-भवनवत् का शरणदाता, विश्व के स्वामी के विषय में (वचः) स्तुति वाणी का प्रयोग किया करो ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे ।
भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥ २१ ॥

भा०—(दोषा वस्तोः) दिन और रात (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी समस्त जगत् के (सूर्यम्) प्रकाशक, सूर्यवत् (तत्) उस प्रभु की मैं (उप ब्रुवे) स्तुति करता हूँ। हे प्रभो ! तू (सदा) सब काल, (अस्मान्) हमें (भोजेषु) ऐश्वर्यदाता लोकों में (अभि उत् चर) उन्नति की ओर ले जा।

ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे ।
रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥ २२ ॥

भा०—जैसे (उक्षण्यायने) बलवान् बैल या अश्व से जाने योग्य, (हरयाणे) हरणशील, वेगवान् अश्वों से जाने योग्य (सु-सामनि) उत्तम समभूमियुक्त मार्ग में (ऋज्रम्) वेग से जाने वाले, (रजतं) सुन्दर, (युक्तं) अश्वों से जुते (रथं) रथ को (असनाम) उपयोग करते हैं वैसे ही (सु-सामनि) सबके प्रति सम भाव से रहने वाले, (उक्षण्यायने) सुखसेचक पुरुषों के भी आश्रय स्थान, (हरयाणे) दुःखों के हरने वाले, प्रभु के अधीन हम (युक्तं) इन्द्रियादि अश्वों से युक्त, रथवत् (ऋज्रम्) धर्म मार्ग से चलने वाले देह को (असनाम) प्राप्त करें और उसका सुख लें।

ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना ।
उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥ २३ ॥

भा०—(ता) वे दोनों प्रधान स्त्री पुरुष (मे) मुझ राजा के अधीन (अश्व्यानां हरीणां) अश्वारोही जनों के बीच (नि-तोशना) शत्रुओं को नाश करने वाले, (उत नु) और (कृत्व्यानां) कर्मकुशल पुरुषों के बीच में (नृवाहसा) मनुष्यों को सन्मार्ग में ले जाने वाले हों ।

स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती ।
महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् ॥ २४ ॥ २५ ॥

भा०—(स्मत्-अभीशू) धर्म-मर्यादाओं, व्यवस्थाओं से युक्त, (कशावन्ता) अर्थप्रकाशक,शुभ वाणी वाले (विप्रा) मेधावी, (नविष्ठया) अतिस्तुत्य (मती) बुद्धि से युक्त, (महः वाजिनौ) बड़े ज्ञानी (अर्वन्ता) दुःखों का नाशक, सन्मार्गगामी, स्त्री पुरुषों को मैं दो अश्वों वा प्राणों के सदृश (सचा असनम्) सदा एक साथ प्राप्त करूं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[२६]

विश्वमना वैयश्वो वाङ्गिरस ऋषिः ॥ १—१९ अश्विनौ । २०—२५ वायु देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ उष्णिक् । २, ८, २३ विराडुष्णिक् । ५, ९—१५, २२ निचृदुष्णिक् । २४ पादनिचृदुष्णिक् । १६, १९ विराड् गायत्री । १७, १८, २१ निचृद् गायत्री । २५ गायत्री । २० विराड्-नुष्टुप् ॥ पंचविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु ।
अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) धन और बलवान् पुरुष रूप धन से धनी नायक पुरुषो ! वा पति-पत्नी जनो ! आप दोनों (वृषणा) उत्तम सुखों और वीर्यादि के सेक्ता और (अतूर्त्तदक्षा) न नष्ट होने वाले सामर्थ्य से

युक्त होवो। (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में (सध-स्तुत्याय) एक साथ मिलकर स्तुति प्राप्त करने के लिये (युवोः) तुम दोनों को (रथं) उत्तम उपदेश, उत्तम रथादि साधन (सु हव उ) उत्तम रीति से प्रदान करूं।

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या।
अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, प्रमुख पुरुषो! हे (वृषणा) बलवान्! (वृषण्वसू) बल, धन, जन स्वामियो! हे (वरो) वरणीय जनो! (युवं) आप दोनों (सुषाम्णे) सुखप्रदाता, सर्वोपरि विराजमान प्रभु के (महे तने) बड़े, विस्तृत राज्य में (अवोभिः) ज्ञानों और रथादि से (याथः) गमनागमन करो।

ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू।
पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ऐश्वर्ययुक्त भूमि, ज्ञानयुक्त विद्या और बलयुक्त सेना को बसाने वाले राजा-प्रजा जनो! (पूर्वीः) पूर्ण, राज्यादि के पालक (इषः) सेना, नाना अभिलाषाओं और अन्नादि समृद्धियों को (इषयन्तौ) चाहते हुए (ता वाम्) उन आप दोनों का (अति क्षपः) रात्रि व्यतीत कर प्रातः, वा नाशकारिणी, शत्रु सेनाओं को पार करने के बाद (हव्येभिः) उत्तम अन्नों, वचनों से (हवामहे) सत्कार करें।

आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा।
उप स्तोमान्तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के स्वामी, रथी-सारथीवत् राजा-सचिव वा स्त्री-पुरुषो! हे (नरा) सन्मार्ग से ले जाने वालो! (वां) तुम दोनों का (वाहिष्ठः) ज्ञान प्राप्त कराने वाला (रथः) रमणीय (श्रुतः)

श्रवणीय उपदेश हमें (रथः) रथवत् (आ यातु) प्राप्त हो। आप दोनों (तुरस्य) दुःखनाशक प्रभु के (स्तोमान्) उपदेश किये वेद-मन्त्रों का (श्रिये) शोभा और धनादि समृद्धि के लिये (उप दशथः) गुरु देवादि की उपासना द्वारा ज्ञान किया करो।

जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू।
युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् प्राणों वाले बलवान् पुरुषो! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो! हे 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र एवं बलवान् अश्व सैन्यादि के स्वामिओ! आप दोनों (जुहुराणा चित्) कुटिलता करने वालों को भी अच्छी प्रकार (मन्येथाम्) जानों, उनको दुष्टता से रोको। हे (रुद्रा) दुःखों को दूर भगाने वाले जनो! (युवं हि) तुम दोनों ही (द्विषः) द्वेष करने वाले, शत्रुओं, रोगादि काम-क्रोधादि को (अति पर्षथः) पराजित करो। इति षड्विंशो वर्गः॥

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः।
धियञ्जिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय, दुष्टों के नाशक, (धियं-जिन्वा) उत्तम कर्मों से सबको प्रसन्न करने वाले, (मधु-वर्णा) मधुर वर्ण, कान्तिमान्, (शुभस्पती) उत्तम शोभाजनक अलंकार-युक्त पति-पत्नी एवं स्वामी जनो! आप दोनों (आनुषक्) सदा साथ रहते हुए (मक्षूभिः) शीघ्रगामी रथों से (विश्वम् परि-दीयथः) समस्त संसार का परिभ्रमण करो।

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह।
मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्यों, वा राष्ट्र के स्वामी जनो! आप दोनों (विश्वपुषा राया सह) सबके पोषक ऐश्वर्य के साथ (नः उप

यातम्) हमें प्राप्त होवो। आप (मघवाना) उत्तम धन से युक्त, (सु-वीरौ) उत्तम वीर, विद्यावान् और (अनपच्युतौ) कुमार्ग में न जाने वाले होवो।

आ मे अस्य प्रतीव्य१मिन्द्रनासत्या गतम्।
देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र-नासत्या) ऐश्वर्ययुक्त एवं कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (देवा) शुभ-गुणयुक्त, विद्वान् (सच-नस्तमा) परस्पर दृढ़ सम्बन्ध से बद्ध होकर (मे) मुझ (अस्य) इस प्रियजन के (प्रतीव्यम्) रक्षक गृह को (देवेभिः) विद्वान् जनों और शुभ-गुणों-सहित, सूर्य, वायुवत् (अद्य आ गतम्) आज आवो।

वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत्।
सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (वि-अश्ववत्) विशेष अश्वसैन्य का स्वामी बलवान् स्त्री-पुरुषों को राष्ट्र के शासनादि कार्य के लिये चाहता है वैसे ही (वयं हि) हम भी (उक्षण्यन्तः) उत्तम सन्तानोत्पादक, हृष्टपुष्ट बलवान् पुरुषों को चाहते हुए, (वां हि) आप दोनों ऐश्वर्यवान्, स्त्री पुरुषों वा प्रजा-राजवर्गों को (हवामहे) प्रार्थना करते हैं कि आप (विप्रौ) बुद्धिमान्, धनादि से विशेष पूर्ण होकर (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों-सहित (उप आगतम्) हमें प्राप्त होवो।

अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवम्।
नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—हे (ऋषे) विद्वन्! तू (अश्विनौ) राष्ट्र, सेना के स्वामी वा जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुष वर्गों को (सुस्तुहि) अच्छी प्रकार उपदेश कर, उनकी अच्छी प्रशंसा कर। (ते) तेरे (हवम्) वचन को वे दोनों (कुवित्

श्रवतः) बहुत बार श्रवण करते हैं। (उत) और दोनों (नेदीयसः पणीन्) समीपस्थ उपदेष्टा एवं व्यवहारवान् पुरुषों को (कूलयातः) तट के समान आश्रय और नदीवत् मर्यादा में स्थापित करते हैं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः ।
सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ११ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम स्त्री-पुरुषो ! आप लोग (वैयश्वस्य) विविध इन्द्रियों के साधक, विद्वान् के आज्ञा वा उपदेश वचन (श्रुतं) श्रवण करो। (उतो) और (मे अस्य) मुझ इस प्रिय प्रजाजन को भी (वेदथः) जाना करो। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ स्नेही और (अर्यमा) उत्तम जनों का स्वामी, दुष्टों का नियन्ता पुरुष (सजोषसा) समान प्रीति से युक्त हों। वे प्रजा के व्यवहार जानें।

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः ।
अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (धिष्ण्या) स्तुतियोग्य, बुद्धियुक्त, हे (वृषणा) उत्तम धनैश्वर्य, बल-वीर्यादि के वर्धक माता-पितावत् पालक जनो ! आप लोग (युवादत्तस्य) आप दोनों से देने योग्य और (युवा-नीतस्य) आप दोनों से प्राप्त कराने योग्य, ज्ञान और ऐश्वर्य (सूरिभिः) विद्वानों द्वारा (मह्यं) मुझ प्रजाजन को पुत्रवत् (अहरहः) प्रति दिन (शिक्षतम्) दो।

यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव ।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) व्यापक किरणों वाले सूर्य चन्द्रवत्, वा दिन रात्रिवत् पति-पत्नी जनो ! (यः) जो पुरुष (अधिवस्त्रा वधूः इव) उत्तम वस्त्र धारण करने वाली नव-वधू के समान स्वयं (अधिवस्त्रः) उत्तरीय

वस्त्र धारण कर (वां) आप दोनों के योग्य (यज्ञेभिः) दान, सत्संग, सत्कारादि से (आवृतः) अपने को ढक लेता है उस विद्वान् की (सपर्यन्ता) शुश्रूषा करने वाले आप दोनों (शुभे) शुभ कर्म या फल के लिये (चक्राते) यत्न करो।

यो वा॑मुरुव्यच॑स्तमं चिके॑तति नृपाय्य॑म्।
वर्तिर॑श्विना परि॑ यातमस्मयू ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य-चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो! (यः) जो (वाम्) आप दोनों के (नृ-पाय्यम्) मनुष्यों के पालक (उरु-व्यचसम्) अधिक व्यापक (वर्त्तिः) व्यवहार को (चिकेतति) जानता है (अस्मयू) हमें चाहने वाले आप दोनों उसको (परि यातम्) प्राप्त होवो।

अ॒स्मभ्यं॒ सु वृ॑षण्वसू या॒तं व॒र्तिर्नृ॒पाय्य॑म्।
वि॒षु॒द्रुहे॑व य॒ज्ञमू॑हथु॒र्गि॒रा ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् पुरुषों के स्वामी जनो! हे प्रजाजनों में बलवान् प्रबन्धक जनो! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ ही (नृ-पाय्यं) मनुष्यों के पालक (वर्त्तिः) व्यवहार को (सु-यातम्) अच्छी प्रकार प्राप्त करो। जैसे (वि-सु-द्रुहा, विषुद्रुहा गिरा यज्ञम् इव) विविध अर्थदात्री या विविध वादप्रतिवाद वाली वाणी से (यज्ञम्) प्रभु की तर्क द्वारा विवेचना की जाती है वैसे ही (वि-सु-द्रुहा इव) विविध प्रकार से परस्पर काटने वाली, एक दूसरे का प्रतिवाद करने वाली (गिरा) वाणी से (यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य, निर्णय-रूप से देने योग्य सत्य-तत्त्व को (ऊहथुः) तर्कवितर्क द्वारा प्राप्त करो।

इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

वाहि॑ष्ठो वां॒ हवा॑नां॒ स्तोमो॑ दू॒तो हु॑वन्नरा।
यु॒वाभ्यां॑ भूत्वश्विना ॥ १६ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो! हे (नरा)

नायक जनो ! (हवानां) ग्राह्य उपदेशों को (वाहिष्ठः) उत्तम रीति से अन्यों तक पहुँचाने वाला (स्तोमः) वेदमन्त्रों का समूह (वां) तुम दोनों को (दूतः हुवत्) उत्तम संदेशहर के समान ज्ञानप्रद हो और वह सदा (युवाभ्यां) तुम दोनों के लिये हितकारी (भूतु) होवे।

यद्दो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे।
श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥

भा०—हे (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से भिन्न पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (अदः) उस (दिवः) परम ज्ञानमय प्रभु के (अर्णवे) सागरवत् आनन्द में वा (इषः) अन्न और कामना आदि के (गृहे) इस गृह या देह में (मदथः) आनन्दवान् होवो तो भी (मे) मुझ आत्मा के विषय में, वा विद्वान् का वचन अवश्य (श्रुतम् इत्) श्रवण किया करो।

उत स्या श्वैतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम्।
सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥

भा०—(श्वेतयावरी नदीनां वाहिष्ठा) नदियों में से जैसे हिमाच्छादित पर्वत से चलने वाली नदी अति वेग से जाने वाली होती है, वैसे ही (नदीनां) उपदेश देने वाली वाणियों में से (उत) भी (स्या) वह, सब दुःखों को काटने वाली और (श्वेत-यावरी) श्वेत, विशुद्ध प्रभु से आने वा उस तक पहुँचा देने वाली वेदवाणी ही (वां वाहिष्ठा) तुमको अतिशय सुख देने और उद्देश्य तक पहुँचा देने में श्रेष्ठ है। (हिरण्य-वर्त्तनिः सिन्धुः) जैसे हिरण्य अर्थात् लोह के बने मार्ग पर चलने वाला रथ वेग से जाने वाला तुम्हें उद्देश्य तक अच्छी प्रकार पहुँचाने का उत्तम सवारी होता है वैसे ही (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित रमणीय, व्यवहारवान् (सिन्धुः) समुद्रवत् गम्भीर पुरुष ही (वां वाहिष्ठः) तुम दोनों को उद्देश्य तक पहुँचाने में समर्थ होता है।

स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया ।
वहेथे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥

भा०—'श्वेतयावरी' को और स्पष्ट करते हैं । हे (शुभ्रयावाना) शुभ्र, शुद्ध, शोभायुक्त, शिष्टसम्मत मार्ग से जाने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (एतया) इस (श्वेतया) निर्दोष, कलंक-रहित (सु-कीर्त्या) उत्तम कीर्ति युक्त, (धिया) धी, वाणी, ज्ञानोपदेश, सन्मति, सत् कर्म से (स्मत्) उत्तम २ फलों को (वहेथे) प्राप्त करो ।

युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।
आन्नो वायो मधु पिबास्माकं सवना गहि ॥ २० ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) ब्रह्मचारिन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (हि) अवश्य (रथ-सहा) रथ को उठाने में समर्थ, अश्वों के समान अपने इन्द्रिय और मन दोनों को (युक्ष्व) सन्मार्ग में लगा और (पोष्या) पोषण-योग्य, दृढ़ अंगों को (युवस्व) कार्यों में योजित कर । हे (वायो) वायुवत् बलशालिन् ! ज्ञान देने वाले ! (आत्) अनन्तर तू (नः) हमारे (मधु) मधुर अन्न आदि का उपभोग कर और (अस्माकम्) हमारे (सवना) यज्ञों और ऐश्वर्यों को (आ गहि) प्राप्त कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत ।
अवांस्या वृणीमहे ॥ २१ ॥

भा०—हे (ऋतः-पते वायो) जलपालक आकाश-गत वायु के समान सत्य, ज्ञान, धन, यज्ञ और तेज के पालक वायुवत् प्राणप्रद ! हे (अद्भुत) आश्चर्यजनक ! (जामातः) प्रजादि के उत्पन्न करने हारे ! हम (त्वष्टुः तव) देदीप्यमान, जगत् के कर्त्ता तेरे (अवांसि) ज्ञानों, रक्षाओं, तृप्ति, आनन्द-दायक सुखों की (वृणीमहे) याचना करते हैं ।

त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे ।
सुतावन्तो वायुं द्युम्ना जनासः ॥ २२ ॥

भा०—(वयं) हम (द्युम्नाः) धन, यश से सम्पन्न (सुतवन्तः, सुतावन्तः) पुत्र पुत्री वाले मनुष्य, (त्वष्टुः) कार्यसाधक, तेजोयुक्त (रायः ईशानं) धन के स्वामी, (जामातरं) नाती के उत्पादक जामाता, ऊंचाई को (ईमहे) प्राप्त करें।

वायो॑ या॒हि शि॒वा दि॒वो वह॑स्वा॒ सु स्वश्व्य॑म् ।
वह॑स्व म॒हः पृ॑थु॒पक्ष॑सा॒ रथे॑ ॥ २३ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! बलवन्! हे (शिव) कल्याणकारिन्! तू (दिवः) सूर्यादि लोकों को (याहि) सञ्चालित कर और (सु-अश्व्यम्) उत्तम सूर्यादि युक्त जगत् को (वहस्व) धारण कर और (रथे) रथ में (पृथु-पक्षसा = पृथु-वक्षसा) विस्तृत पार्श्वों वाले दो अश्वों को जैसे वीर हांकता है वैसे तू भी (पृथु-पक्षसा) महान् जगत् के वशकारक बल से (महः वहस्व) महान् संसार को धारण कर।

त्वां हि सु॒प्सर॑स्तमं नृ॒षद॑नेषु हू॒महे॑ ।
ग्रावा॑णं॒ नाश्व॑पृष्ठं मं॒हना॑ ॥ २४ ॥

भा०—हे प्रभो! हम लोग (सुप्सरस्तमं) उत्तम कान्ति वाले, तेजस्वियों में श्रेष्ठ (त्वा हि) तुझको ही (नृ-सदनेषु) मनुष्यों के सञ्चालन कार्यों या गृहों में (हूमहे) तेरी स्तुति करते हैं और तुझको (अश्व-पृष्ठं) सूर्य के द्वारा सेचन समर्थ (मंहना) महान् सामर्थ्य से युक्त मेघ के सदृश, (अश्व-पृष्ठं) बड़े २ विद्वानों के ऊपर विद्यमान (ग्रावाणं न) सर्वोपदेष्टा गुरुवत् (हूमहे) स्वीकार करते हैं।

स त्वं नो॑ देव॒ मन॑सा॒ वायो॑ मन्दा॒नो अ॑ग्रि॒यः ।
कृ॒धि वाजाँ॑ अ॒पो धियः॑ ॥ २५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देव) प्रभो! सर्व सुखों के दाता! हे (वायो) सर्वप्राण! सर्वसंचालक! (सः त्वं) वह तू (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ, (न मनसा

मन्दानः) हमें ज्ञान से तृप्त, आनन्दित करता हुआ, (वाजान् अपः धियः कृधि) सत्, ऐश्वर्य, ज्ञान और कर्म प्रदान कर। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[२७]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७, ६ निचृद् बृहती। ३ शङ्कुमती बृहती। ५, ११, १३ विराड् बृहती। १५ आर्ची बृहती ॥ १८, १६, २१ बृहती। २, ८, १४, २० पंक्तिः। ४, ६, १६, २२ निचृत् पंक्तिः। १० पादनिचृत् पंक्तिः। १२ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। १७ विराट् पंक्तिः ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निरु॒क्थे पु॒रोहि॑तो॒ ग्रावा॑णो ब॒र्हिर॑ध्व॒रे।
ऋ॒चा या॑मि म॒रुतो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ दे॒वाँ अवो॒ वरे॑ण्यम् ॥ १ ॥

भा०—(अध्वरे) अविनाशी (उक्थे) उत्तम वेदवचन और ज्ञानोपदेश-प्राप्ति के लिये (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (पुरोहितः) अग्रासन पर स्थापित हो और (ग्रावाणः) उपदेष्टाजन और (बर्हिः) सूर्यवत् तेजस्वी-जन भी अग्रासन पर स्थापित हों। मैं (ऋचा) वेदवचन, सत्कार सहित, (मरुतः) विद्वान् पुरुषों, (ब्रह्मणः पतिम्) वेद और ब्रह्मज्ञान के पालक विद्वान् और (देवान्) ज्ञानप्रकाशक पुरुषों से (वरेण्यम्) वरणीय श्रेष्ठ (अवः) ज्ञान की (यामि) याचना करूं।

आ प॒शुं गा॑सि पृथि॒वीं वन॒स्पती॑नु॒षासा॒ नक्त॒मोष॑धीः।
विश्वे॑ च नो वसवो विश्ववेदसो धी॒नां भू॑त प्रावि॒तारः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (पशुम्) पशु, (पृथिवीम्) भूमि, (वनस्पतीन्) वृक्षों और (ओषधीः) लतादि को (उषासानक्तम्) दिन-रात, प्रातः सायं (आ गासि) प्राप्त कर। हे (विश्ववेदसः) सब ज्ञानों को जानने वाले (वसवः) राष्ट्र वासी जनो! आप (विश्वे) सब (नः धीनां) हमारी बुद्धियों और सत्कर्मों के (प्र-अवितारः भूत) उत्तम रीति से रक्षक रहो।

प्र सू न एत्वध्वरो३ऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥

भा०—(अध्वरः) जो हिंसारहित, यज्ञ (अग्ना) ज्ञानवान् पुरुष, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) अग्नि जलादि तत्वों, सूर्यादि लोकों और विद्वान् जनों में (पूर्व्यः) पूर्व भी विद्यमान रहा, वह (नः प्र एतु) हमें अच्छी प्रकार प्राप्त हो। इसी प्रकार (आदित्येषु) १२हों महीनों में या पूर्ण ब्रह्मचारियों में (धृत-व्रते) सत्-कर्मों के व्यवस्थित करने वाले पुरुष के अधीन और (विश्व-भानुषु) सब तेजों के धारक (मरुत्सु) विद्वान् और बलवान् पुरुषों में है वह भी (नः प्र एतु) हमें प्राप्त हो।

विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वे) सब (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामी (रिशादसः) दुष्टों के नाशक लोग (मनवे वृधे हि भुवन्) मनुष्य की वृद्धि के लिये ही हों। हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों के ज्ञाता जनो ! आप (अरिष्टेभिः) हिंसादि से रहित, (पायुभिः) पालक उपायों से युक्त (नः) हमें (अवृकं छर्दिः) चोरादि कष्ट से रहित गृह (यन्त) दो।

आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।
ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! आप (विश्वे) सब (स-जोषसः) समान प्रीतियुक्त, (स-मनसः) समान चित्त होकर (नः अद्य आ गन्त) आज हमें प्राप्त होवो। हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते) मातः ! तू (ऋचा गिरा) अर्चना योग्य वेदवाणी से युक्त होकर (सदने) सभा भवन और (महि पस्त्ये) बड़े भवन में आओ। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (मित्र) स्नेही जनो ! (वः या प्रिया) आप लोगों को जो प्रिय, (अश्व्या) अश्व आदि साधन और (हव्या) ग्रहण, दान और खाने योग्य, अन्न धनादि पदार्थ हैं उनको (अभि प्रयाथन) अच्छी प्रकार प्राप्त करो और कराओ। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठ राजादि और (तुराः नराः) शीघ्रगामी और नायक जन एवं (आदित्यासः) लेन-देन करने में कुशल, विद्वान् लोग, (बर्हिः आ सदन्तु) उत्तम आसन और राष्ट्र पर विराजें।

वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक्।
सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः॥ ७ ॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! (वयम्) हम लोग (वृक्तबर्हिषः) दर्भ प्राप्त करके, (हित-प्रयसः) अन्न धारण करके (सुत-सोमासः) सोम का सेवन करके (इद्धाग्नयः) अग्नियें प्रज्वलित करके (वः) आप श्रेष्ठ जनों को (मनुष्यवत्) उत्तम मनुष्यों से युक्त यज्ञ में (आनुषक्) निरन्तर (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें।

आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर जनो ! हे (विष्णो) व्यापक ! हे (अश्विना) रथीसारथिवत् जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप लोग (माकीनया धिया) मेरे कर्म, बुद्धि आदि से (आ यात प्र यात) आया जाया करो। (सनिष्युभिः) दान, वेतन, ऐश्वर्यादि के इच्छुक लोग (यः) जिसे (वृषा वृत्रहा) बलवान्, सुखवर्षक मेघ के छेदक भेदक विद्युत्वत् दुष्टों का नाशक (गृणे) बतलाते हैं वह (इन्द्रः) तेजस्वी पुरुष (प्रथमः आ यातु) सबसे प्रथम आवे।

वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।
न यद्दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥ ९ ॥

भा०—हे (देवासः) शुभ गुणों से युक्त, विजयेच्छुक, व्यवहारवान् पुरुषो ! आप लोग (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (नः) हमें (अच्छिद्रं) दोषादि से रहित, निर्भय (शर्म) गृह वा शरण (वि यच्छत) विशेष रूप से प्रदान करो । हे (वसवः) प्रजा के बसने बसाने वालो ! मातृ-पितृवत् शासक जनो ! (यत्) जिससे (न दूरात्) न दूर से और (नु चिद् अन्तितः) न पास से ही कोई उस दुःखवारक गृह, नगर आदि को (आ-दधर्षति) हमसे छीन सके ।

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१०॥३२॥

भा०—हे (रिशादसः) हिंसकों के नाशक जनो ! (वः) आप लोगों की (सजात्यं अस्ति हि) जाति, उद्भव स्थान समान हो ! हे (देवासः) विद्वान् मनुष्यो ! (वः आप्यम् अस्ति हि) तुम लोगों की परस्पर बन्धुता हो । आप लोग (मक्षू) शीघ्र ही (पूर्वस्मै) पूर्व विद्यमान (सुविताय) ऐश्वर्य प्राप्त करने, उत्तम मार्ग में चलने, सदाचार पालन करने और (नव्यसे) नये, सुख प्राप्त करने के लिये (नः प्रवोचत) हमें उपदेश दें । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) विश्व के धन के स्वामियो ! ज्ञानों और धनों के धारक विद्वान्, वीर पुरुषो ! मैं राजा (नमस्युः) 'नमस्' अर्थात् शत्रुओं को विनय की शिक्षा देने वाले दण्ड को अपने वश करना चाहता हुआ (वः) आप लोगों को (वामस्य भक्तये) ऐश्वर्य सेवन के लिये (इदा हि वः) अब आप लोगों को (अन्याम् उप स्तुतिम् इव) नई से नई शिक्षा (आ उप असृक्षि) प्रदान करूं ।

उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (सु-प्र-णीतयः) उत्तम नीति वाले पुरुषो ! (स्यः सविता) वह उत्पादक परमेश्वर (वरेण्यः) वरण करने योग्य (वः ऊर्ध्वः उत् अस्थात्) आप सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप में स्थित है और (पतयिष्णवः वेग से जाने और ऐश्वर्यों के स्वामी बनना चाहने वाले (द्विपादः चतुष्पादः) दो पाये और चौपाये भी (अर्थिनः) याचकवत् (नि अविश्रन्) उसके अधीन विराजते हैं ।

देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।
देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (देव्या धिया) ज्ञानमय प्रकाश के देने वाली (धिया) वाणी से (वः गृणन्तः) आप लोगों के प्रति उपदेश करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (देवं-देवम्) सुखदाता, प्रकाशक प्रभु को और (अभिष्टये) अभीष्ट सुखादि को प्राप्त करने के लिये भी (देवं-देवं) सर्व प्रकाशक, सर्वप्रद, प्रभु की और (वाज-सातये) ऐश्वर्य, बल, अन्न और ज्ञान प्राप्ति के लिये (देवं-देवं) सुखादि के दाता, ज्ञान-प्रकाशक प्रभु की (हुवेम) प्रार्थना करें ।

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥ १४ ॥

भा०—(समन्यवः देवासः) ज्ञानवान् और दानशील और तेजस्वी और (विश्वे) समस्त (स-रातयः) धनादि सम्पन्न पुरुष (मनवे) मननशील व्यक्ति के उपकार के लिये ही (वरिवः-विदः भवन्तु) उत्तम धन को प्राप्त कराने वाले हों और (ते) वे (अद्य) आज (नः) हमें भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनदाता हों । (अपरं तु) बाद में भी (नः तुचे) हमारे पुत्रादि के लिये भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनादि के दाता हों ।

प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।

न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥ १५ ॥

भा०—हे (अद्रुहः) द्रोहरहित पुरुषो! (संस्थे) एकत्र मिलकर बैठने योग्य सभा आदि में (उप-स्तुतीनां) स्तुति योग्य (वः) आप लोगों की (प्र शंसामि) प्रशंसा करता हूँ। (कः मर्त्यः) जो मनुष्य हे (वरुण) श्रेष्ठ, हे (मित्र) स्नेहवान्! (धामभ्यः) उत्तम जन्म, स्थान और तेज को प्राप्त करने के लिये (वः अविधत्) आपकी सेवा करता है (तं) उसको (धूर्त्तिः न) किसी प्रकार की हिंसा या बाधा नहीं सताती।

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।

प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥ ३३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (यः) जो मनुष्य (वः) आप लोगों को (वराय) श्रेष्ठ कार्य के लिये (दासति) दान करता है (सः) वह (क्षयं) गृहादि और ऐश्वर्य को (प्र तिरते) बढ़ा लेता है, वह (महीः इषः प्र तिरते) उत्तम अन्नों वा बड़ी अभिलाषाओं को पूर्ण कर लेता है, वह (सर्वः) सब प्रकार से ही (अरिष्टः) अबाधित, दुःखरहित होकर (धर्मणः परि) धर्म के द्वारा (प्रजाभिः प्र जायते) प्रजाओं से प्रजावान् होता और (परि एधते) खूब बढ़ता है। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।

अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥ १७ ॥

भा०—(अर्यमा) दुष्ट पुरुषों का नियन्ता, (मित्रः) स्नेहवान् और (वरुणः) श्रेष्ठजन (स-रातयः) दानशील, और (स-जोषसः) प्रीतियुक्त होकर (यं त्रायन्ते) जिसकी रक्षा करते हैं (सः) वह राष्ट्रवासी जन (युधः ऋते) बिना युद्ध के ही (विन्दते) ऐश्वर्य प्राप्त करता और (सु-

गेभिः) उत्तम सुखप्रद यानों से (अध्वनः याति) मार्गों को जाता आता है ।

अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥ १८ ॥

भा०—आप लोग (अस्मै) इस राष्ट्र के हितार्थ, हे विद्वानो ! वीर जनो ! (अज्रे चित्) न पराजित होने योग्य, शत्रु सैन्य में भी (नि-अञ्चनं कृणुथ) नित्य आया-जाया करो और (अस्मात्) इस रक्षा-योग्य जन से (अशनिः) घातक शस्त्र अस्त्रादि वा महामारी आदि फैलाने वाली (सास्रेधन्ती) विनाशकारिणी हुई बला भी (परः विनश्यतु) दूर चली जाय ।

यदद्य सूर्ये उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।
यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जैसे (दिवः निम्रुचि) सूर्य के अस्त काल में, (प्रबुधि) उदयकाल में (यद्वा) अथवा (मध्यंदिने) मध्याह्न में भी सूर्य की किरणें (ऋतं दधे) तेज धारण किये ही रहती हैं वैसे ही हे (विश्व-वेदसः) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामियो ! विद्वानों, वीर पुरुषो ! आप भी (प्रियक्षत्राः) 'क्षत्र' अर्थात् बल वीर्य, अन्नादि के प्रिय, तदभिलाषी जनो ! (अद्य) आज (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन वा ज्ञान के प्रकाशक आचार्य के (यद्-यां) उदय होने वा उत्तम बलवान् होने पर आप लोग (नि-म्रुचि) निम्न गति, विनय-शील होने पर, सूर्यास्त होने के काल में, (प्रबुधि) प्रबोध काल में, वा सूर्योदय काल में, (यद्वा) अथवा (मध्यन्दिने) मध्याह्न काल में, (ऋतं दध) सत्य, न्याय, तेज और अन्न को धारण करो ।

यद्वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे ।
वयं तद्वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥ २० ॥

भा०—हे (असुराः) दुष्टों को उखाड़ने में समर्थ वीर पुरुषो! प्राणों के अभ्यास में लगे विद्वानो! (अपिपित्वे) प्राप्त होकर (यत् वा ऋतं वियेम) जो भी सत्य ज्ञान है उसे हम प्रदान करें और (यते दाशुषे) यत्नशील, दानशील जन को भी (छर्दिः) आश्रय और ज्ञान दीप्ति (वियेम) प्रदान करें। हे (वसवः) विद्वान् जनो! हे (विश्व वेदसः) समस्त धनों, ज्ञानों के स्वामि-जनो! हम लोग भी (वः) आप लोगों के (मध्ये) बीच (तत् छर्दिः) उस गृह वा शरण में (उप स्थेयाम) सदा रहें।

यदुद्य सूर उदि॑ते यन्मुध्यन्दि॑न आतुचि॑।
वा॒मं धृत्थ मन॑वे विश्ववेदसो जुह्वा॑नाय प्रचे॑तसे ॥ २१ ॥

भा०—(यत्) जैसे (उद् इते) उदय होते हुए और (मध्यन्दिने) मध्य दिन में (आ-तुचि) सब ओर संतापित करने वाले (सूरे) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन (यत् यत् वामं धत्थ) जिस २ उत्तम ज्ञान और धन को धारण करो उसे आप लोग (विश्ववेदसः) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामी होकर, (जुह्वानाय) दान देने वाले और (प्र-चेतसे) उत्तम ज्ञानी पुरुष को (धत्थ) दिया करो।

वयं तद्वः सम्राज आ वृ॑णीमहे पुत्रो न ब॑हुपाय्य॑म्।
अश्याम तदा॑दित्या जुह्व॑तो हविर्ये॑न वस्यो॑ऽनशा॑महे ॥ २२ ॥ ३४ ॥

भा०—हे (सम्-राजः) सम्मिलित होकर दीप्ति से चमकने वाले वीर पुरुषो! (पुत्रः न) पुत्र के समान (वयं) हम लोग भी (वः) आप लोगों के (तत्) उस (बहु-पाय्यं) बहुतों से भोग्य ऐश्वर्य की (आ वृणीमहे) याचना करते हैं। हे (आदित्याः) सूर्य की किरणोंवत् 'अदिति' भूमिमाता के सत्पुत्रो! हम लोग (जुह्वतः) आहुति देने वाले यज्ञकर्त्ता के पवित्र (हविः) अन्न का (अश्याम) भोग करें (येन) जिससे हम (वस्यः) धन को (अनशामहै) प्राप्त करें। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[२८]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ५, विराड् गायत्री । ४ विराडुष्णिक् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् ।
विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (देवासः) तेजस्वी, विजयेच्छुक, (त्रिंशति त्रयः) तीस ऊपर तीन अर्थात् संख्या में ३३ विद्वान् वीर जन, (बर्हिः आसदन्) राष्ट्र के उत्तम पद को प्राप्त करते हैं, वे (द्विता विदन्) सत् और असत् दोनों का ज्ञान करें और (असनन्) निग्रह, अनुग्रह दोनों के देने वाले हों ।

वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः ।
पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) दुष्टों को वारण और सज्जनों से वरण करने योग्य, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) दुष्टों को दमन करने वाला न्यायकारी जन ये तीनों (अग्नयः) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष (स्मत्-राति-षाचः) उत्तम कर, वेतनादि धन का सेवन करने वाले और (पत्नीवन्तः) प्रजा-पालक शक्ति और नीति से युक्त होकर (वषट्-कृताः) उत्तम सत्कार से युक्त हों ।

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् ।
पुरस्तात्सर्वया विशा ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे उक्त अधिकारी जन (सर्वया विशा) समस्त प्रजा से युक्त होकर (नः) हमारे (अपाच्याः) पश्चिम से, (ते उदक्) वे उत्तर से (इत्था) और इसी प्रकार (ते) वे (न्यक् पुरस्तात्) नीचे से और आगे से भी (गोपाः) रक्षक हों ।

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत् ।
अरावा चन मर्त्यः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः यथा वशन्ति) विद्वान्, तेजस्वी, उत्तम जन जैसा चाहते हैं (तेषां) उनकी वह इच्छा (तथा इत् असत्) वैसी ही सफल होती है, (मर्त्यः अरावा चन) अदानशील, मूर्ख मनुष्य (तेषां नकिः आमिनत्) उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ।

सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम् ।
सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(सप्तानां) वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों और विद्वानों के (ऋष्टयः सप्त) हथियार और दृष्टियें भी सर्पणशील, दूर २ तक जाने वाली हों । (एषाम् द्युम्नानि सप्त) इनके धन और यश फैलाने वाले हों । वे (सप्त उ श्रियः अधि धिरे) व्यापक सम्पदाओं को धारण करें । अथवा, विद्वानों और वीरों के सात विभाग, उसके सात प्रकार के आयुध, सात प्रकार के दर्शन, सात प्रकार के धन और सात प्रकार की शोभाएं । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[२९]

मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीच ऋषिः ॥ विश्वदेवा देवताः ।, छन्दः—१, २ आर्ची गायत्री । ३, ४, १० आर्ची स्वराड् गायत्री । ५ विराड् गायत्री । ६—९ आर्ची भुरिग्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम् ॥ १ ॥

भा०—(बभ्रुः) सबका भरण-पोषण करने में समर्थ, (वि-षुणः) सब ओर जाने में समर्थ, (सु-नरः) उत्तम नेता, (युवा) बलवान् (हिरण्ययम्) सुवर्ण के समान दीप्तियुक्त, सुन्दर (अञ्जि) रूप को (अंक्ते) प्रकट करता है, वह विश्व में प्रभु और देह में आत्मा है ।

योनिमेक आ संसाद द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥ २ ॥

भा०—वह (एकः) एक, अद्वितीय, (मेधिरः) शत्रुओं को हनन करने में समर्थ, बुद्धिमान्, (द्योतनः) सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, (देवेषु अन्तः) इन्द्रियों के बीच, आत्मा के तुल्य, पृथिव्यादि पदार्थों के बीच, (योनिम्) सब संसार के मूल कारण प्रकृति को, गृह को गृहपति के समान (आससाद) अध्यक्ष रूप से वश करता है।

वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥ ३ ॥

भा०—वह (एकः) अद्वितीय (देवेषु अन्तः) विद्वानों, विजयेच्छुकों के बीच सेनापतिवत्, तेजोमय, पृथिव्यादि तत्वों के बीच (हस्ते) अपने हाथ में (आयसीम् वाशीम्) सुवर्णमयी वंशी को गायक के समान, एवं लोह की बनी वसौली को शिल्पियों के समान, सबको संचालन करने में समर्थ ज्ञान-वाणी वेद वा वशकारिणी प्रभुशक्ति को (निध्रुविः) सबका धारक होकर (बिभर्त्ति) धारण करता है।

वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥ ४ ॥

भा०—वह (एकः) अद्वितीय (हस्ते आहितं वज्रम्) हाथ में पकड़े शस्त्र के तुल्य (वज्रम्) बल को (आहितं) सर्वत्र व्यापक रूप से (बिभर्त्ति) धारण करता है। (तेन) उससे वह (वृत्राणि) मेघस्थ जलों को विद्युत् के तुल्य, प्रकृति के सत् परमाणुओं को (जिघ्नते) संचालित करता है।

तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥

भा०—वह (एकः) अकेला, अद्वितीय प्रभु (शुचिः) दीप्तिमान्, (उग्रः) सबसे बलवान्, (जलाष-भेषजः) जलवत् शान्तिदायक, बाधाओं को दूर करने में समर्थ, वैद्य के समान, ही (तिग्मम्) तीक्ष्ण (आयुधम्) शस्त्र को (हस्ते बिभर्त्ति) हाथ में, शल्यचिकित्सकवत् वश में रखता है। उसका उपयोग करता है।

पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम् ॥ ६ ॥

भा०—(यथा तस्करः निधीनां वेद) जैसे चोर खजानों का पता लगा लेता है वह (पथः पीपाय) मार्ग रोक रखता है वैसे ही (एषः) वह (एकः) अद्वितीय प्रभु (पथः पीपाय) जीवों से प्राप्त करने योग्य मार्गों की रखवारी करता है। वह (यथा) यथावत् (तस्करः = तत्-करः) उन, नाना सृष्टि की रचना, पालन, संहारादि अद्भुत कर्मों के करने हारा, प्रभु (निधीनाम्) समस्त ऐश्वर्यों को (वेद) जानता, प्राप्त करता और अन्यों को प्राप्त कराता है।

त्रीण्येकं उरुगायो वि चक्रमे यत्रं देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥

भा०—(यत्र) जिनमें (देवासः) सुखों के इच्छुक जीव, सूर्यादि लोक और विद्वान् जन (मदन्ति) आनन्द-लाभ करते हैं। उन (त्रीणि) तीन लोकों को (एकः) अद्वितीय (उरु-गायः) महान् लोकों में व्यापक, कीर्त्तिमान् प्रभु (वि-चक्रमे) विशेष रूप से बनाता, उनमें व्यापता है।

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥ ८ ॥

भा०—(प्रवासा इव एकया) जैसे दो प्रवासी एक स्त्री के साथ (प्रवसतः) प्रवास करें वैसे ही (द्वा) दो जीवात्मा और परमात्मा (विभिः) अपनी विषयभोग साधन इन्द्रियों, प्राणों और ईश्वर के व्यापक सामर्थ्यों से (एकया सह) एक प्रकृति के साथ, एक काल में ही (चरतः) अच्छी प्रकार विचरते हैं और (प्र वसतः) रहते हैं। जीव प्रकृति का भोक्ता है और ईश्वर उसमें व्यापक होकर भी प्रवासी पथिकवत्, उससे निःसंग रहता है।

सदो द्वा चंक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥

भा०—(द्वा) वे दोनों (उपमा) एक दूसरे के तुल्य होकर ही (दिवि) द्यौ अर्थात् जीव कामना में और प्रभु मोक्ष में (सदः चक्राते)

अपना स्थान बनाये रखते हैं। वे दोनों (सम्राजा) दीप्तिमान्, (सर्पि-आसुती) घृत-आसेचन-योग्य दो अग्नियों के तुल्य हैं। प्रभु (सर्पि-आसुतिः) सर्पणशील सूर्यादि लोकों का और जीव प्राणों का संचालक है।

अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१०॥३६॥

भा०—(एके) एक, विद्वान् जन (अर्चन्तः) उस प्रभु की अर्चना करते हुए (महि साम) बड़े भारी व्यापक बल को (मन्वतः) जान लेते हैं और (तेन) उसी से वे (सूर्यम्) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभु को (अरोचयन्) सबसे अधिक चाहते हैं। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

[३०]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री। २ पुर उष्णिक्। ३ विराड् बृहती। ४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः।
विश्वे सतोमहान्त इत् ॥ १ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् वीर पुरुषो! हे जीवो! (वः) आप लोगों में से कोई भी (अर्भकः नहि अस्ति) छोटा बच्चा नहीं, (न कुमारक अस्ति) न बालक है, वा 'कुमार' कुत्सित उपायों से दूसरे को वा अपने आपको मारने वाला भी नहीं हो। आप (विश्वे) सब लोग (सतः महान्तः इत्) सत् प्रकृति से महान्, गुणों से अधिक शक्तिशाली हों।

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो आप लोग (मनोः) मननशील और राष्ट्र को वश करने वाले (यज्ञियासः) यज्ञ, पूजा, सत्संगादि के योग्य (देवाः) ज्ञानी, (रिशादसः) दुष्टों के नाशक (त्रयः च त्रिंशत् च स्थ) तेंतीस

(३३) हो वे सब (इति) इस प्रकार (स्तुताः असथ) प्रशंसित होवो।

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे आप लोग (नः त्राध्वम्) हमारी रक्षा करो। (ते अवतः) वे आप लोग हमें बचाओ। (ते उ नः) वे ही आप लोग हम पर (अधि वोचत) अध्यक्ष होकर शासन करो और आप लोग (नः) हमें (परावतः) दूर, परम प्रभु से चले आए, (पित्र्यात्) पालक पिता के (मानवात्) मननशील विद्वान् के बनाये (पथः) मार्ग से (दूरं मा नैष्ट) दूर मत करो।

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥ ४ ॥ ३७ ॥ ४ ॥

भा०—(इह) इस लोक में (ये देवासः स्थन) जो विद्वान् विजयाभिलाषी वा ज्ञानादि के दाता हैं (उत) और जो (विश्वे) सब (वैश्वानराः) सबके संचालक वा सब मनुष्यों के हितैषी हैं, वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये और हमारे (गवे अश्वाय) गौ, घोड़े आदि के लिये भी (सप्रथः शर्म) विस्तृत सुख (यच्छत) दें। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[३१]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ १—४ ईज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च । ५—९ दम्पती । १०—१८ दम्पत्योराशिषः देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७, १२ गायत्री । २, ४, ६, ८ निचृद् गायत्री । ११, १३ विराड् गायत्री । १० पादनिचृद् गायत्री । ९ अनुष्टुप् । १४ विराडनुष्टुप् । १५–१७ विराट् पंक्तिः । १८ आर्ची भुरिक् पंक्तिः ॥

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च।
ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (यजाति) यज्ञ, ईश्वरोपासना करता है (यजाते इत्) दान देता और पूजा ही करता जाता है, (सुनवत्) सोमरस सम्पादन कर, ऐश्वर्य लाभ करता और (पचाति च) पाक यज्ञ करता, वा अपने को तप आदि में परिपक्व करता है वह (इन्द्रस्य ब्रह्म) ऐश्वर्यवान् प्रभु के महान् गुण को (चाकनत्) सदा चाहता है।

पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम्।
पादित्तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अस्मै) इस संसार को (आशिरं) खाने योग्य (पुरोडाशं) पूर्व ही देने योग्य, अन्न (सोमं) ओषधि लतादि रूप में (ररते) देता है वही (शक्रः) शक्तिशाली परमेश्वर (तं) उस संसार को (अंहसः) पाप और नाश होने से भी (पात्) बचाता है।

तस्य द्युमाँ असद्रथो देवजूतः स शूशुवत्।
विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह शक्तिशाली स्वामी (विश्वा) सब प्रकार के (अमित्रिया) शत्रुओं के लिये छल-कपटादि कार्यों को (वन्वन्) नाश करता हुआ (देव-जूतः) विद्वानों से सेवित होकर (शूशुवत्) वृद्धि को प्राप्त होता है। (तस्य) उसका (रथः) रथ (द्युमान्) कान्तियुक्त और (देव-जूतः) अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थों से चलने वाला (असद्) होता है।

अस्य प्रजावती गृहेऽसंश्चन्ती दिवेदिवे।
इळा धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य इडा) उसकी भूमि (प्रजावती) प्रजा से युक्त होकर (दिवे दिवे) दिनों दिन (गृहे असश्चन्ती) गृह में स्थिर रहने वाली पत्नी वा गौ के समान (धेनुमती) गवादि पशु युक्त, और वाणी, आज्ञा युक्त होकर (दुहे) नाना सुख प्रदान करती है।

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः ।
देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥ ३८ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् लोगो! (या) जो (दम्पति) पति पत्नी, (स-मनसा) समान चित्त होकर (सुनुत) पुत्र उत्पन्न करते हैं और (नित्यया) नित्य (आशिरा) उपभोग करने योग्य दुग्ध आदि उत्तम द्रव्य से (आ धावतः च) उसे शुद्ध संस्कृत करते हैं वे—

प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते ।
न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥

भा०—(प्राशव्यान्) उत्तम खाने योग्य पदार्थों को (प्रति इतौ) प्रतिदिन प्राप्त करें। वे (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार जीवन निर्वाह करते हुए (बर्हिः आशाते) उत्तम धान्य का उपभोग करें और (ता) वे दोनः (वाजेषु) अन्नों, बलों और ऐश्वर्यों से (नः वायतः) वञ्चित नहीं रहते।

न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः ।
श्रवो बृहद्विवासतः ॥ ७ ॥

भा०—हे दोनों पति पत्नी (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों के बीच रहते हुए (अपि) भी, कभी भी (न ह्नुत) कुटिल व्यवहार न करें और वे दोनों (सुमतिम्) अपनी उत्तम सम्मति, शुभ ज्ञान को (न जुगुक्षतः) कभी न छिपावें, प्रत्युत परस्पर उत्तम २ ज्ञान दें। वे दोनों नित्य (बृहत् श्रवः) बड़े वेदज्ञान का (विवासतः) प्रकाश करें, उसका अभ्यास करें और श्रवण करने योग्य महान् प्रभु की सेवा करें।

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।
उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥

भा०—वे दोनों पति पत्नी (पुत्रिणा) पुत्रों वाले और (कुमारिणा) प्रथम वयस में वर्त्तमान, कुमारों, सन्तानों, के माता पिता होकर

(विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु का (वि अश्नुतः) भोग करें और (आ) दोनों (हिरण्यपेशसा) सुवर्ण के उत्तम अलंकार धारण करने वाले हों।

वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम्।
समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः॥ ९॥

भा०—वे दोनों (वीति-होत्रा) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी बोलने हारे (कृतद्वसू = कृत-वसू) उत्तम धन, वीर्यादि प्राप्त करके (दशस्यन्ताम्) दान दिया करें। वे (अमृताय कम्) न मरने वाली सन्तान को प्राप्त करने के लिये (ऊधः रोमशं) उत्तम सन्तान आधान और धारण करने वाले, रोम युक्त अर्थात् यौवनयुक्त अंगों को (सं-हतः) संयोजित करें, उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और (देवेषु) विद्वानों की (दुवः) सेवा (कृणुतः) किया करें।

ये पांचों ऋचाएं गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश करती हैं। पञ्चभिर्दम्पती अस्तूयेताम्। सायणः।

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम्।
आ विष्णोः सचाभुवः॥ १०॥ ३९॥

भा०—हम लोग (पर्वतानां) पर्वतों, मेघों और पालन शक्ति से युक्त पुरुषों और (नदीनाम्) नदियों, वाणियों और समृद्ध प्रजाओं के (शर्म) सुख को (आवृणीमहे) प्राप्त करें और हम (सचाभुवः) समवाय बनाकर रहने वाले (विष्णोः) व्यापक शक्ति वाले प्रभु वा स्वामी के (शर्म) सुख को भी प्राप्त करें। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

ऐतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः।
उरुरध्वा स्वस्तये॥ ११॥

भा०—(स्वस्तये) सुख के लिये, (पूषा) सर्वपोषक स्वामी, वा भूमि हमें (आ-एतु) प्राप्त हो (सर्व-धातमः) सबको उत्तम रीति से पालन पोषण में समर्थ (रयिः) ऐश्वर्य, (भगः) सम्पदा और (उरुः

अध्वा) बड़ा मार्ग प्राप्त हो।

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा।
आदित्यानामनेह इत्॥ १२॥

भा०—(अनर्वणः) अहिंसक (देवस्य) सर्वदाता प्रभु के (मनसा) मनन और ज्ञान से (विश्वः) समस्त मनुष्य (अरमतिः) बड़े ज्ञानवान् हो जाते हैं और (आदित्यानाम्) आदित्य ब्रह्मचारी, तेजस्वी पुरुषों के (मनसा) ज्ञानोपदेश से सब कोई (अनेहः इत्) पाप रहित हो जाते हैं।

यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः।
सुगा ऋतस्य पन्थाः॥ १३॥

भा०—(यथा) जैसे (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (नः) हमारे (गोपाः सन्ति) रक्षक हैं वैसे ही (ऋतस्य) सत्य, न्याय और वेद का (पन्थाः) मार्ग (सु-गाः) सुख से गमन योग्य है।

अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम्।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम्॥ १४॥

भा०—हे विद्वान् जनो! मैं (वः) आप लोगों के बीच (वसूनां देवम्) मनुष्यों में सुखदाता, वा ब्रह्मचारियों में ज्ञानप्रकाशक की (पूर्व्यं अग्निं) पूर्ण तेजस्वी 'अग्नि' नाम से (ईळे) स्तुति करता हूँ और हम सब उसी (पुरु-प्रियं) सबको प्रिय, (क्षेत्र-साधसम्) निवास-योग्य गृह वा देह के वशीकर्त्ता, (मित्रं न) मित्र के समान स्नेही प्रभु का (सपर्यन्तः) भजन करते हुए उसकी स्तुति करें।

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित्।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥१५॥

भा०—जैसे (कासु चित् पृत्सु शूरः वा) किन्ह भी शत्रु, सेनाओं

में शूरवीर पुरुष निर्भय होकर प्रवेश करता है वैसे ही (देववतः रथः) सर्वप्रकाशक प्रभु के भक्त का रथ के समान आनन्दप्रद उपदेश (मक्षु) शीघ्र ही (पृत्सु) मनुष्यों के बीच प्रवेश कर जाता है। (यः) जो (यजमानः) दानशील पुरुष (देवानां मनः चित्) वीरों और विद्वानों के चित्त को (इयक्षति) सन्तुष्ट कर देता है वह (अयज्वनः) अदाता वा अनीश्वरोपासकों को (अभि) परास्त कर, (भुवत्) उनसे बढ़ जाता है।

न यंजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयंज्वनो भुवत् ॥ १६॥

भा०—हे (यजमान) यज्ञकर्त्ता! हे ईश्वरोपासक! हे (सुन्वाथ) ऐश्वर्योत्पादक! हे सन्तानादि के उत्पादक! हे (देवयो) विद्वानों के इच्छुक! (न रिष्यसि) तू कभी नाश को प्राप्त न हो, पीड़ित न हो। क्योंकि (यः इत् देवानां मनः इयक्षति) जो उत्तम पुरुषों के मन को प्रसन्न रखता है वह (अयज्वनः अभि भुवत्) अनीश्वरोपासकों को पराजित करता है।

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयंज्वनो भुवत् ॥ १७॥

भा०—(यः इत्) जो मनुष्य निश्चयपूर्वक (यजमानः देवानां मनः इयक्षति) विद्वान् पुरुषों के ज्ञान की उपासना करता है वह (अयज्वनः) उपासना न करने वालों को (अभि भुवत् इत्) परास्त करता है। (तं कर्मणा नकिः नशत्) उस तक कर्म के सामर्थ्य से भी कोई नहीं पहुंचता है और (न प्र योषत्) उसे कोई स्थान से डिगा नहीं सकता। वह स्वयं (न प्र योषति) पुत्र धनादि से वियुक्त नहीं होता।

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम्। देवानां य इन्मनो।
यजमान इयक्षत्यभीदयंज्वनो भुवत् ॥ १८॥ ४०॥ २॥

भा०—(यत् इत् देवानां मनः) जो तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान का (इयक्षति) सत्संग करता है, वह (अयज्वनः) सत्संग न करने वाले पुरुषों को (अभि भुवत् इत्) अवश्य परास्त करता है, क्योंकि उसका (अत्र) इस लोक में (सुवीर्यम् असत्) उत्तम बल और विद्या सामर्थ्य हो जाता है और उसको (त्यत्) वह अलौकिक (आशु अश्व्यम्) शीघ्र-गामी अश्वों से युक्त सैन्यादि और इन्द्रिय-सामर्थ्य प्राप्त होता है। इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठेऽष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

तृतीयोऽध्यायः

[३२]

काण्वो मेधातिथिः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता: ॥ छन्दः—१, ७, १५, २७, २८ निचृद् गायत्री। २, ४, ६, ८—१२, १४, १६, १७, २१, २२, २४—२६ गायत्री। ३, ५, १३, २०, २३, २९ विराड् गायत्री। १८, ३० भुरिग् गायत्री ॥

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया।
मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥

भा०—हे (कण्वाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (ऋजीषिणः) सत्य, न्याय मार्ग पर प्रेरणा करने वाले, (सोमस्य मदे) अन्न, ऐश्वर्यादि से तृप्त होकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (कृतानि) किये कार्यों और राजा के कर्त्तव्यों का (गाथया) गान करने योग्य वेदवाणी से (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उपदेश करो।

यः सृबिन्दुमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् ।
वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो तेजस्वी (सृबिन्दम्) आक्रमण करके प्रजा का धन हरने वाले, (अनर्शनिं) अहिंसित बल के नेता (पिप्रुं) अपने ही पेट भरने वाले (दासम्) प्रजानाशक (अहीशुवम्) मेघवत् बढ़ने वाले दुष्टजन को (उग्रः) भयंकर होकर (वधीत्) दण्डित करे वह ही (अपः) आप्त प्रजाओं को (रिणन्) मार्ग में चलाने में समर्थ होता है।

न्यर्बुदस्य विष्टपं वृष्माणं बृहतस्तिर । कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे बिजली (अर्बुदस्य बृहतः वि-स्तपं वर्ष्माणं कृषे नि तिरति) मेघ के तापरहित, वृष्टिकारक रूप को छिन्न-भिन्न करके कृषि के लिये दे देती है, वैसे ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! तू (अर्बुदस्य) प्रजा को सुख देने वाले वा सहस्रों की संख्या में (बृहतः) बड़े शत्रु-सैन्य के (विस्तपं) विशेष तापकारी, (वर्ष्माणं) अस्त्रवर्षी प्रबल भाग को (नि तिर) विनाश कर और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (तत् पौंस्यं) ऐसा ही पराक्रम (कृषे) किया कर।

प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (गिरे तूर्णाशं अधि धृषत्) विद्युत् मेघ से जल को बलपूर्वक गिरा देता है वैसे ही वह शत्रुहन्ता राजा (श्रुताय) प्रसिद्ध होने के लिये (वः) आप प्रजाजनों का (तूर्णाशं) हिंसा द्वारा नाश करने वाले दुष्ट दल को (गिरेः अधि) स्वयं पर्वतवत् उच्च पद से (प्रति अधि धृषत्) उसका मुकाबला करके धर्षण करे, उसे अधिकार-पूर्वक दण्डित करे जिससे वह सिर न उठा सके। उसी (सुशिप्रम्) सुन्दर मुख, नासिका, मुकुट से सजे वा वीर्यवान् राजा को मैं प्रजागण (ऊतये) रक्षा के लिये (हुवे) पुकारूं।

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः ।
पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष! तू (मन्दानः) प्रसन्न होकर अन्यों को भी प्रसन्न करता हुआ (सोम्येभ्यः) ऐश्वर्य के पालन करने में योग्य कुशल पुरुषों के लिये, (गोः व्रजं) गौओं, वाणियों, भूमियों के समूह तथा (अश्वस्य) आशुगामी, अश्व सैन्य के (व्रजं) प्रयाणकारी बल को (पुरं न वि दर्षसि) और प्राकार या नगरी को विविध प्रकार से विदीर्ण कर।

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः ।
आरादुप स्वधा गहि ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (यदि) यदि तू (मे सुते) मेरे उत्पन्न किये ऐश्वर्य में (रारणः) रमण करे और यदि (मे उक्थे) मेरे उत्तम वचन में ही (रारणः) प्रसन्न होकर और (चनः दधसे) बहुत अन्न को धारण करे, तो तू (आरात्) दूर या समीप से भी (स्वधा) धारक पोषक पदार्थों को (उप गहि) क्रय विक्रय या व्यापार द्वारा प्राप्त कर।

वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना करने योग्य! (वयं घ) हम अवश्य (ते स्तोतारः) तेरे स्तुति करने वाले (अपि स्मसि) हों। हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक! (त्वं नः जिन्व) तू हमें प्रसन्न और तृप्त कर, हमारी वृद्धि कर।

उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् । मघवन्भूरि ते वसु ॥ ८ ॥

भा०—तू (सं-रराणः) समान भाव से प्रजासहित राष्ट्र में सुख भोग करता हुआ (नः) हमारे (अवि-क्षितम्) अविनष्ट (पितुम्) अन्न

को (आ भर) प्राप्त करा और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (ते) अपने (भूरि वसु आ भर) बहुत सा धन ऐश्वर्य प्राप्त करा ।

उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः ।
इळाभिः सं रभेमहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (उत) और तू (नः) हमें (गोमतः) गौ आदि पशु और भूमि से सम्पन्न (कृधि) कर। तू हमें (हिरण्यवतः अश्विनः) उत्तम सुवर्ण और अश्वों का स्वामी (कृधि) कर। हम (इडाभिः) उत्तम वाणियों, अन्नों, भूमियों से (संरभेमहि) अच्छी प्रकार जीवन का सुख प्राप्त करें।

बृहदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
साधु कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (बृहदुक्थम्) वेदवाणी के उत्तम वचन जानने हारे, (ऊतये) रक्षा के लिये (सृप्रकरस्नम्) आगे बढ़े बाहु वाले, दोनों को हाथ बढ़ा कर बचाने वाले और (साधु कृण्वन्तम्) उत्तम काम करने वाले पुरुष को (अवसे) रक्षा के निमित्त (हवामहे) प्रार्थना करें।

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा ।
जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (संस्थे चित्) संग्राम में भी (शतक्रतुः) नाना कर्म करने हारा, नाना प्रज्ञावान् (वृत्रहा) शत्रुहन्ता होकर (आत्) अनन्तर (ईं कृणोति) नाना शत्रुओं का नाश करता है वह (जरितृभ्यः) विद्वानों के लिये (पुरु-वसुः) बहुत से ऐश्वर्यों का स्वामी हो। (२) अध्यात्म में पुरु, इन्द्रियों में बसने वाला आत्मा, इन्द्र 'पुरुवसु' है।

स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः ।
इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥

भा०—(सः) वह (शक्रः) शक्तिशाली (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (दानवान्) नाना दान योग्य धनैश्वर्यवान् होकर (नः आ शकत्) हमें सब ओर से शक्तिमान् करे और वह (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार की रक्षाओं से (नः अन्तः आ भरः) हमें अपने राष्ट्र के भीतर, गर्भ में माता के समान पोषण एवं पालन करने वाला हो।

यो रायो॒३ वनि॒र्म॒हान्त्सु॑पा॒रः सु॑न्व॒तः सखा॑।
तमिन्द्र॑म॒भि गा॑यत ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (यः) जो प्रभु (रायः वनिः) ऐश्वर्य का देने हारा, (महान्) गुण और शक्ति में महान् (सु-पारः) उत्तम रीति से पालन पोषण करने और संकटों से पार उतारने हारा और (सखा) मित्र के समान स्नेही है (तम् इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु, स्वामी की (अभि गायत) खूब स्तुति वा गुणों का गान करो।

आ॒यन्तारं॒ महि॒ स्थि॒रं पृत॑नासु श्र॒वोजित॑म्।
भूरे॒रीशा॑न॒मोज॑सा ॥ १४ ॥

भा०—(आ-यन्तारं) सब ओर से वश करने वाले, (महि स्थिरं) महान्, स्थिर, (पृतनासु) संग्रामों वा सेनाओं के बीच (श्रवः-जितम्) यश को विजय करने वाले और (ओजसा) पराक्रम से (भूरेः) बड़े ऐश्वर्य, वा जगत् के (ईशानम्) स्वामी की (अभि गायत) स्तुति करो।

नकि॑रस्य॒ शची॑नां नियन्ता सू॒नृता॑नाम्।
नकि॑र्व॒क्ता न दा॒दिति॑ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इसकी (शचीनाम्) शक्तियों और (सूनृतानां) उत्तम सत्ययुक्त वाणियों का (नियन्ता) रोकने वाला (नकिः) कोई नहीं है। (न दात् इति वक्ता नकिः) वह नहीं देता ऐसा कहने वाला भी कोई नहीं। वह सबको श्रम और कर्मानुरूप फल देता है।

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् ।
न सोमो अप्रता पपे ॥ १६ ॥

भा०—(सुन्वताम्) अन्नादि उत्पन्न करने वाले (प्राशूनां) उत्तम मार्ग से जाने वाले, (ब्रह्मणां) विद्वान् ब्रह्मवेत्ताओं का (नूनं) निश्चय से कोई (ऋणं न अस्ति) ऋण शेष नहीं रहता। (सोमः) परम ऐश्वर्य वा यज्ञ में सोमरस, उत्तम अन्नादि का भोग भी (अप्रता) कोश न भरने वाले पुरुष को (न पपे) प्राप्त नहीं होता।

पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत ।
ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (पन्ये इत्) स्तुति योग्य परमेश्वर के निमित्त (उप गायत) उपासना-पूर्वक स्तुति करो। (पन्ये उक्थानि शंसत) स्तुत्य प्रभु के निमित्त ही वेद-वचनों को बोलो। (पन्ये इत् ब्रह्म कृणोत) स्तोतव्य प्रभु के निमित्त ही यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करो।

पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः ।
इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्! प्रभु (यज्वनः) दानी, सत्संगी, यज्ञोपासक का (वृधः) बढ़ाने हारा है, (पन्यः) स्तुति योग्य है, वही (वाजी) ऐश्वर्यवान्, (अवृतः) मोहादि से अनावृत, नित्य मुक्त (शता सहस्रा) सैकड़ों हजारों बन्धन (आ दर्दिरत्) काटता है।

वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः ।
इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सुतानां) जगत् में उत्पन्न जीवों का (पिब) पालन कर। तू (कृष्टीनाम्) मनुष्यों को (आ-हुवः) सबसे

प्रार्थना करने योग्य, सब सुख देने वाला है तू (स्वधा अनु) अपनी शक्ति से जगत् का धारक होकर (वि सु चर) अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप, (अनु चर) कर्मों के अनुसार उनको फल प्रदान कर।

पिब॒ स्वधै॑नवाना॒मुत यस्तुग्र्ये॒ सचा॑। उ॒तायमि॑न्द्र॒ यस्तव॑ ॥२०॥

भा०—जैसे मनुष्य (स्व-धैनवानां पिबति) अपनी गौवों का दूध पीता है वैसे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! आत्मन्! तू (स्व धैनवानाम्) अपनी वाणियों, इन्द्रियों द्वारा प्राप्त सत्-असत् फलों का भोग कर और (यः) जो पदार्थ (तुग्र्ये) पालन योग्य पुत्रादि में (सचा) विद्यमान है, (उत अयम्) और (यः तव) जो तेरा है तू उसे (पिब) पालन या उपभोग कर।

अती॑हि म॒न्युषा॒विणं॑ सुषु॒वांस॑मु॒पार॑णे। इ॒मं रा॒तं सु॒तं पि॑ब ॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (मन्यु-साविनम्) क्रोध से आधिपत्य करने वाले को और (उप-अरणे) अरमणीय स्थान में (सुषुवांसम्) स्वामित्व करने वाले भी (अति इहि) अतिक्रमण कर। तू (इमं) इस (रातम्) अपने हाथ सौंपे (सुतं) प्रजागण को (पिब) पालन कर।

इ॒हि ति॒स्रः प॑रा॒वत॑ इ॒हि पञ्च॒ जना॒ अति॑।
धेना॑ इन्द्राव॒चाक॑शत् ॥ २२ ॥

भा०—तू (परावतः) दूर के (तिस्रः) तीनों प्रकार के उत्तम, मध्यम, निकृष्ट प्रजाओं को (अति इहि) अपने वश कर और (पञ्च-जनान् अति इहि) चार वर्ण और पांचवें निषाद को भी अपने वश कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (धेना) नाना वाणियों को (अव चाकशत्) देख।

सूर्यो॑ र॒श्मिं यथा॑ सृ॒जा त्वा॑ यच्छन्तु मे॒ गिरः॑।
नि॒म्नमापो॒ न स॒ध्र्य॑क् ॥ २३ ॥

भा०—(यथा सूर्यः रश्मिं सृजति) जैसे सूर्य तेज देता है वैसे ही तू भी (रश्मिं सृज) तेज और राष्ट्र को व्यापने वाला शासन कर। (आपः न सध्र्यक् निम्नम्) जैसे जलधाराएं एक ही साथ नीचे प्रदेश में आकर उसे घेर लेती हैं वैसे ही (मे गिरः) मेरी वाणियां भी (त्वा) तुझ सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (आयच्छन्तु) प्राप्त हों।

अध्व॑र्य॒वा तु हि षि॒ञ्च सोमं॑ वी॒राय॑ शि॒प्रिणे॑।
भरा॑ सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥ २४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) यज्ञ करने हारे, यज्ञ के स्वामिन्! तू (शिप्रिणे) मुकुट धारण करने वाले (वीराय) वीर पुरुष के लिये (सोमं आ सिञ्च) ओषधि रसवत् ऐश्वर्यवान् राष्ट्र का आसेचन कर, ऐश्वर्य की वृद्धि कर। (पीतये) पालन करने के लिये (सुतस्य) उत्पन्न राष्ट्रजन को पुत्रवत् (भर) पुष्ट कर।

य उ॒द्नः फ॑लि॒गं भि॒नन्न्य१॒॑क्सिन्धूँ॑र॒वासृ॑जत्।
यो गोषु॑ प॒क्वं धा॒रय॑त् ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—जैसे तीव्र विद्युत् (फलिगं भिनत्) मेघ का भेदन करता और (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की धाराओं को नीचे फेंकता है और (गोषु पक्वं धारयत्) भूमियों में परिपक्व अन्न को पुष्ट करता है, वैसे ही जो राजा (फलिगं भिनत्) फलयुक्त सशस्त्र सैन्य वाले शत्रु को छिन्न-भिन्न करता और राष्ट्र में (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की नहरों को नीची भूमियों में प्रवाहित करता है और जो (गोषु) भूमियों में (पक्वम्) पके अन्न को लेता है वही भूमि का स्वामी (इन्द्रः) 'इन्द्र' है।

अह॒न्वृ॒त्रमृ॒चीष॑म और्णवा॒भम॑ही॒शुव॑म्। हि॒मेना॑विध्य॒दर्बु॑दम् ॥२६

भा०—(ऋचीषमः) तेज से सर्वत्र प्रदीप्त सूर्य जैसे (और्णवाभम्)

ऊन के कम्बल के तुल्य आच्छादक, (अहीशुवम्) मेघ से बढ़ने वाले (वृत्रम्) मेघस्थ जल को (अहन्) आघात करता है और (हिमेन) शीत से (अर्बुदम्) जलप्रद मेघ को (अविध्यत्) वेध देता है, वैसे ही (ऋचीषमः) प्रतिष्ठा वा शासन से सर्वत्र समान निष्पक्ष राजा (और्णवाभम्) ऊन दाता भेड़ के समान टक्कर लेने वाले, (अहीशुवम्) सूर्य के समान क्रोध से बढ़ने वाले (वृत्रम्) शत्रु का (अहन्) नाश करता है, वह (अर्बुदम्) शस्त्र-बल से नाश करने वाले शत्रु को (हिमेन) हनन-साधन शस्त्र-बल से (अविध्यत्) वेधता, ताड़ित करता है, वही 'इन्द्र' है।

प्र व उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत ॥२७॥

भा०—हे प्रजाजनो! आप लोग (वः) अपने में से (उग्राय) शत्रु के प्रति उग्रस्वभाव वाले, (निः-स्तुरे) शत्रु के सर्वथा नाश में समर्थ, (अषाढाय) स्वयं पराजित न होने और (प्र-सक्षिणे) शत्रु को अच्छी प्रकार पराजित करने वाले पुरुष को अधिक बली करने के लिये (देवत्तं ब्रह्म) विद्वानों के द्वारा गुरु-परम्परा से प्रदत्त वा प्रभु से दिये वेद-ज्ञान का (गायत) उपदेश करो।

यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः।
इन्द्रो देवेषु चेतति ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो आत्मा (देवेषु) इन्द्रियों के बीच में (अन्धसः मदे) अन्न से तृप्ति लाभ करके जैसे (विश्वानि व्रता अभि चेतति) सब कार्यों को जानता है वैसे ही (यः) जो पुरुष (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के बीच (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होने पर वा राष्ट्र के शासन-कार्य में (विश्वानि व्रता अभि) सब कर्त्तव्यों को (चेतति) ठीक जानता है, वह (इन्द्रः) 'इन्द्र' है।

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या।
वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥

भा०—(इह) यहां (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द वा तृप्ति लाभ करने वाले, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान केशों के तुल्य दीप्तियों को धारण करने वाले तेजस्वी, (हरी) राजा, प्रजा, वा स्त्री-पुरुष (हितम् प्रयः) हितकारी अन्न, ज्ञान (अभि वोळाम्) प्राप्त करावें।

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति-योग्य ! (अर्वाञ्चं त्वा) साक्षात् प्राप्त तुझको (प्रियमेध-स्तुता) यज्ञ के प्रिय विद्वान् पुरुषों द्वारा उपदिष्ट, उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुष (सोम-पेयाय) ऐश्वर्य-पालन के लिये (वक्षतः) सन्मार्ग से ले जावें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[३३]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५ बृहती। ४, ७, ८, १०, १२ विराड् बृहती। ६, ९, ११, १४, १५ निचृद् बृहती। १३ आर्ची भूरिग् बृहती। १६, १८ गायत्री। १७ निचृद् गायत्री। १९ अनुष्टुप् ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

भा०—जैसे (आपः न) जलधाराएं (वृक्त-बर्हिषः) कुश काशादि की वृद्धि करने वाली होकर (प्र-स्रवणेषु) निर्झरों में नीचे की ओर बहा करती हैं वैसे ही हे (वृत्र-हन्) शत्रुनाशक स्वामिन् ! (वयं घ) हम भी (सुत वन्तः) उत्तम प्रजावान् और ऐश्वर्यादिमान्, (वृक्त-बर्हिषः) यज्ञ में आसनादिवत् विस्तीर्ण एवं प्रजाओं की वृद्धि करके (त्वा परि) तुझे प्राप्त हों, (पवित्रस्य) शुद्ध जल एवं ज्ञान के (प्रस्रवणेषु) प्रवाहों

के तटों पर (स्तोतारः) स्तुतिकर्त्ता लोग (परि आसते) विराजते हैं।

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः॥ २॥

भा०—हे (वसो) जगत् को वसाने, सबकी रक्षा करने हारे, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (उक्थिनः नरः) वेद-वचन धारण करने वाले जन, (सुते) इस उत्पन्न जगत् में, (निरेके) एकान्त में भी (त्वा स्वरन्ति) तुझे पुकारते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, उत्तम गति से चलने हारा (सु-अब्दीव) गर्जते मेघवत् (तृपाणः) प्यासे के समान उत्कण्ठित होकर (सुतं कदा आगमः) इस उत्पन्न जीव संसार को कब प्राप्त हो?

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम्।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे॥ ३॥

भा०—हे (मघवन्) धनसम्पन्न! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के ऊपर द्रष्टः! हे (धृष्णो) दुष्टों के दलनकर्त्ता! हम (पिशङ्गरूपं) पीत-रूप वाले स्वर्ण आदि और (गोमन्तं) भूमि से युक्त (वाजं) ऐश्वर्य की तुझसे (मक्षु) शीघ्र ही (ईमहे) याचना करते हैं। तू (कण्वेभिः) विद्वानों और वीरों द्वारा (सहस्रिणं वाजं दर्षि) सहस्रों सुख वाले ऐश्वर्य हमें दे।

पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः॥ ४॥

भा०—हे (मेध्यातिथे) 'मेध' अर्थात् सत्संग और अन्नादि से सत्कार-योग्य अतिथे! तू (अन्धसः मदे) अन्न द्वारा आनन्द लाभ करने पर (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के सम्बन्ध में (गाय) उपदेश दे और (पाहि) उसका ज्ञान-रस पान कर। (यः) जो (हर्योः संमिश्लः) स्त्री पुरुष दोनों में व्यापक है, (यः सुते सचा) जो पुत्रवत् उत्पन्न जगत् में सदा विद्यमान है जो (वज्री) बलवान् (रथः) रमणीय, (हिरण्ययः)

सुवर्णवत् तेजोमय है।

यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥५॥७॥

भा०—पुरुषोत्तम कैसा है? (यः) जो (सु-सव्यः, सु दक्षिणः) बायें और दायें दोनों हाथों से कुशल, कर्म करने में समर्थ, वा (सु-सव्यः) उत्तम रीति से पूजा योग्य, वा जगत् के उत्पादन, शासन और संचालन में समर्थ और (सु-दक्षिणः) उत्तम धन, दान, बुद्धि से सम्पन्न, (इनः) सबका स्वामी, (यः) जो (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म व प्रज्ञावान् (गृणे) स्तुति किया जाता है। (यः सहस्रा आकरः) जो सहस्रों कर्मों का करने वाला, वा सहस्रों ऐश्वर्यों को धारने वाला है, (यः शत-मघः) जो सैकड़ों ऐश्वर्यों का स्वामी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (यः पूर्भित्) शत्रु-नगरों का भेदक वा योगिजनों के देह-बन्धन का विच्छेदक, मुक्ति-दाता और (आरितः) स्तुति द्वारा प्राप्त होता है। इति सप्तमो वर्गः॥

यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (धृषितः) सबका वश कर्त्ता, (यः अवृतः) जो न घिरा, असंग, (यः) जो (श्मश्रुषु श्रितः) युद्ध कालों में आश्रय करने योग्य, वा (श्मश्रुषु = श्मसु शरीरेषु श्रूयन्ते इति श्मश्रवो जीवाः) शरीरों में विद्यमान जीवों या श्मश्रु अर्थात् मूछों वाले, वीर पुरुषों के बीच (श्रितः) आश्रय योग्य, उन द्वारा सेवित, (विभूतद्युम्नः) अति ऐश्वर्यवान्, (च्यवनः) शत्रुओं को विचलित करने वाला, (पुरु-स्तुतः) बहुतों से प्रशंसित और (क्रत्वा) कर्मसामर्थ्य से (शाकिनः) शक्ति प्राप्त करने वाले जीव के लिये (गौः इव) भूमि के समान सुख-उत्पादक है।

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) पराक्रम से (पुरः) शत्रु के पुरों, दुर्गों को (वि-भिनत्ति) तोड़ डालता है (अयं) वह (अन्धसः) अन्न वा जीवनधारक पदार्थ से (मन्दानः) आनन्द लाभ करता है। (सुते) ऐश्वर्य के बल पर (पिबन्तं) राष्ट्र का पालन करते हुए (ईं) इसको (कः वेद) कौन जानता है, कि वह (कत् वयः दधे) कितना बल धारण करता है।

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ ८ ॥

भा०—(मृगः न वारणः) जैसे पशु हस्ती (पुरुत्रा दाना दधे) बहुत से मदजल धारण करता है और (पुरुत्र चरथं दधे) बहुत से स्थानों पर विचरण करता है वैसे ही वह प्रभु, स्वामी (वारणः) सब दुःखों का वारक, (मृगः) शुद्धस्वरूप वा योगी मुमुक्षुओं से खोजने योग्य (पुरु-त्रा) पालनीय जीवों के निमित्त (दाना) दान योग्य नाना ऐश्वर्य दान करता है और (पुरुत्रा चरथं दधे) बहुत से भोग्य कर्मफल देता है। हे प्रभो! (सुते) इस जगत् में (त्वा नकिः नियमत्) तुझे कोई भी रोकने में समर्थ नहीं है। तू (ओजसा) महान् सामर्थ्य से (गमः) सर्वत्र-व्यापक है और (महान्) सबसे महान् होकर (चरसि) सबमें व्याप रहा है।

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (उग्रः सन्) दुष्टों के प्रति उग्र होकर (अनिस्तृतः) अहिंसित, अमर, (स्थिरः) कूटस्थ (रणाय) युद्ध वा 'रण' अर्थात् परम आनन्द देने के लिये (संस्कृतः) सुसज्ज, उपासित है। (यदि) यदि (मघवा) वह ऐश्वर्यवान्, (स्तोतुः हवं शृणवत्) स्तुतिकर्त्ता की प्रार्थना सुन ले तो वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वीर (न योषति) कभी

स्त्रीवत् भय नहीं करता, (आगमत्) आ ही जाता है।

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१०॥८॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (सत्यम्) सचमुच, (वृषा इत् असि) समस्त सुखों का वर्षाने वाला ही है। तू (नः) हमारे बीच (अवृतः) किसी से न घिरा, असंग, (वृषजूतिः) सुखवर्षक सूर्यादि को सञ्चालन में समर्थ, नेता है। तू (परावति) दूर, परमार्थ में भी, हे (उग्र) बलवन्! (वृषा हि शृण्विषे) बलवान् ही सुना जाता है और (अर्वावति) पास, इस लोक में भी (वृषः श्रुतः) बलवान्, सुखों का वर्षक प्रसिद्ध है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी।
वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ११ ॥

भा०—जैसे वीर पुरुष की (अभीशवः कशा रथः हरी) रासें, चाबुक, रथ और घोड़े बलवान् हों तो वह युद्ध करने में समर्थ होता है वैसे ही हे (शतक्रतो) सैकड़ों बलों, ज्ञानों वाले! स्वामिन्! तेरी (ते अभीशवः) शासनकारिणी शक्तियां (वृषणः) बलवती हैं। (ते कशा) तेरी वाणी वेदमयी (हिरण्ययी) हितकारिणी है और (वृषा) ज्ञान के देने वाली है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ते रथः वृषा) तेरा रमणीय रूप और उपदेश भी सुखप्रद है। (ते हरी) तेरे उपासक स्त्री पुरुष (वृषणा) बलवान् हैं। (त्वं वृषा) तू स्वयं बलवान् है।

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥ १२॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! हे (ऋजीपिन्) सरल, धर्ममार्ग में मनुष्यों के प्रेरक! (सोता) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला (वृषा) बलवान्

होकर (ते सुनोतु) तेरा अभिषेक करे। तू उसको (आ भर) सब ओर से पुष्ट कर। हे (हरीणां स्थातः) विद्वानों, वीर पुरुषों के बीच स्थिर ! (तुभ्यं) तेरी ही वृद्धि के लिये (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं में (वृषा) बलवान् वीरसमूह (वृषणं) उत्तम प्रबन्धक, प्रमुख तुझ पुरुष को ही (दधन्वे) धारण करे।

एन्द्र॑ याहि पी॒तये॒ मधु॑ शविष्ठ सो॒म्यम्।
नायमच्छा॑ म॒घवा॑ शृ॒णव॒द् गिरो॒ ब्रह्मो॒क्था च॑ सु॒क्रतुः॑ ॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वा आत्मन् तू (मधु) सुखप्रद (सोम्यं) बलकारक ओषधि आदि रसवत् शिष्योचित विद्वानों के उपदेश को (पीतये) पान करने, श्रवण करने के लिये (आयाहि) आ। हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! (अयम्) यह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मकर्त्ता, (मघवा) धनवान् पुरुष भी (ब्रह्म उक्था च) वेदज्ञान और 'उक्थ' उत्तम वचन और (गिरः) वाणियों को (न अच्छ शृणवद्) साक्षात् श्रवण नहीं कर सकता। वह भी गुरु के समीप जाकर ही ज्ञान का श्रवण कर सकता है।

वह॑न्तु त्वा र॒थेष्ठा॒मा हर॑यो र॒थ॒युजः॑।
ति॒रश्चि॑द॒र्य सव॑नानि वृत्रह॒न्नन्येषा॒ं या श॑तक्रतो ॥ १४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने हारे ! (रथ-युजः) रथ में नियुक्त, (हरयः) अश्वों के समान, राष्ट्र में नियुक्त विद्वान् जन (रथेष्ठाम् त्वा) रथ पर अधिष्ठाता के समान विराजमान तुझको (या) जो (अन्येषां सवनानि) अन्यों के यज्ञ वा ऐश्वर्य हैं उनको भी (तिरः चित् आवहन्तु) उत्तम रीति से प्राप्त करावें।

अ॒स्माक॑म॒द्यान्त॒मं स्तोमं धिष्व महामह।
अ॒स्माकं॑ ते॒ सव॑ना सन्तु॒ शन्त॑मा॒ मदा॑य द्युक्ष सोमपाः १५।१६

भा०—हे (महामह) बड़ों के पूज्य ! तू (अद्य) आज (अस्माकं) हमारे (अन्तमं) समीपतम (स्तोमं) स्तुति-वचन को (धिष्व) धारण कर। हे (द्युक्ष) तेजस्विन् ! हे (सोम-पाः) ऐश्वर्यादि के पालक! (अस्माकं सवना) हमारे पूजा वा ऐश्वर्य (ते मदाय) तेरे आनन्द वृद्धि के लिये और (ते शन्तमा) तुझे अति शान्तिप्रद (सन्तु) हों। इति नवमो वर्गः ॥

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।
यो अस्मान्वीर आनयत् ॥ १६ ॥

भा०—(यः वीरः) जो वीर, विशेष विद्वान् (अस्मान्) हम सबको (आ अनयत्) आगे ले जाता है (सः) वह, हे मित्र ! (नहि तव, नो मम, अन्यस्य) न तेरे, न मेरे, या किसी और सामान्य पुरुष के (शास्त्रे रण्यति) शासन में प्रसन्न होता है। वह हमसे सर्वोपरि है।

इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः ।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः चित् घ) ज्ञानद्रष्टा विद्वान् भी (स्त्रियाः) 'स्त्री' अर्थात् संघात बनाकर रहने वाली प्रबल सेना के (तत् मनः) उस स्तम्भन बल को (अशास्यं अब्रवीत्) शासन न होने योग्य, अति प्रबल बतलाता है, (उतो) और उसके (रघुं) वेगयुक्त (क्रतुं) सामर्थ्य को भी (अशास्यं अह) अशास्य, अदम्य ही बतलाता है। पक्षान्तर में— उपदेश और गुण ग्रहण करने वाली शिक्षिता स्त्री का चित्त विशेष शासन की अपेक्षा नहीं करता, उसका कर्म सामर्थ्य भी, 'रघु' अर्थात् कुशल होता है।

सप्ती चिद् घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम् ।
एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥ १८ ॥

भा०—स्त्री और पुरुष (मिथुना) दोनों मिलकर (मदच्युता) आनन्द को प्राप्त करते हुए (सप्ती चित्) दो अश्वों के समान ही (रथम् वहतः) गृहस्थ रूप रथ वा गृहस्थ सुख को वहन करते और रथ में जैसे (धूः वृष्णः उत्तरा) धुरा बलवान् अश्व से अधिक ऊंची होती है वैसे ही (धूः) गृहस्थ या प्रजा को धारण करने में समर्थ स्त्री, (वृष्णः) वीर्यसेचक पुरुष की अपेक्षा (उत्तरा एव इत्) उत्कृष्ट गुणों से युक्त ही होती है। माता पिता से बड़ी है।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।

मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥१९॥१०॥

भा०—स्त्री को उपदेश ! हे स्त्रि ! तू (अधः पश्यस्व) नीचे देख, विनयशील हो। (मा उपरि) ऊपर मत देख, उद्धत मत हो। (पादकौ) दोनों पैरों को (संहरतराम्) अच्छी प्रकार एकत्र कर रख, असभ्यता से पैर मत फैला। (ते) तेरे (कशप्लकौ मा दृशन्) टखनों को कोई भी न देखे। ऐसे विनयाचार से तू (स्त्री हि) स्त्री होकर भी अवश्य (ब्रह्मा बभूविथ) वेदवेत्ता वा पूज्य हो सकती है। इति दशमो वर्गः ॥

[३४]

नीपातिथिः काण्वः। १६—१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः ऋषयः ॥ इन्द्रो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ८, १०, १२, १३, १५ निचृदनुष्टुप्। २, ४, ६, ७, ९ अनुष्टुप्। ५, ११, १४ विराडनुष्टुप्। १६, १८ निचृद्गायत्री। १७ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥

भा०—हे (दिवा-वसो) दिन में रहने वाले सूर्य तुल्य ज्ञानप्रकाश से अपने शिष्यों को बसाकर, उनको ज्ञानमय वस्त्र से आच्छादित करने

हारे विद्वन्! तू (अमुष्य) उस (शासतः) शासन करने वाले (दिवः) सूर्य समान तेजस्वी प्रभु के (दिवं) ज्ञान-प्रकाश को (यय) प्राप्त कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (हरिभिः) विद्वानों द्वारा, या हरणशील इन्द्रियादि अंगों सहित (कण्वस्य सुस्तुतिम् उप आ याहि) विद्योपदेष्टा के उत्तम उपदेश को प्राप्त कर, उसके पास जाकर शिष्यवत् ग्रहण कर।

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ २॥

भा०—हे विद्याभिलाषिन्! (इह) इस आश्रम में (सोमी) ज्ञानी शिष्यों का स्वामी (ग्रावा) विद्वान् (त्वा) तेरे प्रति (वदन्) उपदेश देता हुआ (घोषेण) वेद द्वारा (दिवः) तेजोमय (शासतः) शासक, (अमुष्य) उस प्रभु के (दिवं यच्छतु) प्रकाशमय तेज को प्रदान करे। हे (दिवावसो) विद्या कामना से गुरु के पास बसे विद्यार्थिन्! तू भी उसके (दिवं यय) ज्ञान को प्राप्त कर।

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ३॥

भा०—(वृकः उरां न) भेड़िया जिस प्रकार भेड़ को बल से (धूनुते) कंपा देता है। उसी प्रकार (एषां) इन विद्वानों का (वृकः) विशेष ज्योति को प्रकाशित करने वाला (नेमिः) अनुशासन (अत्र) इस लोक में (उराम्) अति विस्तृत वाणी को (विधूनुते) विशेष रूप से प्रदान करता है। (दिवः अमुष्य शासतः) अनुशासन करने वाले उस तेजस्वी ज्ञानी पुरुष के (दिवं) ज्ञानप्रकाश को हे विद्यार्थिन्! तू (यय) प्राप्त कर।

आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ४॥

भा०—हे विद्वन् ! गुरो ! (कण्वाः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (इह) इस आश्रम में (वाज-सातये) ज्ञान प्राप्त करने और (अवसे) रक्षा के लिये (त्वा आ हवन्ते) तुझे प्रार्थना करते हैं। (दिवः अमुष्य०) पूर्ववत्।

दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(वृष्णे पूर्व-पाय्यम्) बलवान् पुरुष को जैसे पूर्व ही पालन करने का उचित आदर-भेंट दिया जाता है वैसे ही हे विद्वन् ! (ते तुभ्जे) बरसते मेघवत् निष्पक्षपात होकर ज्ञान देने वाले तुझे मैं (सुतानां) अपने पुत्रों के (पूर्व-पाय्यं) पूर्ण पालन वा पूर्व आयु के पालन का भार (दधामि) प्रदान करता हूँ। पूर्ववत्। इत्येकादशो वर्गः ॥

स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे वीर ! तू (स्मत्-पुरन्धिः) सर्वोत्तम बहुत से ज्ञानों को धारण करने और बहुतों के भरण पोषण में समर्थ उत्तम शासक, गृहणीवत् उत्तम प्रबन्धक और (विश्वतः-धीः) सब तरफ जाने वाली बुद्धि, वा कर्म सामर्थ्य से सम्पन्न होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा और ज्ञान प्रदान के लिये (नः आगहि) हमें प्राप्त हो। पूर्ववत्।

आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

भा०—हे (महे-मते) महामते ! पूजनीय ज्ञानवन् ! हे (सहस्रोते) बलवान् वा सहस्रों रक्षा सामर्थ्यों से युक्त ! हे (शतामघ) सैकड़ों धनों के स्वामिन् ! तू (नः आ याहि) हमें प्राप्त हो। पूर्ववत्।

आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥

भा०—(दिवावसो) ज्ञान की कामना करने हारे ब्रह्मचारिन्! (देवत्रा ईड्यः) विद्वानों के बीच स्तुति करने योग्य पूज्य, (मनुः) ज्ञानवान् (हितः) हितकारी (होता) ज्ञानादि देने में समर्थ, कुशल पुरुष (त्वा आवसत्) तुझे धारण करे और उत्तम उपदेश कहे और तू भी (अमुष्य दिवं शासतः) आकाश और भूमि के शासक, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (यय) प्राप्त कर।

आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥

भा०—(श्येनं पक्षा इव) जैसे बाज नामक पक्षी को दोनों पांख बल पूर्वक वहन करते हैं और जैसे (श्येनं) श्येन व्यूह से गमन करने वाले वीर योद्धा को (पक्षा इव) आजू-बाजू के दोनों सेना दल (आ वक्षतः) सब तरफ से धारण करते हैं वैसे ही (त्वा श्येनं) तुझ उत्तम चरित्र से सम्पन्न पुरुष को (मद-च्युता) आनन्ददाता (हरी) स्त्री और पुरुष (पक्षा इव) ग्रहण करने, वा अपनाने वाले बन्धु जनों के तुल्य (आवक्षतः) आगे बढ़ावें और वचनोपदेश किया करें। (दिवोः अमुष्य० पूर्ववत्) ॥

आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे (अर्य) स्वामिन्! तू (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के पालन के लिये (आयाहि) आ और (स्वाहा) उत्तम वाणी और उत्तम दान से (सोमस्य परि आयाहि) सोम, ऐश्वर्य, शासन, राष्ट्र, अन्न और जीव गण के रक्षार्थ आ। पूर्ववत्। इति द्वादशो वर्गः ॥

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥

भा०—हे (दिवावसो) ज्ञानप्रकाश के हेतु ब्रह्मचर्य वास करने हारे! तू (नः) हम विद्वानों के (उप-श्रुति) समीप आकर ज्ञान श्रवण के निमित्त (आ याहि) प्राप्त हो और (उक्थेषु) वेद वचनों और उपदेशों के निमित्त (इह) इस आश्रम में (नः रणय) हमें उपदेश कर। पूर्ववत्।

सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः सम्भृताश्वः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन्। तू (सम्भृताश्वः) अश्वोंवत् विषयों को भोगने वाले इन्द्रियों को वश करके (संभृतैः) उत्तम रूप से पुष्ट और (सरूपैः) समान रूप, कान्ति से युक्त अंगों वा सहयोगियों सहित (नः सु गहि) हमें सुख से प्राप्त कर। (दिवः अमुष्य०) पूर्ववत्।

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (पर्वतेभ्यः) पर्वतों या मेघों से जलों के समान और (समुद्रस्य) समुद्र के (वि-स्तपः) ताप रहित शीतल स्थान से मेघमाला या पवन के समान (आ याहि) हमें प्राप्त हो। (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्)

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥

भा०—हे (शूर) वीर! तू (सहस्रा) बलवान् वा सहस्रों (गव्यानि अश्व्या) गौओं और अश्वों की (नः अदर्दृहि) हमारे लिये वृद्धि कर। वा हमारे ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राणों के (सहस्रा) अनेक ज्ञानों, बलों को बढ़ा (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे राजन्! शूर! तू (नः) हमें (सहस्राः अयुतानि शतानि च) सैकड़ों, हजारों और लाखों की संख्या में (आ भर) पुष्ट कर, वा हमें अनेक ऐश्वर्य दे। (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्) इति त्रयोदशो वर्गः॥

आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः।
ओजिष्ठमश्व्यं पशुम्॥ १६॥

भा०—हम लोग और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् राजा, नेता, (वसुरोचिषः) धन, प्रजादि की कान्ति से सम्पन्न होकर (ओजिष्ठं) अति पराक्रमशील, बलयुक्त, (अश्व्यं) अश्व बल से युक्त (पशुम्) पशु सम्पदा को (सहस्रं) सहस्र संख्या में (आ दद्वहे) प्राप्त करें।

य ऋज्रा वातंरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः। भ्राजन्ते सूर्या इव॥१७॥

भा०—(ये) जो (ऋज्राः) ऋजु, धर्म मार्ग से जाने वाले, (वातरंहसः) वायु के वेग से गमन करने वाले (अरुषासः) अति कान्तियुक्त वा रोषरहित, अति शान्त, (रघु-स्यदः) वेगवान् रथ से जाने वाले, वीर पुरुष (सूर्याः इव) सूर्यों के समान (भ्राजन्ते) चमकते हैं।

पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु।
तिष्ठं वनस्य मध्य आ॥ १८॥ १३॥

भा०—परम स्थान पर विराजमान, परम पालक प्रभु से (रातिषु) दिये ऐश्वर्यों के बीच में और (द्रवत्-चक्रेषु) अति शीघ्रता से चलने वाले, चक्रों से युक्त, (आशुषु) शीघ्रगामी अश्वों, सैन्यों से बीच में सुरक्षित रहकर (वनस्य मध्ये) जल के बीच कमलवत्, तेजों के बीच सूर्यवत् और ऐश्वर्यों के बीच में (आ तिष्ठम्) विराजूं। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[३५]

श्यावाश्व ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ५, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप्॥ ७—९, १३ निचृत् त्रिष्टुप्। ६, १०—१२, १४, १५; १७

भूरिक् पंक्तिः । २०, २१, २४ पंक्तिः । १९, २२ निचृत् पंक्तिः । २३ पुरस्ताज्ज्योतिर्नामजगती ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निनेन्द्रे॑ण॒ वरु॑णेन॒ विष्णु॑नादि॒त्यै रु॒द्रैर्वसु॑भिः सचा॒भुवा॑ ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ पिबतमश्विना ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो ! आप दोनों (अग्निना) अग्नि (इन्द्रेण) विद्युत्, (वरुणेन) जल, (विष्णुना) व्यापक, एवं विविध पदार्थों के शोधक, सूर्य (आदित्यैः) सूर्य की किरणों और (रुद्रैः वसुभिः) रोग-नाशक और जीव के बसाने योग्य साधनों से और (उषसा सूर्येण) प्रभात की दीप्ति और सूर्य के समान (स-जोषसा) समान प्रीति युक्त होकर (सचाभुवा) साथ-साथ, सहयोगी बनकर (सोमं पिबतम्) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्य, उत्पन्न जगत् और पुत्र राष्ट्रादि का पालन करो तथा ऐश्वर्य अन्न जलादि का उपभोग करो ।

विश्वा॑भिर्धी॒भिर्भुव॑नेन वाजिना दि॒वा पृ॑थि॒व्याद्रि॑भिः सचा॒भुवा॑ ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ पिबतमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(उषसा सूर्येण च) सूर्य की प्रातःकालीन उषा और 'सूर्य' के समान (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् उत्तम सहयोगी स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (वाजिना सचाभुवा) बल, दान, ऐश्वर्यादि के स्वामी और एक साथ संगत रहते हुए (विश्वाभिः धीभिः) समस्त वाणियों, कर्मों, ज्ञानों से और (भुवनेन) उत्पन्न संसार और (दिवा पृथिव्या) सूर्य और पृथिवी और (अद्रिभिः) मेघों से उत्पन्न (सोमं) ऐश्वर्य, अन्नादि का (पिबतम्) उपभोग करो ।

विश्वै॑र्दे॒वैस्त्रि॒भिरे॑काद॒शैरि॒हाद्भिर्म॒रुद्भि॒र्भृगु॑भिः सचा॒भुवा॑ ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ पिबतमश्विना ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों (सचाभुवा) एक साथ (स-जोषसा) प्रेमपूर्वक (उषसा सूर्येण च) उषा, सूर्य के सदृश सुशोभित रहकर (त्रीभिः एकादशैः) तीन ग्यारह, अर्थात् ३३ (विश्वैः देवैः) समस्त विद्वानों (अद्भिः) जलवत् शान्तिदायक आप्त जनों, (मरुद्भिः) वातों के समान बलवान्, (भृगुभिः) दुष्टों के नाशकारी, तेजस्वी पुरुषों द्वारा (सोमं पिबतम्) ऐश्वर्य का पालन और उपभोग करो।

जुषेथां युज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (यज्ञं) यज्ञ, परस्पर सत्संग और दान का (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक सेवन करो और (मे हवस्य) मेरे उत्तम स्तुतियुक्त आह्वान वा उपदेश का (बोधतम्) अच्छी प्रकार ज्ञान करो। आप दोनों (देवौ) कामनायुक्त होकर (इह) इस जगत् में (विश्वा सवना अव गच्छतम्) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करो। आप दोनों (उषसा सूर्येण च सजोषसा) उषा और सूर्य के समान प्रीति युक्त होकर (नः) हमारे लिये (इषं आ वोढम्) उत्तम अन्न प्राप्त करो।

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥

भा०—(युवशा इव) जैसे उत्तम युवा-युवति दोनों (सजोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर (कन्यनां स्तोमं जुषतः) कन्याओं वा गृह में विद्यमान मित्रों के स्तुति वचनों के पात्र होते हैं वैसे ही हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (उषसा सूर्येण च) कामना युक्त स्त्री पुरुष और सूर्यवत् तेजस्वी प्रजोत्पादन-समर्थ पुरुष से स्त्री (स-

जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर (देवौ) उत्तम व्यवहार, एवं दानशील होकर (इह) इस संसार से (विश्वा सवना) यज्ञ, प्रजाएं तथा ऐश्वर्यों को (अव गच्छतम्) प्राप्त करें। (च) और (नः) हमें (इषं वोळम्) हमारी इच्छाएं प्राप्त करावें।

गिरो॑ जुषेथामध्व॒रं जु॑षेथां॒ विश्वे॒ह दे॑वौ॒ सव॒नाव॑ गच्छतम् ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चेषं॑ नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) बलवान् स्त्री-पुरुषो! आप लोग (गिरः जुषेथाम्) उपदेष्टा पुरुषों और वेद वाणियों का सेवन करो। (देवौ) कामना-युक्त होकर (अध्वरं जुषेथाम्) अहिंसाव्रत का सेवन करो (इह विश्वा सवना अव गच्छतम्) यहां जगत् में समस्त ऐश्वर्यों, ज्ञानादि को प्राप्त करो। (स-जोषसा उषसा) कान्तिमती प्रभात वेला वा दाहक शक्ति और (स-जोषसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त, सूर्यवत् तेजस्वी के साथ प्रीतियुक्त होकर (इषं वोढम्) वृष्टि आदि के तुल्य उत्तम कामना धारण करो। इति चतुर्दशो वर्गः।

हा॒रि॒द्र॒वेव॑ पतथो॒ वनेदुप॒ सोमं॑ सु॒तं म॑हि॒षेवाव॑ गच्छथः ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ त्रिर्व॒र्तिर्या॑तमश्विना ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (हारिद्रया इव वना) दो हरिद्रव नामक जल-पक्षी जलों में (पतथः) सुखपूर्वक गति करते हैं वैसे ही हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों सेवने योग्य ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर आगे बढ़ो। (महिषा इव सोमं) जैसे दो महिष, अरणा भैंसा वा भैंसी, (वना इव उपपतथः) वनों में विचरते, भोग्य सुखों को समीप रहकर प्राप्त करते हैं वैसे ही तुम दोनों भी (महिषा) दानशील होकर (उप पतथः) नाना भोग्य पदार्थों को प्राप्त करो, (सुतं सोमं अव गच्छथः) उत्पन्न सौम्य, पुत्र वा शिष्य को प्राप्त करो। (सजोषसा, उषसा, सजोषसा सूर्येण च)

प्रीतियुक्त, प्रभात वेलावत् कान्तियुक्त स्त्री से पुरुष और प्रीतियुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से स्त्री समान प्रीतियुक्त होकर दोनों (त्रिः वर्त्तिः यातम्) तीन परिक्रमा अथवा, तीन प्रकार के मार्ग का गमन अर्थात् तीन आश्रमों का पालन करें।

हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों (हंसौ इव) दो राजहंसों के समान और (अध्वगौ इव) दो पथिकों के समान (पतथः) गमन करो। (शेष पूर्ववत्—)

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो! आप दोनों (हव्य-दातये) ग्राह्य पदार्थ वा उत्तम खाद्य पदार्थ के देने वा यज्ञ के लिये (श्येनौ इव) दो श्येनों के समान वेग से उत्तम विमान रथादि से जाते हुए वा उत्तम आचारवान् होकर (सुतं सोमं अव गच्छथः) यज्ञ में उत्पादित सोम ओषधि, रस, तद्वत् आनन्द को प्राप्त करो। शेष पूर्ववत्।

पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! हे अश्वादि के स्वामी नायक वा सैन्य जनो! आप दोनों (पिबतं च तृप्णुतं च) पान करो, ऐश्वर्य का भोग करो और तृप्त भी होवो, (आ गच्छतं च) आओ और (प्रजां च आ धत्तम्) उत्तम सन्तान धारण करो और (द्रविणं च आ धत्तम्) धन भी प्राप्त करो और (नः ऊर्जं च धत्तम्) परस्पर प्रीतियुक्त होकर हमारे बीच बल और अन्न धारण करो। (शेष पूर्ववत्)

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥

भा०—(जयतं च) दोनों आप जय प्राप्त करो, (प्र स्तुतं च) उत्तम रीति से स्तुति करो और (प्र अवतं च) अच्छी प्रकार रक्षा भी करो (प्रजां च धत्तं, द्रविणं च धत्तम्) प्रजा और धन को धारण करो। (शेष पूर्ववत्—)

हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १२ ॥ १५ ॥

भा०—(शत्रून् हतं च) और शत्रुओं को मारो। (मित्रिणः यततं च) स्नेहयुक्त जनों को बलपूर्वक प्राप्त करो, (शेष पूर्ववत्—) इति पञ्चदशो वर्गः ॥

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों (मित्रा-वरुण-वन्ता) स्नेहवान्, श्रेष्ठ पुरुषों, ब्राह्मण, क्षत्रिय राजाओं से युक्त, (धर्म-वन्ता) धर्मवान् और (मरुत्वन्ता) उत्तम प्राणों, मनुष्यों और बलवान् पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) उपदेष्टा के उपदेश को प्राप्त करो। (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा सूर्यवत् समान प्रीतियुक्त हो (आदित्यैः यातम्) किरणोंवत् तेजस्वी पुरुषों के साथ, वा बारहों महीने (यातम्) जीवन-मार्ग पर गमन करो।

अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—आप दोनों (अंगिरस्वन्ता) उत्तम विद्वानों और देह में बलवान् प्राणों से युक्त (उत) और (विष्णुवन्ता) व्यापक सामर्थ्य से

युक्त (मरुत्वन्ता) उत्तम पुरुषों वा प्राणों से युक्त होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान् उपदेष्टा के यज्ञ, वा उपदेश को रणवत् प्राप्त करो। (शेष पूर्ववत्—)

ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १५ ॥

भा०—आप दोनों (ऋभु-मन्ता) सत्य ज्ञान से चमकने वाले पुरुषों से युक्त, (वृषणा) सुखों के दाता, (वाजयन्ता) ज्ञानवान्, (मरुत्वन्ता) प्राणों और पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान् के आह्वान वा उपदेश प्राप्त करो। (शेष पूर्ववत्—)

ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १६ ॥

भा०—आप दोनों (ब्रह्म जिन्वतम्) ज्ञान, वेद और धन की वृद्धि करो, (धियः धिन्वतम्) बुद्धियों और सत्कर्मों की वृद्धि करो, (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों, विघ्न करने वालों को (हतम्) मारो और (अमीवाः) रोगों को (सेधतम्) दूर करो। (सुन्वतः सोमम्) यज्ञ करने, सोम सवन करने वाले का सोम पान करें वा ऐश्वर्य उत्पादक प्रजा के (सोमं) ऐश्वर्य का उपभोग और रक्षण करें। (शेष पूर्ववत्—)

क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन्हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १७ ॥

भा०—(क्षत्रं जिन्वतम्) आप दोनों धन और बल-वीर्य की वृद्धि करो। (नॄन् जिन्वतम्) नायक पुरुषों को बढ़ावो। (शेष पूर्ववत्—)

धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१८॥१६॥

भा०—(धेनूः जिन्वतम्) गौओं की वृद्धि करो, उनको अन्न, घास

अन्नादि से खूब तृप्त, प्रसन्न कर रक्खो और (विशः जिन्वतम्) प्रजाओं को बढ़ाओ, उनको तृप्त रक्खो। शेष पूर्ववत्। इति षोडशो वर्गः॥

अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम्॥ १९॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनो (अत्रेः इव) तीनों दुःखों, बन्धनों, आश्रमों से रहित सन्यासी पुरुष के समान (सुन्वतः) शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) रक्त श्याम अश्वों के स्वामी, राजा वा जितेन्द्रिय, विद्वान् की (पूर्व्यं-स्तुतिं) श्रेष्ठ स्तुति या उपदेश को (मद-च्युता) हर्षित होकर (शृणुतं) श्रवण करो। (सूर्येण उषसा स-जोषसा) सूर्य और उषावत् परस्पर प्रीतियुक्त होकर (तिरः-अह्न्यम्) दिनावसान और दिन प्राप्ति के प्रातः-सायं कृत्यों का पालन करो।

सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम्॥ २०॥

भा०—आप दोनों शासन करने वाले (श्यावश्वस्य) उत्तम अश्वों के स्वामी राजा वा जितेन्द्रिय विद्वान् की (सु-स्तुतिः) उत्तम स्तुतियों और उपदेशों को (सर्गान् इव उप सृजतम्) आभूषणों के समान धारण करो, वा जलों के समान पान वा उत्तम पदार्थों के समान उपभोग करो। (शेष पूर्ववत्—)

रश्मींरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम्॥ २१॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो! आप दोनों (मद-च्युता) हर्षप्रद होकर (सुन्वतः) सवन, ऐश्वर्य वा शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान् उत्तम अश्वों वाले पुरुषों के (अध्वरान्) यज्ञों, न विनष्ट होने वाले, प्रबल जनों को

(रश्मीन् इव) रश्मियों के समान (उप यच्छतम्) नियन्त्रित करो।
(शेप पूर्ववत्—)

अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप लोग (रथं) रथ के तुल्य रमण या सुख के साधन देह और आत्मा को (अर्वाक्) अपने समक्ष (नियच्छतं) नियम में रक्खो और (सोम्यं मधु) ओषधि-रस से मिश्रित अन्न, या मधु के समान आत्मा या परमेश्वर के मधुर सुख को (पिबतम्) पान करो। (अहं अवस्युः वां हुवे) मैं रक्षार्थी आप को बुलाता हूँ। आप दोनों (आयातम्) आवें (गतम्) जावें, (दाशुषे) दानशील पुरुष को नाना (रत्नानि) रत्नादि, सुखप्रद पदार्थ (धत्तम्) दें।

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२३॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (नरा) हे नायकनेय जनो ! (अध्वरे) यज्ञ में (नमो-वाके प्रस्थिते) नमःयुक्त वचन प्रारम्भ होने पर (विवक्षणस्य) विशेष वहन तथा वचन योग्य पद या ज्ञान के (पीतये) रक्षा और पान के लिये आप (आयातम्) आवें और (गतम्) जावें। मैं (अवस्युः) रक्षा और ज्ञान-तृप्ति चाहता हुआ (वां हुवे) आप दोनों को बुलाता हूँ, आप (दाशुषे रत्नानि धत्तम्) आत्म-समर्पक पुरुष को उत्तम २ पदार्थ दें।

स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे २४।१७

भा०—हे (देवा) विद्वान्, दानशील पुरुषो ! आप दोनों, (स्वाहा-

कृतस्य) आहुति किये वा उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसित (सुतस्य) कूट, पीस, छान कर तैयार किये (अन्धसः) अन्न और जीवनप्रद ओषधि पदार्थ से (तृम्पतम्) क्षुधा की तृप्ति करो। (शेष पूर्ववत्–) इति सप्तदशो वर्गः॥

[३६]

श्यावाश्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ६ शक्वरी। २, ४ निचृच्छक्वरी। ३ विराट् शक्वरी। ७ विराड् जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते॥ १॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनेक प्रज्ञानों और कर्म करने हारे! राजन्! हे (इन्द्र) विद्वन्! तू (सुन्वतः) उपासना करने वाले, (वृक्त-बर्हिषः) आसनार्थ कुशादि बिछाकर बैठे विद्वान् का (अविता असि) रक्षक है। तू (मदाय) आनन्द लाभ के लिये (सोमं पिब) सोम, उत्पन्न जगत्, पुत्रवत् प्रजा शिष्यादि का पालन कर। हे (सत्पते) सज्जनों के पालक! (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाशक! तू (मरुत्वान्) बलवान् पुरुषों का स्वामी होकर (अप्सु-जित्) प्राप्त प्रजाओं में सर्वातिशायी होकर (उरु ज्रयः) बड़े भारी वेग और बल को तथा (विश्वाः पृतनाः) समस्त सेनाओं को (संसेहानः) पराजित करता हुआ (सोमं पिब) उस ऐश्वर्य का भोग कर (यं भागं) जिस अंश को (ते) तेरे लिये (अधारयन्) निर्धारित किया है।

प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते॥ २॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (स्तोतारं प्र अव) तू स्तुति-

कर्त्ता, विद्वान् उपदेष्टा की अच्छी प्रकार रक्षा कर और (त्वां प्र अव) तू तृप्त हो। (पिबा सोमं० पूर्ववत्) त्वां। त्वं। छान्दसो दीर्घः विभक्ति-व्यत्ययः सोरम वा।

ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो। यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥

भा०—(त्वां = त्वं) तू (देवान्) सुख, ऐश्वर्यादि चाहने वाले विजिगीषु, विद्वान् जनों को (ऊर्जा ओजसा) अन्न, बल और पराक्रम से (अवसि) रक्षा करने में समर्थ है, अतः तू (हे शतक्रतो मदाय सोमं पिब०) पूर्ववत्।

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो। यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने और सैकड़ों ज्ञानों के जानने हारे! प्रभो! तू (दिवः जनिता) सूर्य व आकाश का (जनिता) उत्पादक और (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का उत्पादक है। हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनों के पालक तू (मरुत्वान्) समस्त जीवों का स्वामी और (अप्सु-जित्) प्राणों, प्रकृति के परमाणुओं और समस्त लोकों में व्यापक रहकर सबको वश करने वाला, (उरुज्रयः) महान् बलस्वरूप होकर (यं) जिस (ते) तेरे दिये (भागम्) सेवनीय अन्न को वे (अधारयन्) धारण करते हैं उसी से तू उन (विश्वाः पृतनाः संसेहानः) समस्त जीव प्रजाओं को अच्छी प्रकार तृप्त करता हुआ (मदाय) परमानन्द लाभ के लिये (सोमं पिब) समस्त जगत् का पालन करता है।

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।

यं ते॑ भा॒गम॑धा॒रय॒न् विश्वा॑: सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सुजि-न्म॒रुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र, सत्पते, शतक्रतो) ऐश्वर्यवन् ! सज्जनों के पालक, सैकड़ों यज्ञों, कर्मों के स्वामिन् ! तू (अश्वानां जनिता, गवां जनिता असि) अश्वों और गौओं, सूर्यों और भूमियों का भोक्ता आत्मा और इन्द्रियों का भी उत्पादक है। (शेष पूर्ववत्—)

अत्री॑णां॒ स्तोम॑मद्रिवो म॒हस्कृ॑धि॒ पिबा॒ सोम॒ं मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो । यं ते॑ भा॒गम॑धा॒रय॒न् विश्वा॑: सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सुजि-न्म॒रुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामिन्, तेजस्विन् ! वा अखण्ड शक्तियों के स्वामिन् ! तू (अत्रीणां) तीनों दुःखों से रहित, जनों के (स्तोमं) स्तुति वचन को (महः कृधि) पूजित, पूर्ण कर। हे राजन् ! तू (अत्रीणां) इस राष्ट्र में विद्यमान प्रजाओं की प्रार्थना का आदर कर। (शेष पूर्ववत्—)

श्या॒वाश्व॑स्य सुन्व॒तस्तथा॑ शृणु॒ यथाशृ॑णो॒रत्रेः॒ कर्मा॑णि कृण्व॒तः । प्र त्र॒सद॑स्युमाविथ॒ त्वमेक॒ इन्नृ॒षाह्य॒ इन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि व॒र्धय॑न् ॥७॥१८

भा०—(कर्माणि कृण्वतः) कर्म करने वाले (अत्रेः) 'अत्रि' अर्थात् त्रिविध दुःखों वा बन्धनों से रहित शुद्धात्मा जन की स्तुति को (यथा अश्रणोः) जैसे श्रवण करता है वैसे ही (सुन्वतः) पूजा करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान्, जितेन्द्रिय पुरुष के भी (स्तोमम् अश्रणोः) स्तुति वचन को श्रवण करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (ब्रह्माणि वर्धयन्) ज्ञानों और धनों की वृद्धि करता हुआ (नृसाह्ये) मनुष्यों और नायकों को वश करने में (एकः इत्) अकेला ही (त्रसदस्युम् त्रसद्-अस्युम्) दस्युओं को भय देने वाले सैन्य बल को वा दस्यु से

भयभीत प्रजाजन को (प्र आविथ) उत्तम रीति से रक्षा कर। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३७]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवताः ॥ छन्दः—१ विराड्तिजगती। २—६ निचृज्जगती। ७ विराड् जगती। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। माध्यंन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥

भा०—सूर्य जैसे (वृत्र-तूर्येषु ब्रह्म प्र अवति) मेघ के आघातों या जलों के वेगवत् प्रवाहों पर अन्नों की रक्षा करता है और (सुन्वतः) उत्पन्न जीवों की रक्षा करता है वह (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिबति) मध्याह्न में तीव्र ताप से जल का पान करता वा जगत् की रक्षा करता है वैसे ही हे (इन्द्र) शत्रुओं का नाश करने हारे! तू (वृत्रतूर्येषु) शत्रुओं और विघ्नों को नाशक कार्यों के निमित्त (इदं ब्रह्म प्र आविथ) इस महान् ऐश्वर्य की अच्छी प्रकार रक्षा कर और (सुन्वतः प्र आविथ) सवन अर्थात् ऐश्वर्य उत्पन्न करने वा तेरा अभिषेक करने वाले प्रजागण की भी (विश्वाभिः ऊतिभिः आविथ) समस्त रक्षाकारिणी शक्तियों, सेनाओं द्वारा रक्षा किया कर। हे (अनेद्य) अनिन्दनीय! हे स्तुति योग्य! हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन्! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक! तू (मध्यन्दिनस्य) दिन के मध्य में विद्यमान सूर्य-तेज के समान (सवनस्य) बलयुक्त शासन के (सोमस्य) ऐश्वर्य राष्ट्र आदि का, हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक! (पिब) उपभोग और पालन कर।

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। माध्यंन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिव ॥२॥

भा०—हे (शचीपते इन्द्र) शक्तिशालिन्! मतिमन्! ऐश्वर्य-शालिन्! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त शक्तियों से (द्रुहः पृतनाः) द्रोह करने वाले मनुष्यों को (अभि सेहानः) पराजित करके अथवा (द्रुहः अभि सेहानः) द्रोहियों को पराजित और (पृतनाः अभि सेहानः) मनुष्यों प्रजाओं को अन्नादि से तृप्त करता हुआ, हे (उग्र) बलवन्! हे (अनेद्य) अनिन्द्य! प्रशंसनीय! हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन्! हे (वृत्र-हन्) दुष्ट, विघ्नकर्त्ताओं के नाशक! तू (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोम-स्य पिब) मध्य दिन के सूर्यवत् शासन और ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥३॥

भा०—हे (शचीपते) सर्वशक्तिमन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू (अस्य भुवनस्य) इस भुवन, जगत् ब्रह्माण्ड के बीच (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षक शक्तियों द्वारा (एकराट्) अद्वितीय प्रकाशमान होकर, एक छत्र सम्राट् के समान (राजसि) विराजता है, विश्व के राजा के समान शासन करता है। (मध्यन्दिनस्य०) इत्यादि पूर्ववत्।

सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥४॥

भा०—हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक! जिस प्रकार (सस्थावाना) समान बल से युद्धार्थ खड़े दो बलवान् राष्ट्रों को मध्यम राजा जुदा २ कर थामे रहता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! तू भी (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब शक्तियों से सम्पन्न होकर (सस्थावाना) समान बल से स्थिर सूर्य पृथिवी आदि लोकों को परस्पर के तुलित बल से (एकः त्वम्) अकेला ही तू (यवयसि) पृथक् २ थामे रहता है। (शेष पूर्ववत्—)

क्षेम॑स्य च प्र॒युज॑श्च॒ त्वमी॑शिषे शचीपत इन्द्र॒ विश्वा॑भिरू॒तिभि॑: ।
माध्य॑न्दिनस्य॒ सव॑नस्य वृत्रहन्ननेद्य॒ पिबा॒ सोम॑स्य वज्रिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे (शचीपते) शक्तिशालिन् ! (त्वम्) तू (क्षेमस्य च ईशिषे) प्रजाओं की रक्षा और (प्रयुजः च ईशिषे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने और प्राप्त हुए नाना ऐश्वर्यों का भी स्वामी है। (शेष पूर्ववत्-)

क्ष॒त्राय॑ त्व॒मव॑सि॒ न त्व॑माविथ शचीपत इन्द्र॒ विश्वा॑भिरू॒तिभि॑: ।
माध्य॑न्दिनस्य॒ सव॑नस्य वृत्रहन्ननेद्य॒ पिबा॒ सोम॑स्य वज्रिवः ॥ ६ ॥

भा०—हे (शचीपते) तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षक शक्तियों से धनैश्वर्य और बल वृद्धि के लिये (अवसि) रक्षा करता है। (शेष पूर्ववत्---)

श्या॒वाश्व॑स्य॒ रेभ॑त॒स्तथा॑ शृणु॒ यथाशृ॑णो॒रत्रे॒: कर्मा॑णि कृण्व॒तः ।
प्र त्र॒सद॑स्युमावि॒थ त्वमेक॒ इन्नृ॒षाह्य॒ इन्द्र॒ क्ष॒त्राणि॑ व॒र्धय॑न् ७॥१९

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा कर्माणि कृण्वतः तथा) नाना कर्म करने वाले (अत्रेः) विविध बन्धनों से रहित या, इस संसार या राष्ट्र में विद्यमान मनुष्यों के समान ही (रेभतः श्यावाश्वस्य शृणु) स्तुति और उपदेशकर्त्ता जितेन्द्रिय पुरुष के वचनों को भी सुन। और (नृ-सह्ये) नायक पुरुषों द्वारा विजय-योग्य संग्राम में (क्षत्राणि वर्धयन्) बलों की वृद्धि करता हुआ (त्वम् एकः इत्) तू अद्वितीय ही सर्वोपरि, (त्रसदस्युम् प्र आविथ) दुष्टों को उखाड़ देने वाले बल की खूब रक्षा कर। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३८]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्राग्नि देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ९ गायत्री । ३, ५, ७, १० निचृद्गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! हे ज्ञानवन् ! तुम दोनों विद्युत् और अग्नि के समान (यज्ञस्य ऋत्विजा) यज्ञ को ऋतु २ में अनुष्ठान करने वाले (वाजेषु) धनों और ज्ञानों में (सस्नी) निष्णात, अन्यों को भी निष्णात करने वाले और (कर्मसु) कर्मों में भी (सस्नी) शुद्ध, दक्ष (हि स्थः) होवो। आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस यज्ञ का ज्ञान करो।

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्निवत् शत्रुनाशक राजन् ! और ज्ञानवन् विद्वन् ! आप दोनों (तोशासा) अज्ञानों और दुष्टाचरणों का नाश करते हुए (रथ-यवाना) स्वयं वेगवान् रमण योग्य, वा उत्तम यान से जाने वाले, (वृत्र-हणा) बढ़ते शत्रु को दण्ड देने वाले, (अप-राजिता) अजेय होवो। आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस प्रजाजन को जानो।

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ३

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! नेतः ! (वां) आप दोनों के लिये (नरः) उत्तम नायक जन (इदं मदिरं) इस हर्षदायक (मधु) अन्न, ज्ञानों और बल को (अद्रिभिः) पर्वत और शस्त्रास्त्र बलों वा पाषाणादि से (अधुक्षन्) दोहें, प्राप्त करें। (तस्य बोधतम्) आप दोनों उस ज्ञान को भी भली प्रकार जानें।

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ४

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि के तुल्य (नरा) उत्तम

नायक, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्ति के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, सत्संग, दान का (जुषेथाम्) सेवन करो, आप दोनों (सध-स्तुती) एक साथ स्तुति प्राप्त कर (सुतं सोमं) उत्पन्न पुत्र को, ऐश्वर्य को और ओषध्यादि रस को भी (जुषेथां) प्राप्त करो। (आ गतम्) और आदरपूर्वक आवो।

इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ५

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी वा वायु, अग्निवत् परस्पर के सहायक! एक दूसरे से चमकने, बढ़ने वाले, (नरा) नायको, वा स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आओ ! (इमा सवना) ये नाना धन, ऐश्वर्य (जुषेथां) प्रेम से प्राप्त करो, (येभिः हव्यानि) जिनों से नाना उत्तम खाद्य पदार्थ भी (ऊहथुः) प्राप्त करो।

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ५।२०

भा०—हे (इन्द्राग्नी नरा) अग्निवत् नायक जनो! आप दोनों (आ गतं) आओ। (इमां) इस (गायत्र-वर्तनिं) गायत्री छन्द में इस पृथिवी पर विद्यमान (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति, उपदेश वा तप को (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो। इति विंशो वर्गः ॥

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (जेन्यावसू) विजय करने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! आप दोनों (प्रातः-यावभिः) प्रातःकाल वा जीवन के पूर्व भाग में ही प्राप्त होने वाले (देवेभिः) विद्वान् जनों से (सोम-पीतये) उत्तम ज्ञान ग्रहण करने और बलवीर्य की रक्षा करने के लिये आप (आ गतम्) आओ।

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ८

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य, अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों

(सोम पीतये) उत्तम ज्ञान-दान करने और उत्तम वीर्य की रक्षा के लिये (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) शासन करने वाले, जितेन्द्रिय विद्वान् और (अत्रीणां) त्रिविध दुःखों से रहित, संन्यासियों के (हवम्) उत्तम उपदेश को (शृणुतम्) श्रवण करो।

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः। इन्द्राग्नी सोमपीतये ९

भा०—(यथा) जैसे (मेधिरा) विद्वान्, मेधावी पुरुष (वाम्) आप दोनों को अपने पास (सोम-पीतये) ज्ञान-ग्रहण और वीर्य-पालन के लिये (आहुवन्त) बुलाते रहे हैं। हे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो! (एवा) वैसे ही मैं भी (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ऐश्वर्य और पुत्र-प्रजादि के उपभोग और पालन के लिये बुलाता हूँ।

आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे।
याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(अहं) मैं (सरस्वतीवतोः) उत्तम वेदवाणी वाले (इन्द्राग्न्योः) ऐश्वर्य और तेज को धारण करने वाले ज्ञानी स्त्री-पुरुषों के (अवः) ज्ञान और रक्षा की (वृणे) याचना करता हूँ, (याभ्याम्) जिनके आदरार्थ (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र वा गायत्र साम द्वारा (ऋच्यते) स्तुति की जाती है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[३९]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ २ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६—८ स्वराट् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्। ९ निचृज्जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निमस्तोष्यृग्मियमग्निमीळा यजध्यै। अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कविरन्तश्चरति दूत्यं नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

भा०—मैं (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (अग्निम्) तेजस्वी प्रभु,

२७ प.

विद्वान्, नेता की (अस्तोषि) स्तुति करता हूँ, (यजध्यै) सत्संग और पूजा के लिये उसी (अग्निम्) ज्ञानी की (इडा) वाणी द्वारा स्तुति करूं। वह (अग्निः) अग्निवत् प्रकाशक (नः) हमारे (देवान्) किरणोंवत् दिव्य गुणों, वा ज्ञानेच्छुक शिष्य जनों को (अनक्तु) प्रकट करे और ज्ञान द्वारा प्रकाशित करे। वह (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (विदथे) यज्ञ में अग्नि के तुल्य ज्ञान-लाभ के कर्म में (उभे हि अन्तः) आकाश और भूमि के बीच सूर्य के समान तेजस्वी होकर राजा-प्रजा, मित्र वा शत्रु, दोनों वर्गों के बीच विचरता है। (समे अन्यके) अन्य समस्त शत्रु स्वयं (नभन्ताम्) नष्ट हों।

न्य॑ग्ने॒ नव्य॑सा॒ वच॑स्त॒नूषु॒ शंस॑मेषाम्। न्यरा॑ती॒ ररा॑व्णां॒ विश्वा॑ अ॒र्यो अरा॑तीरि॒तो यु॑च्छन्त्वा॒मुरो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! (एषां तनूषु) इनके शरीरों या आत्माओं में (नव्यसा वचः) नवीन, स्तुति वचन से (शंसं) उत्तम उपदेश (निधेहि) स्थापित कर, वे विद्वान् बनें। और (रराव्णां) दानशीलों के बीच जो (अरातीः) अदानशील हैं उन (विश्वाः) सबको (अर्यः नि) स्वामी होकर तू निकाल, दण्डित कर और (आमुरः) मूढ या मारामारी करने वाले हिंसक (अरातीः) शत्रु लोग भी (इतः नि युच्छन्तु) इस राष्ट्र से दूर हों और (समे अन्यके) समस्त अन्य शत्रु जन (नभन्ताम्) नष्ट हों।

अग्ने॒ मन्मा॑नि॒ तुभ्यं॒ कं घृ॒तं न जु॑ह्व आ॒सनि॑। स दे॒वेषु॒ प्र चि॑किद्धि॒ त्वं ह्यसि॑ पू॒र्व्यः शि॒वो दू॒तो वि॒वस्व॑तो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (घृतं न आसनि जुह्वति) जैसे अग्नि के मुख अर्थात् ज्वाला में यज्ञकर्त्ता लोग घृत की आहुति देते हैं वैसे ही हे शिष्य वा विद्वान्! मैं गुरु (तुभ्यं आसनि) तेरे हितार्थ, तेरे मुख

में (मन्मानि) मनन-योग्य वचनों को (जुह्वे) प्रदान करता हूँ। (सः) वह तू (प्र चिकिद्धि) अच्छी प्रकार जान, (हि त्वं) क्योंकि तू (पूर्व्यः) पूर्ण ज्ञानी, उत्तम पद योग्य वा (शिवः) कल्याणकारी, (विवस्वतः) विविध विद्यार्थी रूप वसुओं के स्वामी गुरु आचार्य के (दूतः) ज्ञानमय संदेश को दूर तक पहुंचाने में दूत के समान ही (असि) है। इस प्रकार ज्ञान धारण करते हुए के (समे अन्यके) समस्त अन्य तुच्छ, विरोधी, विघ्नकारक जन (नभन्ताम्) नष्ट हों।

तत्त॑द॒ग्निर्वयो॑ दधे॒ यथा॑यथा कृप॒ण्यति॑ ऊ॒र्जाहु॑ति॒र्वसू॑नां शं च॒ योश्च॒ मयो॑ दधे॒ विश्व॑स्यै दे॒वहू॑त्यै नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ४ ॥

भा०—(यथा यथा कृपण्यति) जिस २ प्रकार का बल वा अन्न याचक चाहता है (अग्निः तत् तत् वयः दधे) गृहपति, स्वामी जन वैसा २ ही बल वा अन्न उसे प्रदान करता है वैसे ही शिष्य भी (यथा यथा कृपण्यति) जिस २ विज्ञान की याचना करे (अग्निः तत् तत् वयः दधे) ज्ञानी, गुरु उसी २ प्रकार का विज्ञान उसे धारण करावे इसी प्रकार प्रजाजन राजा वा नायक से जैसा (वयः) बल अन्नादि चाहे उसी २ प्रकार का वह धारण करे। (वसूनां ऊर्जाहुतिः) गुरु के अधीन बसने वाले शिष्यों को बल, ज्ञान, अन्नादि का दान (विश्वस्यै देवहूत्यै) समस्त प्रकार के शुभ गुणों को प्राप्त कराने के लिये (शं च योः च) शान्ति देता, दुःख दूर करता और (मयः दधे) सुख प्रदान करता है। (वसूनां ऊर्जाहुतिः विश्वस्यै देवहूत्यै) और (अन्यके समे) और सब शत्रु गण (नभन्तां) नष्ट होते हैं।

स चि॑केत॒ सही॑यसा॒ग्निश्चि॒त्रेण॒ कर्म॑णा । स होता॒ शश्व॑तीनां॒ दक्षि॑णाभिर॒भीवृ॑त इ॒नोति॑ च प्रती॒व्यं१॒॑ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ५।२२

भा०—(सः) वह (अग्निः) तेजस्वी, विद्वान् (सहीयसा) अत्यधिक सहन करने और प्रतिपक्ष रूप विघ्न को पराजित करने वाले

(चित्रेण कर्मणा) ज्ञानप्रद कर्म से बलवान् होकर (चिकेत) ज्ञान प्राप्त करता वा जाना जाता है। (सः) वह (दक्षिणाभिः) दक्षिणाओं से यज्ञाग्नि के समान दान, शिक्षाओं से (अभि-वृतः) पुष्ट होकर (शश्वतीनां होता) नित्य विद्याओं का ग्रहण करने वाला होकर (प्रतीव्यम् इनोति च) ज्ञेय तत्व को प्राप्त होता है। ऐसे ही नायक भी (सहीयसा) शत्रु-पराजयकारी (चित्रेण कर्मणा) अद्भुत कर्म से (चिकेत) प्रसिद्ध हो। वह (दक्षिणाभिः) शक्तियों, सेनाओं से (अभि-वृतः) घिरा हुआ (शश्वतीनां होता) बहुत सी प्रजाओं और सेनाओं को स्वीकार करने, उनको वेतन, भोजनादि देने वाला होकर (प्रतीव्यं इनोति) आक्रमण योग्य शत्रु तक पहुँचता है और इस प्रकार (सभे अन्यके नभंताम्) समस्त छोटे-मोटे शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः॥

अ॒ग्निर्जा॒ता दे॒वाना॑म॒ग्निर्वे॑द॒ मर्ता॑नामपी॒च्य॑म्। अ॒ग्निः स द्र॑वि॒णोदा॑ अ॒ग्निर्द्वारा॒ व्यू॑र्णुते॒ स्वा॑हुतो॒ नवी॑यसा॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥६

भा०—जैसे (अग्निः) अग्नि, या विद्युत्, वा जाठराग्नि, (नवीयसा) नये से नये अन्नादि द्वारा (सु-आहुतः) अच्छी प्रकार आहुति पा कर, (देवानां जाता वेद) देव अर्थात् प्रकाशक किरणों के स्वरूपों को प्राप्त करता वा जाठराग्नि अन्नाहुति प्राप्त कर देव अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराता है और (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्यों को गुप्त, अन्धकार से आवृत पदार्थ भी ज्ञात करा देता है और जाठराग्नि, मनुष्यों के गुह्य बल और सुन्दर रूप को प्रकट कर देता है, वैसे ही (अग्निः) अग्रणी नायक (देवानां) विजिगीषुजनों के (जाता वेद) सब जन्मादि को जाने, (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्य प्रजाओं के गुह्य रहस्यों को भी जाने। (सः अग्निः द्रविणोदाः) वह नायक ऐश्वर्यदाता हो। वह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष द्वारा (व्यूर्णुते) प्रजाओं और सेनाओं के व्यवहार और रण के मार्गों को खोलता और प्रकाशित

करता है। इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रुगण नाश को प्राप्त होते हैं।

अ॒ग्निर्दे॒वेषु॒ संव॑सुः स वि॒क्षु य॒ज्ञिया॒स्वा । स मु॒दा काव्या॑ पु॒रु विश्वं॒ भूमे॑व पुष्यति दे॒वो दे॒वेषु॑ य॒ज्ञियो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥७॥

भा०—जैसे (अग्निः देवेषु सं-वसुः) अग्नि सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों में उनको आच्छादित करता है वही अग्नि-तत्व (यज्ञियासु) यज्ञ-योग्य प्रजाओं के बीच यज्ञाग्नि और जाठराग्नि रूप में विद्यमान रहता है वैसे ही (अग्निः) विद्वान् और नायक भी (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के बीच (सं-वसुः) अच्छी प्रकार रहने वाला और उत्तम रीति से ऐश्वर्य का स्वामी हो। (सः) वह (यज्ञियासु विक्षु) यज्ञशील प्रजाओं में (सं-वसुः) सम्यक् प्रकार से रहता, उनकी रक्षा करता हुआ, (आ) विद्यमान रहे। (सः) वह (मुदा) प्रसन्नतापूर्वक (पुरु काव्या) बहुत से विद्वानों के योग्य कार्यों को (पुष्यति) पुष्ट करता, उनको वृद्धि देता और (भूम इव) भूमि के समान वा प्रभु के समान (विश्वं पुष्यति) सबका अन्नादि से पोषण करता है। वह (देवः) स्वयं तेजस्वी होकर (देवेषु यज्ञियः) विद्वान्, दानशील तेजस्वी पुरुषों में भी आदर और सत्संगति के योग्य होता है। इस प्रकार भी उसके (समे अन्यके) समस्त शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट होते हैं।

यो अ॒ग्निः स॒प्तमा॑नुषः श्रि॒तो विश्वे॑षु॒ सिन्धु॑षु । तमाग॑न्म त्रिप॒स्त्यं म॑न्धा॒तुर्द॑स्यु॒हन्त॑मम॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यं नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ८ ॥

भा०—जैसे (अग्निः सप्त-मानुषः) अग्नि तत्व जीवन रूप से मनुष्य के सातों-प्राणों में विद्यमान और (विश्वेषु सिन्धुषु श्रितः) समस्त रक्त-नाड़ियों में भी विद्यमान है, वह (त्रि-पस्त्यं) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ वा उदर, हृदय और मूर्धा तीनों स्थानों में रहता है वही शरीर-नाशक रोगादि कारणों का नाशक होता है वैसे ही (यः अग्निः) जो

नायक, राजा, (सप्त-मानुषः) सात मननशील विद्वानों के बीच स्वयं आठवां होकर (विश्वेषु सिन्धुषु) समस्त प्रजाओं के बीच (श्रितः) आश्रय योग्य है और (मंधातुः) मुझको धारण या रक्षा करेगा इस प्रकार अधीन प्रजागण के (दस्युहंतमम्) दुष्ट पुरुषों के सर्वोपरि नाशक (यज्ञेषु पूर्व्यम्) सत्संगों और दानों में श्रेष्ठ, (त्रि-पस्त्यं) तिमंजिले गृह में रहने वाले या उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं को गृहवत् बसाने वाले (तम् अग्निम्) इस तेजस्वी पुरुष को हम (आ गन्म) प्राप्त हों।

अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः। सः त्रीँरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ९

भा०—जैसे (अग्निः त्रिधातूनि आ क्षेति) अग्नि तीनों तैजस रूपों से धातुओं के तीनों प्रकारों में रहता है और वह (त्रीन् एकादशान् यक्षत् पिप्रयच्च) ३३ पदार्थों को बल देता और तृप्त करता है वैसे ही (अग्निः) तेजस्वी पुरुष वात पित्त कफ की बनी तीनों कोटियों में (आ क्षेति) विराजता है, वह (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (विदथा) ज्ञान और प्राप्ति-योग्य पदार्थों को प्राप्त करता है। (सः) वह (इह) इस राष्ट्र में (त्रीन् एकादशान् यक्षत्) तीनों ग्यारह (तैंतीस) अधिकारियों को सुसंगत करता और (पिप्रयत् च) पूर्ण तृप्त करता, वह (दूतः) शत्रु संतापक (परिष्कृतः) सुसज्जित, (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नः यक्षत् पिप्रयत् च) हमें भी दे और पालन करे। इस प्रकार उसके (समे अन्यके नभंताम्) समस्त शत्रु नष्ट हों।

त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि।
त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे १०।२३

भा०—जैसे अग्नि (देवेषु पूर्व्यः) सब मनुष्यों में भी जाठर रूप से विद्यमान है, उसको, (परिस्रुतः स्वसेतवः आपः परि यंति) सब

ओर से वहने वाली, स्वयं बद्ध जल-धाराएं विद्युत् रूप अग्नि को प्राप्त होती हैं वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! (त्वं) तू (नः) हमारे (आयुषु) मनुष्यों और (देवेषु) विद्वानों, अर्थ-कामना-युक्त जनों में (पूर्व्यः) सर्वश्रेष्ठ है। तू (एकः) अद्वितीय होकर (वस्वः इरज्यसि) समस्त बसे प्रजाजन और ऐश्वर्य का स्वामी है। (स्व-सेतवः परिस्रुतः आपः) अपने ही बंधों से बंधी सब ओर बहती जल-धाराओं के समान (आपः) आप्त प्रजाएं भी (परि-स्रुचः) सब ओर से प्राप्त होकर (स्व-सेतवः) स्वयं अपने आपको मर्यादा में बांधे रखने वाली वा 'स्व' धन-वेतनादि में वा स्वजनों के सम्बंधों से बद्ध होकर (त्वाम् परि यंति) तुझे प्राप्त होती हैं, तेरी शरण आती हैं। (अन्यके समे नभन्ताम्) तेरे समस्त शत्रुगण नष्ट हों। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[४०]

नाभाकः काण्व ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, ११, भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, ४ स्वराट् त्रिष्टुप्। १२ निचृत् त्रिष्टुप्। २ स्वराट् शक्वरी। ५, ७, ९ जगती। भुरिग्जगती। ८, १० निचृज्जगती। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रा॑ग्नी यु॒वं सु नः॒ सह॑न्ता॒ दास॑थो र॒यिम्।
येन॑ दृ॒ळ्हा स॒मत्स्वा वी॒ळु चि॑त्साहिषी॒महि॑ग्नि॒र्वने॑व॒ वात॒ इन्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ १॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् वा वायुवत् बलशालिन्! हे तेजस्विन्! राजन्! सेनापते (युवं) आप दोनों (सहन्ता) शत्रुओं को पराजय करते हुए (नः रयिम् दासथः) हमें वह ऐश्वर्य और बल प्रदान करो जैसे (अग्निः वाते वना इव) वायु के बहते समय अग्नि वनों को भस्म कर देता है वैसे ही (येन) जिस ऐश्वर्य के बल से हम लोग (समत्सु) संग्रामों में (वीडुचित्) बड़े २ बलशाली और (दृढा) दृढ, शत्रु सैन्यों को (साहिषीमहि) पराजित करते हैं और जिससे (अन्यके

समे नभन्ताम्) अन्य सब हमारे शत्रु नष्ट हों। वायु और अग्निवत् ही इन्द्र और अग्नि परस्पर सहायक हों।

नहि वां वव्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे शविष्ठं नृणां नरम्।
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) शत्रुहंतः! हे विद्वन्! हम (वां नहि वव्रयामहे) आप दोनों से याचना नहीं करते। (अथ) प्रत्युत (नृणां) मनुष्यों के बीच (नरम्) नायक (शविष्ठं) सबसे अधिक बलशाली, (इन्द्रम्) शत्रुहंता की (यजामहे) प्रतिष्ठा करते हैं। (सः नः कदाचित्) वह कभी हमें (अर्वता आगमत्) अश्व, या शत्रुहंता सैन्यसहित, (वाज सातये) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये हो और कभी (मेधसातये आगमत्) अन्न, यज्ञ और संग्रामादि के लिये प्राप्त हो। उसके (समे अन्यके नभंताम्) समस्त शत्रु नष्ट हों।

ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥

भा०—(ता हि इंद्राग्नी) वे दोनों, वायु, अग्निवत् बलवान्, तेजस्वी जन (भराणां मध्यं) भरण योग्य जनों में (अधि-क्षितः) अध्यक्ष होकर रहते हैं। (ता उ) वे दोनों (कवी) क्रांतदर्शी (पृच्छ्यमाना) अन्यों से संदेह निवारणार्थ प्रश्न किये जाते हुए (कवित्वना) विद्वत्ता के कारण, (नरा) आप दोनों नायक (सखीयते) मित्रवदाचरण करने वाले पुरुष के लिये (धीतं) किये कर्म को (समश्नुतम्) प्राप्त होवो।

अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा। ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्यु१पस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

भा०—(नभाकवत्) उत्तम प्रबंधकर्त्ता जनों से युक्त (इंद्राग्नी) उन राजा और नायक को तू हे विद्वन् ! (यजसा गिरा) उत्तम संगतिकारक वाणी से (अभि-अर्च) स्तुति कर, उनका आदर कर। (ययोः) जिनके आश्रय पर (इयं द्यौः) यह सूर्य और (इयं महीः पृथिवी) यह बड़ी भारी पृथिवी जैसे (इदं विश्वं वसु) इस समस्त बसे जगत् और ऐश्वर्य को (बिभृतः) धारण करते हैं वैसे ही राजा, नायक दोनों के बल पर सूर्य पृथिवीवत् पुरुष-स्त्री वा राजा-प्रजावर्ग दोनों (इदं विश्वं वसु) इस समस्त राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को धारण करते हैं। (अन्यके समे नभंताम्) और विरोधी शत्रु सब नष्ट हो जाते हैं।

प्र ब्रह्मा॑णि नभाक॒वदि॑न्द्रा॒ग्निभ्या॑मिरज्यत। या स॒प्तबु॑ध्नमर्ण॒वं जि॒ह्मवा॑रमपोर्णु॒त इन्द्र॒ ईशा॑न॒ ओज॑सा नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥५॥

भा०—(या) जो वायु और अग्नि (सप्तबुध्नम्) सात मूलों वाले (जिह्म-वारम्) गुप्त द्वार वाले, दुष्प्राप्य (अर्णवं) सागरवत् अपार ऐश्वर्य को (अपोर्णुतः) खोल देते हैं उन (नभाकवत् इन्द्राग्निभ्याम्) नभाक अर्थात् अदृश्य रूप से विद्यमान वा बंधनकारक, आघातकारक (इन्द्राग्निभ्याम्) विद्युत् और अग्नि तत्त्वों से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को (इरज्यत) अपने वश करो और उनके बल से ही (इन्द्रः) सूर्य भी (ईशानः) सबका स्वामी है। उन से (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त शत्रु नष्ट हों।

अपि॑ वृश्च पुरा॒ण॒वद् व्र॒तते॑रिव गुष्पि॒तमोजो॑ दा॒सस्य॑ दम्भय। व॒यं तद॑स्य॒ सम्भृ॑तं॒ वस्विन्द्रे॑ण॒ वि भ॑जेमहि॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥६॥२४॥

भा०—जैसे (पुराणवत्) पुराने (व्रततेः गुष्पितम्) लता के शाखा पुञ्ज को कोई सुगमता से काट लेता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (दासस्य गुष्पितम् ओजः) दुष्ट पुरुष के गुप्त बल को (दम्भय) नष्ट कर। (अस्य तत् सम्भृतं वसु) उसके उस संचित धन को हम

(इन्द्रेण) तेजस्वी राजा के द्वारा ही (विभजेमहि) विभाग करके सेवन करें और (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त शत्रु भी नष्ट हों।

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा। अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे ॥७॥

भा०—(इमे जनाः) ये मनुष्य (तना गिरा) धन और वचन से (यत्) जिन (इन्द्राग्नी) सूर्य-अग्निवत् तेजस्वी नायकों को (विह्वयन्ते) विशेष रूप से बुलाते हैं, (अस्माकेभिः नृभिः) अपने ही आदमियों से सहायवान् होकर (वयं) हम (पृतन्यतः सासह्याम) सेनाओं द्वारा युद्ध करने वाले शत्रुओं को हरावें और (वनुष्यतः वनुयाम) हिंसाकारियों को मारें। (अन्यके समे नभन्ताम्) हमारे अन्य समस्त शत्रु नष्ट हों।

या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः। इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्त्सीं बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे ॥८॥

भा०—(या नु) जो दोनों सूर्य और अग्नि (श्वेतौ) श्वेत वर्ण के, तेजस्वी होकर (द्युभिः) किरणों से (दिवः उप उत् चरातः) आकाश और पृथिवी पर ऊर्ध्व मार्ग से गति करते हैं उन (इन्द्राग्न्योः अनु) सूर्य और अग्नि के अनुकरण में (व्रतम् उहानाः) उत्तम व्रतों को धार कर (सिन्धवः) नदी तुल्य वेग वाले, वीर पुरुष (अनुयन्ति) उनके पीछे २ चलते हैं (यान्) जिनको वे दोनों (सीम्) सब प्रकार से (बन्धात्) बन्धनों से (अमुञ्चताम्) मुक्त करें और (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त विघ्नकारी नष्ट हों।

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः। वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ९

भा०—हे (हरिवः इन्द्र) किरणों से युक्त सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (सुनो) सर्वैश्वर्यवान् ! सर्वप्रेरक ! (वस्वः) सबको बसाने वाले, (आपृचः) सबसे प्रेम करने वाले (वीरस्य) शूरवीर (हिन्वस्य) सबको बढ़ाने वाले (ते) तेरी (उप-मातयः) उपमान (उत प्रशस्तयः) और तेरे उत्तम उपदेश (पूर्वीः पूर्वीः) सदा पूर्ण और उत्तम हैं। (याः) जो (नः धियः साधन्त) हमारी बुद्धियों और कर्मों को अपने वश करें और उन्नत करें। इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त विघ्नकारी नष्ट हों।

तं शिंशीता सुवृक्तिभिंस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम्।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णंस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभंन्तामन्यके संमे ॥१०॥

भा०—(उतो नु चित्) और (यः) जो सूर्य या विद्युत्मय इन्द्र (शुष्णस्य) शोषणकारी ताप वाले सूर्य के (ओजसा) बल या तेज से (आण्डानि भेदति) रोगकारी संयोगी अंशों को छिन्न-भिन्न करता है, और (स्वर्वतीः अपः) गर्जन करने वाले मेघस्थ जलों को (जेषत्) विजय करता है, (तं) उस (त्वेषं) अति तीक्ष्ण, (सत्वानम्) बलवान् (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य पुरुष को (सु-वृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (शिशीत) तीक्ष्ण करो। उसके बल को बढ़ावो। (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त अन्य शत्रु नष्ट हों।

तं शिंशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम्।
उतो नु चिद्य ओहंत आण्डा शुष्णंस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो नभंन्तामन्यके संमे ॥११॥

भा०—जैसे सूर्य (शुष्णस्य) शोषक ताप के बल से (आण्डा ओहते) रोग-जन्तुओं को नाश करता है, (भेदति) छिन्न भिन्न करता है और (स्वर्वतीः अपः अजैः) सुखप्रद जलों को वश करता है वैसे ही जो पुरुष

(शुष्णस्य आण्डा) शोषकवत् यक्ष्मादि रोगों, शत्रु के अण्डों-मर्मस्थलों को भेदता और सुखप्रद आप्त जनों को अपने गुणों से वश करता है (तं) उस (सु-अध्वरं) उत्तम अहिंसनीय (सत्यं) सत्याचरण-युक्त, (सत्वानम्) बलवान् (ऋत्वियम्) ऋतुओं के स्वामी सूर्यवत्, ऋतु अर्थात् ज्ञानी सदस्यों के स्वामी पुरुष को (शिशीत) तीक्ष्ण करो, उसके बल को बढ़ाओ। नभन्तां०) पूर्ववत्।

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान् वयं स्याम पतयो रयीणाम् १२।२५

भा०—(एव) इस प्रकार (पितृवत्) माता-पिता तुल्य, पालक (मन्धातृवत्) ज्ञानधारक, उसके समान ज्ञानप्रकाशक (अंगिरस्वत्) अग्नि वा प्राणों के तुल्य जीवनप्रद (इन्द्राग्नीभ्यां) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों ने यह (नवीयः) अति स्तुत्य, वचन (अवाचि) उपदेश किया है। वे दोनों (त्रिधातुना शर्मणा अस्मान् पातम्) तीनों धातु के बने गृह एवं वात, पित्त कफ से युक्त, इस देह से हमारी रक्षा करें। (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम ऐश्वर्यों के स्वामी हों। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[४१]

नाभाकः काण्व ऋषिः॥ वरुणो देवता॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप्। ४, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ स्वराट् त्रिष्टुप्। २,३,६,१० निचृज्जगती। ९ जगती॥

दशर्चं सूक्तम्॥

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गाइव रक्षति नभन्तामन्यके समे॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष! तू (अस्मै) इस (प्रभूतये) उत्तम भूति, और यश वाले (वरुणाय) श्रेष्ठ, (विदुष्टरेभ्यः) अपने से अधिक जानने

वाले विद्वान्, (मरुद्भ्यः) बलवान् मनुष्यों का (अर्च) सत्कार कर, (यः) जो (धीता) सुविचारित (पश्वः गाः) गौ आदि पशुओं के समान ज्ञान दर्शाने वाली वाणियों की (मनुष्याणां) मनुष्यों के उपकारार्थ (रक्षति) रक्षा करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त हानिकारक जन नष्ट हों।

तमू षु सुमना गिरा पितॄणां च मन्मभिः। नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे २

भा०—(यः) जो (सिन्धूनाम्) स्पन्दनशील रक्तधाराओं वा गतिशील प्राणों के (उपोदये) ऊपर उठने में (सप्त-स्वसा) सात स्वयं गतिशील मुख्य प्राणों से युक्त होने से सात भगिनियों वाला (सः) वह (मध्यमः) सबके मध्य मुख्य रूप से स्थित राजा के समान है, (तम्) उसको (समना गिरा) मान वा ज्ञान सहित वाणी और (पितॄणां च मन्मभिः) पालक गुरुओं के मनन-योग्य वचनों से और (नाभाकस्य) साक्षात् द्रष्टा पुरुष की (प्रशस्तिभिः) उत्तम उपदेश वाणियों से (अर्च) अर्चना कर।

स क्षपः परि षस्वजे न्यु१स्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः। तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥३॥

भा०—(क्षपः परि सस्वजे) जैसे चन्द्रमा रात्रियों को प्राप्त होता है वैसे ही (सः) वह श्रेष्ठ पुरुष (क्षपः परि सस्वजे) शत्रु नाशक सेनाओं को साथ रक्खे। वह (उस्रः) उत्तम पद को प्राप्त होकर (मायया) बुद्धि और कर्म द्वारा विश्व को प्रभु के समान ही (विश्वं नि दधे) समस्त राष्ट्र को नियम में स्थापित करे (सः) वह (दर्शतः) सबका द्रष्टा स्वामी होकर रहे। (तस्य व्रतम् अनु) उसके कर्म के अनुकूल रह कर (तिस्रः वेनीः) तीनों प्रकार की प्रजाएं उसे चाहती हुई (तम्

अवर्धयन्) उसको बढ़ावें। इस प्रकार (समे अन्यके) उसके समस्त शत्रुगण (नभन्ताम्) नष्ट हों।

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः। स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥४॥

भा०—(यः दर्शतः) जो सर्वद्रष्टा स्वामी (पृथिव्याम् अधि) भूमि पर (ककुभः) देह में प्राणों के समान, समस्त दिशाओं वा उनमें बसी प्रजाओं को (नि धारयः) नियम में रखता है (सः) वह (वरुणस्य) श्रेष्ठ, प्रभु के (सप्त्यं) सर्पण-योग्य, प्राप्य (पूर्व्यं पदम्) सर्वोपरि पद को (माता) बनाने वाला, माता के समान पूज्य है। (सः हि) वही (गोपाः इव) रक्षक के समान (इर्यः) स्वामी है। उसके द्वारा (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य सब दुष्ट पुरुष नष्ट हों।

यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे ५।२६

भा०—(यः) जो (भुवनानां धर्त्ता) समस्त लोकों का धारक है, (यः) जो (उस्राणां) उत्तम, ऊपर के मार्ग से जाने वाले सूर्यादि के (गुह्या) बुद्धि से गम्य, (अपीच्या), छुपे हुए गुप्त (नामानि) नाम, स्वरूपों को (वेद) जानता है। (सः) वह (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (द्यौः इव) सूर्य के समान (काव्या) विद्वान् पुरुषों के अभ्यास योग्य ज्ञानों को (पुरुरूपं पुष्यति) बहुत प्रकार से पुष्ट करता है। उसके रहते हुए (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त द्वेषीजन नष्ट हो जाते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता। त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥६॥

भा०—(चक्रे नाभिः इव) चक्र में नाभि के समान (यस्मिन्)

जिस प्रभु में (विश्वानि काव्या) मेधावी पुरुषों के समस्त ज्ञान और कर्म (श्रिता) आश्रित हैं, (त्रितं) तीनों लोकों में व्यापक उस परमेश्वर की आप लोग (जूती) शीघ्र, प्रेमपूर्वक (सपर्यत) उपासना करो। हे विद्वान् पुरुषो! (व्रजे गावः न) जैसे गोशाला में समस्त गौवें (सं-युजे) एकत्र रहने के लिये आती हैं वैसे ही (व्रजे) गन्तव्य उस प्रभु में (सं-युजे) अच्छी प्रकार योग करने के लिये (गावः) समस्त वाणियों और ज्ञानेन्द्रियों को संयुक्त करो और (युजे) उसी योग-साधन के लिये (अश्वान् अयुक्षत) अश्वों के तुल्य कर्मेन्द्रियों और मन की वृत्तियों को भी परम पद में एकाग्र करो। इस प्रकार (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त दुष्ट नष्ट हों।

य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम्। परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ॥७॥

भा०—(यः) जो श्रेष्ठ प्रभु (आसु) इन समस्त दिशाओं और प्रजाओं में (अत्कः) व्यापक (आशये) गुप्तरूप से विद्यमान है और जो (एषां विश्वा जातानि) इन लोकों के पदार्थों और (धामानि) स्थानों को (परि मर्मृशत्) सब प्रकार से जानता है, उसी (वरुणस्य पुरः) श्रेष्ठ स्वामी के समक्ष (गये) उसके शासन में (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् और सूर्यादि पदार्थ, प्राण के अधीन इन्द्रियों के तुल्य (व्रतम् अनु) अधीन रहकर कार्य करते हैं। (अन्यके समे) इससे विपरीत बुद्धि वाले द्वेषीजन (नभन्ताम्) नष्ट होते हैं।

स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे।
स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभन्तामन्यके समे ॥८॥

भा०—(सः) वह (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीर, अपार, सुखों का दाता, (अपीच्यः) आश्रय होने योग्य, हृदयों में गुप्त, (तुरः) अति शीघ्रकारी है वह (द्याम् इव) आकाश में सूर्यवत् (रोहति) सबसे

ऊपर प्रकाशित होता है। (यत्) जो (आसु) इन समस्त प्रजाओं वा समस्त प्राकृतिक शक्तियों में (यज्ञुः निदधे) परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करता है और वह (अर्चिना पदा) अर्चना योग्य, परम स्तुत्य 'पद' अर्थात् ज्ञान से (मायाः अस्तृणात्) सब कुटिल बुद्धियों का नाश करता है वह (नाकम् अरुहत्) परम सुखमय लोक को प्राप्त होता है। उसके (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य सब विरोधी नष्ट हो जाते हैं।

यस्यं श्वेता विंचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः।
त्रिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य ध्रुवं सदः स संप्तानामिंरज्यति
नभन्तामन्यके संमे ॥९॥

भा०—(तिस्रः भूमीः) तीनों लोकों में (अधि-क्षितः) अध्यक्षवत् निवास करने वाले (यस्य) जिसके (विचक्षणा श्वेताः) विविध पदार्थों को दर्शाने वाले तेज, सूर्य विद्युदादि, (उत्तराणि) उनसे भी उत्कृष्ट (त्रिः) तीन लोकों को पूर्ण करते हैं उस (वरुणस्य) श्रेष्ठ प्रभु का (ध्रुवं सदः) विराजना या सत्तारूप से विद्यमान रहना (ध्रुवम्) नित्य है। (सः) वह प्रभु (सप्तानाम् इरज्यति) सातों सर्पणशील गतिमान लोकों का भी स्वामी रहता और उनको वश करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) उसके शासन में समस्त दुष्ट पुरुष नाश को प्राप्त होते हैं।

यः श्वेताँ अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता।
स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी अजो न द्यामधारयन्नभन्तामन्यके संमे ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु, सूर्यवत् (अधिनिर्णिजः) अति शुद्ध, (श्वेतान्) श्वेत सूर्यादि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों के अनुकूल चलाता है और जो (कृष्णान्) रात्रि के समान अन्धकारमय या आकर्षणमय, पृथिवी आदि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों

के अनुसार अधीन रखता है और (यः) जो (स्कम्भेन) थामने वाले बल से (रोदसी वि ममे) सूर्य और भूमि को आकाश में थामता है, (अजः न द्याम् अधारयत्) स्वयं अजन्मा होकर, संचालक के समान ही सूर्य या आकाश को धारण करता है, (सः) वह श्रेष्ठ वरुण (पूर्व्यं धाम) सबसे पूर्ण धारण सामर्थ्य वा तेज को (ममे) धारण करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) उसके द्वारा सब पापी जन नष्ट हो जाते हैं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४२]

नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा । अथवा १—३ नाभाकः कण्वः । ४—६ नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा ऋषयः ॥ १—३ वरुणः । ४—६ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—३ त्रिष्टुप् । ४—६ अनुष्टुप् ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥१

भा०—(असुरः) बलवान्, (विश्व वेदाः) समस्त ज्ञानों का भण्डार परमेश्वर (द्याम् अस्तभ्नात्) तेजोमय पिण्डों को थामे रहता है, वह ही (पृथिव्याः परिमाणं) पृथिवी के परिमाण को (अमिमीत) मापता है, (सम्राड् विश्वा भुवना) सबका प्रकाशक परमेश्वर समस्त लोकों पर (आसीदात्) शासकवत् विराजता है। (विश्वा इत् व्रतानि) ये समस्त कार्य और व्यवस्थाएं (वरुणस्य इत्) श्रेष्ठ, वरणीय परमेश्वर की ही हैं।

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (वरुणं एव) उस श्रेष्ठ, दुःखों के वारक, सबसे वरणीय (बृहन्तं) महान् प्रभु की (वन्दस्व) वन्दना, प्रार्थना कर। उसी (धीरम्) बुद्धि और कर्मफलों के दाता (अमृतस्य गोपाम्)

अमृतमय मोक्ष के रक्षक को (नमस्व) नमस्कार कर । (सः) वह (नः) हमें (त्रि-वरूथं शर्म) तीनों प्रकार के कष्टों से रक्षक गृहवत् देह का (वि यंसत्) प्रदान करता है। (उपस्थे) समीप विद्यमान (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि, माता और पिता भी (नः पातम्) हमारी रक्षा करें।

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥३॥

भा०—हे (देव) सुखों के दाता! हे (वरुण) श्रेष्ठ ! तू (इमां धियं) इस ज्ञान और कर्म का (शिक्षमाणस्य) उपदेश देने वाले की (क्रतुं दक्षं) बुद्धि और बल को (सं शिशाधि) सम्यक् प्रकार से तीक्ष्ण कर, अच्छे मार्ग में चला। (यथा) जिससे हम (विश्वा दुरिता) सब दुष्कर्मों को (अति तरेम) पार करें और (सु-तर्माणं नावं) सुख से पार उतार देने वाली नौकावत् वेदवाणी पर (अधि रुहेम) चढ़ें, उसका आश्रय लें।

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्य ज्ञान का उपदेश देने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! (वां) आप दोनों (ग्रावाणः) उत्तम उपदेष्टा, (विप्राः) विद्वान् पुरुष (सोमपीतये) उत्तम ज्ञानरस को पीने के लिये (धीभिः) बुद्धियों और सत्कर्मों सहित (अचुच्यवुः) प्राप्त हों। (अन्यके समे नभंताम्) अन्य सब दुर्बुद्धि जन नष्ट होवें।

यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

भा०—हे (नासत्या) असुख पद पर स्थित एवं सदा सत्याचरण-शील जनो! (यथा) जिस प्रकार (अत्रिः विप्रः) तीनों प्रकार के दुःखों

से रहित विद्वान् पुरुष (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ओषधिरस के पान करने और वीर्य रक्षा करने का (अजोहवीत्) उपदेश करता है उस प्रकार से (अन्यके समे) समस्त अन्य दुःखदायी रोग, पापादि संकल्प (नभंताम्) नष्ट होते हैं।

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥ २८ ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो ८। ३८। ९ ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[४३]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९—१२, २२, २६, २८, २९, ३३, निचृद् गायत्री। १४ ककुम्मती गायत्री। ३० पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः। गिरः स्तोमास ईरते ॥१॥

भा०—(इमे) ये (स्तोमासः) स्तुतियुक्त वेद मन्त्रों द्वारा स्तुतिकर्त्ता (विप्रस्य) मेधावी, (वेधसः) जगत् के कर्त्ता (अस्तृतयज्वनः) यज्ञ कर्त्ता का नाश न करने वाले जन (अग्नेः) प्रभु के विषय में (गिरः ईरते) वेदवाणियों का उच्चारण करते हैं।

अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे। अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥२

भा०—हे (जात-वेदः) सर्वज्ञ! सर्वैश्वर्य के स्वामिन्! हे (विचर्षणे अग्ने) ज्ञानवन्! सर्वप्रकाशक! विशेष द्रष्टा! (प्रतिहर्यते ते) प्रत्येक जीव को चाहने हारे तेरी मैं (सु-स्तुतिम् जनामि) उत्तम स्तुति करूं।

आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः। दद्भिर्वनानि बप्सति ३

भा०—(दद्भिः वनानि) जैसे पशु दांतों से जंगलों को खाते हैं और

जैसे अग्नि-ज्वालाएं काष्ठों को मानो खा जाती हैं वैसे ही हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (तव त्विषः) तेरी कान्तियां (तिग्माः) तीक्ष्ण होकर, (आरोकाः इव) चमकीली ज्वालाओं के समान (वनानि) जलों को सूर्य किरणोंवत् नाश करने योग्य दोषों को (बप्सति) मानो खा डालती हैं, सब पापों को भस्म कर देती हैं।

हर॑यो धूमके॑तवो॒ वात॑जूता॒ उप॒ द्यवि॑ । यत॑न्ते॒ वृथ॑ग॒ग्नय॑ः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (अग्नयः) अग्नियें (हरयः) पीतवर्ण (धूमकेतवः) धूम-ध्वजाओं से युक्त, (वात-जूताः) वायु से प्रेरित होकर, (द्यवि) आकाश में (वृथक् = पृथक् उपयतन्ते) अलग २ प्रज्वलित होती हैं वैसे ही (अग्नयः) अग्नि के बने सूर्यादि लोक और (धूम-केतवः) धूम-ध्वजा से युक्त धूमकेतुगण, (वात-जूता) वायु से प्रेरित होकर आकाश में अलग २ घूम रहे हैं, ऐसे ही (अग्नयः) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान्, (हरयः) जीव-गण, (धूम-केतवः) पाप को दूर करने में समर्थ होकर (वात-जूताः) प्राण वायु से प्रेरित होकर (द्यवि) प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर उसके आश्रय, पृथक् २, मोक्ष का यत्न करते हैं।

ए॒ते त्ये वृथ॑ग॒ग्नय॑ इ॒द्धास॒ः सम॑दृक्षत । उ॒षसा॑मिव के॒तव॑ः ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—(एते त्ये) ये वह (अग्नयः) अग्निवत् स्वयं प्रकाश जीवगण (इद्धासः) प्रज्वलित अग्नियों के समान और (उषसाम्-इव केतवः) प्रभात कालों के ज्ञापक किरणों के समान (उषसाम्) नाना कामनाओं को (केतवः) प्रकट करने वाले (वृथक्) पृथक् २ ही (सम्-अदृक्षत) विवेकपूर्वक दिखाई देते वा देखते हैं। पूर्व मन्त्र में बताया कि जीवों के अपने यत्न पृथक् २ हैं, इसमें बताया कि इनकी इच्छाएं भी भिन्न हैं। वे परमात्मा के अंश नहीं प्रत्युत पृथक् २ ही हैं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

कृ॒ष्णा रजां॑सि पत्सु॒तः प्र॒याणे॑ जा॒तवे॑दसः । अ॒ग्निर्यद्रोध॑ति॒ क्षमि॑ ॥ ६

भा०—(अग्निः यत् क्षमि रोधति) अग्नि जब भूमि पर जाता है तब उसके (प्रयाणे रजांसि कृष्णा) जल जाने पर भूमि के धूलि आदि कृष्ण-वर्ण हो जाते हैं, ऐसे ही (यत्) जब (अग्निः) ज्ञानी जीव (क्षमि) सहनशीलता में वा योग की किसी भूमि पर स्वयं का (रोधति) निरोध करता है तब (परसुतः) ज्ञान में निष्णात, (जातवेदसः) ज्ञानी पुरुष के लिये (प्रयाणे) आगे बढ़ते हुए मार्ग में (रजांसि) समस्त राजस वस्तुएं, तेजोमय लोक (कृष्णा) अति आकर्षक होते हैं, वे उसे मार्ग में भ्रष्ट करने वाले होते हैं।

धासिं कृ॑ण्वान ओष॑धी॒र्बप्स॑द॒ग्निर्न वा॑यति। पुन॒र्यन्तरु॑णी॒रपि॑ ॥७॥

भा०—जैसे (अग्निः ओषधीः धासिं कृण्वानः बप्सत्) अग्नि ओषधियों को अपना अन्न बना २ कर खाता है, (न वायति) शान्त नहीं होता है और (पुनः तरुणोः अपि यन्) फिर बड़ी लताओं को भी प्राप्त करता है वैसे ही यह (अग्निः) अग्नि-तुल्य स्वप्रकाश जीव भी इस देहभूमि में प्राप्त होकर (ओषधीः धासिं कृण्वानः) अन्नादि ओषधियों को अपने धारण पोषणकारी खाद्य पदार्थ बनाता हुआ (बप्सद्) उनका भक्षण करता है और वह (न वायति) शान्त नहीं होता, नहीं मरता, जीवित रहता है और वह (पुनः) बार २ (तरुणीः अपि यत्) तरुण अर्थात् यौवनादि दशाओं को प्राप्त होता हुआ भी (न वायति) भोगों से तृप्त नहीं होता। उन्हीं में लिप्त हो जाता है।

जि॒ह्वाभि॒रह॒ नन्न॑मद॒र्चिषा॑ जञ्ज॒णाभ॑वन्। अ॒ग्निर्वने॑षु रोचते ॥८॥

भा०—जैसे (अग्निः) अग्नि (जिह्वाभिः) जिह्वाओं, ज्वालाओं से (अह) ही (नंनमत्) लपटें मारता और (अर्चिषा) दीप्ति से (जञ्जणा-भवत्) खूब प्रज्वलित होता हुआ (वनेषु रोचते) काष्ठों में चमकता है वैसे ही यह (अग्निः) स्वयं प्रकाश जीव, (जिह्वाभिः अह) पदार्थों को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय रूप जिह्वाओं से ही (नंनमत्) विषयों की

ओर वार २ झुकता है और (अर्चिषा) अर्चि-मार्ग से ही इस लोक में (जंजनाभवत्) वार २ उत्पन्न होता (वनेषु) सेवनीय पदार्थों या लोकों में वा जलों में सूर्यवत्, (रोचते) रुचि-अनुकूल विचरता है।

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः॥९॥

भा०—जैसे अग्नि (अप्सु सधिः) मेघस्थ जलों में विद्युत् रूप से स्थित है और (सः) वह (ओषधीः अनु रुध्यते) ओषधियों को प्राप्त होता है और (गर्भे सन् पुनः जायते) पुत्रवत् उनके भीतर छुपा रहकर भी घर्षणादि से पुनः उत्पन्न होता है। वैसे ही हे (अग्ने) जीव (तव सधिः) तेरी समान रूप से स्थिति (अप्सु) वीर्यों में है, (सः) वह तू (ओषधीः अनु) 'ओष' तेजोमय वीर्य को धारण करने में समर्थ माताओं को प्राप्त होकर वहां (रुध्यसे) ९ मास तक रुका रहता है, (गर्भे सन्) गर्भ में रहकर पुनः (जायसे) उत्पन्न होता है।

उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतम्। निंसानं जुह्वो मुखे॥१०॥३०

भा०—जैसे (अर्चिः) अग्नि-ज्वाला (जुह्वः मुखे) जुहू नाम चमस के मुख पर (निंसानं) चुम्बन करती हुई (आहुतम्) आहुति प्राप्त कर (घृतात् उत् रोचते) घृत के कारण ऊपर को उठकर चमकती है वैसे ही हे (अग्ने) जीवात्मा (तव तद् अर्चिः) तेरा वह प्रकाशमय बीज (जुह्वः मुखे) आदान या शुक्र ग्रहण करने वाले मातृगर्भस्थ शुक्रधारक नाड़ी के मुख पर (निंसानं) स्पर्श करता हुआ (आहुतं सत्) पुरुष द्वारा प्रदत्त होता है और उसी (घृतात्) तेजोमय शुक्र से (तद्वत्) तेरा वह रूप (उत् रोचते) उत्तम रीति से प्रकट होता है। इति त्रिंशो वर्गः॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये॥११॥

भा०—हम (उक्षान्नाय) वीर्यसेचन में समर्थ, अन्न खाने वाले और (वशान्नाय) यथेच्छ अन्न के भोगने वाले, (सोम-पृष्ठाय) वीर्य स्वरूप

(अग्ने) अग्निवत् आत्मा का (स्तोमैः) वेद मन्त्रों द्वारा (विधेम) प्रतिपादन और ज्ञान करें।

उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो। अग्ने समिद्भिरीमहे ॥१२॥

भा०—(उत) और हे (होतः) सब सुखों के दातः! हे (वरेण्य-क्रतो) श्रेष्ठ ज्ञानवन्! हे (क्रतो) जगत्कर्त्ता! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशमय! (त्वा) तुझको (वयं) हम (नमसा) विनय से (समिद्भिः) समिधाओं से आहवनीयाग्नि के तुल्य दीप्तियुक्त ज्ञानों द्वारा (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत। अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥१३॥

भा०—(उत) और हे (शुचे) शुद्ध! हे (अग्ने) ज्ञानमय! हे (आहुत) सर्वात्मना स्वीकृत! हम लोग (भृगुवत्) पाप दग्ध करने में समर्थ तपस्वी जनों के समान और (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों के तुल्य और (अङ्गिरस्वत्) देह में प्राणोंवत्, अङ्गारों के समान तेजस्वी, पुरुषों के समान होकर (त्वा हवामहे) तुझ से प्रार्थना करते हैं।

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता।
सखा सख्या समिध्यसे ॥ १४ ॥

भा०—जैसे (अग्निना अग्निः समिध्यते)एक अग्नि से दूसरा अग्नि मिलकर अधिक दीप्तियुक्त होता है और जैसे (विप्रः विप्रेण समिध्यते) विद्वान् पुरुष विद्वान् से मिलकर अधिक ज्ञान का प्रकाश करता है और जैसे (सन् सता) सज्जन सज्जन से मिलकर प्रसन्न होता है, (सखा सख्या समिध्यते) स्नेही मित्र स्नेहवान् जनों से मिलकर अधिक प्रसन्न होता है वैसे ही हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रभो! तू भी (अग्निा) स्वप्रकाश आत्मा द्वारा (समिध्यसे) प्रकाशित होता है, तू (विप्रः) विविध ज्ञानों से पूर्ण है, वह तू (विप्रेण) विशेष ज्ञान से पूर्ण आत्मा द्वारा ही (समिध्यसे) जाना जाता है। तू (सन्) सत् स्वरूप (सता) सत् नित्य

आत्मा से ही जाना जाता है। तू (सखा) आत्मा का परम स्नेही है, तू (सख्या) अपने मित्र आत्मा द्वारा ही जाना जाता है।

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम्।
अग्ने वीरवतीमिषम् ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! (सः त्वं) वह तू (दाशुषे) ज्ञानादि देने वाले (विप्राय) विद्वान् को (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों की संख्या से युक्त ऐश्वर्य और (वीरवतीम् इषम्) वीरों और पुत्रों से युक्त अन्न, (देहि) दे। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत।
इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (भ्रातः) स्नेहकारिन्, जीवों के भरण पोषण करने हारे! हे (सहस्कृत) सर्ववशकारी बल से सम्पन्न, हे (रोहित्-अश्व) रक्तवर्ण अश्व अर्थात् व्यापक तेज वाले, वेगवान् सूर्यादि पिण्डों के स्वामिन्! हे (शुचि-व्रत) शुद्ध व्रत! तू (मे) मेरे (इमं स्तोमं जुषस्व) इस स्तुतिवचन को स्वीकार कर।

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते।
गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो! (वाश्राय प्रतिहर्यते) पुकारने वाले और माता को चाहने वाले बछड़े के लाभ के लिये (गोष्ठं गावः इव) गोशाला में गौओं के समान (मम स्तुतः) मेरी स्तुतियां (त्वा) तुझको (आशत) प्राप्त हों।

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक्।
अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (अङ्गिरस्तम) प्राणों में मुख्य प्राणवत् श्रेष्ठ! हे (अग्ने)

तेजस्विन् ! (ताः विश्वाः सुक्षितयः) वे समस्त उत्तम प्रजाएं (कामाय तुभ्यं) कामना-योग्य तेरे लिये अपने को (पृथक्) पृथक् २ दलों में (नियेमिरे) नियंत्रित करते हैं, तुझे प्राप्त करने के लिये अपने को वर्ण आश्रमादि व्यवस्था में बांधते हैं।

अ॒ग्निं धी॒भिर्म॑नी॒षिणो॒ मेधि॑रासो विप॒श्चितः॑ ।
अ॒द्म॒सद्या॑य हिन्विरे ॥ १९ ॥

भा०—(मेधिरासः) अन्नादि के स्वामी, (मनीषिणः) मनों को सन्मार्ग में चलाने वाले, (विपश्चितः) विद्वान् लोग (धीभिः) उत्तम ज्ञानों, कर्मों, तथा स्तुतियों से (अद्मसद्याय) कालाग्नि रूप से अन्नवत् खाने योग्य, विश्व में अधिष्ठातृवत् विराजने और व्यापने के अर्थ (अग्निं हिन्वन्ति) ज्ञानी की स्तुति करते हैं।

तं त्वा॒मज्मे॑षु वा॒जिनं॑ तन्वा॒ना अ॑ग्ने अध्व॒रम् ।
वह्निं॒ होता॑रमीळते ॥ २० ॥ ३२ ॥

भा०—लोग (तं त्वाम्) उस तुझे (वाजिनम्) ऐश्वर्यवान् को, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (अज्मेषु) संग्रामों में भी (अध्वरं) अविनाशी (वह्निं) कार्यवहन में समर्थ (होतारम्) दाता रूप से (ईडते) स्तुति करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

पु॒रु॒त्रा हि स॒दृङ्ङसि॒ विशो॒ विश्वा॒ अनु॑ प्र॒भुः ।
स॒मत्सु॑ त्वा हवामहे ॥ २१ ॥

भा०—हे विभो ! प्रभो ! तू (विश्वाः विशः अनु प्रभुः) समस्त प्रजाओं के अनुकूल, सबका स्वामी और (पुरुत्र हि) पालने योग्य इन्द्रियों में आत्मा के समान ही (सदृङ् असि) सबको समान भाव से देखने वाला है। (समत्सु) संग्रामों और हर्षावसरों में भी (त्वा हवामहे) तेरी प्रार्थना करते हैं।

तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः ।
इमं नः शृणवद्धवम् ॥ २२ ॥

भा०—जैसे (आहुतः अग्निः) आहुति किया अग्नि (घृतैः) घृतों से (वि-भ्राजते) विशेष प्रकाशित होता है वैसे ही जो वह (अग्निः) तेजः-स्वरूप, प्रभु (घृतैः) तेजोमय आत्माओं से (आ-हुतः) बुलाया, पुकारा और प्रार्थित किया जाकर (वि-भ्राजते) हृदयों में विशेष प्रकाशित होता है (तम् ईळिष्व) तू उसकी ही स्तुति कर। क्योंकि वही (नः) हमारी (हवम् शृणवत्) स्तुति को श्रवण करता है।

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् ।
अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वान् (जात-वेदसम्) ज्ञान में निष्णात (शृण्वन्तं) श्रवण करने वाले और (द्विषः अप घ्नन्तम्) द्वेष करने वालों और द्वेष के भावों का विनाश करने वाले (तं त्वा) उस तुझको (वयं) हम लोग (हवामहे) पुकारते हैं।

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् ।
अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ २४ ॥

भा०—(विशां राजानम्) प्रजाओं के बीच राजाओं के तुल्य, देह में प्रविष्ट आत्माओं के बीच प्रकाशित, (धर्मणाम्) समस्त धर्मों के (अद्भुतम् अध्यक्षं) अद्भुत अध्यक्ष, द्रष्टा, (अग्निम्) तेजस्वी प्रभु की मैं (ईळे) स्तुति करूं, (सः उ श्रवत्) वह ही वस्तुतः सुनने वाला है।

अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् ।
सप्तिं न वाजयामसि ॥ २५ ॥ ३३ ॥

भा०—जैसे हम (विश्वायु वेपसं मर्यं वाजयामसि) समस्त मनुष्यों को कंपाने वाले बलवान् पुरुष को अधिक बल से युक्त करते

हैं। वा (वाजिनं सप्तिं वाजयामसि) बलशाली, वेग से जाने वाले अश्व को अधिक तीव्र वेग से जाने के लिए प्रेरित करते हैं वैसे ही हम (विश्वायु-वेपसं) समस्त मनुष्यों को चलाने वाले, (वाजिनं) ज्ञानैश्वर्यवान् (हितम्) सर्वहितकारी (सप्तिं) प्रकृति की सातों विकृतियों के स्वामी, (अग्निम्) सर्वप्रकाशक को (वाजयामसि) गुणों से अलंकृत करते, उसकी स्तुति करते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन् रक्षांसि विश्वहा।
अग्ने तिग्मेन दीदिहि॥ २६॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (मृध्राणि) हिंसक (द्विषः) द्वेष करने वालों को (घ्नन्) दण्डित करता और (रक्षांसि दहन्) विघ्नकारियों को दग्ध करता हुआ (तिग्मेन) तीक्ष्ण तेज से (दीदिहि) प्रकाशित हो।

यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम।
अग्ने स बोधि मे वचः॥ २७॥

भा०—हे (अङ्गिरस्तम) अति तेजस्विन्! (अग्ने) अग्रणी नायकवत् मार्गप्रकाशक! (यं त्वा) जिस तुझको (जनासः) मनुष्य (मनुष्वत्) ज्ञानी के समान होकर (त्वाम् इन्धते) तुझे ही प्रज्वलित करते हैं (सः त्वं) वह तू (मे वचः बोधि) मेरे वचन का ज्ञान कर।

यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत।
तं त्वा गीर्भिर्हवामहे॥ २८॥

भा०—अग्नि जैसे तीन प्रकार का है (दिविजाः) आकाश में सूर्य, (अप्सुजाः) जलों वा अन्तरिक्ष में उत्पन्न विद्युत्, और (सहस्कृतः) बल या मथन से उत्पन्न यह अग्नि, ऐसे ही आत्मा भी तीन प्रकार से प्रकट होता है। (१) (दिविजाः) कामना रूप से प्रकट, (२) (अप्सुजाः)

प्राणों में प्रकट, (३) (सहस्कृतः) प्रतिरोधी उष्ण शीतादि को सहन करने वाले बल रूप में प्रकट। ऐसे ही परमेश्वर के तीन गुण, (दिविजाः) परम आकाश में सूर्यादि का उत्पादक, (अप्सुजाः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं वा जलों में और अन्तरिक्षगत पदार्थों का उत्पादक, (सहस्कृत) सर्वातिशायी, सर्वव्यवस्थापक बल होकर विश्व का उत्पादक, हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो! हे उक्त तीनों विशेषणों वाले! (तं त्वा) उस तुझको हम (गीर्भिः) उत्तम वाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं।

तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक्।
धासिं हिन्वत्यत्तवे ॥ २९ ॥

भा०—(अत्तवे धासिं) भोक्ता जन को जैसे अन्न देते हैं वैसे ही (इमे जनाः) ये उत्पन्न हुए प्राणी या लोक और (विश्वाः सु-क्षितयः) समस्त उत्तम मनुष्य (पृथक्) पृथक् २ (तुभ्यं अत्तवे घ इत्) सब चराचर को अपने में लेने वाले तेरी ही (धासिं हिन्वन्ति) धारणा-सामर्थ्य की स्तुति करते हैं।

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः।
तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप, (विश्वा अहा) सब दिनों, (नृचक्षसः) नायक प्रभु को देखने वाले और (ते घ इत्) तेरे ही (सु-आध्यः) सुख से ध्यान, उपासना करने वाले होकर हम (दुर्ग-हा) दुःख से पार करने योग्य संकटों को (तरन्तः स्याम) पार करने वाले हों।

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम्।
हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे ॥ ३१ ॥

भा०—हम (मन्द्रं) स्तुत्य, आनन्दप्रद (पुरु-प्रियं) बहुतों के प्रिय, इन्द्रियों को आत्मा के तुल्य प्रजाओं को प्रसन्न करने वाले (पावक शोचिषम्) पवित्रकारक तेज वाले, (शीरं) व्यापक, (अग्निं) अग्निवत् प्रकाशक को (मन्द्रेभिः) हर्षयुक्त (हृद्भिः) हृदयों से (ईमहे) प्रार्थना करें।

स त्वमंग्ने विभावंसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ॥ ३२ ॥

भा०—(सृजन् सूर्यः न) उगते हुए सूर्य के समान (विभा-वसुः) विशेष कान्ति से आच्छादक, दीप्तिमान् होकर हे (अग्ने) प्रकाशक ! (रश्मिभिः) अपने किरणों से (शर्धन्) बलवान् होकर (सः त्वं) वह तू (तमांसि जिघ्नसे) अन्धकारों को नाश करता है, दुष्टों को दण्डित करता है।

तत्ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति।
त्वदंग्ने वार्यं वसु ॥ ३३ ॥ ३५ ॥

भा०—हे (सहस्व) महान् प्रभो ! (यत्) जो (ते) तेरा (वार्यं वसु) श्रेष्ठ ऐश्वर्य (न उप-दस्यति) नष्ट नहीं होता हम (तत् ते दात्रं) वह तेरा दातव्य दान (त्वत् ईमहे) तुझसे मांगते हैं। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[४४]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, २०—२२, २५, २६ गायत्री । २, ५, ७, ८, ११, १४—१७, २४ निचृद् गायत्री। ९, १२, १३, १८, २८, ३० विराड् गायत्री। २७ यवमध्या गायत्री । २९ ककुम्मती गायत्री । १९, २३ पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

समिधाग्निं दुंवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुंहोतन ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (समिधा घृतैः अग्निं) जैसे यज्ञाग्नि को समिधा, घृत और (हव्या जुहोतन) हव्य चरु की आहुति देते हो वैसे ही आप (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (अग्नि) ज्ञानवान् विद्वान् की (समिधा) समित्पाणि होकर(घृतैः)ज्ञानप्रकाशों के निमित्त (दुवस्यत) सेवा करो। (अस्मिन्) उसके निमित्त (हव्या आ जुहोतन) उत्तम अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना।
प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! तू (मे स्तोमं जुषेस्व) मेरी स्तुति स्वीकार कर और (अनेन मन्मना) इस मनन योग्य ज्ञान से (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो। (नः सूक्तानि प्रति हर्य) हमारे सूक्तों, उत्तम वचनों को तू चाह और हमें उत्तम वचनों का उपदेश कर।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे।
देवाँ आ सादयादिह ॥ ३ ॥

भा०—जैसे कोई (अग्निं दूतं पुरो धत्ते) तप्त अग्नि को आगे स्थापित करता है और अग्नि (देवान् आसादयति) प्रकाशक किरणों को प्रदान करता है, वैसे ही मैं (पुरः) अपने समक्ष (दूतं) स्तुति योग्य (हव्य-वाहम्) स्तुत्य गुणों के धारक गुरु और प्रभु को धारण करूं और (उप ब्रुवे) उसकी स्तुति करूं। वह (इह) इस अन्तःकरण में (देवान् असादयत्) ज्ञानों को प्राप्त करावे।

उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः। अग्ने शुक्रास ईरते ४

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (दीदिवः) कान्तियुक्त ! जैसे (समिधानस्य बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उत् ईरते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए अग्नि की बहुत बड़ी ज्वालाएं ऊपर को उठती हैं और सूर्य की

उज्ज्वल कान्तियें ऊपर को उठती हैं और जैसे (शुक्रासः उत् ईरते) पृथिवीस्थ जल भी ऊपर को उठते हैं वैसे ही (समिधानस्य) अति तेजस्वी (ते) तेरे (बृहन्तः) प्रवृद्ध (अर्चयः) उत्तम कान्तिएं और (शुकासः) शुक्र अर्थात् वीर्य (उत् ईरते) ऊपर मस्तक की ओर जाते हैं।

उप॑ त्वा जुह्वो॒३ मम॑ घृताचीर्य॑न्तु हर्यत ।
अग्ने॑ ह॒व्या जु॑षस्व नः ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—जैसे (घृताचीः जुह्वः अग्निं यन्ति) घृत वाली जुहू नाम स्रुचाएं यज्ञ-काल में अग्नि को प्राप्त होती हैं वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन्! प्रभो! हे (हर्यत) कान्तियुक्त! (मम) मेरी (घृताचीः) स्नेहयुक्त (जुह्वः) वाणियां (त्वा उप यन्तु) तुझे प्राप्त हों! हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (नः हव्या) हमारे दिये अन्नादि पदार्थों को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

म॒न्द्रं होता॑रमृ॒त्विजं॑ चि॒त्रभा॑नुं वि॒भाव॑सुम् ।
अ॒ग्निमी॑ळे॒ स उ॑ श्रवत् ॥ ६ ॥

भा०—मैं (मन्द्रं) सुखजनक, (होतारम्) सुखों और ज्ञानों के देने वाले, (ऋत्विजं) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले, (चित्र-भानुं) अद्भुत, सौम्य कान्तियुक्त (विभा-वसुम्) दीप्तियुक्त धन के स्वामी, (अग्निम् ईडे) प्रमुख तेजस्वी पुरुष की स्तुति करता हूँ। (सः उ श्रवत्) वह श्रवण करे।

प्र॒त्नं होता॑रमीड्यं॒ जुष्ट॑म॒ग्निं क॒विक्र॑तुम् ।
अ॒ध्व॒राणा॑मभि॒श्रिय॑म् ॥ ७ ॥

भा०—मैं (प्रत्नं) पुराण, नित्य, सर्वश्रेष्ठ, (होतारम्) ज्ञानों, ऐश्वर्यों के देने वाले, (ईड्यं) स्तुत्य, (जुष्टं) सेवने योग्य, (कविक्रतुम्) दूरदर्शी विद्वान् के समान ज्ञान, कर्म से युक्त, (अध्वराणां) यज्ञों के आश्रय, देवपूजा, सत्कार आदि के सत्पात्र की स्तुति करता हूँ।

जुषाणो अंङ्गिरस्तमेमा हव्यान्यांनुषक् ।
अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अंगिरःतम) प्राणों के प्राण ! हे (अग्ने) सबके नेतः ! तू (आनुषक्) निरन्तर (हव्यानि जुषाणः) उत्तम ग्राह्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, स्तुतिवचन अन्नादि सेवन करता हुआ (ऋतुथा) ऋतु अनुसार यज्ञं नय) यज्ञ को चला ।

सुमिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह ।
चिकित्वान् दैव्यं जनंम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (सन्त्य) सत्कार, सत्संगादि से सेवनीय ! हे (शुक्र-शोचे) शुद्ध, वीर्य की उज्ज्वल कान्ति से युक्त ब्रह्मचारिन् ! तू (चिकित्वान्) विद्वान् होकर (सम्-इधानः) अग्निवत् देदीप्यमान् होकर (दैव्यं जनं) उत्तम विद्वान् जनों को (इह आ वह) यहां प्राप्त करा ।

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् ।
यज्ञानां केतुमीमहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हम (विप्रम्) विद्वान् (होतारम्) ज्ञानप्रद, उपदेष्टा, (अद्रुहं) द्रोहरहित, अहिंसक, निर्द्वेष, (धूम-केतुम्) अज्ञान के नाशक, सत् ज्ञान से युक्त, (विभा-वसुम्) विशेष कान्ति से युक्त, कान्ति से अन्यों को आच्छादित करने वाले, (यज्ञानां केतुम्) यज्ञों के जानने वाले विद्वान्, वा प्रभु से हम (ईमहे) याचना करें। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ।

अग्ने नि पांहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषंतः ।
भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥ ११ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! विजिगीषो ! (अग्ने) अग्रणी ! (त्वं) तू (नः) हमें (रीषतः) हिंसक पुरुष से (नि पाहि) रक्षा कर, उसका (प्रति) मुकाबला कर । हे (सहस्कृत) बल से सम्पन्न ! तू (नः) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (भिन्धि) छिन्न भिन्न कर, उनमें भेद नीति का प्रयोग कर ।

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं१ स्वाम् ।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानी (कविः) क्रान्तदर्शी पुरुष (प्रत्नेन मन्मना) अनादि ज्ञान वेद से (स्वां तन्वं शुम्भानः) अपने देह, सुख आदि को शोभित करता हुआ (विप्रेण) विद्वान् के संग से (वबृधे) बढ़ता है ।

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ १३ ॥

भा०—(अस्मिन् सु-अध्वरे यज्ञे) इस अविनाशी यज्ञ में, (पावक-शोचिषम्) पवित्रकारक दीप्ति वाले (ऊर्जः नपातम्) बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, (अग्निं) नायक पुरुष को (आहुवे) आदर पूर्वक बुलाऊं ।

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (त्वम्) तू (मित्रमहः) मित्रों का आदर करने वाला, मित्रों से स्वयं पूजित होकर (शुक्रेण शोचिषा) उज्ज्वल कान्ति से युक्त होकर (नः) हमारे (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र और उत्तमासन पर (देवैः) विद्वान् विजय के इच्छुक पुरुषों सहित (आ सत्सि) आदरपूर्वक प्रतिष्ठित हो ।

यो अग्निं तन्वो३ दमे देवं मर्तः सपर्यति ।
तस्मा इदीदयद्वसु ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(यः मर्त्तः) जो मनुष्य (दमे) गृह में अथवा (तन्वः दमे) शरीर के अंगों को दमन करने के लिये (अग्निं देवं) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक, (देवं) ज्ञानी, दाता, विद्वान् और प्रभु की (सपर्यति) सेवा-शुश्रूषा करता है (तस्मै इत्) उसी के लिये वह (वसु दीदयत्) ज्ञानमय धन का प्रदान करता है । इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १६ ॥

भा०—(अयम्) यह (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का स्वामी (दिवः ककुत्) ज्ञान में श्रेष्ठ, आकाश में सूर्यवत् उन्नत, (मूर्धा) शिर के समान सर्वोपरि विराजमान, (अग्निः) अग्रणी विद्वान् (अपां) आप्त पुरुषों के बीच रहकर (रेतांसि जिन्वति) वीर्यों का पालन करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे।

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
तव ज्योतींष्यर्चयः ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (तव शुचयः) तेरे शुद्ध चरित्र, (शुक्राः) जलों या तेजों के समान (उत् ईरते) शुद्ध रूप से प्रकट होते हैं और (तव ज्योतींषि) तेरे तेज, (तव अर्चय :) तेरे सादरसत्कार अग्नि के प्रकाश में ज्वालाओं के समान (उत् ईरते) से प्रकट होते हैं।

ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ १८ ॥

भा०—(हि) क्योंकि हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (स्वः पतिः) समस्त सुखों का पालक, स्वामी है और (वार्यस्य दात्रस्य) वरण योग्य श्रेष्ठ दातव्य धन का भी (ईशिषे) स्वामी है, अतः मैं (शर्मणि) सुखमय शरण में रहकर (तव स्तोता स्याम्) तेरी स्तुति करने वाला होऊं।

त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (मनीषिणः) मन को सन्मार्ग में चलाने वाले, ज्ञान के अभिलाषी (त्वां) तुझे चाहते हैं। (त्वां चित्तिभिः हिन्वन्ति) तुझे कर्मों से प्रसन्न करते हैं। (नः गिरः) हमारी वाणियें भी (त्वां वर्धन्तु) तुझे ही बढ़ावें, तेरा ही गुणगान करें।

अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा।
अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥ २० ॥ ३६ ॥

भा०—(अदब्धस्य) विनाशरहित, (स्वधावतः) स्वयं जगत् की धारक शक्ति से युक्त (दूतस्य) दुष्टों के संतापक,(रेभतः)ज्ञान का उपदेश देने वाले, (अग्नेः) तुझ तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष के (सख्यं) मैत्रीभाव की हम (सदा वृणीमहे) सदा याचना करें। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अग्नि शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः।
शुची रोचत आहुतः ॥ २१ ॥

भा०—(शुचिव्रत-तमः) अत्यन्त शुद्ध पवित्र कर्मों वाला पुरुष, (विप्रः शुचिः) शुद्ध चरित्रवान्,विद्वान्(शुचिः कविः) शुद्ध चरित्रवान्, क्रान्तदर्शी, तत्व ज्ञानी पुरुष (शुचिः) शुद्ध, तेजस्वी (आहुतः) आहुति किये अग्नि के समान ही सत् दान प्राप्त कर (रोचते) प्रकाशित होता, और सबके मन को अच्छा लगता है।

उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा।
अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक! विद्वन्! (मम) मेरे (धीतयः) उत्तम कर्म और (गिरः) वाणियां (त्वा विश्वहा वर्धन्तु) तुझे सदा बढ़ावें और तू (नः सख्यस्य बोधि) हमारे मित्रभाव को जान।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे प्रभो! (यद्) यदि (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊं (त्वं वा घ अहम् स्याः) और तू मैं बन जावे, तब (इह) इस लोक में (ते आशिषः सत्याः स्युः) तेरी कामनाएं, वा तेरे विषय में मेरी भावनाएं सत्य हों।

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः।
स्याम ते सुमतावपि ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (विभा-वसुः) दीप्तियुक्त, दीप्ति से जगत् भर को आच्छादित करने हारा, (वसुः) सर्वव्यापक और (वसु-पतिः) समस्त वसु, जीवों का पालक, (असि) है। हम भी (ते सुमतौ स्याम) तेरी शुभ मति और उत्तम ज्ञान में रहें।

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः।
गिरो वाश्रास ईरते ॥ २५ ॥ ४० ॥

भा०—(धृत-व्रताय समुद्राय सिन्धवः इव) जल को धारण करने वाले समुद्र को प्राप्त होने के लिये जिस प्रकार नदी वेग से (ईरते) चलती है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (धृत-व्रताय) व्रतों, कर्मों के धारक (ते) तेरे लिये ही (वाश्रासः गिरः) शब्दमय वाणियां (ईरते) निकलती हैं। तेरी स्तुतियां अनायास हृदय में उठती हैं। इति चत्वारिंशो वर्गः॥

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम्।
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ २६ ॥

भा०—मैं (युवानं) बलवान्, (विश्पतिं) प्रजाओं के पालक, (कविं) विद्वान्, मेधावी, (विश्व-अदं) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाले, (पुरु-वेपसम्) नाना कर्म करने वाले, (अग्निं) तेज-स्वरूप, ज्ञान प्रकाशक प्रभु को (मन्मभिः) मन्त्रों से अलंकृत करता हूँ।

यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे। स्तोमैरिषेमाग्नये ॥२७॥

भा०—(यज्ञानां) यज्ञों के बीच (रथ्ये) रथी के समान नायक, (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्ण वशकारी साधनों से युक्त, (वीडवे) बलवान्, (अग्नये) तेजस्वी प्रभु को हम (स्तोमैः इषेम) स्तुति वचनों से चाहें।

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य। तस्मै पावक मृळय २८

भा०—हे (सन्त्य) उपास्य! (अग्ने) स्वप्रकाश (अयम् जरिता) यह स्तुतिकर्त्ता (ते अपि-भूतु) तेरे में मग्नता को प्राप्त हो, हे (पावक) पवित्र करने हारे परम पावन! (तस्मै मृड) तू उसको सुखी कर।

धीरो ह्यस्यंद्मसद्विप्रो न जागृविः सदा। अग्ने दीदयंसि द्यवि २६

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप! तू (विप्रः न) विद्वान् पुरुष के समान (धीरः हि असि) कर्मों, ज्ञानों, बुद्धियों का प्रेरक, (अद्मसत्) भोग्य, ऐश्वर्यमय ब्रह्माण्ड में, गृह में विराजमान (सदा जागृविः) सदा जागरणशील है। तू (द्यवि) आकाश में सूर्यवत् (दीदयसि) प्रकाश करता है।

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे।
प्र ण आयुर्वसो तिर॥ ३०॥ ४१॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! हे (वसो) सबमें बसने वाले! सबको बसाने हारे! (दुरितेभ्यः) दुष्टाचारों और (मृध्रेभ्यः) हिंसकों के भी (पुरा) पूर्व ही (नः आयुः प्र तिर) हमारे जीवनों को बढ़ा। इत्येकचत्वारिंशो वर्गः॥

[४५]

त्रिशोकः काण्व ऋषिः॥ १ इन्द्राग्नी। २—४२ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३—६, ८, ९, १२, १३, १५—२१, २३—२५, ३१, ३६, ३७, ३९—४२ गायत्री। २, १०, ११, १४, २२, २८—३०, ३३—३५ निचृद् गायत्री। २६, २७, ३२, ३८ विराड् गायत्री। ७ पादनिचृद् गायत्री॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।
येषामिन्द्रो युवा सखा॥ १॥

भा०—(ये घ) जो मनुष्य (अग्निम्) अग्नि को (आ इन्धते) अपने सन्मुख प्रज्वलित कर लेते हैं और (येषाम्) जिनका (युवा इन्द्रः)

ऐश्वर्यवान् प्रभु (सखा) मित्र है, वे (आनुषक्) निरन्तर (बर्हिः) यज्ञवत् इस लोकस्थ प्रजा को (स्तृणन्ति) पृथिवी पर विस्तृत करते हैं ।

बृहदिद्दिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

भा०—(येषाम् इन्द्रः युवा सखा) ऐश्वर्यवान्, बलवान्, प्रभु, राजा, वा विद्युत्, सूर्य आदि जिनका मित्र के तुल्य सहायक है (एषां इध्मः बृहत् इत्) उनका तेज भी महान् होता है । (एषां शस्तं भूरि) उनका उत्तम ज्ञान भी बहुत अधिक होता है । (एषां स्वरुः पृथुः) उनका शब्द वा शत्रु को सन्ताप बल भी भारी होता है ।

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥

भा०—(येषाम् इन्द्रः युवा सखा) जिनका मित्र, बलवान्, शत्रु-हन्ता है वह (शूरः) शूरवीर होकर (सत्वभिः) अपने बलों से ही (युधावृतं) योधा जन से घिरे, बड़े सैन्यवान् शत्रु को भी (आ अजति) उखाड़ डालता है और (अयुद्ध) उससे युद्ध करता है ।

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम् ।
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ४ ॥

भा०—(जातः) अभिषिक्त हुआ, (वृत्र-हा) दुष्ट पुरुषों का मेघों को विद्युत्वत् ताड़ित करने वाला वीर पुरुष जब (बुन्दं) बाण, दुष्टों के भेदक, भयप्रद आयुध या सैन्य आदि को (आ ददे) अपने हाथ में ले तो वह (मातरं) माता के समान भूमि, राष्ट्र प्रजा वा विदुषी राज-सभा से (पृच्छद्) पूछे, कि (के उग्राः) कौन दुष्ट उग्र होकर प्रजा को सताते हैं और (के ह) कौन (शृण्विरे) दुष्ट संतापकारी सुने जाते हैं । वह पता लगा २ कर उनको दण्डित करे ।

प्रति त्वा शवसी वंदद् गिरावप्सो न योधिषत् ।
यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥ ४२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (त्वा प्रति) तेरे प्रति (शवसी) बलवती सेना (अवदत्) कहे कि (यः) जो (ते शत्रुत्वम् आचके) तेरी शत्रुता चाहता है उससे तू (गिरौ) मेघ में विद्यमान (अप्सः न) रूपयुक्त तेजस्वी विद्युत् के समान (योधिषत्) प्रहार कर । इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् ।
यद्वीळयासि वीळु तत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (उत त्वं शृणु) और तू श्रवण कर, (यः ते वष्टि) जो तुझसे किसी पदार्थ की कामना करे उसे तू (तत् ववक्षि) वह पदार्थ प्रदान कर । तू (यद् वीडयासि) जिसको बलवान् करे (तत् वीडु) वह सैन्य भी बलवान्, दृढ़ हो ।

यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु-नाशक सेनापति (यत्) जो (आजिं याति) युद्ध के लिये प्रयाण करता है वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता (आजिकृत्) युद्ध करने में कुशल, (सु-अश्वयुः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी और (रथी-नाम् रथीतमः) रथवान् योद्धाओं के बीच सर्वश्रेष्ठ रथी हो ।

वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह ।
भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवीर्य से सम्पन्न, शस्त्रबल के स्वामिन् ! तू (विश्वा अभि-युजः) समस्त आक्रमणकुशल सेनाओं को (विश्वक् यथा) जिस प्रकार हो उसी प्रकार सब ओर (वि सु वृह) विविध और अच्छी प्रकार सुसज्जित खड़ा रख और तू (नः)हमारे बीच (सु-श्रवस्तमः भव) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और धनैश्वर्यादिवान् हो ।

अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये।
न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥

भा०—(यं धूर्तयः) जिसको हिंसक जन (न धूर्वन्ति) नाश न कर सकें वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (अस्माकं सातये) हमारे लाभ के लिये (रथं पुरः सु कृणोतु) हमारे रथ सैन्य को आगे करे।

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने।
गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥ १० ॥ ४३ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हम (ते द्विषः) तेरे शत्रुओं को (अरं) खूब (परि वृज्याम) दूर करें। (गोमतः ते) भूमि, वाणी और गवादि पशु सम्पन्न, जितेन्द्रिय (ते दावने) तेरे दिये अन्न, भूमि, ज्ञान, शासन, वेतनादि के लिये (ते गमेम इत्) तुझे अवश्य प्राप्त करें।

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः।
विचक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन्! हम (शनैः चित् यन्तः) शनैः शनैः जाते हुए, (अश्वावन्तः) अश्वों वाले, (शतग्विनः) सौ २ भूमियों वा सौ २ गायों के स्वामी, (अनेहसः) निष्पाप और (विचक्षणाः) राष्ट्र में विशेष पद के धारक होवें।

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता।
जरितृभ्यो विमंहते ॥ १२ ॥

भा०—(वि-मंहते) विविध ऐश्वर्य देने वाले (ते) तेरे लिये (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों की (शता सहस्रा) सैकड़ों, हजारों (सूनृता ऊर्ध्वा) वाणियां ऊपर उठती हैं। उसी प्रकार विद्वानों के लिये तुझ दानशील के सैकड़ों हजारों उत्तम २ (सूनृता) धनैश्वर्य हों।

विद्मा हि त्वा धनञ्जयमिन्द्रं दृळहा चिदारुजम् ।
आदारिणं यथा गयम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन् ! द्रष्टा ! हम (त्वा) तुझको ही (धनं-जयम्) ऐश्वर्यों को जीतने वाला (दृढ़ा चित् आरुजम्) शत्रु के दृढ़ से दृढ़ दुर्गों को तोड़ने वाला (विद्म हि) जानते हैं और (यथा गयं अदारिणम्) जिस प्रकार गृह उत्तम दारा अर्थात् धर्मपत्नी से युक्त होकर सुखप्रद होता है उसी प्रकार हम (त्वा) तुझको भी (अदारिणम् विद्म) उत्तम गृहपति वा शत्रु के छेदन भेदन में कुशल जानते हैं ।

ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः ।
आ त्वा पणिं यदीमहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! हे (धृष्णो) शत्रुओं को पराजित करने हारे ! (ककुहं) विनीत (त्वा) तुझको (इन्दवः) नाना ऐश्वर्य (मन्दन्तु) तृप्त, पूर्ण रखते हैं । (यत्) जिससे हम (पणिं त्वां) उत्तम व्यापारी तुझसे (आ ईमहे) धनादि की याचना करते हैं ।

यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये ।
तस्य नो वेद आ भर ॥ १५ ॥ ४४ ॥

भा०—(यः) जो (रेवान्) धनवान् होकर भी (अदाशुरिः) दान, यज्ञादि नहीं करता और (ते मघत्तये) तेरे दिये पूज्य धन को लेने के लिये (प्र ममर्ष) बलात्कार करता है, (तस्य वेदः) उसका धन (नः आभर) हमें ला दे । इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ १६ ॥

भा०—(पुष्ट-वन्तः) उत्तम हृष्ट पुष्ट पशु के स्वामी (यथा पशुम्) जिस प्रकार अपने पशु को स्नेह से देखते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र)

ऐश्वर्यवन् ! (सोमिनः सखायः) ऐश्वर्यवान् मित्रगण (इमे) ये (त्वा उ विचक्षते) तुझे विशेष आदर, स्नेह से देखते हैं और स्तुति करते हैं।

उत त्वाऽवधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये। दूरादिह हवामहे ॥१७॥

भा०—(उत) और (वयं) हम लोग (अवधिरम्) श्रोत्रेन्द्रिय की शक्ति से युक्त (श्रुत्-कर्णं) श्रवण करने में समर्थ, (सन्तं) सज्जन तुझको (दूरात्) दूर रहते भी (ऊतये) रक्षार्थ वहां से (इह) यहां (हवामहे) बुलाते हैं।

यच्चिद्धि शश्वता इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत। भवेरापिर्नो अन्तमः ॥१८

भा०—(यत्) जब (उत) भी (इमं) इस (हवं शुश्रूया) आह्वान को श्रवण करे तो तू (दुर्मर्षं) दुःसह्य (चक्रियाः) पराक्रम कर और (नः) हमारा (अन्तमः आपिः भवेः) निकटतम बन्धु हो।

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि।
गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥ १९ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जब भी (व्यथिः) दुःखित होकर हम (ते जगन्वांसः) तेरे शरण जाकर (अमन्महि) तेरा मनन करें, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तब भी तू (नः) हमें (गो-दाः) उत्तम वाणी देने हारा होकर हमें (बोधि) ज्ञान प्रदान कर।

आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते।
उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥ २० ॥ ४५ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल और ज्ञान के पालक ! जिव्रयः रम्भं न) बूढ़े जिस प्रकार दण्ड का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हम (त्वा आ ररम्भ) तेरा आश्रय लेवें। (सधस्थे) सब स्थानों में हम (त्वा आ उश्मसि) तेरी ही सदा कामना करते हैं। इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः।

स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने ।
नकिर्यं वृण्वते युधि ॥ २१ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यं) जिसको (युधि) युद्ध में (नकिः वृण्वते) कोई रोक नहीं सकता उस (सत्वने) बलशाली, (पुरु-नृम्णाय) बहुत धनों के स्वामी, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (स्तोत्रं गायत) स्तुति का गान करो ।

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृषभ) बलवन् ! (सुतं त्वा) अभिषिक्त (सुते) ऐश्वर्य-युक्त इस पद पर (पीतये) रक्षा करने के लिये (अभि सृजामि) तुझे नियुक्त करता हूँ । तू (मदम् वि अश्नुहि) सुख आनन्द विविध प्रकार से प्राप्त कर और (तृम्प) तृप्तिकारक आनन्द का भोग कर ।

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २३ ॥

भा०—(अविष्यवः) हिंसाशील (मूराः) घातक लोग (त्वा मा आदभन्) तुझे नाश न करें और (मा उपहस्वानः) उपहास करने वाले जन भी तुझे हानि न पहुँचावें । (ब्रह्म-द्विषः) वेद व ब्राह्मण वर्ग और तेरे धन के द्वेषी जनों का तू (माकीं वनः) संग मत कर ।

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन् विद्वन् ! (इह) इस राष्ट्र में या इस पद पर (गो-परीणसा) भूमि या वाणी के महान् बल से (महे राधसे) बड़े ऐश्वर्य के लिये लोग (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करें । (यथा गौरः सरः) तालाब के जल को मृग जैसे यथेच्छ पीता है वैसे ही तू भी (गौरः) पृथिवी पर

या ज्ञान-वाणी में रमण करता हुआ (सरः) प्रशस्त ज्ञानरूप जल का (पिब) पान कर।

या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे।
ता संसत्सु प्र वोचत॥ २५॥ ४६॥

भा०—(वृत्रहा) दुष्टों का नाशक सेनापति विघ्नादि का नाश करके सफल विद्वान् (परावति) दूर देश में भी (या) जिन (सना) सनातन से चले आये (नवा च) और नये ऐश्वर्यों और नये तत्वों, ज्ञानों को (चुच्युवे) प्राप्त करे (ता) उनको (संसत्सु) सभाओं, परिषदों में (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उत्तम आदर से कहो, जिससे ज्ञान वृद्धि हो। इति षट्चत्वारिंशो वर्गः॥

अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे। अत्रादेदिष्ट पौंस्यम्॥२६

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, दुष्टों का हन्ता वा सत्य ज्ञान का द्रष्टा पुरुष (कद्रुवः) उपदेष्टा विद्वान् के (सुतम्) प्रकट किये ज्ञान को भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य, अन्नादि के समान (सहस्र-बाह्वे) सहस्रों वा बलशाली बाहुबल की वृद्धि के लिये (अपिबत्) पान करे। (अत्र) इस प्रकार उसका इस लोक में (पौंस्यं अदेदिष्ट) पौरुष चमकता है।

सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम्। व्यानट् तुर्वणे शमि २७

भा०—विद्वान्, राजा (तुर्वशे) चारों अर्थों को चाहने वाले बलवान् जन में (सत्यं) यथार्थ ज्ञान और (अह्नवाय्यं) दिन में करने योग्य कार्य मात्रा को ठीक २ (विदानः) जानता हुआ (तुर्वणे) शीघ्र, कार्य करने में कुशल पुरुष पर (शमि) कार्य का (वि-आनट्) विभाग करे।

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः। समानमु प्र शंसिषम् २८

भा०—मैं (जनानां वः) आप लोगों को (तरणिं) संकटों से पार उतारने वाले (त्रदं) शत्रु नाशक और (गोमतः वाजस्य) भूमि युक्त ऐश्वर्य के दाता की (समानम् उ प्रशंसिषम्) समान रूप से प्रशंसा करता हूँ।

ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २९ ॥

भा०—(सोमे) सोम, अर्थात् पुत्रवत् शासन करने योग्य पुत्र के (सुते) अभिषेक कर देने पर (ऋभुक्षणं) महान् (न) और (तुग्र्यावृधम्) शत्रु की हिंसा करने वाले, बल बढ़ाने वाले, राष्ट्र पालक राजा प्रजा के आश्रय, शक्ति को बढ़ाने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, प्रभु, राजा को (वर्तवे) वरण करने के लिये (उक्थेषु) उत्तम २ वचनों में उसकी (सचा) एक साथ मिलकर प्रशंसा करें, उसका गुणानुवाद करें ।

यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।
गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥ ३० ॥ ४७ ॥

भा०—सूर्य (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरीम्) भारी मेघ को (विकृन्तत्) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करता और (गोभ्यः निरेतवे गातुं) किरणों के निकलने के लिये मार्ग बना लेता है, वैसे ही (यः) जो पराक्रमी पुरुष (त्रि-शोकाय) तीनों प्रकार के तेजों की प्राप्ति के लिये, (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी पर्वत को, (विकृन्तत्) विविध स्थानों से काटता और (गोभ्यः निरेतवे) वेगयुक्त जलधाराओं के निकलने के लिये मार्ग तैयार करता है वह राजा श्रेष्ठ है, उसी की प्रशंसा करें । इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि ।
मा तत्करिन्द्र मृळय ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जिस जगत् वा देह को आत्मवत् तू (दधिषे) धारण करता है, (यत् मनस्यसि) जिसको तू मनन द्वारा संकल्प करता है और (मन्दानः) हर्षित होकर (यत् प्र इयक्षसि इत्) जिसे प्राप्त होता है, (मा तत् कः) क्या तू उसको नहीं बनाता, तू (मृडय) उस जगत् को सुखी कर ।

द॒भ्रं चि॒द्धि त्वाव॑तः कृ॒तं शृ॒ण्वे अधि॒ क्षमि॑ ।
जिगा॑त्विन्द्र ते॒ मनः॑ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी का (दभ्रं चित्) थोड़ा भी (कृतं) किया कार्य (अधि क्षमि) भूमि पर (शृण्वे) प्रसिद्ध सुना जाता है (ते मनः) तेरा मन (जिगातु) आगे बढ़े ।

तवेदु ताः सु॑की॒र्तयोऽस॑न्नु॒त प्रश॑स्तयः ।
यदि॑न्द्र मृ॒ळया॑सि नः ॥ ३३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है (ताः सुकीर्तयः) वे नाना उत्तम कीर्त्तियां और (उत) (प्रशस्तयः) उत्तम प्रशंसाएं भी (तव इत्) तेरी ही हैं ।

मा न॒ एक॑स्मि॒न्नाग॑सि॒ मा द्वयो॑रु॒त त्रि॒षु ।
व॒धीर्मा॑ शूर॒ भूरि॑षु ॥ ३४ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (एकस्मिन् आगसि) एक अपराध पर (नः मा वधीः) हम प्रजाओं को पीड़ित मत कर, (मा द्वयोः) दो अपराधों पर, (उत त्रिषु) और तीन अपराधों पर भी सबको पीड़ित मत कर (भूरिषु) बहुत अधिक अपराध होने पर भी हम सबको दण्डित मत कर, प्रत्युत जिसका अपराध हो उसी को न्याय से दण्डित कर ।

वि॒भया॒ हि त्वाव॑त उ॒ग्राद॑भिप्रभ॒ङ्गिणः॑ ।
द॒स्माद॒हमृ॑ती॒षहः॑ ॥ ३५ ॥ ४८ ॥

भा०—(ऋति-सहः) शत्रुकृत हिंसा वा हिंसक सेनाओं को पराजित करने में समर्थ, (अभि-प्र-भङ्गिणः) आगे आये शत्रु को अच्छी प्रकार विनाश कर देने वाले, (दस्मात्) शत्रुनाशक, (उग्रात त्वावतः) तुझ जैसे बलवान् प्रचण्ड स्वामी से, (विभया हि) मैं सदा भय करूं। सब पीड़ाओं को मिटा देने से "ऋतीसह" और विश्व भर के सब संकटों को प्रलय करने में समर्थ होने से 'अभि-प्रभङ्गी' है । इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः ।

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्यं प्रभूवसो ।
आवृत्वंद्भूतु ते मनः ॥ ३६ ॥

भा०—हे (प्रभु-वसो) प्रभूत धन और प्रजा के स्वामिन् ! मैं (सख्युः शुनम् मा आ विदे) मित्र के सुखकारक धन को न अपहरण करूं । (पुत्रस्य मा) मैं पुत्र के धन को भी अपहरण न करूं । (ते मनः) तेरा मन (वावृत्वत् भूतु) हमारी ओर आने वाला, प्रेम से युक्त हो ।

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् ।
जहा को अस्मदीषते ॥ ३७ ॥

भा०—हे (मर्याः) मनुष्यो ! (कः सखा) कौन मित्र स्नेही (अमिथितः) बिना अनादर युक्त वचन कहा जाकर ही (सखायम् अब्रवीत्) अपने मित्र को कह सकता है । (कः जहा) कौन किसको मारता है (क अस्मत् ईषते) कौन हमसे भयभीत होकर भागता है ? जब कोई किसी को नहीं मारता तो कोई किसी से भय खा कर नहीं भागता है ।

एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः श्वघ्नीव निवता चरन् ॥३८

भा०—(स्वघ्नी इव) अपना द्रव्य या आश्रित जन को नाश करने वाला, जिस प्रकार (निवता चरन्) लज्जा से नीचा मुख करके चलता है, हे (वृषभ) पुरुष (एवारे) आदरों से प्राप्त होने योग्य (सुते) ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर, (आवयः) रक्षक जन (भूरि असिन्वन्) बहुत बांध लेते हैं और (निवता चरन्) नम्र होकर आचरण करते हैं ।

आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा ।
यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥ ३९ ॥

भा०—(यत्) जो तू (ब्रह्मभ्यः इत्) वेदज्ञ पुरुषों के हितार्थ ही (ददः) सब देता है इसलिये (ते) तेरे (एता) इन (वचोयुजा) वाणीमात्र से लगने वाले(सुमद्-रथा)उत्तम बल युक्त रथों वाले, (हरी) अश्वों के समान उत्तम देहवान् स्त्री पुरुषों को (आगृभ्णे) तेरे अधीन करता हूँ ।

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४० ॥

भा०—(विश्वाः द्विषः अप भिन्धि) सब शत्रुओं को छिन्न भिन्न करके दूर कर । (परि बाधः) पीड़ित कर और (मृधः जहि) हिंसकों का नाश कर । (तत् स्पार्हं वसु आ भर) वह चाहने योग्य ऐश्वर्य प्राप्त करा ।

यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् वसु) जो ऐश्वर्य वा ज्ञान (वीडौ) बलवान् पुरुष में, (यत् स्थिरे) जो स्थिर शासक में, (यत् पर्शाने) जो विचारशील पुरुष में (स्पार्हं) अभिलाषा करने योग्य (पराभृतम्) विद्यमान है, तू हमें (तत् आ भर) वह प्राप्त करा ।

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४२ ॥ ४१ ॥ ३ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! (ते दत्तस्य) तेरे दिये (यस्य भूरेः) जिस बहुत से ऐश्वर्य को (विश्व-मानुषः) समस्त मनुष्य जानते और प्राप्त करते हैं तू वह (स्पार्हं वसु आ भर) चाहने योग्य उत्तम ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा ।
इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

———

चतुर्थोऽध्यायः

[४६]

वशोऽश्व्य ऋषिः ॥ देवताः—१-२०, २६-३१, ३३ इन्द्रः । २१-२४ पृथुश्रवसः कानीनस्य दानस्तुतिः । २५—२८, ३२ वायुः ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २,१०,१५, २९ विराड् गायत्री । ३, २३ गायत्री । ४ प्रतिष्ठा गायत्री । ६, १३, ३३ निचृद् गायत्री । ३० आर्ची स्वराट् गायत्री । ३१ स्वराड् गायत्री । ५ निचृदुष्णिक् । १६ भुरिगुष्णिक् । ७, २०, २७, २८ निचृद् बृहती । ९, २६ स्वराड् बृहती । ११, १४ विराड् बृहती । २१,२५,३२ बृहती । ८ विराडनुष्टुप् । १८ अनुष्टुप् । १९ भूरिगनुष्टुप् । १२,२२,२४ निचृत् पंक्तिः । १७ जगती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

त्वावंतः पुरूवसो व॒यमि॑न्द्र प्रणेतः । स्मसि॑ स्थातर्हरीणाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (पुरूवसो) बहुत से धनों और प्रजाओं के स्वामिन् ! हे (हरीणां प्रणेतः) मनुष्यों के उत्तम नायक ! उत्तम मार्ग से ले जाने वाले ! हे (स्थातः) अधिष्ठातः ! (वयं) हम (त्वावतः स्मसि) तेरे जैसे स्वामी की प्रजा होकर रहें ।

त्वां हि स॒त्यम॑द्रिवो वि॒द्म दा॒तार॑मि॒षाम् ।
वि॒द्म दा॒तारं॑ र॒यी॒णाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! मेघवत् उदार पुरुषों के स्वामिन् ! हम (त्वां हि) तुझको ही (सत्यम्) सच्चा (इषां दातारम्) अन्नों और कामनाओं का देने वाला, (विद्म) जानें और (त्वां रयीणां दातारं विद्म) तुझको ही ऐश्वर्यों का देने वाला जानें ।

आ यस्य॑ ते महि॒मानं॑ श॒तमू॑ते श॒तक्र॑तो ।
गी॒र्भिर्गृ॒णन्ति॑ का॒रवः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को (कारवः) विद्वान् जन (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्ति) बतलाते हैं हे (शतम् ऊते)

३० प.

सैकड़ों रक्षाओं से सम्पन्न ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं, कर्म सामर्थ्य से युक्त उस तुझको ही हम सच्चा अन्न, ऐश्वर्य का दाता जानें।

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा। मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥ ४॥

भा०—(यं) जिस मनुष्य को (मरुतः) विद्वान् लोग (यम् अर्यमा) जिसको न्यायकारी पुरुष और (मित्रः) स्नेहवान् जन (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (पान्ति) रक्षा करते हैं (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (घ) अवश्य (सुनीथः) शुभ मार्ग में जाता है।

दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते।
सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—और वह पुरुष (गोमत्) गौ आदि पशुओं से समृद्ध (अश्ववत्) अश्वादि साधनों से युक्त, (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को (दधानः) धारण करता हुआ (आदित्य-जूतः) सूर्यवत् तेजस्वी, उपासक पुरुषों से प्रेरित (पुरु-स्पृहा राया) बहुतों से चाहने योग्य धनैश्वर्य से (एधते) बढ़ता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम्। ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥

भा०—हम (तम्) उस (रायः ईशानम्) धन के स्वामी, (शवसानम्) बलशाली (अभीर्वम्) अभीरु, निर्भीक, किसी से भय न करने वाले (इन्द्रं) शत्रुनाशी, ऐश्वर्य वाले, सत्यदर्शी स्वामी पुरुष को प्राप्त कर उससे (दानम् ईमहे) दातव्य धन और ज्ञान की याचना करें।

तस्मिन्हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—(तस्मिन् हि) उसके अधीन, (विश्वाः ऊतयः) समस्त ऐसी रक्षक शक्तियां (सचा) सदा समवाय से रहतीं और (अभीरवः) भय-रहित (सन्ति) हैं। (तम्) उस (पुरुवसुम्) बहुत सी बसी प्रजा के

अनेक धनों के स्वामी (सुतम्) अभिषिक्त पुरुष को (सप्तय: हरय:) उसके शरणागत मनुष्य (मदाय) आनन्द प्राप्त करने के लिये (आ वहन्तु) सारथि को अश्ववत् अपने ऊपर धारण करें उसे प्रमुख बनावें।

यस्ते॒ मदो॒ वरे॑ण्यो॒ य इ॑न्द्र वृत्र॒हन्त॑मः।
य आ॒द॒दिः स्व१॒र्नृभि॒र्यः पृत॑नासु दु॒ष्टरः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) प्रसन्न होने का साधन, शासन है (यः वृत्रहन्तमः) जो दुष्टों का अत्यन्त नाशक है, (यः) जो (नृभिः) उत्तम पुरुषों द्वारा (स्वः) सुख और तेज को (आ ददिः) प्राप्त करने वाला और (यः) जो (पृतनासु) संग्रामों में भी (दुस्तरः) पराजित न होने वाला है वह (वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ है।

यो दु॒ष्टरो॑ विश्ववार श्र॒वाय्यो॒ वाजे॒ष्वस्ति॑ तरु॒ता।
स नः॑ शविष्ठ॒ सव॒ना व॑सो गहि ग॒मेम॒ गोम॑ति व्र॒जे ॥९॥

भा०—हे(विश्व-वार) सबसे वरण योग्य ! हे सब दुःखों के वारक ! (यः) जो (दुस्तरः) कभी पराजित न होने वाला, (वाजेषु) संग्रामों वा ज्ञानों में (श्रवाय्यः) श्रवण योग्य, सुप्रसिद्ध, (तरुता अस्ति) सब शत्रुओं का हिंसक और समस्त प्रजा को पार उतारने वाला है, (सः) वह तू हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे (वसो) सबको बसाने वाले ! (नः) हमारे(सवना गहि) ऐश्वर्यों को प्राप्त हो और हम (गोमति व्रजे) उत्तम बैलों वाले रथ के समान इस इन्द्रियों से सम्पन्न देह में बैठकर (सवना) समस्त ऐश्वर्यों, जन्मों और नाना लोकों को (गमेम) प्राप्त करें।

ग॒व्यो षु णो॒ यथा॑ पु॒राश्व॒योत र॑थ॒या।
व॒रि॒व॒स्य म॑हामह ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (महामह) महा धनाधिपते प्रभो (यथा पुरा) पूर्व कल्पवत् तू (नः) हमें (गव्यो) गौओं (अश्वया रथया) अश्वों और रथों से (वरिवस्य) युक्त कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

नहि त शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! दुष्टों के नाशक प्रभो ! (सत्रा) सचमुच मैं (ते राधसः अन्तं नहि विन्दामि) तेरे धनैश्वर्य के अन्त को नहीं पाता हूँ। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) बलशालिन् ! (नः) हमें (दशस्य) प्रदान कर (नू चित्) और शीघ्र ही, (वाजेभिः) बलों, ज्ञानों ऐश्वर्यों से (नः आविथ) हमारी रक्षा कर ।

य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (ऋष्वः) महान् (सखा) स्नेही होकर (विश्वा इत्) समस्त ज्ञानों को (श्रवयत्) गुरुवत् उपदेश करता है, (सः) वह (इत्) वही (पुरुस्तुतः) बहुतों से स्तुति किया हुआ (विश्वा जनिमा) सब उत्पन्न पदार्थों को (वेद) जानता है, (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् को (विश्वे) समस्त मनुष्य (यत-स्रुचः) स्रुच्, जुहू आदि को हाथ में लिये ऋत्विजों के समान (यत स्रुचः) इन्द्रियों को वश कर (मानुषा युगा) समस्त मनुष्योपयोगी वर्षों तक (तं) उस (इन्द्रं) प्रभु की (हवन्ते) उपासना करते हैं ।

स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरः स्थाता ।
मघवा वृत्रहा भुवत् ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वह (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक, (पुरूवसुः) बहुत धनों और प्रजाओं का स्वामी (पुरः स्थाता) अग्र पद पर स्थिर रहने वाला, (मघवा) धनैश्वर्य का स्वामी (नः) हमारे (वृत्रहा) विघ्नों का नाशक (भुवत्) होता है ।

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ १४ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (वः मदेषु) आप लोग अपने हर्ष और (अंधसः) अन्नादि पदार्थों के द्वारा प्राप्त आनन्द के अवसरों में (वीरम्) वीर, (विचेतसम्) विविध चित्तों और ज्ञानों के स्वामी, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (श्रुत्यं) श्रुति-प्रसिद्ध, वेदगम्य, (शाकिनं) शक्तिशाली प्रभु की (यथा वचः) वाणी के अनुसार ही, (महागिरा गाय) श्रेष्ठ वाणी से स्तुति गान करो।

दुदी रेक्णस्तुन्वे दुदिर्वसु दुदिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम्।
नूनमथ॑ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य! तू (तन्वे) हमारे शरीर के लिये (रेक्णः ददिः) धन देने वाला हो। (वाजेषु वसु ददिः) ऐश्वर्यों के लिये ऐश्वर्य देने वाला हो, (नूनम् अथ) और शीघ्र ही (वाजिनम् ददिः) अन्नादियुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। इति तृतीयो वर्गः॥

विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदुस्य वर्पसः।
कृपयतो नूनमत्यथ॑ ॥ १६ ॥

भा०—(अथ) और (विश्वेषां वसूनां) समस्त प्रजाजनों के (इरज्यन्तम्) स्वामी और (अस्य) इस (कृपयतः) सामर्थ्यवान् (वर्पसः) तेज को (सासह्वांसं) अधीन रखने वाले तेरी स्तुति करते हैं।

महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळ्हुषे अरङ्गमाय जग्मये।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥१७

भा०—हे विद्वान् लोगो! हम लोग (वः) आप लोगों के प्रति (अरंगमाय) प्राप्त होने योग्य (जग्मये) सर्वत्र गत, (मीळ्हुषे) सुखवर्षक उस प्रभु की (यज्ञेभिः गीर्भिः) वेद-वाणियों से (स्तवामहे) स्तुति करें। वह हमें और हम उस (महः) पूज्य को ही (अरम्) बहुत (सु-इषे) उत्तम रीति से चाहें। हे प्रभो! तू (विश्व-मनुषां मरुतां) सब मननशील मनुष्यों को (इयक्षसि) देता है। (त्वा) तेरी ही मैं (नमसा गिरा) विनययुक्त वाणी से (गाये) स्तुति करता हूँ।

ये पा॒तय॑न्ते॒ अज्म॑भिर्गिरी॒णां स्नु॒भिरे॑षाम् ।
य॒ज्ञं म॑हि॒ष्वणी॑नां सु॒म्नं तु॑वि॒ष्वणी॑नां॒ प्राध्व॒रे ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (स्नुभिः) बहने वाले (अज्मभिः) जलों से (पातयन्ते) आकाश में गमन करते हैं (एषाम्) उन (महिस्वनीनां, तुविस्वनीनाम्) घोर शब्दकारी,बहुत शब्द करने वाले मेघों के (यज्ञं सुम्नं) दिये जल और सुख को (अध्वरे) अविनाशित यज्ञ के आश्रय पर प्राप्त करते हैं ।

प्र॒भ॒ङ्गं दु॑र्म॒ती॒नामिन्द्र॑ शवि॒ष्ठा भ॑र ।
ज्येष्ठं॑ चोदयन्मते र॒यिम॒स्मभ्यं॒ युज्यं॑ चोदयन्मते ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमें (प्र-भङ्गं) नाना कष्टों के नाशक, (रयिम् आ भर) ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (चोदयन्-मते) सन्मार्ग में प्रवर्त्तक बुद्धि और वाणी वाले! तू (प्रभङ्गं) शत्रुओं के बल तोड़ने वाले (युज्यं रयिम् आ भर) सहयोगी जनों के हितकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करा । हे (चोदयन्मते) प्रेरक वाणी के स्वामिन् ! तू (ज्येष्ठं रयिम्) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य और (प्रभङ्गं ज्येष्ठं आ भर) सर्व-कष्टनाशक, श्रेष्ठ पुरुष को हमें प्राप्त करा ।

सनि॑तः॒ सुस॑नित॒रुग्र॒ चित्र॒ चेति॑ष्ठ॒ सूनृ॑त ।
प्रा॒सहा॑ सम्राट् सहु॑रिं॒ सह॑न्तं भु॒ज्युं वाजे॑षु॒ पूर्व्य॑म् ॥२०॥४॥

भा०—हे (सनितः) दातः ! हे (सु-सनितः) उत्तम विभक्त करने हारे ! हे (उग्र) बलवन् ! हे (चित्र) अद्भुत ! हे (चेतिष्ट) श्रेष्ठ ज्ञानिन् ! हे (सूनृत) उत्तम ज्ञानवान् ! हे (सम्राट्) सर्वोपरि विराजमान ! (सुहुरिं) सबको पराजित करने वाले (सहन्तं) सहनशील (वाजेषु) संग्रामों में (पूर्व्यं) सबसे पूर्व विद्यमान, (भुज्युं) पालक तुमको (प्रसहा) उत्कृष्ट बल से युक्त जान तेरी शरण लेते हैं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्याददे ॥२१

भा०—(यथा चित्) जैसे (अश्व्यः वशः) अश्वों वा बलवान् पुरुषों का इच्छुक राष्ट्र (पृथु-श्रवसि) विस्तृत ज्ञानवान्, (कानीते) तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (अस्याः वि-उषि) इस प्रजा की विशेष कामनानुसार ही (आददे) राज्य को वश करता है, वैसे ही (यः) जो (अदेवः) असाधारण पुरुष भी (ईवद्) प्राप्त हुए (पूर्तम्) पूर्ण राज्य को (आददे) ग्रहण करने में समर्थ होता है । (सः) वह (आ एतु) हमें प्राप्त हो ।

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२॥

भा०—(षष्टिं सहस्रा) साठ हजार और (अयुता) दश सहस्र (अश्व्यस्य) उत्तम अश्वों के और (उष्ट्राणां शता विंशतिं) ऊंटों के २० सौ, (श्यावीनां गवां दशशता) श्याव, काले, लाल रंग वाली गौओं या भूमियों के दस सौ और (त्रि-अरुषीणां) तीनों चमकने वाली शुभ्र रंग की (गवां दश दश सहस्रा) दस दस हजार गौएं (असनम्) मैं दान करूं और प्राप्त करूं ।

दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः ।
मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥ २३ ॥

भा०—(दश श्यावाः) दस श्याव अर्थात् लाल-काले वर्ण के (ऋधद्रयः) अति वेग वाले (वीतवारासः) चमकते बालों वाले, (आशवः) शीघ्रगामी, (मथ्राः) शत्रुओं का मथन करने वाले, वीर (नेमिं) रथ चक्रवत् राष्ट्र को (नि वावृतुः) नियम से संचालित करें ।

दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४॥

भा०—(पृथु-श्रवसः) अधिक ज्ञानी (सु राधसः) उत्तम ऐश्वर्य-

सम्पन्न, उस स्वामी के (दानासः) उत्तम दान हैं। वह (मंहिष्ठः) अति दानी, (हिरण्ययं रथं ददत्) कान्तिमय रथ देता है। वह (सूरिः) विद्वान्, सर्वोत्पादक (अभूत्) हो, वह (वर्षिष्ठम्) प्रचुर (श्रवः) अन्नादि (अकृत) उत्पन्न करता है।

आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) बलशालिन्! तू (महे तने) भारी धनैश्वर्य और (मखाय पाजसे) उत्तम बल प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (आयाहि) प्राप्त हो। (दावने ते) दानशील तेरे लिये (वयं) हम (हि) अवश्य (भूरि चकृम) बहुत कुछ करें और (दावने) ज्ञानदाता गुरु के लिये हम (सद्यः चित् महि चकृम) सदा ही सत्कार किया करें। इति पञ्चमो वर्गः॥

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम्।
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (अश्वेभिः वहते) अश्वारोही गणों के साथ मिल कर राष्ट्र के कार्य को अपने कन्धों पर लेता है, त्रिः सप्त सप्ततीनाम्) ७० के २१ गुणा अर्थात् १४७० (उस्राः) भूमियों, गौओं या प्रजाओं को (वस्ते) अधीन करता है, हे (सोमपाः) ऐश्वर्य-पालक! हे (शुक्र-पूतपाः) शुद्ध रीति से प्राप्त ऐश्वर्य के पालक तेजस्विन्! तू (एभिः) इन (सोमसुद्भिः) सोम अर्थात् अभिषेक योग्य विद्वान् पुरुषों का अभिषेक करने वाले और (सोमेभिः) उत्तम विद्वान् शासकों सहित स्वयं भी (दानाय) दान देने के लिये प्रवृत्त रहता है, वह आनन्द लाभ करता है। अत्र द्वात्रिंशत्तममन्त्रगत 'मदन्ति' क्रियोपदेन सम्बन्धः।

यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो राजा (मे) मुझ प्रजा के लिये, (त्मना) स्वयं (इमं) इस (चित्रं) अद्भुत, धन के (दावने) देने के लिये (अमन्दत्) प्रसन्न होता है वह (अरट्वे=अलट्वे) बालकपन से मुक्त, युवा, (अक्षे) व्यवहारकुशल, (सुकृत्वनि) उत्तम कार्यकुशल (नहुषे) प्रबुद्ध मनुष्य-समाज के स्वयं (सुकृत्तराय) उत्तम कार्य करने वाले के हितार्थ (सुक्रतुः) उत्तम कर्मकर्ता है वह (अमन्दत्) सुख पाता है।

उचथ्ये॒३ वपु॑षि॒ यः स्व॒राळुत वा॑यो घृत॒स्नाः।
अश्वे॑षितं॒ रजे॑षितं॒ शुने॑षितं॒ प्राज्म॒ तदि॒दं नु तत् ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (उचथ्ये) वचन-योग्य, स्तुति-पात्र (वपुषि) दर्शनीय शरीर में (घृत-स्नाः) जल से सदा स्नान करने वाला, तेजस्वी (उत् स्वराड्) और स्वयं अपने तेज से वा धन से चमकने वाला हो (तत्) वह (अश्वेषितं) अश्वों से प्राप्त होने योग्य, (रजेषितं) गर्दभों या ऊंटों से या लोक में बसे प्रजाजनों से प्राप्य और (शुनेषितम्) सुख से प्राप्य (इदं नु तत्) यह सब उत्तम (अज्म) अन्न, बल और ऐश्वर्य (प्र) प्राप्त करता है।

अध॑ प्रि॒यमि॑षि॒राय॑ ष॒ष्टिं स॒हस्रा॑सनम्।
अश्वा॑ना॒मिन्न वृष्णा॑म् ॥ २९ ॥

भा०—मैं (इषिराय) इच्छा और प्रेरणा करने वाले विद्वान् वीर के हितार्थ (वृष्णाम् अश्वानाम्) बलवान् घोड़ों के (इत् न) समान बलवान् आशुगामी, (षष्टिं सहस्रा) ६० हजार (असनम्) दान करूं।

गावो॒ न यू॒थमुप॑ यन्ति॒ वध्र॑य॒ उप॒ मा य॑न्ति॒ वध्र॑यः ॥ ३० ॥

भा०—(गावः न यूथम्) गौएं जैसे अपनी रक्षा के लिये यूथ को प्राप्त होती हैं, यूथ में आकर अपने को सुरक्षित समझती हैं वैसे ही (वध्रयः) निर्वीर्य, जन भी (यूथम् उपयन्ति) अपने यूथ को प्राप्त होते और अपने गोल में अपने को सुरक्षित समझते हैं।

अध॒ यच्चा॑रथे ग॒णे श॒तमु॒ष्ट्राँ अचि॑क्रदत् ।
अध॒ श्वित्ने॑षु विं॒श॒तिं श॒ता ॥ ३१ ॥

भा०—(अध यत्) और जो (चारथे गणे) विचरणशील सैन्य गण पर (उष्ट्रान् शतम्) शत्रु के संतापक सौ जनों को (अचिक्रदत्) नियुक्त करता है, (अध) और (श्वित्नेषु) शुद्धचरित्र तेजस्वी पुरुषों के अधीन (शता विंशतिं) सौ २ के २० दस्ते नियुक्त करता है वह शासक सुख भोगता है ।

श॒तं दा॒से ब॑ल्बू॒थे विप्र॒स्तरु॑क्ष॒ आ द॑दे ।
ते ते॑ वाय॒विमे जना॒ मद॒न्तीन्द्र॑गोपा॒ मद॑न्ति दे॒वगो॑पाः ॥३२॥

भा०—(तरुक्षः) वृक्ष के नीचे की भूमि के समान सबका आश्रयदाता, दुःखों से पार लगाने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् राजा (बल्बूथे) बलशाली, (दासे) भृत्य जन के आधार पर ही (शतम् आददे) सैकड़ों को अपने कन्धे लेता है। (वायो) हे बलवन्! (ते) तेरे नाना प्रकार के (इमे जनाः) ये जन (इन्द्र-गोपाः) ऐश्वर्यवान् नायक की रक्षा में रहते हुए (मन्दन्ति) प्रसन्न रहते हैं और (देव-गोपाः सदन्ति) विद्वानों की रक्षा में रहकर वे सुखी रहते हैं ।

अध॒ स्या योष॑णा म॒ही प्र॑ती॒ची वश॑म॒श्व्यम् ।
अधि॑रुक्मा॒ वि नी॑यते ॥ ३३ ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (योषणा) स्त्री (मही) पूज्य (प्रतीची) प्रिय के अभिमुखी होकर (अधि-रुक्मा) देह पर सुवर्णादि के आभरणों को धारण करके (अश्व्यम् वशम्) अश्वारोही, कान्तियुक्त वर के प्रति (विनीयते) विशेष रूप से ले जाई जाती है (अध स्या) ठीक वैसे ही वह (मही) पृथिवी-निवासिनी प्रजा (प्रतीची) सन्मुख प्राप्त (अधि-रुक्मा) अधिकाधिक सुवर्ण रत्नादि से मण्डित होकर (अश्व्यम्) अश्व सैन्यादि के नायक वा राष्ट्रपति (वशं) वश करने में कुशल पुरुष के अधीन (वि

नीयते) विशेष रूप से प्राप्त करा दी जाती है, शासन के लिये दी जाती है। इति षष्ठो वर्गः ॥

[४७]

त्रित आप्त्य ऋषिः ॥ १—१३ आदित्याः । १४—१८ आदित्या उषाश्च देवताः ॥ छन्दः—१ जगती । ४, ६—८, १२ निचृज्जगती । २, ३, ५, ६, १३, १६, १८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १०, ११, १७ स्वराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

महिं वो महुतामवो वरुण मित्र दाशुषे । यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमुघं नंशदनेहसौ व ऊतयः । सुऊतयौ व ऊतयः ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) राजन् ! प्रभो ! हे (मित्र) स्नेहवन् ! हे वायुवत् प्रिय ! हे (आदित्याः) सूर्यकिरणतुल्य भूमि या अखण्ड शासन के हितकारी जनो ! (वः महतां दाशुषे महि अवः) तुम महापुरुषों की, दानशील आत्मसमर्पक के लिये बड़ी भारी रक्षा व कृपा रहती है। आप लोग (यं) जिसको (द्रुहः अभि रक्षथ) द्रोहकारी जन से बचा लेते हो (ईम् अघं न नशत्) उसको पाप, हत्यादि प्राप्त नहीं होता (वः ऊतयः अनेहसः) आप की रक्षाएं निष्पाप और (वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षाएं व रक्षा-साधन उत्तम रक्षासाधन होते हैं।

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् । पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छतानेहसौ व ऊतयः सुऊतयौ व ऊतयः ॥ २ ॥

भा०—हे (देवाः आदित्यासः) सूर्य किरणवत् प्रकाश, ज्ञान के दाता आदित्य ब्रह्मचारियो ! पूज्य पुरुषो ! आप लोग (अघानाम् अपाकृतिम्) पापों को दूर करना (विद) जानते हो। (यथा वयः पक्षा उपरि शर्म यच्छन्ति) जैसे पक्षी बच्चों के ऊपर दोनों पांखों को गृह के समान रक्षार्थ तान लेते हैं वैसे ही (अस्मे उपरि) हमारे ऊपर (शर्म वि

यच्छत) सुख शरणादि विविध प्रकार से प्रदान करो। (अनेहसः वः ऊतयः, वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षा पापरहित और आप लोगों की रक्षा उत्तम रक्षाएं होती हैं।

व्य१स्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन। विश्वानि विश्व-वेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥३॥

भा०—(वयः पक्षा न) पक्षीगण जैसे दोनों पक्षों को अपने बच्चों पर शरणवत् प्रदान करते हैं वैसे ही आप लोग (अस्मे अधि) हमारे ऊपर (शर्म वि यन्तन) सुख, विविध प्रकार से देवें। हे (विश्व-वेदसः) समस्त धनों के स्वामी जनो! हम आप लोगों से (विश्वानि वरूथ्या) समस्त गृहोचित धन धान्यादि और समस्त (वरूथ्या) दुःख वारण में समर्थ साधनों की (मनामहे) याचना करते हैं। (अनेहसो वः० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः। मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥४॥

भा०—(प्र चेतसः) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न जन (यस्मै) जिसको (क्षयं) ऐश्वर्य और (जीवातुं च) जीवन (अरासत) प्रदान करते हैं (इमे आदित्याः) वे सूर्य के तुल्य ज्ञानी जन (विश्वस्य मनोः घ) समस्त मनुष्यों के उपयोगी (रायः ईशते) धनों के स्वामी होते हैं। (अनेहसः वः० इत्यादि) पूर्ववत्।

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्या-दित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥५॥७॥

भा०—(यथा रथ्यः दुर्गाणि) जैसे रथ में लगे अश्व दुर्गम स्थानों से बचाते हैं वैसे ही (रथ्यः) उत्तम उपदेश-युक्त जन (नः अघा परि वृणजन्) हमारे पापों को दूर करें, हमारी पापों से रक्षा करें। हम लोग

(इन्द्रस्य शर्मणि इत् स्याम) ऐश्वर्यवान् प्रभु के ही शरण में रहें (उत) और हम (आदित्यानाम् अवसि) सूर्य रश्मियों के तुल्य तेजस्वी पुरुषों की रक्षा में (स्याम) रहें। (शेष पूर्ववत्) इति सप्तमो वर्गः॥

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति। देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ६॥

भा०—हे (देवाः) दानशील, (आशवः) शीघ्रगामी, (आदित्याः) तेजस्वी जनो! आप लोग (यम् अदभ्रम्) जिस अनल्प, गुणवान्, बलशाली जन को (अहेतन) संचालित करते हो वह (जनः) जन (परिह्वृता इत् अना) कुटिलता से रहित जीवन से (युष्मा-दत्तस्य) आप लोगों के दिये ज्ञान और धन को (वायति) परम्परा से प्राप्त करता है। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु। यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ७॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी पुरुषो! आप लोग (स प्रथः) सर्व प्रकार से महान् होकर (यस्मै उ शर्म अराध्वम्) जिस किसी को भी सुख प्रदान करते हो,(तं) उस तक (तिग्मं चन त्यजः) तीक्ष्ण क्रोध या उसकी ओर फेंका हुआ अस्त्रादि भी (न द्रासत्) नहीं पहुँचता और (तं गुरु चन त्यजः न द्रासत्) उस पर किसी का भारी क्रोध वा दुर्वचन, बाण आदि भी कुटिल चाल से नहीं पहुँच पाता। (अनेहसः चः० इत्यादि पूर्ववत्)

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्तइव वर्मसु। यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो! (वर्मसु युध्यन्तः इव) योद्धा लोग जैसे कवचों में सुरक्षित रहते हैं वैसे ही हम लोग (युष्मे अपि

स्मसि) आप लोगों के बीच सुरक्षित रहें। (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (महः एनसः) बड़े पाप और (अर्भात् एनसः) छोटे से भी पाप से (उरुष्यत) बचाइये। शेष पूर्ववत्॥

अदि॑तिर्न उरुष्य॒त्वदि॑तिः॒ शर्म॑ यच्छतु। मा॒ता मि॒त्रस्य॑ रे॒वतो॑ऽर्य॒म्णो वरु॑णस्य चाने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑॥ ९॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड ब्रह्मचारिणी, जो (रेवतः) ऐश्वर्यसम्पन्न (मित्रस्य) न्यायाधीश, ब्राह्मण वर्ग, (अर्यम्णः) न्यायकारी और (वरुणस्य) श्रेष्ठ राजा की भी (माता) उत्पन्न करने वाली माता के तुल्य जननी, भूमि, वा प्रकृति है वह (नः उरुष्यतु) हमारी रक्षा करे और वह (अदितिः) अदीन व्रत की पालक (नः शर्म यच्छतु) हमें शान्ति प्रदान करे।

यद्दे॒वाः शर्म॑ शर॒णं यद्भ॒द्रं यद॑नातु॒रम्। त्रि॒धातु॒ यद्व॑रू॒थ्यं१॒॑ तद॒स्मासु॒ वि य॑न्तनाने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑॥१०॥८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजयेच्छुक तेजस्वी पुरुषो! (यत् शर्म) जो गृह, (शरणं) शत्रुओं और दुःखों का नाशक, (यत् भद्रं) जो कल्याणकारक, (यत् अनातुरम्) जो रोगों-कष्टों, बाधाओं से शून्य, (यत् त्रिधातु) जो वात पित्त कफ के बने देह के समान स्वर्ण, रजत, ताम्र तीन धातुओं से दृढ़, (यत् वरूथ्यम्) जो सुखप्रद और गृह होने योग्य है (तत् अस्मासु वि यन्तन) वह हमें प्रदान करो। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

आदि॑त्या॒ अव॒ हि ख्यताधि॒ कूला॑दिव॒ स्पशः॑। सु॒ती॒र्थमर्व॑तो य॒थानु॑ नो नेषथा सु॒गम॑ने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑॥११

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य किरणतुल्य सब संसार से ग्रहण-योग्य समाचार आदि के ले आने वाले और (स्पशः) सब पदार्थों के देखने

वाले जनो ! (कूलात् इव) तट से जैसे द्रष्टा निष्पक्ष होकर (अव हि ख्यत) जल-स्थित पदार्थों को सावधानी से देखता है वैसे ही निष्पक्ष और विवेकी हमें देखे (यथा अर्वतः सुतीर्थम्) जैसे अश्वादि को तीर्थ या उतरने की जगह से जल में उतार दिया जाता है वैसे ही आप लोग भी (अर्वतः नः) शत्रुहिंसक हमको (सुगम् सुतीर्थं नु) सुगम और उत्तम तीर्थ अर्थात् परपक्ष के राजभृत्यादि को वश कर सुखमय मार्ग से (अनु नेवथ) ले आओ। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)।

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत। गवे च भद्रं धेनवे
वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१२॥

भा०—(इह) इस लोक में (रक्षस्विने भद्रं न) दुष्ट पुरुषों के स्वामी को ऐश्वर्य न हो, (न अवयै उत न उपयै) और वह न दूर जा सके, न पास आ सके। वा विपरीत इसके (गवे च धेनवे भद्रं) दुधार बैल और गौ का कल्याण हो और (श्रवस्यते वीराय च भद्रं) बल, यश के इच्छुक वीर और ज्ञान के इच्छुक विद्वान् को सुख हो (अनेहसः० इत्यादि) पूर्ववत्।

यदाविर्यदपीच्यं१ देवासो अस्ति दुष्कृतम्। त्रिते तद्विश्वमाप्त्य
आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१३॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! (यद् दुष्कृतं आविः) जो बुरा काम प्रकट में है और (यत् दुष्कृतं अपीच्यं अस्ति) जो बुरा काम छुपा हुआ है, (त्रिते आप्त्ये) तीनों विद्याओं में निष्णात, आप्त जन के अधीन (अस्मत्) हमसे (आरे दधातन) उस दुष्ट कर्म को दूर करो। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)। सायण प्रोक्त 'मा' पद मन्त्र में नहीं है।

यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः। त्रिताय तद्विभाव-
र्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) उषाकालवत् ज्ञानप्रकाश का दोहन एवं प्रदान करने वाली ! (विभावरि) विशेष ज्ञान प्रकाश से वरण योग्य, ज्ञानदात्री (यत् च गोषु) जो भी हमारी वाणियों और इन्द्रियों में (दुःष्वप्न्यं) दुःस्वप्नों का बुरा प्रभाव हो और (यत् च अस्मे) जो हममें बुरे स्वप्नों का दुष्परिणाम हो उसको (आप्त्याय त्रिताय) आप्त-जन हितकारी, तीनों दुःखों से मुक्त जन के हितार्थ (परा वह) दूर कर। (अने० इत्यादि पूर्ववत्)

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः। त्रिते दुःष्वप्न्यं
सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥१५॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) ज्ञान और सद् व्यवहार के देने वाली ! (वा) और (निष्कं कृणवते) स्वर्णादि मुद्रा बनाने वा धारने वाले (वा स्रजं कृण्वते) अथवा माला बनाने वा धारने वाले के लिये हुआ जो (दुःष्वप्न्यं) बुरा स्वप्न वा विकार है (सर्वं) उस सबको (त्रिते आप्त्ये) तीनों कष्टों वा एषणाओं से मुक्त विद्वान् के अधीन रहकर हम (परि दद्मसि) दूर करें। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) इति नवमो वर्गः॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे। त्रिताय च द्विताय चोषो
दुःष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ १६ ॥

भा०—(तदन्नाय) नाना प्रकार के भोज्यान्न प्राप्त करने वाले, (तद्-अपसे) नाना श्रेष्ठ कर्म करने वाले, (तं भागम् उपसेदुषे) अपने उस उत्तम २ सेव्य अंश को प्राप्त करने वाले (त्रिताय) मन, वाणी, कर्म तीनों पर वशी और (द्विताय च) भीतर और बाहर वश करने वाले पुरुष के भी (दुःस्वप्न्यं) बुरे स्वप्न के प्रभाव को हे (उषः) प्रभातवेला के समान अन्धकार के तुल्य पापों को दूर करने वाला मातः ! तू (वः) दूर कर।

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं सन्नयामसि। एवा दुःष्वप्न्यं
सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥१७

भा०—(यथा) जैसे हम (कलां सं नयामसि) काल की मात्रा को शनैः २ व्यतीत करते हैं, (यथा शफं) जैसे चरण को (सं नयामसि) समान रूप से आगे बढ़ाते हैं और (यथा ऋणं) जैसे अपने ऋण को (संनयामसि) ईमानदारी से चुका देते हैं,(एवा) वैसे ही हम लोग भी (आप्त्ये) आप्त पुरुष के अधीन रहकर शनैः २ (दुःस्वप्न्यं सं नयामसि) दुःस्वप्नादि बुरे प्रभावों को दूर करें। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्। उषो यस्माद्दुःष्व-
प्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ।१८।१०

भा०—हम लोग (अजैष्म) विजय प्राप्त करें, (असनाम च) दान करें, (वयं अनागसः अभूम) निष्पाप होकर रहें। (उषः) प्रभात वेला के समान ज्ञान को देने और पाप को वश करने वाली मातः! (यस्मात् दुःस्वप्न्यात् अभैष्म) हम जिस दुःस्वप्न के दुष्प्रभाव से भय करते हैं (तद् अप उच्छतु) वह दूर हो। (अनेहसः० पूर्ववत्) इति दशमो वर्गः ॥

[४८]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, १३ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। १२, १५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ३, ७—९ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६, १०, ११, १४ त्रिष्टुप्। ५ विराड् जगती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति ॥ १ ॥

भा०—मैं (सु-मेधाः) उत्तम ज्ञान से युक्त होकर (स्वादोः) सुस्वादु (वयसः) अन्न का (अभक्षि) भोजन करूं और (स्वाध्यः) उत्तम रीति से धारण योग्य (वरिवोवित्तरस्य) अति पूजनीय, उस धन का भी सेवन करूं, (यं विश्वे देवाः) जिसको सब मनुष्य और (उत मर्त्यासः)

साधारण मनुष्य (मधु ब्रुवन्तः) आनन्दप्रद वचन कहते हुए (अभि सं चरन्ति) प्राप्त होते और उपभोग करते हैं ।

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) चन्द्रवत् आह्लादक सोम ! शिष्यजन ! तू (अन्तः च प्र अगाः) भीतर गुरुगृह में, माता के गर्भ में बालक के समान आ। तू (अदितिः भवासि) अखण्डित व्रत होकर पुत्रवत् रह । तू (दैव्यस्य हरसः) विद्या चाहने वाले शिष्य जनों के उचित, (हरसः) क्रोध या तीक्ष्णता को (अव-याता) विनीत होकर प्राप्त कर । तू (इन्द्रस्य) ज्ञानी, आचार्य की (सख्यं जुषाणः) मैत्री को प्राप्त करता हुआ, (श्रौष्टी इव धुरम्) जूए के नीचे क्षिप्रगामी अश्व या बैल के समान विनीत होकर (राये अनु ऋध्याः) दानयोग्य ज्ञान-ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये अनुगामी होकर, ज्ञान से सम्पन्न हो ।

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (सोमम् अपाम) ओषधि-रस के पान के समान ऐश्वर्य और पुत्र-शिष्यादि का पालन करें और (अमृता अभूम) 'अमृत', दीर्घायु, अमर होवें, (ज्योतिः आगन्म) प्रकाश को प्राप्त हों, (देवान् अविदाम) शुभ गुणों, विद्वान् पुरुषों और पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त करें, जानें ! हे (अमृत) अमृतस्वरूप ! (अरातिः) शत्रु (नूनम् अस्मान् किं कृणवत्) निश्चय से हमारे प्रति क्या कर सकता है ? कुछ नहीं । और (मर्त्यस्य धूर्तिः किमु) मनुष्य का हिंसा-स्वभाव भी हमारा कुछ नहीं कर सकता ।

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४॥

भा०—(आपीतः हृदे शम्) जैसे पान किया-हुआ सोमरस, या ओषधिरस हृदय को शान्ति देता है वैसे ही (आपीतः) सब प्रकार से पालित, रक्षित वीर्य, पुत्र और शिष्य भी (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय को शान्तिदायक हो। हे (इन्दो) प्रेमरस से आर्द्र! हे (सोम) सोम! (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिये पिता के तुल्य तू (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक हो। हे (उरुशंस) बहुत २ उत्तम उपदेश वचन करने हारे विद्वन्! (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य होकर, (धीरः) बुद्धिमान् होकर (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (नः आयुः प्र तारीः) हमारी आयु की वृद्धि कर।

इमे मा पीता यशसं उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु।
ते मा रक्षन्तु विस्रसंश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥५॥११

भा०—(इमे) ये (पीताः) पान किये ओषधिरसों के तुल्य पालित देह में वीर्य, राष्ट्र में विद्वान्, गृह में पुत्र (यशसः) कीर्त्तियुक्त (उरुष्यवः) रक्षा के इच्छुक (गावः रथं न) रथ को अश्वों के समान (पर्वसु) पर्व २, पोरु २, खण्ड २ पर (सम् अनाह) सुदृढ़ हों, राष्ट्र के खण्ड २ को, शरीर के पोरु २ के समान सुदृढ़ करें। (ते) वे (मा) मुझे (विस्रसः चरित्रात्) शिथिल आचरण से (रक्षन्तु) बचावें। वे (इन्दवः) दयार्द्र-जन (मा) मुझे (स्रामात् यवयन्तु) व्याधि से दूर करें। इत्येकादशो वर्गः॥

अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६॥

भा०—हे (सोम) ओषधि-रसवत् विद्वन्! तू (मथितं अग्निं न) मथित अग्नि के समान (मा सं दिदीपः) मुझे तेजस्वी कर, (प्र चक्षय) उत्तम ज्ञान-दर्शन करा। (नः वस्यसः कृणुहि) हमें धनयुक्त कर। (अथ) और (मन्ये ते हि मदः) मैं मानता हूँ कि तेरा ही यह सब हर्ष है। तू (रेवान् इव) धन-सम्पन्न के समान (अच्छ पुष्टिम् प्र चर) उत्तम पुष्टि दे।

इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः।
सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७॥

भा०—हे (सोम राजन्) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (सुतस्य ते) अभिषिक्त तेरा हम (पित्र्यस्य इव रायः) पिता के धन के तुल्य (इषिरेण मनसा) इच्छायुक्त चित्त से (भक्षीमहि) सेवन करें। (सूर्यः वासराणि अहानि इव) जगत् के आच्छादक दिनों को सूर्य तुल्य (नः आयूंषि प्र तारीः) हमारी आयुओं को बढ़ा।

सोम राजन् मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्यास्तस्य विद्धि।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥८॥

भा०—हे (सोम राजन्) ऐश्वर्यवन् तेजस्विन् ! तू (नः मृडय) हमें सुखी कर, (स्वस्ति) हमारा कल्याण हो। हम (तव व्रत्याः स्मसि) तेरे व्रत के पालक हों। (तस्य विद्धि) तू उस व्रत को जान। (दक्षः अलर्ति) बलवान् पुरुष आगे बढ़ता है (उत) और (मन्युः) ज्ञानी पुरुष भी आगे बढ़ता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्यः) हमारा स्वामी होकर (नः) हमें (अनु-कामं) यथेच्छ होकर (मा परा दाः) मत त्याग।

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः।
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥९॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! (त्वं) तू ही (नः तन्वः) हमारे शरीरों का (गोपाः) रक्षक है। (गात्रे-गात्रे) प्रत्येक शरीरधारी पर तू (नृ-चक्षाः) नेता जनों को देखने वाला सर्वसाक्षी के तुल्य (नि-ससत्थ) आसन पर विराज। (वयं) हम (यत्) जब २ (ते व्रतानि प्र-मिनाम) तेरे व्रतों का नाश करें, तब २ हे (देव) देव ! (सः) वह तू (नः) हमें (मृड) सुखी कर और (सु-सखाः) उत्तम मित्र होकर हमें (वस्यः) उत्तम बना।

ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥१०॥१२॥

भा०—(यः) जो (पीतः) ओषधि-रसवत् पान प्राप्त किया जाकर (मा न रिष्येत्) मेरा नाश न करे, हे (हर्यश्व) मनुष्यों के अश्ववत् सन्मार्ग चालक राजन् ! ऐसे (ऋदूदरेण) मृदु पेट वाले, भीतर कोमल स्वभाव वाले (सख्या सचेय) मित्र से मैं संगत रहूँ । (यः) जो (अयं) यह (सोमः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे) हमारे बीच (नि अधायि) नियत है, (तस्मै) उसके लिए मैं (प्रतिरम् आयुः) सुदीर्घ आयु और (इन्द्रं ऐमि) ऐश्वर्य प्राप्त करूं ।

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥११

भा०—जैसे सोम-ओषधि पान करने पर (अनिराः) बलरहित कर देने वाली (त्याः अमीवाः) वे दुःखजनक रोगपीड़ाएं (अप अस्थुः) दूर होती हैं, वैसे ही राजा के अभिषेक कर देने पर समस्त दुःखदायी विपत्तियां भी (अप अस्थुः) दूर होती हैं । (तमिषीचीः) अन्धकार ला देने वाली बाधाओं के तुल्य बलवती सेनाएं भी उससे (निःअत्रसन्, अभैषुः) डरती हैं । वह (सोमः) सोम (विहायाः) आकाश के समान महान् (अस्मान् आ अरुहत्) हम पर अध्यक्ष हो, (यत्र) जिसके आश्रय लोग (आयुः प्रतिरन्ते) अपना जीवन बढ़ा लेते हैं हम उसे (अगन्म) प्राप्त हों ।

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्यां आविवेश ।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम ॥१२॥

भा०—हे (पितरः) पालक गुरुजनो ! (यः इन्दुः) जो ऐश्वर्यवान् ओषधि रसवत् (पीतः) पान वा पालन किया जाकर (अमर्त्यः) दुष्टों का नाशक होकर, आत्मा के तुल्य अमृत होकर (मर्त्यान् आविवेश)

मनुष्यों में प्रविष्ट है, (तस्मै) उस (सोमाय) ऐश्वर्यवान् की हम (हविषा) उत्तम अन्नादि से (विधेम) परिचर्या करें। उसके (मृडीके) सुख और (सुमतौ) शुभ ज्ञान में हम सदा (स्याम) रहें। इति द्वादशो वर्गः ॥

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (त्वा) तू (पितृभिः) पालक जनों से (संविदानः) संमति करता हुआ, (द्यावापृथिवी) सूर्य-पृथिवीवत् स्त्री-पुरुष और शास्त्र-शासक वर्गों को (अनु आ ततन्थ) वश करता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (वयं तस्मै ते) हम उस तेरे लिये (हविषा) अन्न वचनादि से (विधेम) सेवा करें (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम धनैश्वर्यादि के स्वामी हों।

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१४॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (त्रातारः) रक्षक होकर (नः अधि वोचत) हमें उपदेश करो, जिससे (नः) हम पर (निद्रा) निद्रा, आलस्यादि (मा ईशत) अधिकार न करे (उत) और (जल्पिः मा ईशत) बकवासी पुरुष हम पर वश न करे। (विश्वहा) सदा, सब दिनों, (वयं) हम (सोमस्य प्रियासः) सोम, पुत्र, शिष्य, ऐश्वर्यवान् आदि के प्रिय और (सु-वीरासः) उत्तम वीर्यवान्, विद्वान् होकर (विदथम् आवदेम) ज्ञान का उपदेश करें।

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः। त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥१५।१३।६

भा०—हे (सोम) विद्वन्! वीर्यवत् पालक पोषक! (त्वं नः विश्वतः

वयोधाः) तू हमें सब प्रकार से ज्ञान, बल धारण कराने वाला, (त्वं स्वर्विद्) तू सुखदाता, (नृ-चक्षाः) सबका द्रष्टा होकर (नः आविश) हमें प्राप्त हो। हे (इन्द्रो) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (नः सजोषाः) हमें सप्रेम (ऊतिभिः पाहि) रक्षा साधनों से सदा पालन कर और तू (पश्चातात् उत वा पुरस्तात्) हमारी पीछे और आगे से भी रक्षा कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अथ वालखिल्यम्[1]

[४९]

प्रस्कण्वः काण्वः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती। ३ विराड् बृहती। ५ भुरिग्बृहती। ७, ९ निचृद् बृहती। २ पंक्तिः। ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मघवा) उत्तम धन का स्वामी (पुरुवसुः) नाना धनों, जनों का स्वामी होकर (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों के हितार्थ (सहस्रेण इव) सहस्रों के समान (शिक्षति) दान देता है, उस (सुराधसम्) सुखपूर्वक आराधना करने योग्य (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् की (यथा विदे) यथावत् ज्ञान और धनलाभ के लिये (अभि प्र अर्च) उत्तम रीति से अर्चना करो और उसी को (प्र वः) उत्तम रीति से वरण करो।

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २॥

१ सर्वानुक्रमण्यां वालखिल्यसूक्तानामप्यनुक्रमणदर्शनात् संहितान्तर्गतत्वम्। तानि च षष्ठानुवाकान्तर्गतान्येव ॥

भा०—वह ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं का नाशक (शत-अनीकः इव) सैकड़ों सेनाओं का स्वामी, सेनापति के समान (प्र जिगाति) सबका विजय करता है और (दाशुषे) करप्रद राष्ट्र के हित के लिये (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं का (धृष्णुया) अपनी धर्षणकारिणी शक्ति से (हन्ति) नाश करता है, (गिरेः इव रसा) पर्वत से झरने वाले जलतुल्य (अस्य पुरुभोजसः) नाना भोग्य ऐश्वर्य के इस स्वामी के (दत्राणि) नाना दान (पिन्विरे) प्रजाओं को पुष्ट करते हैं।

आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा भजन योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (मदाः) तृप्तिकारक (इन्दवः) आर्द्रहृदय (सुतासः) अभिषिक्त जन (त्वा आ पृणन्ति) तुझे हर्षजनक हैं हे (शूर) शूरवीर ! हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! वे सब (राधसे) धन प्राप्ति के लिये ही (ओक्यं सरः आपः न) आश्रयभूत सरोवर को पूर्ण करने वाले जलप्रवाहों के समान (त्वा आपृणन्ति) तुझे पूर्ण करते हैं, तुझमें ही आश्रय लेते हैं।

अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (मध्वः) मधुर अन्न और ज्ञान का (अनेहसं) निष्पाप (प्र-तरणम्) दुःखों से पार उतारने वाला, (विवक्षणं) विविध वचनों से स्तुत्य (स्वादिष्ठम् ईम्) अति स्वादु रस का (पिब) पान कर (यथा) जैसे (मन्दसानः) तृप्त होकर (क्षुद्रा इव) क्षुद्रा, छोटी मधु मक्खियों के समान (त्मना धृषत्) स्वयं सामर्थ्य से शत्रु पर विजयी होकर (नः) हमें (प्र किरासि) नाना ऐश्वर्य दे।

आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—हे (स्वधावन् इन्द्र) ऐश्वर्यधारक शक्ति के स्वामिन् ! (ते) तेरे (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के निमित्त (रातयः) दिये दान ही (यं स्तोमम्) जिस स्तुतियोग्य पद को (धेनवः) गोरसों के समान (स्वदयन्ति) अधिक स्वादु, सुखद कर देते हैं तू उस (नः स्तोमम्) हमारे पद को (सोतृभिः हियानः) अभिषिक्त वर्ग से प्रेरित होकर (अश्वः न) अश्व के समान (आ उप द्रवद्) साक्षात् प्राप्त हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ॥ ६ ॥

भा०—(उग्रं वीरं न) वीरतुल्य शत्रुओं के लिये उग्र (विभूतिम्) शक्तिमान् (अक्षिता वसुम्) अक्षय धनसम्पन्न पुरुष को हम (उप सेदिम) प्राप्त हों। हे (वज्रिन्) वीर्यशालिन् ! (अवतः न उद्रीवः) ऊर्ध्वमुख कूप के समान तू अपनी प्रजा के क्षेत्र को उदार होकर (सिञ्चते) सींचता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (धीतयः) नाना स्तुतियें (क्षरन्ति) तेरी ओर बहती हैं।

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह) चाहे जहां हो (यद् वा यज्ञे) चाहे यज्ञ में, (यद् वा पृथिव्याम् अधि) चाहे पृथिवी पर, हे (महे मते) महा मतिमन् ! हे (उग्र) बलवन् ! तू (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (उग्रेभिः आशुभिः) बलवान् अश्वों से (अतः) इस स्थान से (आ गहि) प्राप्त हो।

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाताइव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (ये) जो (अजिरासः) कभी नाश

को प्राप्त न होने वाले (हरयः) अश्व, (आशवः) शीघ्रगामी, (वाताः इव) वायु के झकोरों के समान (प्र-सक्षिणः) बलात् शत्रुओं को विजय करने वाले हैं। (येभिः) जिनसे तू (मनुषः अपत्यं) मनुष्यों के समीप (परीयसे) आता है और (येभिः) जिनसे तू (स्वः-दृशे) सबको देखने के लिये (विश्वं परि ईयसे) समस्त जगत् में व्याप रहा है।

एतावंतस्त ईमह इन्द्रं सुम्नस्य गोमंतः।
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥ ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (यथा) जैसे भी हो तू (मेध्यातिथिं) अतिथिवत् पूज्य पुरुष को (प्र अवः) उत्तम रीति से प्रसन्न करता है और (यथा) जैसे और जितने (धने) धन में तू (नीपातिथिं) सन्मार्गदर्शक अतिथिवत् पूज्य पुरुष का (प्रावः) सत्कार करता है, हम भी (ते) तुझसे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (एतावतः) इतने (गोमतः सुम्नस्य) गौ आदि पशुओं से समृद्ध सुखप्रद धन को (ईमहे) मांगते हैं।

यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१०॥१५॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (यथा) जैसे (कण्वे) मेधावी विद्वान्, (त्रसदस्यवि) दस्यु को भय देने वाले को (यथा) जैसे (पक्थे दशव्रजे) दश मार्गयुक्त परिपक्व शरीर को, (यथा गो-शर्ये) जैसे गो अर्थात् धनुष की डोरी और शर अर्थात् बाणों के चलाने में कुशल धनुर्धारी को और (ऋजिश्वनि) अश्वों को ऋजु-मार्ग में चलाने हारे सारथिवत् अश्वसाधक जितेन्द्रिय पुरुष को तू (गोमत् हिरण्यवत्) गवादि पशु और सुवर्णादि युक्त धन (असनोः) पात्रापात्र विवेक से देता है वैसा ही धन हमें दे। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[५०]

पुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७ निचृद् बृहती । ९ विराड् बृहती । २, ४, ६, १० पंक्तिः । ८ निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (सुन्वते) सत्कार करने वाले, (स्तुवते) स्तुतिशील पुरुष को (काम्यं वसु) कामना योग्य धन (सहस्रेण-इव मंहते) सहस्रों संख्या में देता है, उस (श्रुतं) जगत्-प्रसिद्ध (सु-राधसम्) सुख से आराधनीय, धनसम्पन्न (शक्रम्) शक्तिशाली पुरुष की (अभिष्टये) अभीष्ट कार्य के लिये (प्र सु अर्च) उत्तम रीति से पूजा कर ।

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥२॥

भा०—(अस्य इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शत-अनीका) सैकड़ों सैन्य, सैकड़ों बल, (हेतयः दुस्तराः) हनन या दण्ड देने के साधन अजेय हैं और इसकी (महीः समिषः) समस्त भूमियां भी उत्तम अन्नों से सम्पन्न हैं, (यदि) जब (सुताः) उत्पन्न पदार्थ एवं ऐश्वर्य (अमन्दिषुः) समस्त प्रजागण को प्रसन्न करते हैं तब प्रतीत होता है कि वही (भुज्मा) पालक परमेश्वर (गिरिः न) मेघ के समान उदार होकर (मघवत्सु) धनवानों में (पिन्वते) ऐश्वर्य की वर्षा करता है ।

यदीं सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघाइवोप दाशुषे ॥३॥

भा०—(सुतासः इन्दवः) उत्पन्न हुए, ऐश्वर्ययुक्त, वा आर्द्र, ओषधि रसवत् आनन्दमय जीवगण, (यदि) जब (प्रियम् अमन्दिषुः) प्रिय प्रभु

को प्रसन्न कर लेते हैं तब हे (वसो) सबको बसाने हारे ! (दाशुषे दुघाः इव) यज्ञशील, वा घास आदि देने वाले स्वामी के लिये दुधार गौवों के समान, वा (सवनं) अभिषेकार्थ (आपः न) जलधाराओं के समान उन सबको (मे उप आ धायि) मेरे लिये प्राप्त कराओ ।

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों की (धीतयः) स्तुतियां और कर्म (अनेहसं) पाप से मुक्त (हवमानम्) सब ऐश्वर्यों के दाता को उद्देश्य करके किये जाकर ही (ऊतये) तुम्हारी ही रक्षा और सुख प्राप्ति के लिये (मध्वं क्षरन्ति) आनन्दयुक्त उत्तम फलों को उत्पन्न करते हैं। हे (वसो) सबमें बसने हारे प्रभो ! (हवमानासः) तेरी स्तुति करने वाले (इन्दवः) तेरी तरफ प्रेमरस में द्रवित जीवगण (त्वा आ) तुझे ही अपने (स्तोत्रेषु) स्तुति वचनों में (उप दधिरे) वर्णन करते हैं।

आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥५॥१६॥

भा०—हे (स्वदावन्) उत्तम कर्म-फल देने हारे ! (यं) जिस (ते) तेरे दिये को (गूर्तयः) स्तुतिकर्त्ता जन (सु अदन्ति) सुखपूर्वक भोगते हैं, हे ऐश्वर्यवन् ! (तोशते) हिंसाकारी शत्रुदमन करने के लिये (इयानः) जाने वाले (अत्यः) अश्वारोही के लिये (इयानः) गमन करने वाले (अत्यः) अश्वारोही के समान तू (नः स्वध्वरे सोमे) हमारे हिंसारहित ऐश्वर्य के निमित्त (पौरे) प्रजा समूह की (हवं छन्दयसे) स्तुति को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर । इति षोडशो वर्गः ॥

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—हम (महः राधसः) बड़े धनैश्वर्य के स्वामी (वीरम्) वीर, (उग्रं) बलवान्, (विचिर्चिं) विवेक करने वाले (धन-स्पृतम्) धन से प्रजादि के पालक (विभूतिम्) विशेष सामर्थ्यवान् प्रभु की स्तुति करते हैं। हे (वज्रिन्) वीर्यवन्! तू (उद्रीव अवतः) गर्दन ऊपर उठाये उदार पराक्रमी वा उपर जल देने वाले कूप के समान (अवतः) जगत् की रक्षा करने हारा, (वसुत्वना) अपने ऐश्वर्य द्वारा ही (दाशुषे पीपेथ) आत्मसमर्पक भक्त का पालन करता है।

यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह नूनं परावति) जो तू परम दूर भी है, (यद्-वा पृथिव्यां) वा जो तू पृथिवी पर और (दिवि च नूनं) आकाश में भी व्यापक है, तो भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (महेमते) महाज्ञानिन्! तू (ऋष्वः) सबसे महान् है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (हरिभिः युजानः) योग द्वारा चिन्तन किया जाकर हमें (नूनं) शीघ्र ही (आ गहि) प्राप्त होता है।

रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (हरयः) जीवगण बलवान् अश्वों के समान ही (रथिरासः) रथारोही वीर वा रमण योग्य देह-धारी (अस्रिधः) अविनाशी हैं वे भी (वातस्य) वातवत् बलवान् और जीवनों के जीवन रूप तेरे ही (ओजः) पराक्रम को (पिप्रति) धारण करते हैं। (येभिः) जिनसे तू (मनुषः) मननशील जीव के (दस्युं) विनाशक रोगादि को भी (नि घोषयः) नष्ट करता है और (येभिः) जिन्हों से तू (स्वः परि ईयसे) समस्त आकाश को पूर्ण करता है।

एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥ ९ ॥

भा०—वे (वसो) सबमें बसने वाले प्रभो ! हे (शूर) दुष्टनाशक ! तू (यथा) जिस ऐश्वर्य से (कृत्व्ये धने) करने योग्य संग्राम के समय (एतशं) अश्वसैन्य को (प्रावः) अच्छी प्रकार रक्षा करता और (यथा दशव्रजे) जैसे दशों दिशाओं में दश मार्ग वाले शरीरवत् नगर में जितना ऐश्वर्य (वशं) वशकारी नगर के अध्यक्ष राजा को (प्रावः) संतुष्ट करे हम (नव्यसः ते) स्तुति योग्य तेरे (एतावतः) इतने ऐश्वर्य का (विद्याम) लाभ करें ।

यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् ॥१०॥१७॥

भा०—हे (मघवन्) धनसम्पन्न ! हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! (यथा) जितना ऐश्वर्य (कण्वे) विद्वान् जन में (अध्वरे) हिंसारहित (मेधे) यज्ञ में, (दीर्घ-नीथे) दीर्घ मार्ग में ले जाने वाले (दमूनसि) दान्त चित्त वाले, जितेन्द्रिय पुरुष में, (यथा) जितना ऐश्वर्य तू (गोशर्ये) धनुष बाण की शक्ति से सम्पन्न योद्धा में (असिषासः) प्रदान करता है, उतना ही (हरि-श्रियम्) मनुष्यों और विद्वानों को आश्रय देने वाला (गोत्रं) भूमि और गवादि पशु-सम्पदा की रक्षा करने वाला धन (मयि) मुझे भी दे । इति सप्तदशो वर्गः ।

[५१]

श्रुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ९ निचृद्बृहती । ५ विराड् बृहती । ७ बृहती । २ विराट् पंक्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।
नीपातिथौ मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥१॥

भा०—(यथा) जितना और जैसा (सांवरणौ) उत्तम रीति से वरण-योग्य (मनौ) प्रजा को मर्यादा में स्थापित करने वाले राजा के पद पर विराज कर हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (सुतम् सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य का (अपिबः) भोग करता है उतना ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (नीपातिथौ) मार्गदर्शी के अतिथिवत् पूज्य पद पर और (मेध्यातिथौ) अन्न यज्ञादि से सत्कार योग्य अतिथिवत् पूज्य परिव्राजक के पद पर और (पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ) उतना ही पुष्टि अर्थात् पशु सम्पदायुक्त एवं अन्नादि से समृद्ध भूमि के स्वामी पद पर (सचा) समवेत होकर भी भोगता है।

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद् गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥२॥

भा०—(पार्षद्-वाणः) वेदवाणी का सेवन करने वाला विद्वान् (शयानम्) अन्धकार में सोते के समान (जिव्रिम्) जीर्ण, वा प्रसन्न करने वाले, (उद्-हितम्) उत्तम सम्बन्ध में बद्ध (प्रस्कण्वं) तेजस्वी, शिष्य वर्ग को (सम् असादयत्) प्राप्त करे और (वृकः दस्यवे गवां सहस्राणि असिषासद्) हल जैसे भूमि को तोड़ने वाले किसान के लाभार्थ सहस्रों अन्न देता है, वैसे ही (त्वा-उतः) तेरी रक्षा में रहकर (वृकः) तेजोमय, ज्ञान प्रकट करने वाला (ऋषिः) ज्ञानदर्शी पुरुष (दस्यवे) आत्मसमर्पक शिष्य के लाभार्थ (गवां सहस्राणि) सहस्रों वेद-वाणियों को (असिषासत्) प्रदान करे।

य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥३॥

भा०—(यः) जो (चिकिद्यः) जानने योग्य, (ऋषिचोदनः) साक्षात्

तत्त्वदर्शी पुरुषों से उपदेश करने योग्य आत्मा (उक्थेभिः) शास्त्र-वचनों से भी (न विन्धते) नहीं जाना जाता (तम्) उस (अविष्यन्तं न इन्द्रम्) सर्वरक्षक के समान प्रभु को (भोजसे) रक्षा और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये, (नव्यस्या मती) स्तुति वाणी द्वारा (अच्छ वद) साक्षात् उपदेश करे।

यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पुदे ।
स त्विश्मा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥४॥

भा०—इन्द्र विषयक उपदेश। (उत्तमे पदे) उत्तम पद पर विद्यमान (यस्मै) जिस प्रभु के वर्णन करने के लिये (त्रि-धातुम्) तीन धातु वाले या तीन प्रकार से धारित (सप्त-शीर्षाणम् अर्कं) सात शिरों वाले अर्चना योग्य की (आनृचुः) स्तुति करते हैं, (सः तु) वही परमेश्वर (इमा विश्वा भुवनानि) इन समस्त भुवनों का (चिक्रदत्) शासन करता है और (पौंस्यं जनिष्ट) पौरुष, महती शक्ति प्रकट करता है। वेद मन्त्र प्रभु की स्तुति करने योग्य होने से 'अर्क' है। ऋक्, यजुः, साम तीन रूप से धारण करने योग्य होने से 'त्रिधातु' और सात छन्द उसके प्राण हैं।

यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥५॥१८॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (वसूनां दाता) समस्त ऐश्वर्यों और लोकों का देने वाला है (तम् इन्द्रम् हूमहे) हम उसी ऐश्वर्यवान् की प्रार्थना करें। (अस्य) उसकी (नवीयसीं) अति स्तुत्य (सु-मतिं) ज्ञानयुक्त वेदवाणी को हम (विद्म) जानें और (गोमति व्रजे) इन्द्रियों रूप अश्वों से युक्त गमन-साधन रथवत् इस देह में ही उसे (गमेम) प्राप्त करें, जानें।

यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥६॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने हारे प्रभो ! (यस्मै दानाय शिक्षसि) जिस दानशील पुरुष को तू दान करता है (सः) वह (रायः पोषम् अश्नुते) ऐश्वर्य की वृद्धि को प्राप्त करता है। हे (गिर्वणः) वेद-वाणियों से सेवने योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (मघवन्) पूजित धनयुक्त ! (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न अनित्य पदार्थों वाले (ते त्वा हवामहे) उस तेरी प्रार्थना करते हैं।

कुदा चुन स्तुरीरंसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (कदा चन) कभी भी (स्तरीः न) हिंसक नहीं है। तू (दाशुषे सश्चसि) आत्मसमर्पक के साथ रहता है। हे (मघवन्) पूजित धन-युक्त ! (देवस्य ते) दानशील तेरा (दानं) दिया धन (उप-उप इत् नु पृच्यते) बराबर प्राप्त होता है और (भूयः इत् नु) खूब अधिक प्राप्त होता है।

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
युदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥८॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) बलपूर्वक (शुष्णम्) मेघस्थ विद्युत् के समान प्रजा के शोषक शत्रु को (वधैः) आघातकारी शस्त्रों से (निघोषयन्) विनाश करता हुआ (क्रिविं) जल से कूप, तड़ागवत् संसार को पराक्रम से (अभि प्र ननक्षे) पूर्ण करता है और (यत्) जो (अमूं दिवम् प्रथयन् अस्तम्भीत्) इस आकाश वा सूर्य को भी विस्तृत करता हुआ स्थिर करता है और (आत् इत्) अनन्तर वह (पार्थिवः) समस्त पृथिवियों का स्वामी, स्वयं पृथिवीवत् माता होकर (जनिष्ट) समस्त संसार को उत्पन्न करता है। उसी की उपासना कर।

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥९॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु का (विश्वः आर्यः) समस्त श्रेष्ठ (अरिः) पुरुष (दासः) सेवकवत् (शेवधि-पाः) उसी के खजाने की रक्षा करने वाला है। उस (अर्थे) स्वामी (रुशमे) सर्व-नियन्ता, (पवीरवि) पाप-निवारक राजदण्डवत् परम तप-रूप वज्र के धारक प्रभु के अधीन समस्त विश्व विद्यमान है। हे प्रभो! (सः रयिः तुभ्य इत् अज्यते) यह सब मूर्त्त संसार तेरे ही गुणों के दर्शन के लिये प्रकट है। और (तिरः चित्) सुगुप्त वह भी (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे लिये ही प्रकट है।

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥१०॥१६॥

भा०—(तुरण्यवः) क्षिप्रकारी (विप्रासः) विद्वान् जन (घृत-श्चुतम्) जलदाता मेघ के तुल्य उदार, तेजःप्रद सूर्यवत् प्रकाश-स्वरूप (मधुमन्तं) जलयुक्त समुद्रवत्, अपार अन्नयुक्त पृथिवीवत् पालक (अर्कं) अर्चनीय प्रभु की (आनृचुः) प्रार्थना करते हैं कि (अस्मे रयिः, वृष्ण्यं शवः पप्रथे) हमारा ऐश्वर्य और सुखवर्षक बल बढ़े। (अस्मे सुवानासः इन्दवः) हमारे प्रजा उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्य हों। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[५२]

आयुः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ७ निचृद्बृहती। ३, ५ बृहती। ९ विराड् बृहती। २ पादनिचृत् पंक्तिः। ४, ६, ८, १० निचृद् पंक्तिः॥ दशर्चं सूक्तम्॥

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम्।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा॥ १॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! (यथा) जैसे और जितना (विवस्वति मनौ) विविध प्रजाओं के स्वामी, सुव्यवस्थापक राजा के पद पर विराज कर (सुतं सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य को (अपिबः) तू उपभोग

करता है और (यथा) जैसे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्रिते) तीनों विद्याओं में पारंगत विद्वान् के पद पर भी (छन्दः जुजोषसि) वेद वाणी का प्रेमपूर्वक सेवन करता है वैसे ही तू (आयौ) मनुष्यों में (सचा) वर्त्तमान भी (मादयसे) हर्ष लाभ करता और देता है।

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (पृषध्रे) जलसेचक मेघ धारक (मेध्ये) उत्तम अन्न के हितकारी (सुवाने) उत्पादक (मातरिश्वनि अमन्दथाः) आकाशगामी वायु में (यथा) जैसे आनन्द पाता है और (दशशिप्रे) दशों प्राणों को मुकुटवत् धारण करने वाले, (दशोण्ये) दश प्राण युक्त (स्यूम-रश्मौ) रश्मियों से युक्त तेजस्वी (ऋजु-नसि) सरल नासिका वाले, अभ्यासी पुरुष में वैसे (सोमं) परमानन्द रस का (अमन्दथाः) पान कराता है।

य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत्।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः॥ ३॥

भा०—(यः) जो (केवला उक्था दधे) केवल स्तुत्य वचनों को स्वीकार करता है, (यः धृषिता) जो दुष्टों को धर्षण करता (सोमं अपिबत्) उत्पन्न जगत् को पुत्रवत्, ऐश्वर्य को स्वामीवत् पालता, भोग करता है, (मित्रस्य धर्मभिः) मित्रवत् सूर्य के धारण-सामर्थ्यों से (यस्मै विष्णुः) व्यापक वायु जिसके लिये (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीनों लोकों में व्यापता है, वही 'इन्द्र' है।

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः॥ ४॥

भा०—हे (वाजिन्) बलवन्! (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञा वाले!

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (यस्य) जिसके (वाजे) यज्ञ में (स्तोमेषु) स्तुतिवचनों में (चाकनः) अभिलाषा करता है, (गोदुहः सुदुघाम् इव) गौ दुहने वाले उत्तम दुग्धदात्री गौ को जैसे बुलाते हैं वैसे (वयं) हम लोग (तं त्वा) उस तुझको (श्रवस्यवः) अन्नादि के इच्छुक होकर (जुहूमसि) पुकारते हैं।

यो नो॑ दा॒ता स नः॑ पि॒ता म॒हाँ उ॒ग्र ई॑शान॒कृत्।
अया॑मन्नु॒ग्रो म॒घवा॑ पुरू॒वसु॒र्गोरश्व॑स्य॒ प्र दा॑तु नः ॥५॥२०॥

भा०—(यः नः दाता) जो हमें देता है, (सः नः पिता) वही हमारा पालक है। वह (महान् उग्रः) बड़ा, बलवान् (ईशानकृत) ऐश्वर्यदाता शासक है। वह (उग्रः) बलवान्, (मघवा) धनाढ्य होकर (पुरु-वसु अयासन्) बहुत धन देता है और वह (गोः अश्वस्य नः प्रदातु) गौ अश्व आदि हमें देवे। इति विंशो वर्गः॥

यस्मै॒ त्वं व॑सो दा॒नाय॒ मंह॑से॒ स रा॒यस्पोष॑मिन्वति।
व॒सू॒यवो॒ वसु॑पतिं श॒तक्र॑तुं॒ स्तोमै॒रिन्द्रं॑ हवामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वसो) सर्वव्यापक! (त्वं यस्मै दानाय मंहसे) तू जिस दानशील को दान देता है (सः रायः पोषम् इन्वति) वह ऐश्वर्य की समृद्धि को प्राप्त करता है। हम (वसु-पतिं) सब लोकों और जीवों के पालक (शत-क्रतुं) अनेक कर्मों के कर्त्ता, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वसूयवः) ऐश्वर्य के इच्छुक होकर (हवामहे) स्तुति प्रार्थना करते हैं।

क॒दा च॒न प्र यु॑च्छस्यु॒भे नि पा॑सि॒ जन्म॑नी।
तुरी॑यादित्य॒ हव॑नं त इन्द्रि॒यमा त॑स्थाव॒मृतं॑ दि॒वि ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो! तू (कदाचन प्रयुच्छसि) कभी प्रमाद नहीं करता। (उभे जन्मनी नि पासि) इह और पर दोनों लोकों को पालन करता है। हे (तुरीय) सबसे पार! हे (आदित्य) सब विश्व के

नियन्तः ! (ते) तेरा यह (हवनं इन्द्रियम्) देने योग्य ऐश्वर्य है जो (दिवि) मोक्ष में (अमृतं) अमृतस्वरूप (आ तस्थौ) विद्यमान है।

यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥८॥

भा०—हे (मघवन् इन्द्र) पूजित धन के स्वामिन् ! (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति योग्य प्रभो ! हे (शिक्षो) दानशील ! तू (यस्मै दाशुषे) जिस दानशील पुरुष को (शिक्षसि) देता है वह सम्पन्न हो जाता है। हे (वसो) सर्वस्वामिन् ! (उत) और तू (कण्ववत्) ज्ञानी के समान (अस्माकं गिरः) हमारी वाणियों और (सु-स्तुतिं हवम्) उत्तम स्तुति प्रार्थना को (श्रृणुधि) सुन।

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—(मन्म) मनन योग्य, ज्ञानमय (पूर्व्यं) सनातन ब्रह्म वेद का (अस्तावि) उपदेश करो, उसका (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति के लिये (वोचत) उच्चारण करो। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पूर्वीः बृहतीः) सनातन वेदवाणियों की (अनूषत) स्तुति करो और (स्तोतुः मेधाः) वाणियां और बुद्धियां स्वयं (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं।

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम्।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१०॥२१॥

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर ही (रायः) समस्त ऐश्वर्यों और (बृहतीः) जगत् की बड़ी २ शक्तियों को (सम् अधूनुत) अच्छी प्रकार संचालित करता है। वही (क्षोणीः सं सूर्यम् उ सम्) पृथिवियों और सूर्य को चलाता है, (शुचयः शुक्रासः) शुद्धाचारवान् पुरुष और (गवाशिरः सोमाः) वेदवाणी का आश्रय लेने वाले जितेन्द्रिय लोग उसी को

(इन्द्रम् सं सम् अमन्दिषुः) अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं। इत्येकविंशो वर्गः॥

[५३]

मेध्यः काण्व ऋषिः॥ छन्दः—१, ५, ७ विराड् बृहती। ३ आर्ची स्वराड् बृहती। २,४,६ निचृत् पंक्तिः। ८ विराट् पंक्तिः अष्टर्चं सूक्तम्॥

उपमं त्वा मघोनाञ्ज्येष्ठं च वृषभाणाम्।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे॥ १॥

भा०—हे (मघवन्) धनसम्पन्न! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (मघोनां उपमानं) धनवानों के आदर्श और (वृषभाणां च) मेघवत् सुखवर्षक उदार दाताओं में (ज्येष्ठं) सबसे बड़े, (पूर्भित्-तमं) शत्रुओं के दुर्ग भेदने में कुशल जीवों के पुर-रूप देहबन्धनों को भेदने वाले, (गो-विदम्) भक्त की वाणी के ज्ञाता (ईशानं) परमेश्वर से हम (रायः ईमहे) ऐश्वर्यों की याचना करते हैं।

य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे॥ २॥

भा०—(यः) जो (दिवे-दिवे) दिनोदिन (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ (आयुम्) शरण में आने वाले (कुत्सम्) स्तुति करने और (अतिथिग्वम्) अतिथिवत् परमेश्वर के प्रति स्तुति वाणी का प्रयोग करने वाले पुरुष को (अर्दयः) प्राप्त होता है (हर्यश्वं तं) मनुष्यों को अश्वों के तुल्य सन्मार्ग में संचालन करने वाले उस (शत-क्रतुं त्वां) सैकड़ों कर्म और प्रज्ञाओं वाले तुझ प्रभु से (वाजयन्तः) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य की कामना करते हुए हम (हवामहे) याचना करें।

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः॥ ३॥

भा०--(ये) जो (इन्दवः) विद्वान् तेजस्वी जन (परावति) पर ब्रह्म में (सुन्विरे) अभिषिक्त होते हैं और (ये) जो (अर्वावति) इस लोक में भी (जनेषु) मनुष्यों के बीच (सुन्विरे) प्रतिष्ठा पाते हैं वे (अद्रयः) मेघ के समान (नः विश्वेषां) हम सबके हितार्थ (मध्वः रसं) मधुर ज्ञान रस ओषधि-रसवत् (आसिञ्चन्तु) आसेचन करें, प्रदान करें।

विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु।
शीर्ष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥४॥२२॥

भा०—(यत्र) जिस दशा में तू (सोमस्य तृम्पसि) ऐश्वर्य से तृप्त होता है, उसी दशा में तू (विश्वा द्वेषांसि) समस्त प्रकार के द्वेषों और द्वेष करने वाले जनों को (जहि) विनष्ट कर और (अव कृधि च) नीचा कर। (चित्ते मदिरासः) चित्त में सुप्रसन्न (अंशवः) व्याप्त विद्यावान् (विश्वे) समस्त जन (शिष्टेषु) शिष्टों, विद्वानों के बीच में (त्वा वसु सन्वन्तु) तुझे समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें। इति द्वाविंशो वर्गः॥

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥५॥

भा०—हे (शन्तम) अतिशान्तिदायक! हे (स्वापे) बन्धो! तू (मित-मेधाभिः) परस्पर सत् संगतियुक्त, (ऊतिभिः) रक्षाओं और (शंतमाभिः) अति शान्तिदायक (अभिष्टिभिः) अभीष्ट, सुखप्रद उपायों सहित हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू हमारे (नेदीयः इत्) अति समीप ही (आ इहि) प्राप्त हो।

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (ये) जो (ते) तेरे (उक्थिनः) वेद-वचनों के ज्ञाता जन (शचीभिः) वाणियों द्वारा (ते क्रतुं) तेरे यज्ञ, वा ज्ञान को

(आनुषक्) निरन्तर (पुनते) पवित्र करते रहते हैं वह तू (प्र सु-तिर) उनको अच्छी प्रकार बढ़ा और (प्रजासु) प्रजाओं में (आजि-तुरं) संग्राम में शत्रुओं के नाशक (सत्पतिं) सज्जनों के पालक (विश्व-चर्षणिं) सबके द्रष्टा (आ-भगम्) सब प्रकार से सेवनयोग्य को (कृधि) अधिकारवान् कर।

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ते) तेरी (साधिष्ठः) उत्तम साधना करने वाला है वह (अवसे) हमारी रक्षा करने वाला हो। हम (भरेषु) यज्ञों में भी (ते स्याम) तेरे ही रहें। (वयं) हम लोग (देव-हूतिभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्वीकृत (होत्राभिः) वाणियों और यज्ञ सत्क्रियाओं द्वारा (ससवांसः) स्तुति करते हुए (मनामहे) तेरा चिन्तन करें।

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥ ८ ॥ २३ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के तुल्य मनुष्यों पर वश करने हारे! (अहं हि) मैं (ते ब्रह्म यामि) तेरे महान् ऐश्वर्य की याचना करता हूँ। मैं (वाजयुः) बल का इच्छुक, (सदा ऊतिभिः) सदा तेरी ही शक्तियों द्वारा (आजिं यामि) युद्धादि शत्रुगण को उखाड़ डालने वाले बल की याचना करता हूँ। मैं (अश्वयुः गव्युः) अश्वों और गौवों की कामना करता हुआ (मथीनां अग्रे) शत्रु-मंथनकारी सेनाओं के अग्रभाग में (त्वाम् इत् इव) तुझे ही (सं तममे) स्थापित करता हूँ। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[५४]

मातरिश्वा काण्व ऋषिः ॥ १, २, ५—८ इन्द्रः। ३, ४ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ५ निचृत् बृहती। ३ बृहती। ७ विराड् बृहती। २, ४, ६, ८ निचृत् पंक्तिः ॥

एतत्त्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (कारवः) स्तुति कर्त्ता जन (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (ते) तेरे (एतत् वीर्यं) इस महान् प्रत्यक्ष बल का (गृणन्ति) उपदेश करते हैं। (ते पौरासः) वे दृढेन्द्रिय पुरुष (घृत-श्चुतं) तेज व जल के दाता तुझको ही (स्तोभन्तः) स्तुति करते हुए (ऊर्जम् आवन्) अन्न को प्राप्त करते हैं और (धीतिभिः) उत्तम कर्मों से तुझे (नक्षन्) प्राप्त करते हैं।

नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (येषां) जिनके (सुतेषु) उत्पन्न किये उत्तम ऐश्वर्यों पर (मन्दसे) प्रसन्न होता है वे अपने (सुकृत्यया) उत्तम कर्म-सामर्थ्य से (अवसे) रक्षा के निमित्त (इन्द्रम्) दुष्टनाशक उसी स्वामी को (नक्षन्त) प्राप्त करते हैं। हे प्रभो! तू (यथा) जैसे (संवर्त्ते) सम्यक् दृष्टि से वर्त्तने वाले सम्यग् व्यवहारवान् पुरुष पर (अमदः) प्रसन्न होता है और (यथा) जैसे (कृशे) तपस्या द्वारा कृश-शरीर या निर्बल पर कृपालु होता है (एव अस्मे मत्स्व) वैसे ही तू हम पर कृपालु रह।

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः ।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् पुरुषो! आप (विश्वे) सब (नः) हमसे (सजोषसः) प्रीतियुक्त होकर (नः उप गन्तन) हमें प्राप्त हों। (वसवः) रक्षक, (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले, प्राणवत् प्रिय पुरुष, (नः) हमें (अवसे) रक्षार्थ (आगमन्) प्राप्त हों और (मरुतः) वे बलवान् पुरुष (नः हवम् शृण्वन्तु) हमारा आह्वान सुनें।

पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥४।२४॥

भा०—(पूषा) सर्वपोषक,सूर्य (विष्णुः) व्यापक वायु,(सरस्वती) उत्तम ज्ञानसम्पन्न वाणी और (सप्त सिन्धवः) शरीरस्थ सातों गतिशील प्राण, (आपः) जल, (वातः) वायु, (पर्वतासः) मेघगण (वनस्पतिः) वृक्षादि, ये सब (मे हवनं अवन्तु) मेरी यज्ञाहुति को प्राप्त हों। (पृथिवी मे हवम् शृणोतु) पृथिवी मेरे कथन या दान यज्ञादि को श्रवण करे । मेरी प्रसिद्धि हो ।

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (मघवत्तम) धन के स्वामियों में श्रेष्ठ ! (यत् ते राधः) जो तेरा धन तुझे (माघोनं) धन-स्वामी बनाने वाला है, तू (सधमाद्यः) सबके साथ मिलकर प्रसन्न होने वाला होकर (तेन) उस धन से (नः) हमें भी (वृधे) बढ़ाने और (दानाय) देने के लिये (बोधि) जान, हे (वृत्रहन्) विघ्ननाशक! तू (भगः) सर्वसेवनीय है।

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥६॥

भा०—हे (आजिपते) युद्धों के पालक! (नृपते) मनुष्यों के पालक ! हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञावान् ! (त्वम् इत् हि नः) तू ही हमें (वाजे आवक्षि) संग्राम में धारण कर । (देव-वीतिभिः) विद्वानों या शुभ गुणों की प्रकाशक (वीती) ज्ञानयुक्त (होत्राभिः) वाणियों से (ससवांसः) स्तुति करते हुए विद्वान् (वि शृण्विरे) विविध प्रकार से सुने जावें ।

सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥ ७ ॥

भा०—(अर्ये) स्वामी के आश्रय ही (जनानाम्) मनुष्यों की सब (आशिषः सन्ति) आशाएं होती हैं और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् प्रभु के अधीन समस्त जनों का (आयुः) जीवन है। हे (मघवन्) प्रभो! तू (अस्मान् रक्षस्व) हमारी रक्षा कर और (अवसे) हमें तृप्त करने के लिये (पिप्युषीम्) पुष्टि वृद्धिकारक (इषं उप धुक्षस्व) अन्न दे।

वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥८॥२५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वयम्) हम (ते) तेरा (स्तोमेभिः) स्तुतियों द्वारा (विधेम) वर्णन करें। हे (शत-क्रतो) सैकड़ों ज्ञान-विज्ञानों से सम्पन्न! (त्वं) तू (अस्माकं) हमारा ही है। तू (प्रस्कण्वाय) उत्तम विद्वान् को (महि स्थूरं) बहुत बड़ा स्थिर (शशयं) प्रशंसनीय, (अह्रयं) अविनाशी, (राधः नि तोशय) धन दे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५५]

कृशः काण्व ऋषिः ॥ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, ४ गायत्री । ३, ५, अनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं१ व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥१॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) दुष्ट पुरुष के नाश के लिये वृक के समान भयप्रद! (इन्द्रस्य ते) ऐश्वर्यवान् तेरे (वीर्यं भूरि इत्) बहुत अधिक बल को मैं (वि अख्यम्) साक्षात् करता हूँ और (ते भूरि राधः) तेरा बहुत अधिक धन (अभ्यायति) हमारे सन्मुख आता है।

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते ।
मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ २ ॥

भा०—(दिवि) आकाश में (शतं) सैकड़ों (श्वेतासः) शुभ्र वर्ण के, (उक्षणः) नाना पिण्डों, ग्रहों को वहन करने वाले, सूर्यगण (तारः न) तारों के तुल्य ही (रोचन्ते) चमकते हैं। वह (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (दिवं न) सूर्य के समान तेजस्वी पिण्डों को भी (तस्तभुः) थामते हैं, वह उसी प्रभु का सामर्थ्य है।

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्वजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥ ३ ॥

भा०—(शतं वेणून्) सौ अर्थात् अनेक वीणाएं, (शतं शुनः) सौ, अर्थात् अनेक कुत्ते (शतं म्लातानि चर्माणि) सैकड़ों बनाये हुए चमड़े और (शतं बल्वजस्तुकाः) सौ मूंज की सी गुच्छों वाली बनभूमियां और (अरुषीणां चतुःशतम्) दीप्तियुक्त चमकती भूमियों की ४ सौ संख्या ये सब जैसे ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होती हैं, वैसे (मे) मेरे भी हों। अर्थात् राजसी सैकड़ों बाजे, सैकड़ों कुत्तों के समान स्वामिभक्त सेवक, सैकड़ों रक्षार्थ ढालें, सैकड़ों वन-भूमियें और सैकड़ों पके खेत ये सब विभूति हमें प्राप्त हों।

सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः ।
अश्वासो न चङ्क्रमत ॥ ४ ॥

भा०—हे (सु-देवाः) उत्तम कामनावान् मनुष्यो! आप लोग (कण्वायनाः स्थ) विद्वान् पुरुषों के अधीन, जाने वाले होकर रहो। आप लोग (वयः वयः चरन्तः) एक के बाद दूसरी अवस्था को व्यतीत करते हुए, (अश्वासः न) अश्वों के समान (चङ्क्रमत) कदम बढ़ाते चलो।

आदित्साप्तस्य चर्किर्न्नानूनस्य महि श्रवः ।
श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन सन्नशे ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(साप्तस्य) सातों प्राणों के स्वामी (अनूनस्य) अन्यून, पूर्ण पुरुष का (महि श्रवः) महान् यश (चर्किरन्) फैला रहे हैं। (श्यावीः पथः) राजस और तामस मार्गों का अतिक्रमणकर्ता विद्वान् (चक्षुषा न) चक्षु से भी उसकी विभूतियों को (सं नशे) देखता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[५६]

पृषध्रः काण्व ऋषिः ॥ १—४ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः । ५ अग्निसूर्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४ विराड् गायत्री । २ गायत्री । ५ निचृत् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) दुष्ट चोर-पुरुषों के विनाश के लिये तेजस्वी वीर पुरुष ! (ते राधः) तेरे ऐश्वर्य को मैं (अह्रयं प्रति अदर्शम्) प्रत्यक्ष रूप में अविनाशी रूप से देखता हूँ। (ते शवः) तेरा महान् बल (द्यौः न प्रथिना) आकाश के समान विस्तृत है।

दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः ।
नित्याद्रायो अमंहत ॥ २ ॥

भा०—(दस्यवे वृकः) सत्-कर्मों के नाशक दुष्ट, पुरुष को नाश करने के लिये जैसे 'वृक' के समान बलवान् शस्त्रधारी पुरुष ही समर्थ होता है वैसे ही आत्मा की शक्तियों के नाशक काम, क्रोध, लोभ, मोहादि भीतरी चोर डाकुओं को नाश करने वाला, ज्ञानप्रकाशक तेजस्वी, (पौतक्रतः) पवित्र ज्ञान और कर्म वाला वह प्रभु (मह्यं)

मुझे (नित्याद्), सनातन ज्ञान कोश, वेद से (दशसहस्रा वयः) दस सहस्र मन्त्र रूप धन, (अमंहत) प्रदान करता है। इसी प्रकार आचार्य शिष्य के अज्ञान दूर करने वाला हो और वह नित्य वेद के दस सहस्र ऋचाओं का ज्ञान दे।

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम्। शतं दासाँ अति स्रजः ॥३॥

भा०—वह प्रभु (मे) मुझ प्रजाजन को (गर्दभानां शतम्) सौ गर्दभ, अनेक जाति के जीव, (ऊर्णावतीनाम् शतम्) ऊन वाली भेड़ों की जाति के सौ, अनेक पशु (शतं दासान्) सौ दास, भृत्य (अतिस्रजः) देता है। भृत्यों ने भृति, अर्थात् शरीरपोषण मात्र वेतन लेकर कार्य करना है, उनका एक से दूसरे के यहां जाना कोई असंगत नहीं है। एक राजा का एक विद्वान् की सेवा में सैकड़ों भृत्य नियुक्त करना क्या बुरा है? जब कि उनका वेतन और कार्य वैसा ही है। इसी प्रकार शत्रु-नाशक सेनादि के सौ २ दस्तों का परस्पर दान-आदान भी होता है॥

तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता।
अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥ ४ ॥

भा०—(अश्वानाम् यूथ्याम् इत न) अश्वों या घुड़सवार सैनिकों की टुकड़ी या सेना के समान ही (तत्र उ अपि) वहां भी (पूत-क्रतायै) पवित्र कर्मकर्त्ता व्यक्ति की सेवा में उपकार के लिये (व्यक्ता) स्पष्टरूप से (प्रअनीयत) उक्त सैकड़ों पशु गधे, भेड़ और भृत्यों को कार्य में लगा दिया जावे।

अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः। अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥५॥२७॥

भा०—(चिकितुः) ज्ञानी पुरुष (अग्निः) अग्नि तुल्य तेजस्वी, (हव्य-वाट्) अन्न को ग्रहण करने वाला हो। (सः) वह (सुमद्-रथः) उत्तम

स्वरूप और उत्तम रथ वाला हो। वह (शुक्रेण शोचिषा) कान्तियुक्त तेज से (अग्निः) अग्नि के समान ही, (शुक्रेण शोचिषा) वीर्य, ब्रह्मचर्य और उसके प्रभाव से युक्त, (बृहत् सूरः) महान् सूर्य के समान (अरोचत) चमके, (दिवि सूर्यः) आकाश में सूर्य तुल्य वह (दिवि) ज्ञान विज्ञान वा उस पृथिवी पर (अरोचत) चमकता है। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[५७]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥१॥

भा०—हे (नासत्या) सत्याचरणशील स्त्री-पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (देवा) ज्ञान धनादि देने में समर्थ होकर (पूर्व्येण) अपने पूर्व के (क्रतुना) कर्म-सामर्थ्य से (युक्ता) युक्त एवं सावधान, (यजत्रा) दान-परायण, ईश्वरोपासना में रत होकर (तविषं) दृढ़तापूर्वक (आ गच्छतम्) आगे बढ़ो। (शचीभिः) वेदवाणियों द्वारा (इदं तृतीयं सवनं) इस तृतीयसवन, तीसरे आश्रम को भी (पिबथः) पालन करो ॥

जीवन के ४८ वर्ष बीतने पर तीसरा सवन है। वह जगत् के उपकारार्थ होता है। उसका ज्ञापक जगतीछन्द है। जगतीछन्द के ४८ अक्षर होते हैं। उसको आदित्य प्राप्त होते हैं। प्राण आदित्य हैं, वे उसका ग्रहण करते हैं। इस अवस्था में तप करना यज्ञ में तृतीय सवन के समान है ॥

युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥ २ ॥

भा०—(देवाः) दिव्य गुणधारक (त्रयः एकादशासः) ११×३=

३३ (सत्याः) सत् गुण-युक्त हैं। विद्वानों ने (सत्यस्य पुरस्तात् ददृशे) इस सत्य का पहले ही साक्षात् किया है। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! (दीद्यग्नी) प्रज्वलिताग्नि होकर (युवां) आप दोनों (अस्माकं) हमारे (सवनं यज्ञं) यज्ञ सवन का सेवन करते हुए (सोमं पातम्) ओषधि-रसवत् देह में वीर्य का पालन और ज्ञान-अर्चनादि में उपयोग करो।

पुनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ३ ॥

भा०—(दिवः) आकाश (रजसः) अन्तरिक्ष और (पृथिव्याः) भूमि का (वृषभः) सूर्य अग्निवत् वर्षण करने वाला, विद्वान् पुरुष (वां) तुम दोनों के प्रति (पनाय्यं) स्तुत्य (कृतं) कर्म का उपदेश दे। (ये) जो विद्वान् (गविष्टौ) वेद-वाणियों के ज्ञान-प्रदान के निमित्त (सहस्रं शंसा) सहस्रों मन्त्रों का उपदेश देते हैं, हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (तान् सर्वान् पिबध्यै उपयातम्) उन सबके व्रत-पालन के लिये जाओ।

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम्।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥२८॥

भा०—हे (नासत्या) सत्य व्रत के पालक स्त्री पुरुषो! आप दोनों (यजत्रा) दानशील होकर (इमा गिरः उप यातम्) इन वेद-वाणियों को प्राप्त करो। (अयं वां भागः निहितः) यह तुम दोनों का सेवनयोग्य भाग निश्चित किया गया है। (अस्मे) हमारे इस (मधुमन्तम्) मधुर ज्ञान से युक्त (सोमं) उपदेश का (पिबतं) पान करो और (शचीभिः) उत्तम वाणियों, सत्क्रियाओं से (दाश्वांसम् प्र अवतम्) ज्ञानदाता को उत्तम रीति से प्राप्त होवो, रक्षा करो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[५८]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ १ विश्वेदेवा ऋत्विजो वा। २, ३ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप् ॥

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति । यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् ॥१

भा०—(यं) जिस (यज्ञं) उपासनीय परमेश्वर की (बहुधा) बहुत प्रकारों से (कल्पयन्तः) कल्पना करते हुए, (सचेतसः) तत्समान चित्त होकर (ऋत्विजः) प्रति ऋतु, प्रति प्राण, ज्ञानपूर्वक यज्ञोपासना करने वाले, विद्वान् (इमं) इस उपास्य यज्ञ को (वहन्ति) हृदय में ज्ञान और कर्मरूप से धारण करते हैं। (यः) जो (अनूचानः) बहुश्रुत (ब्राह्मणः) वेदज्ञाता पुरुष (युक्तः आसीत्) इस उपासना कार्य में नियुक्त होता है (तत्र) उसमें (यजमानस्य का स्वित् संवित्) यजमान उपासक की कैसी मनोभावना, वा प्राप्ति होती है ?

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥ २ ॥

भा०—उपास्य की यज्ञ द्वारा उपासना करने में यजमान की ऋत्विजों के साथ इस प्रकार सम्यग् दृष्टि हो कि—जैसे (एकः एव अग्निः) एक ही अग्नि (बहुधा समिद्धः) आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि आदि नाना प्रकार से संदीप्त किया जाता है और जैसे (एकः सूर्यः) एक ही सूर्य (विश्वम् अनु प्रभूतः) विश्व के प्रति प्रकाश ताप देने और जगत् के गतिमान् पिण्डों को स्तम्भन करने में समर्थ होता है और जैसे (एका एव उषाः) एक ही उषा (इदं सर्वं वि भाति) इस सब ब्रह्माण्ड को चमका देती है, वैसे ही (इदं) यह (सर्वम्) सब भी (एकं वा वि बभूव) एक ही सत् पदार्थ नाना रूप से प्रकट होता है।

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ॥३।२६

भा०—विराट् रथ का वर्णन। (यस्य योगे) जिसके प्राप्त होने पर

(चित्रा मघा अधिजज्ञे) अद्भुत ऐश्वर्य-विभूति उत्पन्न होती है (तं रिक्थम्) सबसे बढ़ के शक्तिशाली उसका (पिबध्यै) आनन्द-रस पान करने के लिये (वां अति हुवे) आप दोनों को मैं उपदेश करता हूँ। वह कैसा है? अग्नि के समान (ज्योतिष्मन्तं) तेजोमय, (केतुमन्तं) ज्ञानवान्, (त्रिचक्रं रथं) रथ के समान तीन चक्रों वाला, (सुखं) सुखप्रद, उत्तम आकाशों, वा इन्द्रिय वा छिद्रों से युक्त, (सु-षदं) उत्तम रीति से सुख-पूर्वक रहने योग्य, व सुख से जाने या गति करने वाला, (भूरिवारम्) बहुतों से वरणीय, बहुत कष्टों का वारक है, (तं वां हुवे) मैं उसका तुमको उपदेश करता हूँ। प्रकृति के तीन गुण प्रभु के तीन चक्र अर्थात् संसार रचना करने के साधनवत् हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५६]

सुपर्णः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ जगती। २, ३ निचृज्जगती। ४, ५, ७ विराड् जगती। ६ त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

इमानि॑ वां भाग॒धेया॑नि सिस्रत॒ इन्द्रा॑वरुणा॒ प्र म॒हे सु॒तेषु॑ वाम्।
य॒ज्ञेय॑ज्ञे ह॒ सव॑ना भुर॒ण्यथो॒ यत्सु॑न्व॒ते यज॑माना॒य शिक्ष॑थः ॥१ ॥

भा०—ओषधियों में जैसे विद्युत् तत्व और रोगनिवारक जल तत्त्व दोनों सेवन करने वाले को बल देते हैं वैसे ही हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, शत्रुहन्तः! हे वरुण, दुःखवारक सेनापति, राजन्! (सुतेषु) उत्पन्न ऐश्वर्यों के निमित्त (वाम्) तुम दोनों का (प्र महे) आदर करता हूँ। (इमानि) ये (वां भाग-धेयानि) आप दोनों के सेवनीय अंश (प्र सिस्रते) फैल रहे हैं। (यज्ञे यज्ञे ह) प्रत्येक यज्ञ में (यत्) जो आप दोनों (यजमानाय) यज्ञकर्त्ता को (शिक्षथः) साहाय्य प्रदान करते हो और (सवना भुरण्यथः) ऐश्वर्यों को पुष्ट करते हो इसलिये तुम्हारे देने योग्य अंश हैं।

नि: षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥२॥

भा०—राष्ट्र में (इन्द्रा वरुणा) सेनापति और राजा दोनों (आस्ताम्) आसन पर विराजें और (ओषधीः आपः) तेज धारण करने वाली आप्त प्रजा (निः षिध्वरीः) शत्रुओं का परिहार करने में समर्थ होकर (महिमानम् आशत) महान् सामर्थ्य प्राप्त करें। (ययोः शत्रुः) जिन दोनों का शत्रु (नकिः आत् एव ओहते) कोई भी समर्थ नहीं होता और (या) जो दोनों (रजसः पारे अध्वनः) अन्तरिक्ष के पार के मार्ग में (सिस्रतुः) जाते हैं।

सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मि दुहते सप्त वाणीः।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति
चित्तिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे वरणीय श्रेष्ठ जनो! (वां) आप दोनों के प्रति (कृशस्य) तपस्या द्वारा कृश हुए तपस्वी जन की (सप्त वाणीः) सातों छन्दों वाली वेद-वाणियां (सत्यं) सत्य ज्ञान और (मध्वः) मधुर, आनन्दप्रद ज्ञान के (ऊर्मिम्) तरंग को (दुहते) दोहन या प्रदान करती है, (ताभिः) उन वाणियों से आप दोनों (शुभः पती) कल्याण मार्ग के पालक उस (दाश्वांसम् अवतम्) दानशील भद्रपुरुष की रक्षा वा ज्ञान दान करते हो। जो (अदब्धः) अबाधित होकर (वां) आप दोनों के (चित्तिभिः) उत्तम ज्ञानों उत्तम विचारों द्वारा (अभि-पाति) रक्षा करता है।

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य। या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥४॥२०

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवन्! श्रेष्ठ पुरुष! आचार्य! स्वयं-वृत गुरो! (याः) जो (वां) आप दोनों की, (घृत-प्रुषः) जल बिन्दु-

निषेकवत् शीतल सुखदायिनी, (सौम्या) उत्तम शिष्यों की हितकारिणी, (जीर-दानवः) जीवन प्रदान करने वाली, (सप्तस्वसारः) सात बहनों के समान सात छन्दोमयी, सुख से अज्ञान का नाश करने वाली, (घृत-श्रुतः) तेजः प्रकाश के देने वाली वाणियां हैं (ताभिः) उन से आप दोनों (यजमानाय) दानशील, आत्मसमर्पक जन को (ऋतस्य सदने) सत्य ज्ञान और न्याय के स्थान में (धत्तम्) स्थापित करो और (शिक्षतम्) शिक्षा करो ।

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।
अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ॥५

भा०—(महते सौभगाय) बड़े ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वेषाभ्याम्) दीप्तियुक्त इन्द्र, वरुण, विद्युत् और जलवत् शत्रु नाशक, दुःखवारक जनों के (सत्यं महिमानम्) सच्चे महत्व और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की (अवोचाम) हम स्तुति करें । हे (शुभः-पती) शुभ गुणपालको ! आप दोनों (त्रिभिः सप्तेभिः) ३×७=२१ तत्वों से (घृत-श्रुतः) घृताहुति देने वाले (अस्मान्) हम लोगों की (सु अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करो ।

इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) सत्य ज्ञान के साक्षात् दर्शन करने वाले 'इन्द्र' और गुरु आचार्य रूप से वरणयोग्य और पापों से हटाने हारे श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (यत्) जिस (मनीषाम्) ज्ञान की प्रेरणा और (याः वाचः) जिन वाणियों, (याम् मतिम्) जिस बुद्धि और (यत् श्रुतम्) गुरु द्वारा श्रवण-योग्य वेदोपदेश को (अग्रे) सबसे प्रथम (अदत्तम्) देते हो और जिन (स्थानानि) गृहादि शालाओं, आश्रमों वा लोकों को (धीराः) बुद्धिमान् लोग (यज्ञं तनवानाः) यज्ञ का विस्तार

करते हुए (असृजन्त) बनाते हैं उन को मैं (तपसा अभि अपश्यम्) तप द्वारा साक्षात् करूं।

इन्द्रा॑वरुणा सौमन॒सम॑दृ॑सं रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धत्तम्।
प्र॒जां पुष्टिं॑ भू॒तिम॒स्मासु॑ धत्तं दी॒र्घायु॒त्वाय॒ प्र ति॑रतं न॒ आयुः॑॥७।३१

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) पूर्वोक्त इन्द्र वरुण! हे तत्त्वदर्शिन्! गुरो! आप दोनों (यजमानेषु) यज्ञ, सत्संग आदि करने वाले जनों में (अदृसं सौमनसं) गर्व से रहित उत्तम चित्त का भाव और (अदृसम् रायः पोषम् धत्तम्) गर्व से रहित धनैश्वर्य की समृद्धि धारण कराओ। (अस्मासु) हममें (प्रजां, पुष्टिम्, भूतिम्, धत्तम्) उत्तम सन्तान, पुष्टि और धनसमृद्धि धारण कराओ और (नः आयुः) हमारी आयु को (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये (प्र तिरतम्) बढ़ाओ। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

इति बालखिल्यं समाप्तम्[1]

[६०]

भर्गः प्रागाथ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ६, १३, १७ विराड् बृहती। ३, ५ पादनिचृद् बृहती। ११, १५ निचृद् बृहती। ७, १६ बृहती। २ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। १०, १६, पादनिचृत् पंक्ति। ४,६, ८, १४, १८, २० निचृत् पंक्तिः। १२ पंक्तिः॥ विंशत्यृचं सूक्तम्॥

अग्न॒ आ या॑ह्य॒ग्निभि॒र्होता॑रं त्वा वृणीमहे।
आ त्वाम॑नक्तु॒ प्रय॑ता ह॒विष्म॑ती॒ यजि॑ष्ठं ब॒र्हिरा॒सदे॑॥ १॥

१ बालखिल्यसूक्ते सायणीयं भाष्यं नास्ति। ऐतरेयभाष्येऽपि तेन अष्टावेव बालखिल्यानि स्वीक्रियन्ते। माक्समूलरादि सम्पादितायां तु ऋक्संहितायामेकादश सूक्तानि पठयन्ते। तान्येवात्र व्याकृतानि।

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! तू (अग्निभिः) गार्हपत्यादि अग्नियों सहित यज्ञाग्नि होता के समान तू ज्ञानी पुरुषों के साथ (आ याहि) प्राप्त हो। (होतारं त्वां वृणीमहे) अपने समीप प्रेम से बुलाने और ऐश्वर्यादि देने वाले तुझको हम वरण करते और तुझसे ही याचना करते हैं। (यजिष्ठं) अतिदानशील (त्वाम्) तुझको (हविष्मती) दी हुई हवि वाली आहुति अग्नि को जैसे प्रकाशित करती है उत्तम हवि, ग्राह्य ज्ञानादि से युक्त (प्रयता) अच्छी प्रकार सुसंयत, सुप्रबद्ध वाणी वा नीति (बर्हिः) आसनवत् वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजनों वा लोकों पर (आसदे) शासनार्थ विराजने के लिये (आ अनक्तु) अच्छी प्रकार प्रकाशित करे।

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) सैन्यादि के प्रेरक! हे (अङ्गिरः) अंग में रसवत् राष्ट्र में बलवन्! (त्वा हि अच्छ) तुझे लक्ष्य करके ही (अध्वरे स्रुचः) यज्ञ में स्रुचों के समान ही समस्त प्रजागण, (चरन्ति) चलते हैं। हम (ऊर्जः नपातं) उत्तम अन्न और वृष्टि को सूर्यादि के तुल्य नष्ट न होने देने वाले (घृत केशम्) स्निग्ध केश वाले, सुकेश, एवं प्रदीप्त तेज को केशोंवत् धारण करने वाले (यज्ञेषु पूर्व्यम्) सत्संगों में एवं यज्ञादि कार्यों के निमित्त, सबसे श्रेष्ठ, (अग्निम् ईमहे) तेजस्वी पुरुष को ही प्राप्त हों और उससे ही (ऊर्जः ईमहे) बलों, अन्नों आदि की याचना करते हैं।

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् प्रभो! तू (कविः असि) क्रान्तदर्शी विद्वान् है, तू (वेधाः असि) बुद्धिमान् (असि) है। हे (पावक) पवित्र

करने हारे ! तू (यक्ष्यः) पूज्य, उपास्य, (होता) ऐश्वर्यों का दाता है। तू (मन्द्रः) स्तुति-योग्य, सुख का दाता, (यजिष्ठः) बड़ा दानी (अध्वरेषु) यज्ञों में (मन्मभिः) मन्त्रों द्वारा और (विप्रेभिः) विद्वानों द्वारा (ईड्यः) स्तुत्य है।

अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥ ४

भा०—हे (यविष्ठ्य) बलवन् ! हे (अजस्र) अविनाशिन् ! तू (अद्रोघम्) द्रोहरहित मुझको (उशतः देवान्) उत्तम कामना वा प्रीति करने वाले देव, विद्वान् पुरुषों के पास, (वीतये) ज्ञानप्रकाश करने, रक्षा करने और उत्तम अन्नादि खाने के लिये (आ वह) प्राप्त करा। हे (वसो) पितावत् सबको बसाने वाले तू (सु-धिता) उत्तम भाव से स्थापित (प्रयांसि) उत्तम अन्नों, भावों को (अभि गहि) प्राप्त कर। तू (हितः) स्थापित वा समाहित होकर (धीतिभिः मन्दस्व) उत्तम कर्मों, उपदेशप्रद वाणियों से प्रसन्न तृप्त हों।

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥५।३२॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (त्वम् इत्) तू ही (स प्रथाः) सबसे बड़ा, (असि) है। हे (त्रातः) रक्षक ! तू ही (ऋतः) न्यायशील और तू ही (कविः) सर्वोपरि द्रष्टा है। हे (सम्-इधान) समान भाव से देदीप्यमान ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् ! (वेधसः) कर्त्ता, विद्वान्, (विप्रासः) कर्मण्य पुरुष (त्वाम् आविवासन्ति) यज्ञाग्निवत् तेरी ही सेवा करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि।
देवानां शर्मन् मम सन्तु सूरयः शत्रुषाहः स्वग्नयः ॥ ६ ॥

भा०—हे(शोचिष्ठ)अति तेजस्विन् ! तू (शोचा) तेज से (दीदिहि)

चमक। (स्तोत्रे विशे) स्तोता प्रजा को (मयः रास्व) सुख दे। (देवानां महान् असि) विद्वानों के बीच और गुणों में, तू महान् है। राजा चाहे कि (मम शर्मन्) मेरी शरण में, गृह में (शत्रु-साहः) शत्रुओं को पराजित करने वाले वीर, (सूरयः) विद्वान् और (सु-अग्नयः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष हों।

यथा चिद्वृद्धमतसमग्ने सञ्जूर्वसि क्षमि।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग् दुर्मन्मा कश्च वेनति॥ ७॥

भा०—(यथा चित्) जैसे अग्नि (क्षमि) पृथिवी पर (वृद्धम् अत-सम्) बड़े भारी लक्कड़ को भी जला देता है (एव) वैसे ही (अग्ने) तेजस्विन्! हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य! (क्षमि) भूमि पर (वृद्धम्) बढ़े हुए उसको अवश्य (दह) जला (यः) जो (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोही (दुर्मन्मा) दुष्ट चित्त वाला, (कः च वेनति) कोई भी यज्ञ करता, शोभा पाता, या अपने बाजे बजाता, या आदर चाहता है।

मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः॥ ८॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अतिबलशालिन्! तू (नः) हमें (रिपवे मर्त्ताय) शत्रु मनुष्य और (रक्षस्विने) दुष्ट पुरुषों वाले के हित (मा रीरधः) मत पीड़ित कर और तू (अघ-शंसाय मा रीरधः) पाप की शिक्षा देने वाले के अधीन मत कर। तू (अस्रेधद्भिः) अहिंसक, (तरणिभिः) संकटों से पार उतारने में समर्थ दयाशील (शिवेभिः) शान्तिकारक, कल्याण-कारी, (पायुभिः) पालनकर्त्ताओं द्वारा (पाहि) पालन कर।

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो॥ ९॥

भा०—हे (वसो) प्रजाओं वा शिष्य को बसाने वाले प्रजापते!

हे (ऊर्जाम्पते) अन्नों, बलों के पालक ! तू (नः) हमें (एकया गिरा पाहि) एक वेदवाणी से पालन कर । (उत द्वितीयया गिरा पाहि) और दूसरी वेदवाणी से पालन कर । (तिसृभिः गीर्भिः पाहि) तीनों वेद वाणियों से पालन कर । (चतसृभिः गीर्भिः पाहि) चारों वेद वाणियों से पालन कर।

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ १० ॥ ३३ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (विश्वस्माद् रक्षसः अराव्णः) सब प्रकार के दुष्ट और शत्रु से (पाहि) बचा और (नः) हमारी (वाजेषु) संग्रामों में (प्र अव स्म) अच्छी प्रकार रक्षा कर । हम (देवतातये) वीर आदि जनों के हितार्थ (त्वाम् इत् हि नेदिष्ठं) तुझको ही अति निकट का (आपिं) बन्धु जानकर (वृधे) वृद्धि के लिये (नक्षामहे) प्राप्त होते हैं । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (पावक) पवित्र करने हारे ! (नः) हमें (शंस्यं) प्रशंसनीय (वयोवृधं) आयु, बल का वर्धक (रयिम्) ऐश्वर्य (आ रास्व) सब ओर से प्राप्त करा । हे (उपमाते) अनुपम ! तू (नः) हमें (सुनीती) उत्तम नीति से (स्वयशस्तरम्) कीर्त्ति को अधिक बढ़ाने वाला, (पुरु-स्पृहं) सबको अच्छा लगने वाला धन (रास्व च) प्रदान भी कर।

येन वंसाम पृतनासु शर्धतस्तरन्तो अर्य आदिशः ।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः ॥ १२ ॥

भा०—(येन) जिस धन से हम (पृतनासु) संग्रामों में (आदिशः तरन्तः) दिशा उपदिशाओं तक पार करते हुए (शर्धतः) दुष्ट बलशाली

शत्रुओं को भी (वंसाम) नाश करें। हे (शचीवसो) शक्ति के धनी ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (प्रयसः वर्धं) अन्न सम्पदा और बल से बढ़ा और (वसुविदः धियः जिन्व) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले कर्मों की वृद्धि कर।

शिशा॑नो वृष॒भो य॑थाग्निः शृङ्गे॒ दवि॑ध्वत् ।
ति॒ग्मा अ॑स्य॒ हन॑वो॒ न प्र॑ति॒धृषे॑ सु॒जम्भः॒ सह॑सो य॒हुः ॥ १३ ॥

भा०—(यथा वृषभः) जैसे सांड (शृङ्गे शिशानः) सींग पैनाता हुआ (दविध्वत्) शिर चलाता है और जैसे (अग्निः) अग्नि अपने शिखर कंपाता है वैसे ही (शिशानः) बल को तीक्ष्ण करता हुआ (अग्निः) तेजस्वी पुरुष, (शृङ्गे) शत्रु-हनन के अस्त्र-शस्त्रों को कंपावे। (अस्य) इसकी (हनवः) हननकारिणी सेनाएं (तिग्माः) तीखी दाढ़ों के तुल्य (न प्रति-धृषे) कभी पराजित होने के लिये न हों, वह (सुजम्भः) दुष्टों को उत्तम रीति से दण्ड देने में समर्थ (सहसः यहुः) सैन्य को सुसंगत करने में समर्थ हो।

न॒हि ते॑ अग्ने वृषभ प्रति॒धृषे॒ जम्भा॑सो॒ यद्वि॒तिष्ठ॑से ।
स त्वं नो॑ होतः॒ सुहु॑तं ह॒विष्कृ॑धि॒ वंस्वा॑ नो॒ वार्या॑ पु॒रु ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने वृषभ) तेजस्विन् ! बलशालिन् ! (यद् वि तिष्ठसे) जब तू शत्रु के विजयार्थ खड़ा हो, तब (ते जम्भासः) दाढ़ों के समान शत्रु को कुचल डालने वाले तेरे शस्त्रादि सैन्य (नहि प्रति-धृषे) कभी हारने के लिये न हों। (सः त्वं) वह तू (नः) हमारे हे (होतः) दातः (सुहुतं हविः कृधि) उत्तम रीति से दिये करादि को सफल कर। (नः पुरुवार्या वंस्व) हमें बहुत उत्तम ऐश्वर्य, शत्रुवारक साधन दे।

शेषे॒ वने॑षु मा॒त्रोः सं त्वा॒ मर्ता॑स इन्धते ।
अत॑न्द्रो ह॒व्या व॑हसि हवि॒ष्कृत॒ आदिद्दे॒वेषु॑ राज॑सि ॥१५॥३४॥

भा०—हे राजन्! तू (वनेषु मात्रोः) दो उत्पादक अरणियों में अग्नि के समान (वनेषु) सेवनीय ऐश्वर्यों और (मात्रोः) माता-पिता रूप विद्वान्-अविद्वान् प्रजाओं में बालकवत् (शेषे) सुख से रह। (त्वा मर्त्तासः सम् इन्धते) तुझे शत्रुमारक वीर जन तेजस्वी बनाते हैं। तू (हविः-कृवतः) उत्तम अन्न उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के दिये करादि को (अतन्द्रः) अनालसी होकर (वहसि) धारण कर (आत् इत्) और विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच, किरणों में सूर्यवत् (राजसि) प्रकाशित हो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम्।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति॥ १६॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (सप्त होतारः) सात अधिकाधिक बल आदि देने वाले प्रकृतिगण (सु-त्यजम्) उत्तम दाता (अह्रयम्) अक्षीण, (तं त्वा) उस तुझको (ईडते इत्) चाहते, तेरी प्रतिष्ठा करते हैं। वह तू (शोचिषा) तेज से और (तपसा) प्रताप से (अद्रिं) प्रबल शत्रु सैन्य को (भिनत्सि) मेघ को सूर्य के समान भेदन करता है। हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (जनान् अति प्र तिष्ठ) सब जनों से बढ़ कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर।

अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम्॥ १७॥

भा०—हे (वृक्त-बर्हिषः) कुशाओं के समान शत्रु को छिन्न-भिन्न करने वाले पुरुषो! हम लोग (वः) आप में से (अग्निम्-अग्निम्) प्रत्येक अग्नि के तुल्य तेजस्वी और (अध्रिगुम्) भूमि पर का शासक, आज्ञापक (हुवेम) स्वीकार करें। हम (हितप्रयसः) अन्नादि-धारक होकर (शश्वतीषु) बहुत सी प्रजाओं में (चर्षणीनाम्) विद्वान् मनुष्यों को वृत्ति देने वाले (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को ही (आ हुवेम) आदर से स्वीकार करें।

केतेन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! यह प्रजाजन (चिकित्वना) ज्ञानयुक्त विद्वान् द्वारा (केतेन) ज्ञानपूर्वक (तुभ्यम्) तेरे ही (सु-सामनि) उत्तम समान भाव से युक्त, निष्पक्षपात (शर्मन्) गृहवत् राज्य में (इषण्या) इच्छापूर्वक (नः) हमें हमारी रक्षा के लिये (पुरु-रूपं) नाना प्रकार का (नेदिष्ठं) अति समीपतम, प्राप्य (वाजं) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा ।

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जरितः) उपदेश करने हारे ! हे (देव) दानशील ! तू (रक्षसः) दुष्टों को (तेपानः) पीड़ित करता हुआ, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक है । तू (अप्रोषिवान्) कभी प्रवास में न जाने वाले (गृह-पतिः) गृहस्वामी के समान (दुरोणयुः) गृहवत् राष्ट्र को दुःख से प्राप्त होने योग्य उत्तम पद की अभिलाषा करने वाला और (दिवः महान् पायुः), तेज और भूमि का बड़ा पालक (असि) है ।

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ॥२०॥३५॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र के बसाने वाले राजन् ! (नः) हममें (रक्षः) नाशकारी उपद्रवी (मा आवेशीत) न आ घुसे । (यातुमा-वताम्) पीड़ादायक दुष्ट रोगों और पुरुषों के कारण (यातुः नः मा आवेशीत) हममें पीड़ा, उनकी यातना भी न प्रवेश करे । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (अनिराम् क्षुधम्) बिना अन्न की भूखमरी और (रक्षस्विनः) दुष्टों को (परः गव्यूतिम्) हमसे कोसों (अप सेध) दूर कर । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[६१]

भर्गः प्रागाथः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ११, १५ निचृद् बृहती । ३, ९ विराड् बृहती । ७, १७ पादनिचृद् बृहती । १३ बृहती । २, ४, १०, पंक्तिः । ६, १४, १६ विराट् पंक्तिः । ८, १२, १८ निचृत् पंक्तिः ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) तत्वदर्शी पुरुष (नः) हमारे (इदं) इस (उभयं) पक्ष विपक्ष दोनों प्रकार के (वचः) वचन को (अर्वाक) सन्मुख (शृणवत् च) सुने, (सत्राच्या धिया) सत्य के निर्धारक विवेक बुद्धि से (सोमपीतये) राष्ट्र के पालनार्थ (मघवा) पूज्य पद पर स्थिर होकर (शविष्ठः) सबसे अधिक बली होकर (नः आगमत्) हमें प्राप्त हो।

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

भा०—(तं) उस (वृषभं) 'वृष' अर्थात् धर्म, राष्ट्र के प्रबन्ध-सामर्थ्य से सामर्थ्यवान् (स्वराजं) अपने बल से तेजस्वी, स्वयं राजा, बलशाली पुरुष को (हि ओजसे) उसके बल पराक्रम के कारण (धिषणे) पृथिवी आकाशवत् शास्य-शासक वर्गों की दोनों समितियां (निष्टतक्षतुः) राजा को बनावें और, हे राजन्! (हि) क्योंकि (ते मनः) तेरा चित्त भी (सोम-कामं) राष्ट्रैश्वर्य तथा अभिषेक-योग्य पद चाहता है, इस कारण तू (उपमानां) उपमान-योग्य पुरुषों में (प्रथमः) श्रेष्ठ होकर (नि षीदसि) मुख्यासन पर विराज।

आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-वसो) बहुत प्रजा को बसाने वाले! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! तू (अन्धसः सुतस्य) अन्न और ऐश्वर्य से (आ वृषस्व) प्रजा पर सुखों का वर्षक और बलवान् हो। हे (हरिवः) अश्वों और मनुष्यों के राजन्! हम (त्वा) तुझको (पृत्सु) संग्रामों में (सासहिम्) विजयी, (अधृष्टम्) अपराजित और (दधृष्वणिम्) शत्रुओं के पराजित करने हारा (हि) ही (विद्म) जानते हैं।

अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन्! तू (क्रत्वा) बुद्धि और कर्म के सामर्थ्य से (यथा वशः) जैसे भी चाहता है, हे (मघवन्) पूजित विभूति-सम्पन्न! हे (अप्रामि-सत्य) सत्यरूप महाव्रत का नाश न करने हारे! (तथा इत् असत्) वैसा ही होता है। हे (शिप्रिन्) मुकुटधारिन्! सत्यपालक! हे (अद्रिवः) बलशालिन्! हम लोग (मक्षु चित् यन्तः) बहुत शीघ्रता से आगे बढ़ते हुए (अवसा) ज्ञान और रक्षा, बल से (तव वाजं) तेरा ज्ञान, बल, ऐश्वर्य (सनेम) प्राप्त करें।

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—हे (शचीपते) सत्य वाणी और शक्ति के पालक! हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन्! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त ज्ञानों और बलों से (सु शग्धि उ) उत्तम रीति से सब कार्य करने में समर्थ है। (भगं न) ऐश्वर्यवान् के समान ही (यशसं) यशस्वी (वसु-विदम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला जान कर (हि) ही हे (शूर) शूरवीर! (त्वा अनु चरामसि) हम तेरे कहे अनुसार आचरण करें, तेरा अनुगमन करें। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ ६ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! हे व्यवहारज्ञ! तू (पौरः) बहुतों का स्वामी, (अश्वस्य गवाम् पुरुकृत्) अश्वों और गौ-आदि सम्पदा को बहुत संख्या में करने में समर्थ (असि) है। तू (हिरण्ययः उत्सः) सुवर्ण का उद्गम स्थान, निकास वा खान के समान है। (त्वे) तेरे (दानं) दिये ऐश्वर्य का (नकिः हि परि मर्धिषत्) कोई भी नाश नहीं कर सकता। मैं (यत्-यत् यामि) जिस २ पदार्थ की भी याचना करूं, तू (तत् आभर) वह २ पदार्थ मुझे दे।

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥

भा०—हे (मघवन्) धन के स्वामिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (त्वं हि एहि) तू अवश्य आ और (चेरवे वसुत्तये) सेवा, परिचर्या करने वाले परिजन को जीवनोपयोगी धन प्रदान करने के लिये और (अश्वम् इष्टये) अश्व देने के लिये (उत् वावृषस्व) सर्वोत्तम दानशील, उदार हो।

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा) अनेक सैकड़ों और सहस्रों, अश्वादि के यूथ, गौ, (दानाय मंहसे) दान के रूप में दे। हम लोग (अवसे) रक्षा के निमित्त (विप्रवचसाः) उत्तम वचन बोलते और (गायन्तः) स्तुति गान करते हुए (पुरन्दरं) शत्रु नगर को तोड़ने वाले पुरुष को (इन्द्रं आ चकृम) ऐश्वर्य-युक्त करें।

अविप्रो वा यदविधद् विप्रो वेन्द्र ते वचः।
स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म-सामर्थ्यों से सम्पन्न! हे (प्राचा-मन्यो) सर्वोत्कृष्ट ज्ञानशालिन्! हे (अहं-सनं)

आत्मसन्मान के भाव को देने हारे ! (अविप्रः वा) चाहे अबुद्धिमान् हो, चाहे (विप्रः) विद्वान् पुरुष भी (ते वचः अविधत्) तेरे वचन अनुसार कार्य करता है, वह (त्वाया) तेरे अधीन (प्र ममन्दत्) बहुत सुख पाता है।

उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम्।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हे (वसूयवः) धनाभिलाषी जनो ! (यदि) जब २ (वसुपतिं) ऐश्वर्यों और जीवों के पालक, (शतक्रतुं) अनन्त ज्ञानों, कर्म सामर्थ्यों से पूर्ण, (इन्द्रं) ऐश्वर्यप्रद स्वामी को हम (स्तोमैः हवामहे) स्तुति वचनों से प्रार्थना करें (उग्र-बाहुः) बलवान् बाहु वाला, (म्रक्ष-कृत्वा) शत्रुओं का नाशक, (पुरन्दरः) शत्रुपुरों को तोड़ने में समर्थ, (मे हवम् शृणवत्) मेरे स्तुति-वचन श्रवण करे। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

न पापासो मनामहे नारायासो न जळ्हवः।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥ ११ ॥

भा०—(यत् इत् नु) जब २ भी हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (सखायं) सबके मित्र (वृषणं) बलवान् पुरुष को (सुते) ऐश्वर्य वा शासन में (सचा कृणवामहे) अपने हाथ लेते हैं, तब २ हम (पापासः न मनामहे) पापी होकर विचार नहीं करते और (अरायासः न) तब हम दूसरे का अधिकार न देने वाले होकर भी नहीं विचारते, (न जळ्हवः) और न ज्वलन या प्रकाश से रहित होते हैं।

उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम्।
वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् इत् उ) जिसको प्रजाजन (वाजिनं) बलवान् (नशत्) पावें और जो (रथीतमः) सबसे उत्तम महारथी, (सनिता) दानशील

हो और जिसको हम (भृमं चित्) भरण पोषण में समर्थ (वेद) पावें उस (सासहिम्) शत्रुपराजयकारी, (उग्रम्) दण्डधारी, (ऋणकातिम्) धनोत्पादक, (आदाभ्यम्) अहिंसनीय पुरुष को हम (पृतनासु) संग्रामों, सेनाओं पर (युयुज्म) नियुक्त करें।

यत॑ इन्द्र भया॑महे तत॑ो नो अभ॑यं कृधि।
मघ॑वञ्छ॒ग्धि तव॒ तन्न॑ ऊ॒तिभि॒र्वि द्विषो॒ वि मृधो॑ जहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! अन्नादि दातः ! हम लोग (यतः भयामहे) जिस कारण से भी भय करें तू (ततः नः अभयं कृधि) हमें उससे भय रहित कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (तव) अपना (नः) हमें (तत् शग्धि) वह सामर्थ्य दे और (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी शक्तियों से (द्विषः) शत्रुओं और (मृधः वि जहि) हिंसकों को दण्डित कर।

त्वं हि रा॑धसस्पते॒ राध॑सो म॒हः क्षय॒स्यासि॑ विध॒तः।
तं त्वा॑ व॒यं म॑घवन्निन्द्र गिर्वणः सु॒ताव॑न्तो हवामहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्ययुक्त ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना योग्य ! हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! ऐश्वर्य देने हारे। (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न, अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त होकर (त्वा) तुझसे (हवामहे) याचना करते हैं, हे (राधसः पते) धन के पालक स्वामिन् ! (त्वं हि) तू अवश्य (विधतः) कार्य करने वाले, सेवक के (महः) बड़े भारी, (क्षयस्य) ऐश्वर्य और (राधसः) धन का बढ़ाने और देने वाला है।

इन्द्र॑ स्पळु॒त वृ॑त्र॒हा प॑र॒स्पा नो॒ वरे॑ण्यः।
स नो॑ रक्षिषच्चर॒मं स म॑ध्य॒मं स प॒श्चात्पा॑तु नः पु॒रः ॥१५॥३८॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु नाशक, ऐश्वर्यों का दाता, प्रभु (स्पट्) सर्वद्रष्टा, (वृत्रहा) विघ्नों का नाशक (परः-पाः) परम पालक और (नः वरेण्यः) हममें सर्वश्रेष्ठ वरण योग्य है। (सः) वह (नः) हममें से

(चरमं) अन्तिम को, (सः मध्यमं) वह बीच को (सः पश्चात् पुरः नः पातु) वह हमारे पीछे और आगे से भी हमें बचा। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः॥

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः॥ १६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (त्वं) तु (नः पश्चात् अधरात् उत्तरात् पुरः विश्वतः निपाहि) हमारी पीछे, नीचे, ऊपर, आगे से और सब ओर से रक्षा कर। (अस्मत् दैव्यं भयम् आरे कृणुहि) हमसे विजयेच्छुक व्यवहार-चतुरादि जनों से होने वाला भय दूर कर और (अदेवीः हेतीः आरे कृणुहि) अविद्वान्, दुष्टजनों के शस्त्रों को भी दूर कर।

अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः॥१७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तु (नः) हमें (अद्य अद्य) आज, आज कहाने वाले सब दिनों और (श्वः श्वः) कल कल, कल कहाने वाले सब दिनों में और (परे च) परले दिनों में भी (त्रास्व) रक्षा कर। हे (सत्पते) सज्जनों के पालक! तु (नः जरितॄन्) प्रार्थना स्तुति करने वाले हम लोगों को (विश्वा च अहा) सब दिनों और (दिवा नक्तं च) दिन और रात, प्रकाश और अंधेरे में भी (रक्षिषः) रक्षा कर।

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः॥१८॥३९॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनन्त कर्म और प्रज्ञा से युक्त स्वामिन्! (या) जो दो (ते बाहू) तेरी बाहुएं, (वज्रं नि मिमिक्षतुः) शस्त्र को धारण करती हैं (उभा) वे दोनों (वृषणा) बलवान् हों। (वीर्याय) वीरकर्म सम्पादन करने के लिये (शूरः) शूरवीर पुरुष (प्रभङ्गी) शत्रु को अच्छी प्रकार तोड़ देने वाला, (मघवा) धनाढ्य, (तुवीमघः) बहुत

धनसम्पन्न और (सम्मिश्लः) सबसे अच्छी प्रकार मिलने जुलने वाला हो। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः॥

[६२]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ६, १०, ११ निचृत् पंक्तिः। २, ५ विराट् पंक्तिः। ४, १२ पंक्तिः। ७ निचृद् बृहती। ८, ९ बृहती। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

प्रो अ॑स्मा॒ उप॑स्तुतिं॒ भर॑ता॒ यज्जुजो॑षति। उ॒क्थैरिन्द्र॑स्य॒ माहि॑नं॒ वयो॑ वर्धन्ति सो॒मिनो॑ भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑॥ १॥

भा०—(यत् जुजोषति) जो प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है (अस्मै) उसकी (उप स्तुतिं प्र भरत) उत्तम स्तुति करो। (सोमिनः) वीर्य पालक ब्रह्मचारी लोग ही (उक्थैः) उत्तम वचनों द्वारा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् स्वामी के (माहिनं वयः वर्धन्ति) बड़े बल को बढ़ा देते हैं। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) उस परमेश्वर के दिये सब दान सुखकारी होते हैं।

अ॒युजो॒ अस॑मो॒ नृभि॒रेकः॑ कृ॒ष्टीर॒यास्यः॑। पू॒र्वीरति॒ प्र वा॑वृधे॒ विश्वा॑ जा॒तान्योज॑सा भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑॥ २॥

भा०—वह परमेश्वर (एकः) अद्वितीय, (अयुजः) अन्य सहायक के बिना, (असमः) अपने समान से रहित, (अयास्यः) अविनाशी, कभी न थकने वाला है। वह (नृभिः) जीवों द्वारा (पूर्वीः कृष्टीः) बहुत-सी सनातन प्रजाओं को (प्र वावृधे) बढ़ाता है और (विश्वा जातानि) सभी प्राणियों को (ओजसा) पराक्रम से (इति प्र वावृधे) इसी प्रकार बढ़ाता रहता है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के दान सुखकारी होते हैं।

अहि॑तेन चि॒दर्व॑ता जी॒रदा॑नुः सिषासति। प्र॒वाच्य॑मिन्द्र॒ तत्तव॑ वी॒र्या॑णि करिष्य॒तो भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑॥ ३॥

भा०—यह ईश्वर (जीर-दानुः) जीवन दाता है। वह (अहितेन अर्वता चित्) बिना बन्धे अश्व लगाये ही (सिपासति) सबको चलाता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (करिष्यतः) जगत् बनाने वाले (तव) तेरे ये सब (वीर्याणि) सामर्थ्य हैं। (तत् तव प्रवाच्यम्) यह सब तेरा उत्तम रीति से स्तुति-योग्य है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के सब दान सुखकारी हैं।

आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना। येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ ४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (आ याहि) आ। (ते) तेरे (ब्रह्माणि) वेदवचनों को हम (वर्धना) अपने को बढ़ाने वाला (कृणवाम) करें। हे (शविष्ठ) बलशालिन्! (येभिः) जिनसे तू (इह) इस लोक में (श्रवस्यते) ज्ञान के इच्छुक जीव के लाभार्थ (भद्रम् चाकनः) कल्याण चाहता है उन वेदों का हम अभ्यास करें। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) प्रभु के दान सुखकारी हैं।

धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम्। तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ ५॥

भा०—(तीव्रैः सोमैः) बलकारक साधन से (सपर्यतः) सेवा करते हुए (नमोभिः प्रतिभूषतः) दुष्ट-दमनकारी उपायों से प्रतिपक्षी का साम्मुख्य करने वाले (धृषतः) प्रतिपक्ष का पराजय करने वाले के (मनः चित्) मन को भी, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत् त्वम्) जो तू (धृषतः कृणोषि), सहनशील कर देता है यह तेरा ही सामर्थ्य है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के दान सुखप्रद होते हैं।

अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः। जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ ६॥ ४०॥

भा०—जैसे (मानुषः) पियासा मनुष्य (अवतान् अव चष्टे) कुओं के नीचे झांकता है और (सोमिनः दक्षस्य जुष्ट्वी, युजं सखायं कृणुते) जल-कूप के रक्षक पुरुष को प्रेम से अपना साथी, मित्र बना लेता है वैसे ही (ऋचीषमः) स्तुति के अनुरूप यथार्थ दयाशील प्रभु (अवतान् अव चष्टे) रक्षा-योग्य जनों को दया से देखता है और (सोमिनः दक्षस्य) वीर्यवान् कर्म करने में समर्थ पुरुष को (जुष्ट्वी) प्रेम करके अपना (युजं सखायं कृणुते) संगी, मित्र बना लेता है। (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्) इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

विश्वे॑ त इन्द्र वी॒र्यं॑ दे॒वा अनु॒ क्रतुं॑ ददुः ।
भुवो॒ विश्व॑स्य॒ गोप॑तिः पुरुष्टुत भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वाणी द्वारा ज्ञान देने हारे ! (देवाः) विद्याओं के इच्छुक जन (ते वीर्यम् अनु, ते क्रतुम् अनु) तेरे बल और ज्ञान के अनुसार (अनु ददुः) स्वयं बल और ज्ञान धारण करें, अन्यों को भी दें, हे (पुरु-स्तुत) बहुत जीवों के उपदेष्टः ! तू ही (विश्वस्य गोपतिः भुवः) समस्त वाणियों का पालक है। (भद्रः० इत्यादि पूर्ववत्)

गृ॒णे तदि॑न्द्र ते॒ शव॑ उप॒मं दे॒वता॑तये ।
यद्धंसि॑ वृ॒त्रमोज॑सा शचीपते भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के स्वामिन् ! (देवतातये) दानशील, मनुष्यों के हितार्थ, (ते) तेरे (उपमं शवः) आदर्श बल की (गृणे) स्तुति करता हूं। (यत्) जिस (ओजसा) पराक्रम से तू (वृत्रम्) अज्ञान, वा बढ़ते शत्रु को (हंसि) नष्ट करता है।

सम॑नेव वपुष्य॒तः कृ॒णव॒न्मानु॑षा यु॒गा ।
वि॒दे तदिन्द्र॒श्चेत॑न॒मध॑ श्रु॒तो भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(समना-इव) समान चित्त वाली स्त्री जैसे (वपुष्यतः

मानुषा युगा कृणवत्) उत्तम-शरीर पुरुष को जोड़ा बना देती है वैसे ही (इन्द्रः) वह प्रभु (वपुष्यतः) शरीर-धारण की इच्छा वाले (मानुषा युगा कृणवत्) मनुष्यों के जोड़े बनाता है। वही (इन्द्रः) प्रभु (तत् चेतनं) उस चेतन जीव को (विदे) जानता, वा शरीर में प्राप्त कराता है, (अध) और (श्रुतः) वेद में गुरुजनों द्वारा श्रवण किया जाता है। (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्)

उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुम्।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१०॥

भा०—हे (भूरि-गो) बहुत भूमियों, वाणियों के स्वामिन्! हे (मघवन्) ज्ञानादि-सम्पन्न, प्रभो! गुरो! हे (इन्द्र) वाणी के मर्म-भेदक! शत्रुभेदक! (ते जातम् शवः) तेरे प्रकट बल और ज्ञान को लोग (भूरि उत् वावृधुः) उत्तम रीति से बढ़ावें। (उत् त्वाम्) तुझे भी बढ़ावें। (तव क्रतुम् उत्) तेरे कर्म और ज्ञान की भी वृद्धि करें। (तव शर्मणि) तेरी शरण में रहें। (भद्राः० पूर्ववत्)

अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥११॥

भा०—हे (वृत्र-हन्), शत्रु नाशक! (अहं त्वं च) मैं और तू दोनों (सनिभ्यः आ) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (सं युज्याव) परस्पर मिल जावें। हे (अद्रिवः) बल-सम्पन्न! हे (शूर) दुष्टनाशक! (अरातिवा चित्) अदानशील भी (नौ अनुमंसते) हम दोनों को मानेगा। (भद्राः० पूर्ववत्)

सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम्। महा असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१२॥४१॥

भा०—(वयम्) हम (तं) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (सत्यम्

इत् वा स्तवाम) सत्य सत्य ही स्तुति करें (अनृतं न) असत्य कभी न करें। (असुन्वतः) उपासना न करने वाले का (महान् वधः) बड़ा नाश होता है। (सुन्वतः भूरि ज्योतींषि) उपासक को बहुत तेजोमय ज्ञान प्राप्त होते हैं। (भद्रा० पूर्ववत्) ॥ इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६३]

प्रगाथः काण्वः ऋषिः ॥ १—११ इन्द्र। १२ देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराडनुष्टुप्। ५ निचृदनुष्टुप्। २, ३, ६ विराड् गायत्री। ८,९,११ निचृद् गायत्री। १० गायत्री। १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धियं आनजे ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (महानां) बड़ों का भी बड़ा (पूर्व्यः), पूज्य, (वेनः) तेजस्वी सूर्यवत् (क्रतुभिः) उत्तम प्रज्ञाओं द्वारा (आनजे) हमें प्रेरित करता वा प्राप्त होता है (यस्य धियः) जिसकी मतियों और कर्मों को (देवेषु) विद्या के इच्छुक मनुष्यों में (पिता मनुः) पालक, मननशील, विद्वान् वा राजा भी (द्वारा आनजे) द्वारों के समान प्रकट करे।

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः।
उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अद्रयः) मेघ (सोम-पृष्ठासः) जल-वर्षणकारी होकर भी (दिवः मानं न उत् सदन्ति) सूर्य की थाह नहीं पाते, वैसे ही (सोम-पृष्ठासः) अभिषिक्त राजा वा नायक को अपनी पीठ पर रखने वाले, तदधीन (अद्रयः) सेना के जन (दिवः मानं न उत् सदन्) तेजस्वी राजा के मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो सकते। ऐसे ही (सोम-पृष्ठासः) सर्वोत्पादक प्रभु के भक्त (अद्रयः) अविनाशी, धर्म मेघस्थ योगीजन वा

'सोम', वीर्य द्वारा पुष्ट, ऊर्ध्वरेता जन (दिवः मानं) ज्ञानमय प्रभु के ज्ञान, वेद को (न उत् सदन्) नहीं छोड़ सकते। वह प्रभु का ज्ञान (उक्था) वचन-योग्य उत्तम मन्त्र (ब्रह्म च) महान् वेद (शंस्या) स्तुति करने, उपदेश देने योग्य होते हैं।

स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप।
स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (विद्वान्) ज्ञानवान् प्रभु आचार्य के समान (इन्द्रः) ज्ञान को साक्षात् करने वाला, प्रभु (अंगिरोभ्यः) अंगारों के तुल्य तेजस्वी ज्ञानी पुरुषों को (गाः अप अवृणोत्) वेद वाणियों का प्रकाश करता है। (अस्य तत्) उसके उस (पौंस्यं) परम पुरुष-रूप की मैं (स्तुषे) स्तुति करूं।

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ज्ञान प्रकाशक प्रभु, (प्रत्नथा) पूर्व कल्पों में भी (कवि-वृधः) विद्वानों को बढ़ाने वाला, (वाकस्य वक्षणिः) प्रवचन योग्य वेद को धारण करने और पहुँचाने वाला है। वही (शिवः) कल्याणकारी (अर्कस्य होमनि) अर्चनीय वेद मन्त्र के उच्चारण वा होम-काल में (अस्मत्रा अवसे) हमें रक्षा करने के लिये (आ गन्तु) प्राप्त हो।

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यज्यवः) तेरे उपासक, यज्ञशील, (अर्काः आत् उ नु) अर्चना करने हारे जन भी (वरस्य ते) वरण करने, चाहने योग्य तेरे (क्रतुम् अनु) वेद ज्ञान के अनुसार (स्वाहा) उत्तम वाणी, आहुति द्वारा (गोत्रस्य) वाणियों के रक्षक तेरा ही (दावने) दान प्राप्त करने के लिये (श्वात्रम्) शीघ्र ही (ते अनूषत) तेरी स्तुति करें।

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च ।
यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥ ४२ ॥

भा०—(अर्काः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् (यं) जिस परमेश्वर को (अध्वरं) अविनाशी (विदुः) जानते हैं उसी (इन्द्रे) प्रभु में (विश्वानि वीर्याणि) समस्त वीर्य और समस्त (कृतानि) बने पदार्थ और किये (कर्त्वानि) और करने योग्य कार्य आश्रित जानते हैं । इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद् बर्हणा विपो३ऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥

भा०—(पाञ्चजन्यया) पांचों जनों से बनी, (विशा) प्रजा (यत् इन्द्रे घोषाः असृक्षत) जिस ईश्वर वा राजा-विषयक स्तुतियें करती हैं वही (बर्हणा) बड़े सामर्थ्य से जगत् को विस्तृत करता है, (सः) वही (अर्यः) स्वामी (विपः मानस्य क्षयः) विद्वान् की पूजा का आधार होता है।

इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या ।
प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥

भा०—(इयम् ते अनु-स्तुतिः) यह तेरी स्तुति तेरे अनुरूप है, क्योंकि तू ही (तानि पौंस्या चकृषे) वे शक्तिमान् पुरुष के करने योग्य बल के कार्य करता है और तू (चक्रस्य) जगत् के इस महान् चक्र, ब्रह्माण्ड के (वर्त्तनिं) निरन्तर भ्रमण कार्य को (प्र अवः) अच्छी प्रकार कराता है, उसको रथ-चक्र या यन्त्र-चक्र की तरह गति दे रहा है ।

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे ।
यवं न पश्व आ ददे ॥ ९ ॥

भा०—(वृष्णः व्योदने) बरसते मेघ से उत्पन्न अन्न पर जैसे जीव संसार जीवन के लिये कदम बढ़ाता है वैसे ही (अस्य वृष्णः) इस सुख-

वर्षक प्रभु के (वि-मोदने) विशेष दयार्द्र भाव से पूर्ण रसवत् सुख में यह जीव लोक (जीवसे) जीवन प्राप्त करने के लिये (उरु क्रमिष्ट) बहुत कदम बढ़ावे और (पश्वः यवं न) पशु जैसे जौ का भोजन लेते हैं वैसे ही ये जीवगण ब्रह्मरूप सुखद, रसस्वरूप को (आददे) प्राप्त करते हैं।

तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः। स्याम मरुत्वतो वृधे ।१०

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! हम (दक्ष-पितरः) अन्न और प्रज्ञा के पालक होकर और (अवस्यवः) ज्ञानादि के इच्छुक होकर (युष्माभिः) तुम लोगों के साथ ही (तत्) उस परम ब्रह्म को (दधानाः) धारण करते हुये (मरुत्वतः) प्राणों वाले देह वा आत्मा की (वृधे स्याम) वृद्धि में लगे रहें।

बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः।
जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर! (बट्) सत्य ही, हम (ऋत्वियाय) ऋतु ऋतु में आने वाले (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने के लिये हम (ऋक्वभिः) ऋचाओं, अर्चनादि सत्कारों से (नोनुमः) स्तुति करते हैं, (त्वया युजा) तुझे सहयोगी बना कर हम (जेषाम) विजय करें।

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः १२।४३

भा०—(यः) जो (शंसते) उत्तम प्रशंसा करते हुए और (स्तुवते) स्तुति करते हुए मनुष्य के लिये (पज्रः) दृढ़ रूप से (धायि) स्थित है और (रुद्राः) गर्जना करने वाले (मेहना) वर्षाकारी, (पर्वतासः) मेघों के समान (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले (मेहनाः) मेरा कुछ स्वार्थ नहीं, ऐसी त्याग-भावना वाले, (पर्वतासः) पर्वतवत् अचल, प्रजापालक जन (वृत्र-हत्ये) दुष्टों के हनन और (भर-हूतौ) यज्ञ के आहुति वा पोषण-

कार्य में योग देने के समय (सजोषाः) मिल कर (देवाः) विद्वान् जन (अस्मान्) हमें (अवन्तु) रक्षा करें। इति त्रिचत्वारिंशो वर्गः॥

[६४]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ७, ९ निचृद् गायत्री। ३ आर्ची स्वराड् गायत्री। ४ विराड् गायत्री। २, ६, ८, १०—१२ गायत्री। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
अव ब्रह्मद्विषो जहि॥ १॥

भा०—(स्तोमाः) वेद के सूक्त और उत्तम स्तुति-वचन (त्वा उत् मन्दन्तु) तुझे अति प्रसन्न करें। हे (अद्रिवः) बलवन्! तू (राधः कृणुष्व) ऐश्वर्य सम्पादन कर और (ब्रह्म-द्विषः) वेद, ईश्वर और अन्न से द्वेष करने वालों को (अव जहि) दण्डित कर।

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि।
नहि त्वा कश्चन प्रति॥ २॥

भा०—(पदा) पैर से (पणीन् अराधसः) दान-पुण्यार्थ, धन के अदाता केवल धनव्यवहारियों को (नि बाधस्व) पीड़ित कर। (महान् असि) तू बड़ा है। (प्रति कश्चन नहि) तेरे मुकाबले का और दूसरा नहीं है। राजा सब धन-व्यवहारियों पर करादि दण्ड लगावे, जो राज-कर वा धर्मकर न दे उसे दण्डित करे, उसके व्यवहार में बाधा करे।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्। त्वं राजा जनानाम्॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्वम्) तू (सुतानाम्) अभिषेक प्राप्त पुरुषों का और (त्वम् असुतानां ईशिषे) अनभिषिक्तों का भी स्वामी है, (त्वं जनानां राजा) तू सब मनुष्यों का राजा है।

एहि प्रेहि क्षयो दिव्या३ घोषंश्चर्षणीनाम् ।
ओभे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन् ! (आ इहि) आ । (क्षयः प्र इहि) अच्छी प्रकार अपने निवासस्थान या ऐश्वर्यपद को प्राप्त हो, (चर्षणीनाम्) प्रजाओं के बीच (दिवि) भूमि या आकाश में (आघोषन्) घोषणा करता हुआ, (उभे रोदसी) दोनों लोकों को (आ पृणासि) पूर्ण कर ।

त्वं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥ ५ ॥

भा०—जैसे सूर्य या विद्युत् (पर्वतं चित् रुजति) मेघ को छिन्न-भिन्न करता है, वैसे ही हे ज्ञानशालिन् ! तू भी (त्वं) उस (पर्वतं) नाना पौरुओं से युक्त (गिरिं) ज्ञानोपदेशक (शत-वन्तं सहस्रिणं) सौ और हजार अध्यायों वा सूक्तादि से युक्त वेद को (स्तोतृभ्यः) यथार्थ वक्ताजनों के लिये (रुरोजिथ) पृथक् २ तोड़ २ कर व्याख्या कर ।

वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे ।
अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (सुते) ऐश्वर्ययुक्त अभिषेचनीय पद के लिये, (त्वा) तुझे (वयम् उ) हम (दिवा नक्तम्) दिन रात (हवामहे) प्रार्थना करते हैं (अस्माकं कामम् आपृण) हमारी कामना को पूर्ण कर । इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

क्व१ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ७ ॥

भा०—(स्यः) वह (वृषभः) सुखों का वर्षण करने वाला, (युवा) बलवान्, (तुविग्रीवः) दृढ़, बलशाली गर्दन वाला, भार उठाने में समर्थ, (अनानतः) कभी न झुकने वाला (क्व) कहां है (कः ब्रह्मा) कौन ब्रह्मवेत्ता, विद्वान् है जो (तं सपर्यति) उसकी पूजा करता है ।

कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति ।
इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥

भा०—(वृषा) सुखों का वर्षक, वह प्रभु (कस्य स्वित् सवनं) किस की उपासना को (जुजुष्वान् अव गच्छति) प्रेम से युक्त होकर स्वीकार करता है, (कः उ स्वित्) वह कौन सा पुरुष है जो (इन्द्रं आचके) उस परमैश्वर्यप्रद को चाहता है। ऐसा कोई ही विरला है।

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या ।
उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्ननाशक! (ते दाना) तेरे दान (कं असक्षत) कैसे व्यक्ति को प्राप्त होते हैं? (कं सुवीर्या) उत्तम बल किस को मिलते हैं? (क उ स्वित्) कौन ऐसा है जो (अन्तमः) तेरे अति पास है?

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते ।
तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १० ॥

भा०—(मानुषे जने) मननशील जनों में (ते) तेरे लिये (पुरुषु) इन्द्रियों में ज्ञान के समान (सोमः सूयते) सोम, ऐश्वर्यप्रद का अभिषेक किया जाता है, तू (प्र द्रव) उत्तम मार्ग से चल और (इहि) प्राप्त हो और (आ पिब) ओषधि रसवत् उपभोग और पालन कर।

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः ।
आर्जीकीये मदिन्तमः ॥ ११ ॥

भा०—(अयं) यह तेरा अभिषेक, हे राजन् (आर्जीकीये), सरल धर्ममार्ग में वर्त्तमान (शर्यणावति) शर अर्थात् बाण धनुषादि में कुशल जनों से समृद्ध स्थान में (सु-सोमायां) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त वा जल-अन्न से समृद्ध भूमि के ऊपर (प्रियः) प्रिय और (मदिन्तमः) अतिहर्षजनक हो। *

* सरल, सम उत्तम जलयुक्त शरकाण्ड वाली भूमि में उत्पन्न

तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये ।
एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥ ४५ ॥

भा०—(अद्य) आज हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (आ इहि) आ । (तम् चारुं) उस उत्तम वा चरण अर्थात् फल रूप में उपभोग योग्य ऐश्वर्य पद को (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्ति के लिये और (घृष्वये मदाय) शत्रु-पराजयकारी, आनन्द लाभ के लिये (द्रव) प्राप्त हो और (आ पिब) पालन और उपभोग कर । इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६५]

प्रागाथः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९, ११, १२ निचृद् गायत्री । ३, ४ गायत्री । ७, ८, १० विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
आ याहि तूयमाशुभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यत्) जो तू (प्राक् अपाक्, उदक्, न्यक् वा नृभिः हूयसे) पूर्व पश्चिम, उत्तर वा नीचे कहीं से भी बुलाया जाय, तू (तूयम्) शीघ्र ही (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्वों के तुल्य व्यापक गुणों से (आ याहि) प्राप्त हो ।

सोमलता का रस अति आह्लादजनक, पौष्टिक, मनभावन होता है । यह वेद ने स्पष्ट कहा । आर्जिकीया नदी विपाशा नाम से प्रसिद्ध है ऐसा यास्क का मत है । सायण के मत से कुरुक्षेत्र के दक्षिणार्थ भाग में वह स्थान है । प्रायः जहां भी हिमवती नदियां पर्वतों से निकल कर सम भूमि भाग में आती हैं वहां २ वेद के बतलाये उक्त लक्षण पाये जाते हैं उन्हीं स्थलों पर ब्राह्मी आदि ओषधियां प्रचुर होती हैं । सोम उन स्थानों में सम्भव है ।

यद्वा॑ प्रस्रव॑णे दि॒वो मा॒दया॑से॒ स्व॑र्णरे।
यद्वा॑ समु॒द्रे अन्ध॑सः ॥ २ ॥

भा०—(यद्वा) चाहे तू (दिवः प्रस्रवणे) प्रकाश के निकास रूप (स्वः-नरे) सुख प्राप्त कराने वाले रूप में (यद्वा) अथवा (अन्धसः) अन्न के (समुद्रे) अपार उत्पादक, सेचक, मेघवत् सर्वजीवनप्रद रूप में (मादयसे) सबको सुखी करता है।

आ त्वा॑ गी॒र्भिर्म॒हामु॒रुं हु॒वे गामि॑व॒ भोज॑से।
इन्द्र॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ३ ॥

भा०—(भोजसे गाम् इव) खाद्य, दुग्ध आदि प्राप्त करने के लिये गौ के समान हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सोमस्य पीतये) ज्ञान रस के पान और ब्रह्मचर्य ऐश्वर्यादि के पालनार्थ (त्वा) तुझ (महान् उरुं) बड़े ज्ञानी को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (हुवे) पुकारता हूँ।

आ त॑ इन्द्र महि॒मानं॒ हर॑यो देव ते॒ महः॑। रथे॑ वहन्तु॒ बिभ्र॑तः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (देव) प्रकाशस्वरूप! (महिमानं बिभ्रतः) महान् सामर्थ्यधारक और (महः बिभ्रतः ते) तेज वा बड़े जगत् को धारण करने वाले तुझे (रथे हरयः) रथ में लगे अश्वों के तुल्य (रथे हरयः) रमण-योग्य इस देह में स्थित सब मनुष्य (आ वहन्तु) आदरपूर्वक धारण करें।

इन्द्रं॑ गृणी॒ष उ॑ स्तु॒षे म॒हाँ उ॒ग्र ई॑शान॒कृत्।
एहि॑ नः सु॒तं पिब॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (महान्) बड़ा, (उग्रः) बलवान्, दुष्टों को भयजनक, (ईशान-कृत्) सर्वस्वामी होकर, जगत् पर शासन करने वाला, (गृणीषे स्तुषे उ) वर्णन और स्तुति किया जाता है, तू (नः आ इहि) हमें प्राप्त हो और (सुतं पिब) उत्पन्न जगत् का पालन कर।

सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥ ४६ ॥

भा०—(वयं सुत-वन्तः) हम सुत अर्थात् उत्पन्न ज्ञान वाले और (प्रयस्वन्तः) उत्तम अन्नादि से सम्पन्न होकर (त्वा हवामहे) तुझसे याचना करते हैं कि (नः) हमारे (इदं बर्हिः आसदे) इस हृदयासन पर विराज।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जिस कारण से (शश्वताम् साधारणः त्वम् असि) तू बहुतों में भी साधारण, समान रूप से सबके प्रति निष्पक्ष-पात होकर सबको धारण पोषण करने हारा है, इसलिये (तं त्वा) उस तुझको (वयं हवामहे) हम आदरपूर्वक बुलाते, प्रार्थना करते हैं।

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नरः) नायक लोग (अद्रिभिः) शस्त्रास्त्र बलों द्वारा (ते) तेरे लिये (सोम्यं मधु) ओषधि रसादि-युक्त अन्न को (अधुक्षन्) प्राप्त करते हैं। तू (जुषाणः) सेवन करता हुआ (तत् पिब) उसका उपभोग कर।

विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि ।
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥

भा०—तू (अर्यः) सबका स्वामी है, (विश्वान् विपश्चितः) समस्त विद्वानों को (अति ख्यः) सबसे अधिक विवेक से देखता है। तू (तूयम् आ गहि) शीघ्र हमें प्राप्त हो। (अस्मे बृहत् श्रवः धेहि) हमें बड़ा यश, ज्ञान दे।

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।
मा देवा मघवा रिषत् ॥ १० ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (हिरण्य धीनाम्) हित रमणीय कान्तियों से (राजा) प्रकाशमान प्रभु, (मे) मुझे (पृषतीनां) आनन्द वर्षणकारी वाणियों का (दाता) देने वाला, गुरु (मघवा) उत्तम ज्ञान का धनी (मा रिषत्) पीड़ित न करे। (२) राजा सुवर्ण युक्त रथ, विमानादि का स्वामी, उत्तम गौवों का दाता, प्रजा का नाश न करे।

सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत्पृथु शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥ ११ ॥

भा०—(पृषतीनाम् सहस्रे अधि) सहस्रों सुखवर्षक वाणियों या नाड़ियों के भी ऊपर, सहस्र नाड़ियों से युक्त मूर्धा में (बृहत् पृथु) बड़े विस्तृत (चन्द्रं) आह्लादजनक (शुक्रम् हिरण्यं) हितकारी सुखप्रद कान्ति-युक्त वीर्य को (आददे) धारण करूं, मैं ऊर्ध्वरेता होऊं।

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः। श्रवो देवेष्वक्रत ॥१२॥४७

भा०—(नपातः) व्रत से न गिरने वाले (सहस्रेण दुर्गहस्य) हजारों से दुर्ग्राह्य, (सु-राधसः) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (मे) मेरा (श्रवः) ज्ञान (देवेषु) ज्ञानेच्छुक शिष्यों में (अक्रत) प्रदान करो। इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६६]

कलिः प्रागाथ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती। ३, ५, ११, १३ विराड् बृहती। ७ पादनिचृद् बृहती। २, ८, १२ निचृत् पंक्तिः। ४, ६ विराट् पंक्तिः। १४ पादनिचृत् पंक्तिः। १० पंक्तिः। ९, १५ अनुष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (स-बाधः) पीड़ित होकर (ऊतये) रक्षार्थ (तरोभिः) तारक ज्ञानों से (वः) आप लोगों को (विदद्-

वसुम्) ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने वाले, (इन्द्रं) उस प्रभु को (कारिणं भरं न) सर्वकर्त्ता, पोषक पिता के तुल्य जान कर (बृहत् गायन्तः) वेदवाणी का गान करते हुए (सुत-सोमे अध्वरे) सोम सवनयुक्त-यज्ञ, वा ज्ञान-सम्पादन युक्त, हिंसारहित, विशुद्ध उपासना में प्रार्थना करो। मैं भी उसी की (हुवे) प्रार्थना करता हूँ।

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥

भा०—(यं सु-शिप्रम्) जिस उत्तम बलशाली को (दुध्राः न वरन्ते) दुर्धर अर्थात् बलशाली भी वारण नहीं कर सकते, (न स्थिराः मुरः) अचल शत्रुमारक भी जिसको नहीं हटा सकते, (यः) जो (अन्धसः मदे) अन्नवत् ज्ञान-जीवन के आनन्द में (शशमानाय) प्रशंसा करते हुए, (सुन्वते) उपासना करते हुए (जरित्रे) स्तोता जन के हितार्थ, (आदृत्य दाता) आदर करके दान देता है, उस (उक्थ्यम्) स्तुत्य प्रभु की मैं उपासना करूं।

यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (शक्रः) शक्तिशाली (मृक्षः) अति शुद्ध (अश्व्यः) सर्वव्यापक है, (यः वा) जो (कीजः) अद्भुत, (हिरण्ययः) हित रमणीयस्वरूप, तेजोमय है (सः) वह (ऊर्वस्य) बहुत बड़े (गव्यस्य) वाणी-समूह रूप वेद के (आवृतिम्) आवरण को (अप रेजयति) दूर करता है, वही (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान्, (वृत्रहा) सब दुष्टों, विघ्नों का नाश करने हारा है।

निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतं वसूदिद्वपति दाशुषे।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत् करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥४॥

भा०—(चित्) जैसे कोई (निखातं पुरु-सम्भृतं वसु उद्वपति) बहुत सा गड़ा खजाना खोद लेता है वैसे ही (यः) जो (वज्री) शक्तिमान्, (सु-शिप्रः) उत्तम मुख नासिका वाले वा मुकुट वाले के समान सुरूप, सुज्ञानी, (हर्यश्वः) मनुष्यों को अश्वोंवत् सन्मार्ग पर चलाने हारा (इन्द्रः) वह प्रभु (निखातं) गाड़े (पुरु-सम्भृतं) इन्द्रियों वा बहुत सी प्रजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से धारित (वसु) ऐश्वर्य को (दाशुषे) दान-शील को (उद्वपति) भूमि से अन्न के समान उत्पन्न कर प्रदान करता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु है, वह (यथावशत्) जैसा चाहता है वैसे ही (क्रत्वा) ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से (करत्) जगत् का निर्माण करता है।

यद्वावन्थं पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम्।
वयं तत्तं इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥५॥४८॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति योग्य! हे (शूर) दुष्टों के नाशक! तू (पुरा चित्) पूर्ववत् अब भी (नृणां यद् वावन्थ) मनुष्यों के निमित्त जो चाहता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वयं) हम (तत् ते) वह तेरे लिये (यज्ञम् उक्थं वचः) यज्ञ, उत्तम वचन (तुरं संभरामसि) अति शीघ्र करें। इति इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः॥

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः॥ ६ ॥

भा०—(पुरु-हूत) बहुतों से स्तुति योग्य! हे (वज्रिवः) शक्ति-शालिन्! (द्युक्ष) कान्तिमन्! (सोमपाः) जगत् वा राष्ट्र के पालक! तू (सोमेषु) उत्पन्न जगत् के ऐश्वर्यों में (सचा) विद्यमान है! (त्वम् इत् हि) तू ही, (ब्रह्म-कृते) स्तोता (सुन्वते) उपासक को (काम्यं वसु देष्ठः भुवः) कामना करने योग्य धन का सर्वोत्तम दाता है।

व॒यमे॑नमि॒दा ह्योऽपी॑पेमे॒ह व॒ज्रिण॑म् ।
तस्मा॑ उ अ॒द्य स॑म॒ना सु॒तं भ॑रा नू॒नं भू॑षत श्रु॒ते ॥ ७ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (इदा ह्यः) गत दिन के समान अब भी (एनं वज्रिणं) इस शक्तिशाली को (अपीपेम) प्रसन्न करें (तस्मै उ अद्य) उस ही के लिये आज (समना) समान चित्त होकर (भर) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ और (नूनं) शीघ्र ही, (सुतं) उत्पन्न भावना वा कर्मफल को उस पर न्योछावर करो और (श्रुते) श्रुति से श्रवण योग्य उसी प्रभु में (भूषत) स्वयं निष्ठ होवो ।

वृक॑श्चिदस्य वार॒ण उ॑रा॒मथि॒रा व॒युने॑षु भूषति ।
सेमं नः॒ स्तोमं॑ जुजुषा॒ण आ ग॑ही॒न्द्र प्र चि॒त्रया॑ धि॒या ॥ ८ ॥

भा०—(उरामथिः वृकः चित्) ऊन वाली भेड़ को मारने हारे भेड़िये के तुल्य (वारणः) शत्रु-वारण-समर्थ, शूरवीर (अस्य वयुनेषु भूषति) इस राजा के कार्य में समर्थ होता है । (२) प्रभु पक्ष में—(अस्य) इस जीव को (उरामथिः वृकः चित्) हल के समान भूमि को खनने वाला, भेड़ के नाशक वा भेड़िये के समान आवरक तम के नाशक, चन्द्रवत् (वृकः) ज्योतिष्मान् (वारणः) सर्वदुःखों का वारक विद्वान् वा प्रभु ही उसे (वयुनेषु आ भूषति) ज्ञानों में अलंकृत करता, समर्थ बनाता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सः) वह तू (नः) हमारे (इमं स्तोमं जुजुषाणः) इस स्तुतिवचन को स्वीकार करता हुआ, (चित्रया धिया) अद्भुत बुद्धि, कर्म से (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।

कदू न्व१स्याकृ॑त॒मिन्द्र॑स्यास्ति॒ पौंस्य॑म् ।
केनो॒ नु कं॒ श्रोम॑तेन॒ न शु॑श्रुवे ज॒नुषः॒ परि॑ वृत्र॒हा ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु का (कत् उ पौंस्यं नु अकृतम् अस्ति) कौन-सा बल का कर्म नहीं किया हुआ है, वह

(वृत्रहा) विघ्नों का वारक और दण्ड देने द्वारा, वह (वृत्रहा) आवरणकारी प्रकृतिमय सलिल को गति देने वाला, (जनुषः परि) जन्मशील इस जगत् के ऊपर (केन उ श्रोमतेन) भला किस श्रवणीय, वेदगम्य गुण और कर्म से (न शुश्रुवे) श्रवण नहीं किया जाता ?

कदू मुहीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।
इन्द्रो विश्वान् बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पुणीँरभि ॥१०॥४९॥

भा०—अथवा (अस्य) इसकी (महीः) बड़ी, (तविषीः) शक्तियां (कद् उ) कितनी, अपरिमित हैं। (अस्य वृत्र-घ्नः) इस वृत्र अर्थात् मेघवत् प्रकृतिमय सलिल के विक्षोभक परमेश्वर का (अस्तृतम्) अहिंसित, स्थायी बल (कद् उ) कितना है ? यह नहीं कहा जा सक्ता। वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वान् बेक-नाटान्) सब महाजनों (उत) और (अहः-दृशः पणीन्) सूर्य को देखने वाले व्यवहारकुशलों को भी (क्रत्वा) ज्ञान से (अभि) परास्त करता है, वह सर्वोपरि है ॥ बेकनाटाः—बे इति अपभ्रंशो द्विशब्दार्थे। एकं कार्षापणं कणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्यौ नयेन दर्शयति। ततो द्विशब्देनैकशब्देन च नाटयन्तीति बेकनाटाः इति सायणः। एक २ के दो लेने का संकेत कर समझाने वाले सूदखोर महाजन लोग 'बेकनाट' हैं। अथवा बेकनाटः—न ते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ् नाटज्-भ्रटजः ॥ पा० ५। २। ३१ ॥ इति नाटच्। बेकनाटा, बेकनासिकाः भेक नासिकाः विकटनासिका वा। अथवा विचिर पृथग्भावे, वेकः पृथग्भावः। बेकनाटाः छिन्ननासः, चिनासिका, विवेकशील नासिकाः, कुशला वा ॥ इति। इत्येकोनपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

वयं घा ते अपूर्व्येन्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।
पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ॥ ११ ॥

भा०—हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व, एवं पूर्ण ! हे (वृत्रहन्) दुष्टों के

नाशक ! (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित ! (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयं घ पुरुतमासः) हम उत्तम जन, (ते) तेरे लिये (भृतिं न) वेतन के समान करादि नित्य नियम से (प्र भरामसि) प्रदान करें।

पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।

तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥१२॥

भा०—हे (तुवि-कूर्मन्) बहुत कर्मकारिन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वे) तेरे अधीन (पूर्वीः चित् हि) पूर्ण, समृद्ध (आशसः) स्तुतिशील प्रजाएं और (ऊतयः) रक्षक सेनाएं (हवन्ते) तेरी स्तुति करती हैं। तू (अर्यः) सबका स्वामी, (तिरः चित्) प्राप्त हुए (सवना गहि) ऐश्वर्य को प्राप्त कर। हे (वसो) सबको बसाने हारे ! हे (शविष्ठ) अति बलिन् ! तू (मे हवं श्रुधि) मेरे वचन सुन।

वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।

नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयं घ ते) हम तो तेरे ही हैं, (त्वे इत्) तेरे ही अधीन हम (विप्राः) विद्वान् जन (अपि स्मसि) सदा रहें, तुझमें निमग्न हों, अप्यय अर्थात् मोक्ष प्राप्त करें। हे (पुरु-हूत) बहुतों के स्तुतिपात्र ! (मघवन्) उत्तम स्वामिन् ! (त्वद् अन्यः कः चन) तेरे से दूसरा कोई और (मर्डिता नहि अस्ति) सुख देने वाला नहीं है।

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि ।

त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥१४॥

भा०—हे (शविष्ठ) शक्तिशालिन् ! तू (नः) हमें (अस्याः अमतेः) अज्ञान, दारिद्र, (क्षुधः) भूख, तृष्णा, (उत) और (अभिशस्तेः) निन्दा से (अव स्पृधि) मुक्त कर। हे (गातुवित्) मार्गविद् ! उपायज्ञ वाणी

के जानने, प्राप्त कराने हारे ! (त्वं) तू (नः) हमें (तव चित्रया ऊती) तेरी आश्चर्यकारी रक्षा और (धिया) ज्ञान,कर्मशक्ति से (शिक्ष) ज्ञान दे।

सोम॒ इद्वः॑ सु॒तो अ॑स्तु॒ कल॑यो॒ मा बि॑भीतन।
अपे॒देष ध्व॒स्माया॑ति स्व॒यं घै॒षो अपा॑याति ॥१५॥५०॥

भा०—हे (कलयः) उक्त ज्ञानवान् कर्मशील पुरुषो ! (वः) आप का (सोमः) ज्ञान, ऐश्वर्य (सुतः अस्तु) सदा उत्पन्न हो। आप (मा बिभीतन) भय मत करो। (एषः) यह ज्ञान के उदय होने पर तेज से अन्धकारवत् (अप ध्वस्मायति इत्) स्वयं नष्ट हो जाता है, (स्वयं घ एषः अपायति) यह आप ही दूर हो जाता है। इति पञ्चाशत्तमो वर्गः॥

[६७]

मत्स्यः सांमदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धा ऋषयः ॥ आदित्या देवताः। छन्दः—१—३, ५, ७, ९, १३—१५, २१ निचृद् गायत्री। ४, १० विराड् गायत्री। ६,८,११,१२,१६—२० गायत्री ॥

त्यान्नु क्ष॒त्रिया॒ँ अव॑ आदि॒त्यान्या॑चिषामहे।
सु॒मृ॒ळी॒काँ अ॒भिष्ट॑ये ॥ १ ॥

भा०—हम (तान्) उन (क्षत्रियान्), बलशाली (सुमृडीकान्) उत्तम सुखप्रद, (आदित्यान्) किरणों वा मासों के समान तेजस्वी, कर आदि लेने वाले, क्षत्रियों को (अभिष्टये) सुखप्राप्ति के लिये (अवः याचिषामहे) विनय से रक्षा, ज्ञानादि की याचना करें।

मि॒त्रो नो॒ अत्यं॑ह॒तिं वरु॑णः पर्षद॒र्यमा।
आ॒दि॒त्यासो॒ यथा॑ वि॒दुः ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही जन (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता न्यायकारी जन और (आदित्यासः) तेजस्वी अड़तालीस

वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक जन भी (यथा विदुः) जैसे अच्छा जानें वैसे (नः) हमें (अंहतिं अतिपर्पत्) पाप से पार करें।

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरूथमस्ति दाशुषे। आदित्यानामरङ्कृते ३

भा०—(तेषां आदित्यानां) उन विद्वान् जनों का (अरंकृते) अत्यन्त अधिक श्रम करने वाले (दाशुषे) दानशील जन के लिये (चित्रम्) अद्भुत (उक्थ्यम्) स्तुत्य (वरूथम्) दुःखवारक धन (अस्ति) है।

महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन्। अवांस्या वृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (वरुण मित्र अर्यमन्) श्रेष्ठ! स्नेहवन्! न्यायकारिन्! (वः महताम्) आप बड़ों का (महि अवः) ज्ञान, पालन, सामर्थ्य बड़ा है। आप से हम (अवांसि वृणीमहे) ज्ञानों, रक्षाओं की याचना करते हैं।

जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात्।

कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥ ५ ॥ ५१ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी पुरुषो! (पुरा हथात्) मृत्यु से पहले आप लोग (नः जीवान्) हम जीवित जनों को (अभि धेतन) पालन पोषण करें, हे (हवन-श्रुतः) आह्वान सुनने वालो! आप (कद्ध स्थ) कहीं भी होवो, इस व्रत का पालन करो। इति द्व्येकपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः।

तेना नो अधि वोचत ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (यद् वरूथम्) जो तुम लोगों का दुःखादि वारण-योग्य धन और (यत् छर्दिः) जो गृह है वह (श्रान्ताय) श्रमशील तपस्वी और (सुन्वते) उपासक जन के लिये हो। (तेन) उसी तपस्वी और उपासकजन द्वारा (नः अधि वोचत) हमें उपदेश करो।

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः।
आदित्या अद्भुतैनसः ॥ ७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (अंहोः) हिंसक एवं पापकारी पुरुष का पाप या कष्ट भी (उरु अस्ति) बड़ा अधिक होता है और (अनागसः) निरपराधी को (रत्नं उरु अस्ति) सुख भी बहुत है। हे (आदित्याः) अदिति, उत्तम माता पिता के उत्तम पुत्रो ! एवं विद्वान् तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग (अद्भुत-एनसः) पापरहित, निरपराधी होवो।

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि।
इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥ ८ ॥

भा०—(सेतुः) बन्धन, या बन्धनकारी अधिकारी (नः मा सिषेत्) हमें बन्धन में न बांधे। (अयं) यह (नः) हमें (महते) बड़े उद्देश्य के लिये (परि वृणक्तु) बुरे काम से बचावे। (इन्द्रः इत् हि) इन्द्र ही (वशी श्रुतः) सबको वश करने वाला वेद में सुना या बतलाया है।

मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः।
देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अविष्यवः देवाः) रक्षा के इच्छुक विद्वान् मनुष्यो ! (रिपूणां) शत्रुओं और (वृजिनानां मृचा) पापों के विनाशक साधन से (नः मा अभि प्र मृक्षत) हमारा नाश मत होने दो।

उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे। सुमृळीकामभिष्टये ॥१०।५२॥

भा०—हे (महि) पूज्ये ! हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते) पृथिवि ! मातः (उत) और मैं (सुमृडीकाम्) उत्तम सुखदायिनी, (त्वाम्) तुझसे (अभिष्टये) अभीष्ट पूर्त्ति के लिये (उप ब्रुवे) याचना करता हूँ। इति द्वापञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

पर्षि द्वीने गंभीर आँ उग्रंपुत्रे जिघांसतः।
माकिस्तोकस्य नो रिषत् ॥ ११ ॥

भा०—हे (उग्रपुत्रे) शत्रु-भय दाता पुत्रों की मातः ! तू (जिघांसतः) हनन की इच्छा वाले पुरुष से हमारी (दीने) दीन दशा में और (गभीरे) अन्धकारादि में भी (पर्षि) रक्षा कर। (नः तोकस्य) हमारे सन्तान को (माकिः रिषत्) और कोई भी न मार सके।

अनेहो नं उरुव्रज उरूचि वि प्रसंर्तवे।
कृधि तोकायं जीवसें ॥ १२ ॥

भा०—हे (उरु-व्रजे) दूर २ तक जाने वाली ! हे (उरुचि) बहुत वेग से जाने वाली ! तू (नः) हम (अनेहः) निरपराधों को (वि प्रसर्त्तवे) विविध दिशाओं में जाने के लिये हो और (तोकाय) पुत्रादि के (जीवसे) जीवन के लिये (कृधि) उपाय कर। दूर देशों तक जाने वाली वैश्य-सभा वा उनकी संस्था और गमनागमन साधनों की व्यवस्था कारिणी संस्था 'उरुव्रजा' और 'उरूची' नाम से कही गई प्रतीत होती हैं।

ये मूर्धानः क्षितीनामदंब्धासः स्वयंशसः।
व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (क्षितीनां) भूमियों में बसी ऐश्वर्ययुक्त प्रजाओं के (मूर्धानः) शिरोमणि, प्रमुख पुरुष हैं वे (अदब्धासः) अहिंसक (स्वयशसः) धन और यश से सम्पन्न हों और (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (व्रता रक्षन्ते) व्रत, उत्तम कर्मों, नियमों और अन्नों की रक्षा करें।

ते नं आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचंत।
स्तेनं बद्धमिवादिते ॥ १४ ॥

भा०—(आदित्यासः) हे तेजस्वी पुरुषो ! हे (अदिते) अखण्ड शासनकारिणि ! प्रभुशक्ते ! तू (बद्धम्-इव स्तेनं) बंधे चोर के समान

बन्धन में बद्ध (नः) हमें (वृकाणां आस्नः) भेड़ियों के तुल्य मुंह फाड़ कर खाने को आने वाले दुष्ट हिंसकों के मुखों से (मुमोचत) छुड़ाओ।

अपो षु ण॑ इ॒यं शरु॒रादि॑त्या॒ अप॑ दुर्म॒तिः ।
अ॒स्मदे॑त्वज॑घ्नुषी ॥ १५ ॥ ५३ ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी, अखण्ड व्रत करने हारो! (इयं शरुः) यह हिंसाकारी (नः अपो एतु) हमसे दूर हो और (इयं दुर्मतिः) यह दुष्ट मति और दुष्ट शस्त्रादि (अजघ्नुषी) हमें पीड़ित न करती हुई (अस्मत् अप एतु) हमसे दूर हो। इति त्रिपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

शश्व॒द्धि वः॑ सुदानव॒ आदि॑त्या ऊ॒तिभि॑र्व॒यम् ।
पु॒रा नू॒नं बु॑भु॒ज्महे॑ ॥ १६ ॥

भा०—हे (सुदानवः आदित्याः) उत्तम दानशील, अखण्ड तेजस्वी जनो! (वः) आप लोगों की (ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा (वयं शश्वत् हि) हम सदा ही (पुरा नूनं) पहले के समान (बुभुज्महे) नाना ऐश्वर्यों का भोग करें।

शश्व॑न्तं॒ हि प्र॑चेतसः प्रति॒यन्तं॑ चि॒देन॑सः ।
देवाः॑ कृणु॒थ जी॒वसे॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (प्रचेतसः) उत्तम चित्त और उत्कृष्ट ज्ञानवान् पुरुषो! हे (देवाः) दानशील ज्ञानी पुरुषो! (एनसः) पाप से दूर (प्रतियन्तं) विरुद्ध दिशा में जाने वाले, या पापों का मुकाबला करने वाले (शश्वन्तं) बहुत से जनसमाज को (जीवसे कृणुथ) दीर्घ जीवन के लिये तैयार करो।

तत्सु नो॒ नव्यं॒ सन्य॑स॒ आदि॑त्या॒ यन्मुमो॑चति ।
ब॒न्धाद् ब॒द्धमि॑वादिते ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी गुरु के शिष्यो! वा भूमि-माता के पुत्रो! और हे (अदिते) मातृवत् पूज्य! (बद्धम् इव) बद्ध पुरुष के

समान कर्मबन्धन में बंधे पुरुष को (यत्) जो ज्ञान (सुमोचति) मुक्त कर देता है (तत्) वह (नव्यं), उपदेष्टव्य ज्ञान (सु सन्यसे) अच्छी प्रकार सेवनीय हो।

नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे ।
यूयमस्मभ्यं मृळत ॥ १९ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) ज्ञानी पुरुषो! (अस्माकं तत् तरः न अस्ति) हमारे पास वह बल नहीं है जो (अति-स्कदे) बन्धनों और कष्टों से पार के जाने में समर्थ हो। (यूयम्) तुम (अस्मभ्यं) हमें सुख दो।

मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः ।
पुरा नु जरसो वधीत् ॥ २० ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो! (विवस्वतः) विविध प्रजाओं के स्वामी राजा की (कृत्रिमा) शिल्पी आदि से बनाई गई, (शरुः) प्राण या जीवन का नाश करने वाली (हेतिः) शस्त्र-पीड़ा, (नः) हमें (जरसः पुरा) वृद्धावस्था से पूर्व (मा वधीत्) न मारे।

वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् ।
विष्वग्वि वृहता रपः ॥ २१ ॥ ५४ ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी जनो! आप लोग (द्वेषः वि सु वृहत) शत्रुओं को विविध प्रकार से अच्छी प्रकार नष्ट करो। (अंहतिम् वि) पाप को समूल उखाड़ो। (संहितम् वि) बन्धन को दूर करो और (रपः विश्वक् वि) विघ्नों को भी सब प्रकार से उखाड़ दो। इति चतुःपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

[६८]

प्रियमेध ऋषिः ॥ १--१३ इन्द्रः । १४--१९ ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । ४, ७ विराडनुष्टुप् । १० निचृदनुष्टुप् । २ ३, १५ गायत्री । ५, ६, ८, १२, १३, १७, १९ निचृद् गायत्री । ११ विराड् गायत्री । ९, १४, १८ पादनिचृद् गायत्री । १६ आर्ची स्वराड् गायत्री ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जैसे (ऊतये) रक्षार्थ (तुविकूर्मि ऋति-सहं रथं वर्तयामः) बहुत तीव्र गति से चलने वाले, बहुत कार्यों में आने वाले, गमन में समर्थ रथ को प्रयोग में लाते हैं वैसे ही हे (शविष्ठ) अति बलशालिन् ! हे (सत्-पते) सज्जनों के पालक ! सत्, कारण पदार्थों के स्वामिन् ! (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से सृष्ट्यादि कर्मों के कर्त्ता, (ऋतिषहं) दुःखदायी हिंसकों को पराजित करने वाले, (त्वा) तुझको हम (सुम्नाय) सुख प्राप्ति के लिये (आ वर्तयामसि) पुनः २ तेरा चिन्तन करें ।

तुविंशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।

आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शुष्म) बहुत बलों से सम्पन्न, प्रचुर शक्तिमन् ! (तुविक्रतो) बहुत प्रज्ञासम्पन्न ! हे (शचीवः) शक्ति, वाणी के स्वामिन् ! तू (महित्वना) महान् सामर्थ्य से हे (मते) मनन करने हारे ज्ञानमय ! (विश्वया आ पप्राथ) तू ही समस्त विश्व को फैलाता है ।

यस्य॑ ते महि॒ना म॒हः परि॑ ज्मा॒यन्त॑मी॒यतुः॑ ।
हस्ता॒ वज्रं॑ हिर॒ण्यय॑म् ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (हस्ता) दोनों हाथ (महिना) महान् शक्तिमान् (महः) बड़े (ज्मायन्तं) भूमि तक व्यापने वाले (हिरण्यम्) तेजोमय (वज्रं) वीर्यवत् शस्त्र को (परि ईयतुः) वश करते हैं।

वि॒श्वान॑रस्य व॒स्पति॒मना॑नतस्य॒ शव॑सः ।
एवै॑श्च चर्षणी॒नामू॒ती हु॑वे॒ रथा॑नाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (अनानतस्य) न झुकने वाले (विश्वानरस्य) समस्त मनुष्यों के बने (शवसः) बलवान् सैन्य के (पतिम्) स्वामी को (चर्षणीनाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों के (एवैः) गमनागमनों द्वारा (हुवे) बुलाता हूँ।

अ॒भिष्ट॑ये स॒दावृ॑धं॒ स्व॑र्मीळ्हेषु॒ यं नरः॑ ।
नाना॒ हव॑न्त ऊ॒तये॑ ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(यं) जिस (सदावृधं) सदा बढ़ाने वाले को (स्वः-मीढेषु) संग्रामों में (नाना नरः) नाना नायक जन (ऊतये) रक्षा और स्तुति के लिये (हवन्ते) प्रमुख स्वीकार करते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

प॒रोमा॑त्र॒मृची॑षम॒मिन्द्र॑मु॒ग्रं सु॒राध॑सम् । ईशा॑नं चि॒द्वसू॑नाम् ॥६॥

भा०—(परः-मात्रम्) सब परिमाणों से परे, सूक्ष्म और अनन्त (ऋचीषमम्) ऋचा द्वारा समान रूप से स्तुत्य (इन्द्रम् उग्रं सु राधसम्) ऐश्वर्ययुक्त, धनादि सम्पन्न (वसूनां चित् ईशानम्) प्रजा के राजा के समान समस्त जीवों और लोकों के स्वामी की मैं (हुवे) स्तुति करता हूँ।

तं त्व॒मिद्राध॑से म॒ह इन्द्रं॑ चोदामि पी॒तये॑ ।
यः पू॒र्व्यामनु॑ष्टुति॒मीशे॑ कृष्टी॒नां नृ॒तुः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (नृतुः) सबका नेता और (कृष्टीनाम्) कृषि योग्य

भूमियों के स्वामिवत् समस्त प्रजाओं का (ईशे) प्रभु है, (तं-तम् इत्) निश्चय उस ही (इन्द्रम्), ऐश्वर्यदाता प्रभु को लक्ष्य करके (पूर्व्याम्) पूर्व की, श्रेष्ठ, (अनु-स्तुतिम्) अनुरूप स्तुति को (पीतये) पालन या रक्षा के लिये (चोदामि) करता हूँ।

न यस्य॑ ते शवसान स॒ख्यमा॒नंश॒ मर्त्यः॑ ।

नकिः॒ शवां॑सि ते नशत् ॥ ८ ॥

भा०—हे (शवसान) बलशालिन्! (यस्य ते) जिस तेरे (सख्यम्) मित्रभाव को (मर्त्यः) मनुष्य (न आनंश) नहीं प्राप्त करता, नहीं जान पाता, उन तेरे (शवांसि) बलों को भी (नकिः नशत्) कोई पा नहीं सकता। तेरी मित्रता और बल दोनों अपार और अनन्त हैं।

त्वोता॑सस्त्वा यु॒जाप्सु सूर्ये॑ म॒हद्धनं॑म् ।

जये॑म पृ॒त्सु व॑ज्रिवः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन्! (त्वा उतासः) तेरे से सुरक्षित और (त्वा युजा) तेरे से सहायवान् होकर हम (अप्सु सूर्ये) अन्तरिक्ष और सूर्य के समान प्रजा और सूर्यवत् राजा के अधीन रहकर (पृत्सु) संग्रामों में (महद् धनम् जयेम) बड़ा धन विजय करें।

तं त्वा॑ य॒ज्ञेभि॑रीमहे॒ गी॒र्भिर्गि॑र्वणस्तम ।

इन्द्र॒ यथा॑ चि॒दावि॑थ॒ वाजे॑षु पु॒रुमाय्य॑म् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (गिर्वणस्तम इन्द्र) वाणी द्वारा अतिस्तुत्य प्रभो! (यथा-चित् वाजेषु) जैसे संग्रामों में तू (पुरु-माय्यं) बहुत मतिमान् और बहुतों में मान्य पद की (आविथ) रक्षा करता है, (तं त्वा) उस तेरी (गीर्भिः यज्ञेभिः) वाणियों और यज्ञों से (ईमहे) स्तुति करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

यस्यं ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः ।
यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरा (सख्यं स्वादु) मित्रभाव सुखप्रद और (प्रणीतिः स्वाद्वी) उत्तम नीति भी सुखद है वह तू (यज्ञः) उपासना-योग्य और (वितन्त-साय्यः) विशेषतः एकाग्र चित्त से ध्यान-योग्य है ।

उरु णस्तन्वे३ तनं उरु क्षयाय नस्कृधि ।
उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः तन्वे) हमारे शरीर के सुखार्थ, (तने) पुत्रादि के लिये और (क्षयाय) हमारे निवास और ऐश्वर्य वृद्धि के लिये, (उरु कृधि) बहुत कुछ कर और (नः जीवसे उरु यन्धि) हमें जीवन के लिये बहुत कुछ प्रदान कर ।

उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥१३॥

भा०—हम लोग (नृभ्यः उरुं) मनुष्यों के हितार्थ बड़ा (पन्थाम्) मार्ग, (गवे) गवादि जन्तुओं के लिये (उरु पन्थाम्) बहुत बड़ा मार्ग और (रथाय उरुं पन्थाम्) रथ के लिये बड़ा मार्ग और (देव-वीतिं) विद्वानों का उत्तम ज्ञान, प्रकाश तथा दान-वान् पुरुष की नीति, रक्षा, बल, कान्ति की (मनामहे) याचना करते हैं ।

उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या ।
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥

भा०—(द्वा-द्वा) दो-दो करके (षड् नरः) छः नायक (सोमस्य हर्ष्या) ऐश्वर्य प्राप्ति के हर्ष से मानो सुप्रसन्न, (स्वादु-रातयः) सुखप्रद दानों से युक्त होकर (मा उप तिष्ठन्ति) मेरे पास उपस्थित होते हैं । अर्थात् 'सोम' वा वीर्य की रक्षा से उत्पन्न हर्ष, सुख, आनन्द से हृष्ट पुष्ट

जोड़े जोड़े ६ नायक आंख, नाक, कान, उत्तम सुस्वादु, ज्ञान, बल प्रदान करते हुए मुझे प्राप्त हैं।

ऋज्राविन्द्रोत आ दंदे हरी ऋक्षस्य सूनवि।
आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(आश्वमेधस्य) अश्व, भोक्ता आत्मा वा अश्ववत् इन्द्रिय मन से संयुक्त (ऋक्षस्य) जंगम शरीर के (सूनवि) प्रेरक (इन्द्रोते) आत्मा से रक्षित इस शरीर रूप राष्ट्र में (ऋज्रौ) ऋजु मार्ग से जाने वाले, (रोहिता हरी) अन्न आदि से पुष्ट, दो अश्वोंवत् प्राण-अपान को मैं (आददे) वश करूं। इति तृतीयो वर्गः ॥

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे। आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥

भा०—(आतिथिग्वे) अतिथि के सत्कारार्थं वाणी को विनय से प्रयोग करने वाले, (आर्क्षे) शत्रु पर आक्रमण में दक्ष, (आश्वमेधे) अश्व-सैन्य से शत्रुओं का संग्राम रूप यज्ञ करने वाले, वीर के अधीन (सुपेशसः) उत्तम रूपवान्, (सु-अभीशून्) उत्तम लगामों से युक्त (सुरथान्) उत्तम रथ वाले अश्वों के समान, धनादि से सम्पन्न, (सु-अभीशून्) सुअवयवों से युक्त, (सुरथान्) उत्तम रथारोही, वीर पुरुषों को मैं (आददे) राष्ट्र में नियुक्त करूं।

षळश्वाँ आतिथिग्व इंन्द्रोते वधूमंतः। सचा पूतक्रतौ सनम् ॥ १७

भा०—(आतिथिग्वे) पूज्य के सत्कारक, विनीत वाणी वाले (इंद्रोते) ऐश्वर्य-युक्त, (पूत-क्रतौ) पवित्र कर्म-ज्ञान वाले पुरुष के अधीन (वधूमतः षट् अश्वान्) 'वधू' अर्थात् शत्रु का वध करने वाली सैन्य शक्ति से युक्त छः अश्वसैन्य के स्वामी सेनापतियों को मैं (सचा) एक साथ ही (सनम्) प्राप्त करूं। (२) अध्यात्म में—पवित्राचारवान् पावन-प्रज्ञ, वाणी के स्वामी आचार्य के अधीन रहकर मैं वहनकारिणी प्राण

या चेतना शक्ति से युक्त चक्षु आदि पांच और छठा मन इन्द्रियों को मैं शिष्य वश करूं।

एषु चेतद्वृषणवत्यन्तऋजेष्वरुषी। स्वभीशुः कशावती ॥ १८ ॥

भा०—(एषु ऋज्रेषु) इन ऋजु, धर्म मार्ग में चलने वाले विद्वानों के ऊपर (वृषण्वती) बलवान् पुरुषों वा सभापति वाली, (अरुषी) तेजस्विनी, (सु-अभीशुः) सुप्रबद्ध नियम-व्यवस्था से सम्पन्न (कशावती) वाणी, वा आज्ञा की स्वामिनी राजसभा (आचेतत्) सब कुछ विचार किया करे।

न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः।
अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजबन्धवः) राष्ट्र में ऐश्वर्य और अन्नादि वेतनों पर बंधे नियुक्त पुरुषो! (युष्मे) तुम लोगों में से कोई भी (मर्त्यः निनित्सुः चन) मनुष्य निन्दा करने वाला होकर (अवद्यन् न अधि दीधरत्) निन्दनीय कार्य, दुष्ट फल को न धारण करे। अर्थात् कोई भी परस्पर की निन्दा वा बुरा काम न करे। इति चतुर्थो वर्गः॥

[६९]

प्रियमेध ऋषिः॥ देवताः—१—१०, १२—१८ इन्द्रः। ११ विश्वेदेवाः। ११, १२ वरुणः॥ छन्दः—१, ३, १८ विराडनुष्टुप्। ७, ९, १२, १३, १५ निचृदनुष्टुप्। ८ पादनिचृदनुष्टुप्। १४ अनुष्टुप्। २ निचृदुष्णिक्। ४, ५ निचृद् गायत्री। ६ गायत्री। ११ पंक्तिः। १६ निचृत् पंक्तिः। १७ बृहती। १८ विराड् बृहती॥ अष्टादशर्चं सूक्तम्॥

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे।
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो! आप लोग (मन्दद्-वीराय) सुतृप्त वीर

पुरुषों के स्वामी वा वीरों को हर्षित करने वाले, (इन्दवे) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (त्रि-स्तुभम्) मन, वाणी, कर्म तीनों से स्तुति करने योग्य, तीनों दोषों के नाशक (इषं) अन्न और सैन्य को (प्र-प्र) उत्तम प्रकार से प्रदान करो। वह (पुरन्ध्या धिया) राष्ट्र या पुर की धारक सद्-बुद्धि से (वः) आप लोगों की (मेध-सातये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और यज्ञ वा युद्ध के निभाने के लिये (आ विवासति) सब प्रकार से सेवा करें।

नदं॑ व॒ ओद॑तीनां न॒दं योयु॑वतीनाम् ।
पतिं॑ वो॒ अघ्न्या॑नां धे॒नूना॑मिषुध्यसि ॥ २ ॥

भा०—(ओदतीनां) स्तुति करती हुई (वः) आप प्रजाओं को (नदं) समृद्ध करने वाले और (योयुवतीनां) सर्वत्र मेल रखने वाली प्रजाओं के (नदं) आज्ञापक, (अघ्न्यानां) न मारने योग्य, रक्षा-योग्य (धेनू-नाम्) गौवत् अन्नदाता और (वः) आप प्रजाजनों के (पतिं) पालक को आप लोग चाहो और, हे राजन्! तू भी इन (धेनूनां अघ्न्यानां ओद-तीनां योयुवतीनां) गौओं के तुल्य न मारने योग्य स्तुति-युक्त, तुझसे मेल रखने वाली प्रजाओं की (इषुध्यसि) चाहना कर, हृदय से चाह।

ता अ॑स्य सू॒ददो॑हसः॒ सोमं॑ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
जन्म॑न्दे॒वानां॒ विश॑स्त्रि॒ष्वा रो॑च॒ने दि॒वः ॥ ३ ॥

भा०—वे (पृश्नयः) मेघमाला के समान ऐश्वर्य-वर्षक वा उससे स्पर्श अर्थात् सम्बन्ध रखने वाली (विशः) प्रजाएं (सूददोहसः) जल-प्रदाता मेघों के समान (अस्य) उसके (सोमं) अन्नवत् ऐश्वर्य को (श्रीणन्ति) प्राप्त कराती हैं और (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रिषु) तीनों लोकों में (रोचने) प्रकाश करने वाले और (देवानां जन्मन्) विद्वानों के बीच जन्म लेने के लिये शुभ गुणों के आश्रय पर उसे स्था-पित या प्राप्त करते हैं।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—(यथा विदे) यथावत् ज्ञान वा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये, (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक, एवं सत् अविनाशी पदार्थों के स्वामी (सत्यस्य सूनुं) सत्य के प्रेरक, सत्य के उत्पादक, उपदेशक (गोपतिं) जितेन्द्रिय, वाणी के पालक, भूमि के पालक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (अभि प्र अर्च) साक्षात् स्तुति कर ।

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥५॥५

भा०—(यत्र) जहां हम सब (अभि सं-नवामहे) ऐश्वर्यवान् की साक्षात् स्तुति करें, उस (बर्हिषि अधि) राष्ट्र, प्रजा वा उत्तमासन पर स्थित (हरयः) उत्तम विद्वान् गण (अरुषीः) उत्तम २ वाणियां (आ ससृज्रिरे) कहें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥६

भा०—(गावः आशिरं मधु) गौएं जैसे खाने योग्य मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं वैसे ही (इन्द्राय वज्रिणे) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के (मधु) मधुर (आशिरं) व्यापक स्वरूप को (गावः)वेदवाणियां (दुदुह्रे) दोहन करती हैं, उसी का प्रतिपादन करती हैं, (यत्) जो (उपह्वरे) अति समीप एकान्त देश में (विदत्) जाना और प्राप्त किया जाता है ।

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ७ ॥

भा०—मैं और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् प्रभु दोनों (ब्रध्नस्य) बन्धन में बांधने वाले आश्रयभूत स्वामी के (विष्टपं=वितपं) ताप-दुःखादि से रहित (गृहम् उद् गन्वहि) गृह को उत्तम रीति से प्राप्त हों और (मध्वः पीत्वा) मधुर दुग्धादि का पान या मधुपर्कादि ग्रहण करके (त्रिः)

मनसा, वाचा, कर्मणा (सख्युः सप्त पदे) मित्र के सातवें पद पर (सचेवहि) हम दोनों मिलकर रहें। इस प्रकार वधू वर से कहे। अथवा—(सख्युः त्रिः सप्त पदे सचेवहि) मित्र सखा के ३×७=२१ वें* पद पर दोनों मिलें। सखा होने के सात पद-चरण—१. इषू, २. ऊर्ज, ३. रायस्पोष, ४. मायोभव्य, ५. प्रजा, ६. ऋतु, ७. सख्यभाव। (पारस्कर गृ०)

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रिय-मेधासः) अन्न, वाणी आदि के प्रिय जनो! हे (पुत्रकाः) ज्ञानों के रक्षक वीर पुरुषो! आप लोग उस परमेश्वर को (अर्चत, प्र अर्चत, अर्चत) स्तुति करो, खूब स्तुति करो, स्तुति करते रहो। (उत अर्चन्तु) आप लोग अर्चना करो, उसको (धृष्णु पुरं न) शत्रु पराजय में समर्थ दृढ़ दुर्ग के समान सबका पालक जानकर उसकी (अर्चत) पूजा करो।

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥

भा०—(गर्गरः अव स्वराति) उपदेष्टा अधीनों को उपदेश करता है, (गोधा) वाणी का धारक जन भी ज्ञान को (परि सनिष्वणत्) सब

---

* यह २१वां पद कौन-सा है? इस सम्बन्ध में सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण (१।३०) का वचन उद्धृत किया है—त्रिःसप्तेत्यनेन देवलोकानामुत्तममेकविंशस्थानमुच्यते। आदित्यस्यैकविंशत्वात्। तथा च ब्राह्मणम्। द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोकाः असावादित्य एकविंश इति। इसके अनुसार भी १२ मासों, पांचों ऋतुओं और तीनों लोकों में दोनों संग रहें यह अभिप्राय निकलता है।

और उपदेश करे। (पिङ्गा) मनोहर शब्द बोलने में चतुर गायक मण्डली वा वादित्रमण्डली भी (इन्द्राय) उस परमेश्वर की (उद्-यतम्) उत्तम (ब्रह्म) वेद-स्तुति का (परि चनिष्कदत्) सर्वत्र वर्णन करे।

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जैसे (अनपस्फुरः) न बिदकने वाली (सुदुघाः) सुख से दोहने योग्य (ऐन्यः) श्वेत वर्ण की गौएं (आपतन्ति) आ जाती हैं तब (इन्द्राय सोमं पातवे) स्वामी के निमित्त दुग्धपान के लिये (अपस्फुरं) उद्वेगरहित शान्त गौ को ले लिया जाता है वैसे ही (एन्यः) शुद्ध चरित्र वाली प्रजाएं (यत्) जो (अनपस्फुरः) अ-भ्रष्टमार्ग वाली, उत्पथ में न जाने वाली और (सु-दुघाः) धनादि से पूर्ण और राजा को भी धनादि से पूर्ण करने वाली हों। उनमें से भी (इन्द्राय सोमं पातवे) राजा के ऐश्वर्य की रक्षार्थ (अप स्फुरं) अराजकतादि से रहित प्रजा को (गृभायत) वश करो। इति षष्ठो वर्गः॥

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव॥११

भा०—(इन्द्रः अपात्) शत्रुनाशक पुरुष प्रजा की रक्षा करे, (अग्निः अपात्) तेजस्वी पुरुष प्रजा की रक्षा करे। (विश्वे देवाः) सब विद्वान् जन (अमत्सत) सन्तुष्ट होकर रहें, (इह वरुणः इत् क्षयत्) यहां इस राष्ट्र में वरुण, सबसे वरणीय श्रेष्ठ पुरुष ही निवास करे। (तम्) उसकी (आपः) आप्त प्रजाएं भी (वत्सं संशिश्वरीः इव) बछड़े को उत्तम शिशुओं वाली गौओं के समान, प्रेम-युक्त (संशिश्वरीः) शिशुवत् शरण में प्राप्त होकर (वत्सं) सबको बसाने में समर्थ वा (वत्सं) अभिवादन योग्य पुरुष को पाकर (अभि अनूषत) उसकी साक्षात् स्तुति किया करें।

सुदेवो अंसि वरुण यस्यं ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरंन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ १२ ॥

भा०—हे (वरुण) वरणीय आचार्य ! (यस्य ते) जिस तेरे (काकुदं अनु) तालु के प्रति (सप्त) सातों छन्द (सिन्धवः) बहते नदधारों के समान (सुषिराम् सूर्म्यं) छिद्रवती लोह की नली में जल धारा के समान (अनुक्षरन्ति) बहती हैं यह तू (सुदेवः असि) उत्तम ज्ञान-प्रकाशक है ।

यो व्यतीँरफांणयत् सुयुंक्तां उपं दाशुषें ।
तक्वा नेता तदिद्वपुंरुपमा यो अमुंच्यत ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो विद्वान् पुरुष (दाशुषे) दाता के लाभार्थ (सुयुक्तान्) उत्तम पदों पर नियुक्त (व्यतीन्) विशेष वेगवान्, बल युक्त साधनों वाले जनों को (अफाणयत्) संचालित करता है, (तद् इत्) वही (तक्वः) शत्रुहन्ता, (नेता) नायक, (वपुः) शत्रु को उखाड़ने में समर्थ है (यः) जो (उपमा) सर्वोपमान योग्य (अमुच्यत) बन्धन मुक्त होता है और अन्य को भी मुक्त करता है ।

अतीदुं शुक्र ओंहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत्कुनीनं ओदुनं पच्यमांनं परो गिरा ॥ १४ ॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी वीर और विद्वान् (विश्वाः द्विषः अति) समस्त द्वेषियों को अतिक्रमण कर, उनसे बढ़कर (शक्रः) शक्तिशाली होकर (अति इत् उ) अति अधिक ही (ओहते) बढ़ जाता है । जैसे (पच्यमानं ओदनं) पकते हुए चावल को कान्तियुक्त अग्नि (भिनत्) भेद देता है, उसका दाना दाना अलग कर देता है और जैसे (कनीनः) कान्तियुक्त सूर्य (पच्यमानं ओदनं) प्रकट हुए मेघ को (भिनत्) तेज से छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही गुरु से तत्वदर्शी विद्वान् (कनीनः)

तेजस्वी कनिष्ठ शिष्य होकर (गिरा) वाणी द्वारा (पच्यमानं) प्रकट किये जाते हुए (ओदनं) प्रजापति के (परः) परम स्वरूप को (भिनत्) और अधिक खोले, उसको लक्ष्यवत् भेदे। पच्यमानं—पचि विस्तारवचने।

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्।

स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १५ ॥

भा०—(अर्भकः कुमारकः न) जैसे छोटे शरीर, अल्प आयु का युवराज (नवं रथं अधि तिष्ठन्) नये रथ पर बैठ कर (मात्रे पित्रे) माता पिता की प्रसन्नता के लिये (विभु-क्रतुम्) बड़े सामर्थ्यवान् (महिषं मृगं) बड़े अश्वों को (पक्षत्) वश कर लेता है। वैसे ही राजा भी (नवं रथं अधितिष्ठन्) नये रथवत् रमणीय, ऐश्वर्ययुक्त राज्य को अधिष्ठित होता हुआ (विभु-क्रतुम्) अधिक प्रज्ञावान् (महिषं) पूज्य (मृगं) चरित्र-वान् पुरुष को (मात्रे पित्रे) माता पिता के योग्य पद के निमित्त अपने ऊपर (पक्षत्) स्वीकार करे।

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।

अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥१६

भा०—हे (सु-शिप्र) उत्तम नासिका वा हनू, मुकट और रूप वाले! हे (दम्पते) जाया-पालक गृहपते! तू (हिरण्ययम्) हितकारी रमणीय (रथं) रथवत् गृहस्थ रथ पर (आतिष्ठ तु) विराज। पत्नी कहती है—(अध) और हम दोनों (द्युक्षं) अति दीप्तियुक्त (सहस्र-पादं) दृढ़ चरण या आधार वाले (अरुषं) रोग-रहित (स्वस्ति-गाम्) कुशल, सुख-शान्तिदायक वाणी से युक्त, (अनेहसम्) पाप चेष्टा से रहित, रथवत् गृह, या उत्तम व्यवहार को (सचेवहि) धारण करें।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।

अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १७ ॥

भा०—जैसे राजा के (सु-धितम्) उत्तम रीति से धारित (अर्थं) ऐश्वर्यं को (एतवे) प्राप्त करने के लिये (दावने) दान देने के लिये (आवर्तयन्ति) पुनः २ आपस में लेते-देते हैं और इस प्रकार (नमस्विनः) अन्नादिवान् प्रजाजन (स्वराजम्) अर्थ-धनादि से प्रकाशित राजा की (उपासते) उपासना करते हैं। वैसे ही (अस्य सुधितं अर्थं एतवे दावने) इस प्रभु के सुष्ठु धारित अभिप्राय को जानने के लिये भी (यत्) जो उसका (आवर्तयन्ति) पुनः-पुनः अभ्यास करते हैं वे (घ) निश्चय से (इत्था) इस प्रकार (नमस्विनः) विनीत होकर (स्वराजम् उप आसते) स्वयं प्रकाशित प्रभु की उपासना करते हैं।

अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सः प्रि॒यमे॑धास एषाम्।
पूर्वा॒मनु॒ प्रय॑तिं वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आशत ॥१८॥७॥७॥

भा०—जैसे (प्रिय-मेधासः हित-प्रयसः वृक्तबर्हिषः जनाः पूर्वाम् प्रयतिं अनु आशत) अन्न के प्रियजन अपने गृह में अन्नसंग्रह और क्षेत्र में अन्नवपन कर बाद धान्य काट कर अपने पहले प्रयत्न के अनुसार उसका उपभोग करते हैं वैसे ही (एषाम्) इन प्रजा-जनों के जीवों में से (प्रिय-मेधासः) ज्ञान और सत्संग के प्रिय जन (प्रत्नस्य ओकसः अनु) अपने पुराने गृह, देह के अनुरूप, (हितप्रयसः) उत्तम २ प्रयास वा कर्मफल में बद्ध होकर (वृक्त-बर्हिषः) कुशाओं के तुल्य अपने कर्म-फलों को काट कर, (पूर्वाम् प्रयतिम् अनु) पहले किये प्रयत्न के अनुरूप (आशत) कर्मफल, सुख-दुखादि भोग करते हैं। इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

[७०]

पुरुहन्मा ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ पादनिचृद् बृहती। ५, ७ विराड् बृहती। ३ निचृद् बृहती। ८, १० आर्ची स्वराड् बृहती। १२ आर्ची बृहती। ९, ११ बृहती। २, ६ निचृत् पंक्तिः। ४ पंक्तिः। १३ उष्णिक्। १५ निचृदुष्णिक्। १४ भुरिगनुष्टुप्। पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

भा०—(यः चर्षणीनां राजा) जो सब मनुष्यों में से सूर्यवत् दीप्तिमान् (रथेभिः याता) रथों से प्रयाण करने हारा, (अध्रिगुः) जिसके आगे बढ़ने को कोई न रोक सके, ऐसा नायक, (यः विश्वासां पृतनानां) जो समस्त सेनाओं का नाश करने वाला, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, (वृत्रहा) विघ्नकारी दुष्टों को दण्ड देने वाला है मैं (गृणे) उसकी स्तुति करूं।

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

भा०—हे (पुरु-हन्मन्) बहुत शत्रुओं के नाश में समर्थ! तू (अवसे) रक्षा के लिये (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यपद को (शुम्भ) सुशोभित कर (यस्य) जिसके (वि-धर्तरि) विशेप रूप से धारक के अधीन (द्विता) दो स्वरूप हैं, एक भीम जो (हस्ताय) शत्रुओं के हनन करने के लिये (वज्रः) बलवीर्य को (प्रतिधायि) धारण करता है और दूसरा कान्त जो (महः दर्शतः) बड़ा दर्शनीय और (दिवे सूर्यः न) आकाश में सूर्यवत् और पृथिवी पर तेजस्वी है।

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णवोजसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उसको (कर्मणा) कर्म द्वारा (नकिः नशत्) कोई प्राप्त नहीं कर सकता (यः सदावृधम्) जो सदा बढ़ाने वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यज्ञैः) यज्ञों, सत्संगों से (विश्व-गूर्तम्) सर्व स्तुत्य (ऋभ्वसम्) महान्, (अधृष्टं) अपराजित और (धृष्णु-ओजसम्) पराजयकारी बल से सम्पन्न (चकार) करता है वही उस तक पहुँचता है।

अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ ४ ॥

भा०—(यस्मिन् जायमाने) जिसके प्रादुर्भाव होते हुए (उरुज्रयः) अति वेग से युक्त,(महीः) बहुत सी भूवासिनी प्रजाएं वा सेनायें,(धेनवः) वत्स के प्रति गौवों के समान स्नेहयुक्त होकर, वा वाणियां उस (अषाढं) अपराजित, (उग्रं) बलवान् (पृतनासु सासहिं) संग्रामों में विजयकारी की (सं अनोनवुः) मिलकर स्तुति करती हैं, (क्षावः क्षामः) तेजस्वी सेनाएं वा कामनावान् प्रजाएं भी उसकी (सं अनोनवुः) मिलकर स्तुति करती हैं।

यद् द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥५॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते शतं द्यावः) तेरी सैकड़ों तेजस्विनी सेनाएं हों, (उत) और (शतं भूमीः स्युः) सैकड़ों भूमियें हों। हे (वज्रिन्) बलवीर्यशालिन्! (सहस्रं सूर्याः) हजारों सूर्य भी (न त्वा अनु स्युः) तेरे बराबर नहीं, (जातं त्वा अनु रोदसी) उत्पन्न या प्रकट हुए तेरे समान दुष्टों को रुलाने वाली सेना भी (न अष्ट) तुझे नहीं व्याप सकती, तेरा स्थान नहीं पा सकती। इत्यष्टमो वर्गः॥

आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृषन्विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न्गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ञ्चि॒त्राभि॑रू॒तिभिः॑ ॥६॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! प्रजा पर सुखों और शत्रु पर शस्त्र-अस्त्रों के वर्षक! हे (शविष्ठ) सर्वाधिक शक्तिशालिन्! तू (महिना शवसा) महान् बल से (विश्वा) समस्त (वृष्णा) बलयुक्त कार्यों और सैन्यों को (आ पप्राथ) विस्तारित कर और हे (वज्रिन्) बलशालिन्! हे (मघवन्) धनशालिन्! (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत रक्षाकारिणी क्रियाओं, सेनाओं से (गोमति व्रजे) भूमियों से युक्त कार्य या समूह में (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर।

न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥ ७ ॥

भा०—हे (दीर्घायो) आयुष्मन् ! दीर्घ जीवन वाले (अदेवः मर्त्यः) अदानशील व दाता से रहित मनुष्य (सीम्) सब प्रकार की (इषं न आपत्) अन्न और शक्ति को नहीं प्राप्त करता । (यः) जो (एतग्वा चित्) श्वेत वर्ण के वा शुद्ध चरित्रयुक्त स्त्री पुरुषों को भी (एतशा युयोजते) उत्तम दो अश्वों के समान सन्मार्ग में चलाता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष (हरी युयोजते) स्त्री पुरुषों को वश करता है ।

तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (गाधेषु) प्रतिष्ठा के कर्मों में (यः आरणेषु) सब आनन्द प्रद अवसरों में (हव्यः) स्तुति योग्य है और जो (वाजेषु हव्यः अस्ति) संग्रामों में स्तुति योग्य है (तम्) उस (महः महाय्यं) महान् पूज्य (दानाय सक्षणिम्) दान पाने के लिये प्राप्त करने योग्य, वा शत्रु के विनाशार्थ शक्तिशाली को (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' जानो ।

उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) माता पितावत् प्रजा को बसाने हारे ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (महे राधसे) बड़े भारी धन के लिये (नः उत् सु मृशस्व उ) हमें उत्तम रीति से प्राप्त कर, हमें उन्नत कर और (मह्यै मघत्तये) बहुत ऐश्वर्य देने के लिये (उत् उ सु) हमें उठा और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (महे श्रवसे उत्) बड़े यश के लिये हमें उठा ।

त्वं न इन्द्र ऋतयुस्त्वानिदो नि तृम्पसि ।
मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वोर्नि दासं शिश्नथो हथैः ॥१०॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (नः) हमारे (ऋत-युः) ज्ञान, यज्ञादि को चाहने वाला है। तू (त्वा-निदः) अपने निन्दकों को (नितृम्पसि) विनष्ट करता है। हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू (ऊर्वोः) जंघाओं पर हमें, बालक को पिता के तुल्य अथवा (ऊर्वोः) विशाल बाहुओं के आश्रय पर (वसिष्व) बसा और (दासं) विनाशक दुष्ट को (हथैः) शस्त्रों से (नि शिश्नथः) शिथिल कर। इति नवमो वर्गः॥

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम्।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः॥११॥

भा०—(सखा) प्रजा का मित्र (पर्वतः) पालनकारक साधनों से युक्त होकर, (पर्वतः) मेघवत् शस्त्रवर्षी और पर्वत के समान अचल होकर, (सु-घ्नाय) अच्छी प्रकार दण्ड देने के लिये (दस्युं) दुष्ट पुरुष को (स्वः) सुख से (अव दुधुवीत) कंपा कर गिरा दे। इसी प्रकार वह (अन्य-व्रतम्) शत्रु के समान कर्म वाले (अमानुषम्) मनुष्य से भिन्न पशुवत् और निर्दय, (अयज्वानं) अदानशील, (अदेवयुम्) दाता, विद्वानों वा उत्तम गुणों को न चाहने वाले को भी (अव दुधुवीत) कंपा कर नीचे गिरा दे।

त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने।
धानानां न सं गृभायास्मयुर्द्विः सं गृभायास्मयुः॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (त्वं) तू (नः) हमें (दावने) देने के लिये (अस्मयुः) हमारा हितैषी होकर (आसां) इन (धानानां) धाना अर्थात् लाजाओं के समान उज्ज्वल, पुष्टिकारक गौवों और अन्न-समृद्धियों को (सं गृभाय) संग्रह कर अपने (हस्ते संगृभाय) हाथ में, वश में रख और (अस्मयुः) हमें चाहता हुआ तू उनको (द्विः संगृभाय) दो बार या दुगुना भी कर संग्रह कर।

सखा॑यः क्रतु॑मिच्छत क॒था रा॑धाम श॒रस्य॑ ।
उप॑स्तुतिं भो॒जः सू॒रियो अह्र॑यः ॥ १३ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगणो ! आप लोग (क्रतुम् इच्छत) कर्म की इच्छा करो, हम लोग (शरस्य) बाणवत् शत्रुनाशक वीर पुरुष या बल को (कथा) किसी प्रकार से भी (राधाम) वश करें। (यः) जो (भोजः) सबका रक्षक, भोक्ता, (सूरिः) विद्वान् (अह्रयः) अपराजित है उसकी (उप-स्तुतिम् इच्छत) स्तुति करना चाहो।

भूरि॑भिः समह॒ ऋषि॑भिर्ब॒र्हिष्म॑द्भिः स्तविष्यसे ।
यदि॒त्थमेक॑मेक॒मिच्छर॑ व॒त्सान्प॑रा॒दद॑: ॥ १४ ॥

भा०—हे राजन् ! हे (समह) पूज्य ! हे (शर) शत्रु नाशक तू (बर्हिष्मद्भिः) आसनों, यज्ञों वा धन धान्यादि से सम्पन्न, (भूरिभिः) इस लोक वा प्रजा से युक्त बहुत से (ऋषिभिः) विद्वान् पुरुषों से भी (स्तविष्यसे) स्तुति किया जाता है। (यद्) जो तू (इत्थम्) इस प्रकार (एकम् एकम्) एक २ करके (वत्सान्) वत्सों के समान, इस लोक में बसे स्तुतिकारी नम्रजनों को (परा ददः) अभिष्ट सुखों से युक्त करे।

क॒र्ण॒गृह्या॑ म॒घवा॑ शौरदे॒व्यो व॒त्सं न॑स्त्रि॒भ्य आन॑यत् ।
अ॒जां सू॒रिर्न धात॑वे ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(सूरिः) विद्वान् पुरुष (धातवे) दुग्धपान कराने के लिये जैसे (अजां कर्णगृह्य) बकरी के कान पकड़ कर (वत्सं प्रति आनयत्) बच्छड़े के पास लाता वा बच्चे को कान पकड़ कर दूध पिलाने के लिये बकरी के पास ले जाता है वैसे ही (शौर-देव्यः) शूर और विजीगीषु (मघवा) ऐश्वर्यवान् राजा (सूरिः) विद्वान् के समान (नः) हमारे (वत्सं) राष्ट्र में बसे प्रजाजन को और (अजां) शत्रु को उखाड़ देने वाली सेना को भी (कर्णगृह्य) कान से पकड़ कर अर्थात् कर्ण से श्रवण करने

योग्य उपदेश, आज्ञा-वचन सुनकर (त्रिभ्यः आनयत्) तीनों प्रकार के कष्टों से परे रक्खे। इति दशमो वर्गः ॥

[७१]

सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् गायत्री। २, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री। ३, ५ गायत्री ॥ १०, १३ निचृद बृहती। १४ विराड् बृहती। १२ पादनिचृद् बृहती। ११, १५ बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः।
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्निवत् अग्रणी! (त्वं) तू (नः) हमारी (विश्वस्याः अरातेः) सब शत्रु सेना (उत) और (द्विषः मर्त्यस्य) शत्रु मनुष्य से भी (महोभिः) बड़े धनों द्वारा (पाहि) रक्षा कर।

नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात।
त्वमिदसि क्षपावान् ॥ २ ॥

भा०—हे (प्रिय-जात) उत्पन्न बालकवत् प्रजाओं को तृप्त, सुखी करने हारे राजन्! (वः) तुझ पर (पौरुषेयः मन्युः) मनुष्यों का क्रोध भी (नहि ईशे) नहीं वश कर सकता। (त्वम् इत् क्षपावान् असि) तू ही शत्रुओं का नाश कर देने वाली भारी सेनादि का स्वामी (असि) है।

स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे।
रयिं देहि विश्ववारम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऊर्जः नपाद्) बल को न गिरने देने हारे! हे (भद्र-शोचे) कल्याणकारी कान्ति वा तेज से सम्पन्न! (सः) वह तू (नः) हमें (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषों द्वारा (विश्व-वारं) सबसे वरण करने योग्य (रयिं) धन (देहि) प्रदान कर।

न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः। यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! प्रभो! तू (यं दाश्वांस) जिस दानशील की (त्रायसे) रक्षा करता है (तं मर्तं) उसको (अरातयः) समस्त शत्रु भी (रायः) धन से (नः युवन्त) पृथक् नहीं कर सकते।

यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय।
स तवोती गोषु गन्ता ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन्! हे (अग्ने) तेजस्विन्! (मेध-सातौ) संग्राम वा यज्ञ में (त्वं) तू (धनाय हिनोषि) धन प्राप्ति के लिये उत्साहित करता है। (सः) वह (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहकर (गोषु गन्ता) वाणियों, भूमियों पर भी वश करने वाला होता है। इत्येकादशो वर्गः॥

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय। प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक! (त्वं) तू (पुरु-वीरं) बहुत पुत्रों, वीरों सहित (रयिं) ऐश्वर्य को (दाशुषे मर्त्ताय) दानशील मनुष्य को देता है। वह तू (नः वस्यः अच्छ नय) हमें उत्तम धन दे।

उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः। दुराध्ये मर्ताय ॥७॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (दुराध्ये मर्त्ताय) दुष्ट चिन्तक मनुष्य और (अघायते) पापकारी, हिंसक के हाथों (मा परा दाः) मत दे, उसके हितार्थ हमें मत त्याग।

अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत। त्वमीशिषे वसूनाम् ॥८

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! (ते देवस्य रातिम्) तुझ दाता के दिये दान को (अदेवः माकिः युयोत) अदानशील व्यक्ति हम से पृथक् न करे। (त्वम् वसूनां ईशिषे) तू ऐश्वर्यों और मनुष्यों का स्वामी है। अर्थात् हमारे पारस्परिक लेन-देन की न्यायपूर्वक व्यवस्था कर।

स नो वस्व उप॑ मास्यूर्जो॑ नपान्माहि॑नस्य।
सखे॒ वसो जरितृभ्यः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (ऊर्जः नपात्) बल को नष्ट न होने देने वाले! हे (वसो) प्रजा को बसाने हारे! न्यायकारिन्! हे (सखे) स्नेहकारिन्! मित्र! तू (नः) हममें से (जरितृभ्यः) उत्तम स्तुतिशील विद्वान् जनों को (माहिनस्य वस्वः उपमासि) उत्तम धन, ज्ञान प्रदान कर।

अच्छा॑ नः शीरशो॑चिषं॒ गिरो॑ यन्तु दर्श॑तम्।
अच्छा॑ य॒ज्ञासो॒ नम॑सा पु॒रू॒वसुं॑ पुरुप्रश॒स्तमू॒तये॑ ॥१०॥१२॥

भा०—(नः गिरः) हमारी वाणियां (शीर-शोचिषं) व्यापक तेज वाले, (दर्शतम्) दर्शनीय को (अच्छ यन्तु) लक्ष्य करके प्रकट हों और (ऊतये) रक्षा के निमित्त हमारे (यज्ञासः) यज्ञ, सत्संग, आदर-सत्कार भी (नमसा) विनयपूर्वक (पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त और बहुतों से प्रशंसित स्वामी को प्राप्त हों। इति द्वादशो वर्गः।

अ॒ग्निं सू॒नुं सह॑सो जा॒तवे॑दसं दा॒नाय॒ वार्या॑णाम्।
द्वि॒ता यो भू॒दमृ॑तो मर्त्ये॒ष्वा होता॑ म॒न्द्रत॑मो वि॒शि ॥ ११ ॥

भा०—(सहसः सूनुं) बल के उत्पादक (जात-वेदसं) ऐश्वर्यवान्, (अग्निं) नायक को मैं (वार्याणां दानाय) वरण योग्य श्रेष्ठ धनदान करने के लिये जानूं। (यः) जो (मर्त्येषु) मनुष्यों में भी (अमृतः) अमर (भूत्) होता है और (विशि) प्रजाओं में (मन्द्रतमः) अति हर्ष-युक्त और (होता) ज्ञानादि का दाता होता है इस प्रकार (द्विता) उसके भी दो रूप होते हैं।

अ॒ग्निं वो॑ देवय॒ज्यया॒ग्निं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे।
अ॒ग्निं धी॒षु प्र॑थ॒मम॒ग्निमर्व॑त्य॒ग्निं क्षैत्रा॑य॒ साध॑से ॥ १२ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (वः) आप लोगों को मैं (देव-यज्यया) पर-

मेश्वर की पूजा के रूप में (अग्निं) अग्नि का उपदेश देता हूँ। (प्रयति अध्वरे) यज्ञ के प्रवृत्त होने पर भी (अग्निं) अग्नि का आश्रय लो। (धीषु) सब कामों में (प्रथमम्) सर्व प्रथम (अग्निं) इस प्रभु का स्मरण करो। (अर्वति अग्निं) वेगवान् अश्व रथादि के निमित्त भी अग्नि का प्रयोग जानो। (क्षेत्राय साधसे) क्षेत्र अर्थात् देह में रहने वाले आत्मा की प्राप्ति के लिये भी (अग्निम्) अग्नि को दृष्टान्त रूप से जानें।

अ॒ग्निरि॒षां स॒ख्ये द॑दातु न॒ ईशे॒ यो वार्या॑णाम् ।
अ॒ग्निं तो॒के तन॑ये॒ शश्व॑दीमहे॒ वसुं॒ सन्तं॑ तनू॒पाम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः वार्याणाम् ईशे) जो वरण करने योग्य धनों का स्वामी है वह (अग्निः) तेजस्वी प्रभु (सख्ये) स्नेही मित्र को (इषां ददातु) अन्न दे। हम (वसु) सबके भीतर बसे (सन्तं) सत्स्वरूप (तनूपाम्) सब देहों के पालक (अग्निम्) अग्नि, व्यापक प्रभु को (तोके तनये शश्वत् ईमहे) पुत्र पौत्रादि के कल्याणार्थ सदा याचना करें।

अ॒ग्निमी॑ळि॒ष्वाव॑से॒ गाथा॑भिः शी॒रशो॑चिषम् ।
अ॒ग्निं रा॒ये पु॑रुमीळ्ह श्रु॒तं न॒रो॒ऽग्निं सु॑दी॒तये॑ छ॒र्दिः ॥ १४ ॥

भा०—हे (पुरुमीढ) बहुत धनों के दातः! तू (गाथाभिः) गेय वेद-वाणियों द्वारा (शीर-शौचिषम् अग्निम्) व्यापक तेज वाले ज्ञानी प्रभु की ही (ईडिष्व) स्तुति कर। (राये) धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये भी (श्रुतं) बहुश्रुत विद्वान् अग्नि की (ईडिष्व) स्तुति कर और (नरः) मनुष्यगण भी उसी (अग्निं) तेजस्वी की स्तुति करते हैं। वह (सुदीतये छर्दिः) उत्तम तेज वाले के लिये भी, दीपक के लिये गृह के समान आश्रय है।

अ॒ग्निं द्वेषो॒ योत॒वै नो॑ गृणीमस्य॒ग्निं शं योश्च॒ दात॑वे ।
विश्वा॑सु वि॒क्ष्व॑वि॒तेव॒ हव्यो॒ भुव॒द्वस्तु॑र्ऋषू॒णाम् ॥ १५ ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (नः द्वेषः दातवे) अपने द्वेष भावों को दूर करने के लिये (अग्निं गृणीमसि) सर्वव्यापक सर्वज्ञ प्रभु की उपासना करें और (शंयोः च दातवे) शान्ति और दुःख नाश करने के लिये भी उसी (अग्नि) तेजोमय का ध्यान करें। वह (विश्वासु विक्षु) समस्त प्रजाओं में (हव्यः भवत्) स्तुत्य है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[७२]

हर्यत प्रागाथ ऋषिः॥ अग्निर्हवींषि वा देवता॥ छन्दः—१, ३, ८—१०, १२, १६ गायत्री। २ पादनिचृद् गायत्री॥ ४—६, ११, १३—१५ १७ निचृद् गायत्री। ७, १८ विराड् गायत्री॥ अष्टादशर्चं सूक्तम्॥

ह॒विष्कृ॑णुध्व॒मा ग॑मदध्व॒र्युर्व॑नते॒ पुनः॑। वि॒द्वाँ अ॑स्य प्र॒शास॑नम्॥१

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप (हविः कृणुध्वम्) ज्ञान आदि का सम्पादन वा अन्न का साधन करो (अध्वर्युः आगमत्) हिंसा-भाव रहित यज्ञ का संचालक आवे और वह (विद्वान्) विद्वान् ही (अस्य) इस स्वाध्यायादि यज्ञ का (प्र-शासनं वनते) उत्तम शासन-पद प्राप्त करे।

नि ति॒ग्मम॒भ्यं॑१॒ शुं सीद॒द्धोता॑ म॒नावधि॑।
जु॒षा॒णो अ॑स्य स॒ख्यम्॥ २॥

भा०—(तिग्मं अंशुं अभि) तीक्ष्ण, व्यापक, ज्ञानवान् पुरुष के सम्मुख (होता) ज्ञान ग्रहण कराने वाला पुरुष (मनौ अधि) मननशील शिष्य के ऊपर (नि सीदत्) विराजे और वह (अस्य सख्यं जुषाणः) इसके प्रेम-भाव को प्राप्त करने वाला हो।

अ॒न्तरि॑च्छन्ति॒ तं जने॑ रु॒द्रं प॒रो म॑नी॒षया॑।
गृ॒भ्णन्ति॑ जि॒ह्वया॑ स॒सम्॥ ३॥

भा०—(जने अन्तः) प्रत्येक जन, उत्पन्न प्राणी के भीतर विद्यमान (परः) चक्षु से परे (रुद्रं) रोगादि के नाशक, पीड़ादि के प्रतिबन्धक,

विद्युत् अग्नि या तेजोरूप आत्मतत्व को भी (मनीषया) बुद्धि द्वारा जानना चाहते हैं और (ससम्) प्रसुप्त रूप से व्यापकवत् विद्यमान (गिह्वया गृणन्ति) जिह्वा अर्थात् ज्वालावत् विद्युत् की धारा से जैसे अग्नि अर्थात् विद्युत् को ग्रहण करते, वैसे ही जिह्वा अर्थात् वाणी द्वारा उस चेतन को ग्रहण करते, उसका ज्ञान करते और अन्यों को कराते हैं।

जा॒म्य॑तीतपे॒ धनु॑र्वयो॒धा अ॑रुह॒द्वन॑म्। दृ॒षदं॑ जि॒ह्वयाव॑धीत् ॥४॥

भा०—अग्नि, विद्युत् (जामि) अति अधिक (अतीतपे) तप्त होता है और (धनुः) आकाश में ही (वयोधाः) बल को धारण करता हुआ, (वनम् अरुहत्) जल में रहता है, वह (दृषदं) मेघ को या शिला को भी (जिह्वया) ज्वाला वा धारा से ही (अवधीत्) आघात करता है, तोड़ डालता है।

चर॑न्व॒त्सो रुश॑न्नि॒ह नि॑दा॒तारं॒ न वि॑न्दते।
वेति॒ स्तोत॑व अ॒म्ब्य॑म् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—जैसे (वत्सः) बछड़ा (रुशन् चरन्) उछलता-कूदता हुआ (निदातारं न विन्दते) किसी रोकने वाले को न पावे वैसे ही अग्नि, विद्युत् जब (इह) इस अन्तरिक्ष में (रुशन्) चमकता हुआ, (चरन्) विचरता है, किसी (नि दातारं) बाधक या पकड़ लेने वाले पदार्थ को नहीं प्राप्त करता, तब तक वह (अम्ब्यम्) जल में उत्पन्न वा जल के उत्पादक प्रकाश वा शब्दमयी ध्वनि को (स्तोतवे) अपने वर्णन करने के लिये, (वेति) प्रकट करता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उ॒तो न्व॑स्य॒ यन्म॒हद॑श्वा॒व॒द्योज॑नं बृ॒हत्। दा॒मा रथ॑स्य॒ ददृ॑शे ॥६॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य) इस विद्युत् रूप अग्नि को (रथस्य अश्ववत्) रथ के घोड़े के समान (यत्) जो (महत् योजनं) बड़ा बल-पूर्वक जोड़ने का कार्य है उसको (बृहत् दामा) बड़ा भारी दमन करने वाला विद्वान् ही (ददृशे) साक्षात् करता है।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥७॥

भा०—(सप्त) सात मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक का दोहन करते हैं और (द्वा पञ्च) दो पांचों को (सिन्धोः स्वरे तीर्थे अधि) सिन्धु के स्वयं प्रकाशमान् तीर्थ अर्थात् मार्ग में (उप सृजतः) प्रेरित करते हैं। अर्थात् अध्यात्म में—प्राण-अपान, दोनों पांच ज्ञानेन्द्रियों को 'सिन्धु' अर्थात् प्राण या रक्त की नाड़ी के (स्वरे तीर्थे अधि) स्वयं प्रकाशमान मार्ग मेरुदण्ड में स्थित होकर प्रेरित करते हैं। वे सातों मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक आत्मा या चेतनारूप गौ को दोहन करते हैं। उसका तत्त्व प्राप्त करते हैं।

आ दुशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत्।
खेदया त्रिवृता दिवः ॥ ८ ॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) सूर्य या विद्युत् (त्रिवृता खेदया) तीन प्रकार के व्यापार वाली दीप्ति से (दशभिः) दशों दिशों से आघात कर (दिवः कोशं आच्यावयति) अन्तरिक्षस्थ कोश या मेघ से जल पातन कराता है वैसे ही (इन्द्रः) यह आत्मा (विवस्वतः कोशम्) विविध वसु, प्राणों वाले इस देहरूप अन्नमय कोश को (दिवः) अपनी दीप्ति की (त्रिवृता) त्रिगुणात्मक (खेदया) रज्जु-सदृश प्रेरणा से (अचुच्यवीत्) चलाता है।

परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी। मध्वा होतारो अञ्जते ॥९॥

भा०—यह (त्रि-धातुः) वात, पित्त, कफ तीनों धातुओं से धारित देह (परि-अध्वरं) अविनाशी आत्मा के बल पर, (नवीयसी) सदा नयी शक्ति से (जूर्णिः) वेगयुक्त होकर (परि एति) सर्वत्र गति करता है और (होतारः) अन्न ग्रहण करने वाले प्राणी उस शक्ति को (मध्वा) अन्न-जल-द्वारा (अञ्जते) प्राप्त करते हैं।

सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानम्।
नीचीनबारमक्षितम् ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—जैसे (उच्चा-चक्रम्) जिसके ऊपर चक्र हो और (परिज्मानम्) चारों ओर भूमि हो और (नीचीनबारम्) नीचे पानी के द्वार हों ऐसे (अक्षितम्) अक्षय जल के भण्डार (अवतम्) कूप को (नमसा) अन्न के हेतु वा जल से (सिञ्चन्ति) सींचते हैं, वा उस कूप से 'अक्षित' अन्न के खेत की सिंचाई करते हैं। वैसे ही (२) यह देह आत्मा की रक्षा के लिये होने से 'अवत' है, उसका व्यवस्थापक यन्त्र चक्र शिर सर्वोपरि लगा है वह 'उच्चाचक्र' है, चारों ओर उसकी गति होने से 'परिज्मा' है। गुदा, मूत्रादि मार्ग नीचे के द्वार हैं, वह हृष्ट-पुष्ट 'अक्षित' है उसको लोग (नमसा) अन्न से सींचते, बढ़ाते हैं। 'नमः' इत्युदक नाम।

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु। अवतस्य विसर्जने ॥११॥

भा०—जैसे (पुष्करे) अन्तरिक्ष में (अद्रयः) मेघगण (निषिक्तं) निषेचित (मधु) जल को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अवतस्य) कूप के (विसर्जने) विशेष स्थान में जल को प्रदान करते हैं वैसे ही (पुष्करे) पुष्टि से युक्त राष्ट्र में (नि-सिक्तम्) खूब परिवृद्ध (मधु) मधुमय ऐश्वर्य को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अद्रयः) मेघवत् बलवान् पुरुष (अवतस्य) पालक राजा के (विसर्जने) विशेष निर्माण में प्रयत्न करें।

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १२ ॥

भा०—हे (गावः) वाणियो! वा हे प्रजाओ! आप लोग (अवतं उप अवत) रक्षक के समीप उसकी शरण आवो। (यज्ञस्य) सत्संग और सत्कार-योग्य पुरुष को ये (मही) आकाश और भूमि वा शास्य शासक वर्ग दोनों (रप्सुदा) उत्तम यश, बल देने वाले हों। इस पालक पुरुष के (उभा कर्णा) दोनों कान (हिरण्यया) सुवर्ण के अलंकारों व रमणीय उपदेशों से शोभित हों।

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।
रसा दधीत वृषभम् ॥ १३ ॥

भा०—(रोदस्योः) भूमि और आकाश के बीच (अभि-श्रियं) सर्वतः कान्तिमान्, लक्ष्मी के आश्रय योग्य पुरुष को (सुते) अभिषेक योग्य पद पर (सिञ्चत) अभिषिक्त करो। (रसा) पृथिवी वा बलवती सेना (वृषभं दधीत) बलवान् पुरुष को धारण करे।

ते जानत स्वमोक्यं१ सं वत्सासो न मातृभिः ।
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ १४ ॥

भा०—(वत्सासः मातृभिः न) बछड़े जिस प्रकार माताओं से (मिथः नसन्त) परस्पर मिल जाते हैं उसी प्रकार (ते) वे भी (वत्सासः) राष्ट्र में बसने वाले प्रजागण (स्वम् ओक्यं जानते) अपने देह या स्थान के वासी को जाना करें और वे (जामिभिः) अपने बन्धु जनों के साथ (मिथः बसन्त) परस्पर मिलकर रहें, प्रेम से मिला करें।

उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि ।
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—(स्रक्वेषु बप्सतः) देहावयवों के घटक पदार्थों पर भोजन करने वाले पुरुष के जैसे वीर्यांश (दिवि धरुणं कृण्वते) मूर्धास्थल या मूलांग में स्थिति करते हैं और (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) प्राण और अग्नि के आधार पर अन्न और शक्ति निर्भर है वैसे ही पात्रों द्वारा घृतादि को खाते हुए अग्नि से दग्ध घृत, चरु के अंश (दिवि) आकाश में जाते और (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) सूर्य और अग्नि के आश्रय ही यह पृथिवी का अन्न और प्रकाश होता है। इति षोडशो वर्गः ॥

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः ।
सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥ १६ ॥

भा०—(अरिः) वेगवान् वायु जैसे (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) सूर्य के वेग से आने वाले सात किरणों द्वारा (पिप्युषीम्) पुष्टिकारक (इषम्) अन्न और (ऊर्जं) रस को (सप्तपदीम्) सर्पणशील चरण वाली अन्तरिक्षस्थ गौ रूप मेघ को (अधुक्षत) दोहता है। वैसे ही (अरिः) स्वामी, (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) तेजस्वी व्यवस्थापक की बनाई सात मर्यादाओं द्वारा, (सप्त पदीम्) सर्पणयुक्त पदों वाली, अर्थात् जनों से बसी भूमि से (पिप्युषीम् इषं ऊर्जं) पुष्टिकारक अन्न और बल का (अधुक्षत) दोहन करता है।

सोम॑स्य मित्रावरु॒णोदि॑ता॒ सूर॒ आ द॑दे। तदातु॑रस्य भेष॒जम् ॥१७॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, दिन और रात्रि (उदिता सूरे) सूर्य के उदय होते २ में (सोमस्य आददे) सोम, बलकारक ओषधि रस का सेवन करूं, (तत् आतुरस्य भेषजम्) वही व्याधिपीड़ित के सब रोगों की नाशक चिकित्सा करता है।

उ॒तो न्व॑स्य॒ यत्प॒दं ह॑र्य॒तस्य॑ निधा॒न्य॑म्।
परि॒ द्यां जि॒ह्वया॑तनत् ॥ १८ ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य) इस (हर्यतस्य) कान्तिमान् अग्नि या सूर्य का (यत् पदं) जो पद या स्थान (नि-धान्यम्) भूमि पर विशेष धन वा धान्य के योग्य है, उसको अग्नि ही (द्यां परि) समस्त आकाश में अपनी (जिह्वया) ज्वालामयी जीभ से (परि तनत्) फैलाता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७३]

गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७, ९—११, १६—१८ गायत्री। ३, ८, १२—१५ निचृद्गायत्री। ६ विराड् गायत्री। अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (ऋतायते) सत्य, ज्ञान और अन्नादि के इच्छुक के लिये (उद् ईराथाम्) उत्तम उपदेश करो और (रथं युञ्जाथाम्) रथ के समान ही उत्तम उपदेश करो। (वाम्-अवः) आपका रक्षा और ज्ञान (सत् भूतु) सत्य हो और (अन्ति) हमारे समीप रहे।

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ २ ॥

भा०—(नि-मिषः चित् जवीयसा) पलक की झंपक से भी अधिक वेग वाले (रथेन) रथ से, हे (अश्विना) अश्व-चालन में भी चतुर जनो ! आप लोग (आ यातम्) आवो। (वाम् अवः सत् अन्ति भूतु) आप दोनों की सत् रक्षा हमें सदा प्राप्त हो।

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥३॥

भा०—(अत्रये) विविध तापों से निवृत्त होने के लिये, हे (अश्विना) अश्वोंवत् इन्द्रियों के संयमी जनो ! (घर्मम् हिमेन) दाह को शीतल जल से जैसे दूर किया जाता है वैसे ही सन्तप्त जन को शीतल वचन से (उप स्तृणीतम्) आच्छादित करो, उसका सत्कार करो। शेष पूर्ववत्।

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥

भा०—(कुह स्थः) आप कहीं रहो, (कुह जग्मथुः) कहीं भी जाते हो, (कुह श्येना इव पेतथुः) कभी भी दो श्येनों के समान वेग से, उत्तम आचार चरित्रवान् होकर गमन करो। शेष पूर्ववत्।

यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यत् अद्य) आज के समान (कर्हि कर्हि चित्) कभी कभी आप दोनों (इमं हवं शुश्रूयातम्) इस आह्वान या वचन को श्रवण कर लिया करो। शेष पूर्ववत्।

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः॥ ६॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के समान इन्द्रियों के वशी जनों! आप दोनों (याम-हूतमा) संयम, परस्पर बन्धन को स्वीकार करने वाले हो। आप दोनों के (नेदिष्ठं) अति समीपतम (आप्यम्) बन्धुत्व की मैं (यामि) प्रार्थना करता हूँ। शेष पूर्ववत्।

अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः॥७॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप लोग (अत्रये) इस राष्ट्र आश्रम या गृह में रहने वाले के लिये या तीनों दुःखों से निवृत्त होने के लिये (युवं अवन्तं गृहं कृणुतं) तुम दोनों रक्षा करने वाला घर बनाओ। शेष पूर्ववत्।

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये। अन्ति षद्भूतु वामवः॥८॥

भा०—आप दोनों (वल्गु वदते) उत्तम वचन बोलने वाले (अत्रये) तीनों दुःखों से निवृत्त जन के हितार्थ (ऊतयः) सब प्रकार के संताप और अग्नि के समान कष्टदायी कारण को भी (वरेथे) दूर करो। (वाम् सत् अवः सन्ति भूतु) आपका उत्तम ज्ञान और रक्षण सदा हमें प्राप्त हो।

प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत। अन्ति षद्भूतु वामवः॥९॥

भा०—(सप्त-वध्रिः) सातों प्राणों को शिथिल या दमन करने वाला विद्वान् (आ-शसा) उत्तम आशा से प्रेरित होकर (अग्नेः धाराम्) विद्वान् पुरुष की वाणी को (प्र अशायत) अच्छी प्रकार हृदय में धारण करे। शेष पूर्ववत्।

इ॒हा ग॑तं वृषण्वसू शृणु॒तं म॑ इ॒मं हव॑म् ।
अन्ति॑ षद्भूतु वा॒मव॑: ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलयुक्त प्राणापान वाले जनो ! (इह आगतम्) यहां आवो । (मे इमं हवं शृणुतम्) मेरे इस आमन्त्रण को श्रवण करो । (वाम् अवः) पूर्ववत् । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

किमि॒दं वां॑ पुरा॒ण॒वज्जर॑तोरिव शस्यते ।
अन्ति॑ षद्भूतु वा॒मव॑: ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इदं वां पुराणवत् किम्) यह आप दोनों का पुरातन, सदातन का वेद-ज्ञान किस प्रकार का है ? जो (जरतोः इव) वृद्ध या उपदेष्टा जनों के वचन के समान उपदेश किया जाता है, (अवः सत्०) पूर्ववत् ।

स॒मा॒नं वां॑ स॒जा॒त्यं॑ स॒मा॒नो बन्धु॑रश्विना ।
अन्ति॑ षद्भूतु वा॒मव॑: ॥ १२ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् परस्पर बद्ध स्त्री पुरुषो ! (वां सजात्यं समानं) आप दोनों की उत्पत्ति एक समान और (बन्धुः समानः) आप दोनों का बन्धुत्व समान हो । शेष पूर्ववत् ।

यो वां॒ रजां॑स्यश्विना॒ रथो॑ वि॒याति॒ रोद॑सी ।
अन्ति॑ षद्भूतु वा॒मव॑: ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगयुक्त साधनों और अश्वादि के ज्ञाता जनो । (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ (रजांसि वि-याति) नाना लोकों को प्राप्त होता है, वही (रोदसि वि-याति) आकाश और पृथिवी पर भी विशेष रूप से जावे । शेष पूर्ववत् ।

आ नो॒ गव्ये॑भि॒रश्व्यै॑: स॒ह॒स्रै॒रुप॑ गच्छतम् ।
अन्ति॑ षद्भूतु वा॒मव॑: ॥ १४ ॥

भा०—आप लोग (गव्येभिः अश्व्येभिः सहस्रैः) हजारों गौओं और अश्वों से (नः आ उप गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो। शेष पूर्ववत्।

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १५ ॥

भा०—(सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्येभिः नः मा अति ख्यतम्) हमें सहस्रों, गौवों और अश्वों से वञ्चित मत करो। शेष पूर्ववत्।

अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१६॥

भा०—जैसे (उषा) प्रभात वेला की सूर्य-कान्ति (ऋत-वरी) तेजस्विनी, (अरुण-प्सुः) अरुण प्रकाश वाली होती और (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है वैसे ही (ऋत-वरी) सत्य ज्ञान को धारण करने वाली (उषाः) कमनीय कान्ति से युक्त (अरुणप्सुः) अरुण वर्ण की, सुन्दर रूपवती (अभूत्) हो वह (ज्योतिः अकः) सत्य ज्ञान का प्रकाश करे। शेष पूर्ववत्।

अश्विना सु विचाकशद्वृक्षं परशुमाँ इव।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १७ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् ज्ञानी पुरुषो! (परशुमान् इव वृक्षं) परशु वाला पुरुष जिस प्रकार वृक्ष को काटता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रवत् ज्ञान-ज्योति वाला पुरुष (सु वि-चाकशत्) प्रकाशमान हो, अज्ञानतम को नाश करे। शेष पूर्ववत्।

पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १८ ॥ २० ॥

भा०—हे(धृष्णो)शत्रु के पराजयकारिन्! जैसे (कृष्णया बाधितः) रात्रि से बाधित सूर्य अन्धकार को छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही तू भी (कृष्णया) कर्षण या पीड़न करने वाली शत्रु सेना से बाधित होकर (विशा) अपनी प्रजा, शत्रु दुर्ग में घुस जाने वाली तीक्ष्ण सेना की

सहायता से (पुरं न आ रुज) दुर्ग के समान ही शत्रु को छिन्न भिन्न कर। हे (अश्विनौ) सभासेनापतियो! आप दोनों को (अवः) शत्रु हिंसन का उत्तम बल सदा आपके पास रहे। अव् धातुः रक्षणं, गति, कान्तिः, प्रीतिः, तृप्तिः, अवगमः, प्रवेशः, श्रवणं, स्वाम्यर्थं, याचनं, क्रिया, इच्छा, दीप्तिः, अवाप्तिः, आलिंगनं, हिंसा, आदानं, भागो, वृद्धि-श्चेत्येतेष्वर्थेषु वर्त्तते। प्रकरणानुसारं स सोऽर्थोऽवबोध्यः। इति विंशो वर्गः ॥

[७४]

गोपवन आत्रेय ऋषिः ॥ देवताः १—१२ अग्निः। १३—१५ श्रुतर्वण आर्क्ष्यस्य दानस्तुतिः। छन्दः—१—१० निचृदनुष्टुप्। ४, १३—१५ विराडनुष्टुप्। ७ पादनिचृदनुष्टुप्। २, ११ गायत्री। ५, ६, ८, ९, १२ निचृद् गायत्री। ३ विराड् गायत्री। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (वाजयन्तः) ज्ञान, बल की कामना से युक्त (पुरु-प्रियम्) बहुतों को प्रिय, (विशः-विशः अतिथिम्) समस्त प्रजाओं के अतिथि रूप (अग्निं) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष की (मन्मभिः) मन्त्रों द्वारा (शूषस्य) सुख प्राप्ति के लिये सेवा करें और मैं (वः) आपको (दुर्यं वचः स्तुषे) उत्तम वचन का उपदेश करता हूँ।

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

भा०—(हविष्मन्तः जनासः) उत्तम अन्न वाले मनुष्य जैसे (सर्पिः-आ सुतिम्) घृत से सेचन योग्य अग्नि को (प्रशस्तिभिः) उत्तम प्रशंस-नीय मन्त्रों से (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते, उसके गुणों का वर्णन करते हैं वैसे ही (यं) जिसको (मित्रं न) मित्रवत् (सर्पिः-आसुतिम्) घृतयुक्त

अन्न द्वारा सत्कार के योग्य जानकर (हविष्मन्तः) अन्न आदि हाथ में लिये जन (प्रशस्तिभिः) उत्तम वचनों से (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं, उसकी तुम भी स्तुति करो।

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता। हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो अग्नि (देवताति) यज्ञ में (हव्यानि दिवि-ऐरयत्) हव्य पदार्थों को आकाश की ओर प्रेरित करता है, उस (जात-वेदसं) ऐश्वर्य युक्त वा सर्वज्ञ, (पन्यांसं) स्तुतियुक्त अग्नि का गुण वर्णन करूं, उसे व्यवहार में लाऊं !

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्।

यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (अनीके) सैन्य बल में (बृहन्) बड़ा भारी (आर्क्षः) शत्रु को भर्जन या पीड़न करने में समर्थ (श्रुतर्वा) प्रसिद्ध अश्वारोही जन (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है, उस (ज्येष्ठम्) सबमें बड़े (आनवं) मनुष्यों के हितैषी (अग्निम्) तेजस्वी (वृत्रहन्तमं) सबसे अधिक शत्रुहन्ता पुरुष को हम (आ अगन्म) प्राप्त करें।

अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम्।

घृताहवनमीड्यम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(घृताहवनम्) तेज से देदीप्यमान अग्नि तुल्य, वा जलों द्वारा आदर करने योग्य (ईड्यम्) स्तुति योग्य (तमांसि तिरः दर्शतं) अन्धकारों को दूर करके सत्य ज्ञान को दर्शाने वाले, (अमृतं) अमृत स्वरूप (जात-वेदसम्) ज्ञानमय प्रभु की हम उपासना करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

सबाधो यं जना इमेऽग्निं हव्येभिरीळते जुह्वानासो यतस्रुचः ॥ ६

भा०—जैसे (सबाधः) ऋत्विक् लोग (अग्निम्) अग्नि को (यतस्रुचः) जुहू आदि साध कर (जुह्वानासः हव्येभिः ईडते) आहुति देते

हुए चरु आदि से उपचार करते हैं वैसे ही (इमे) ये (सबाधाः) पीड़ा-युक्त (जनाः) मनुष्य (यत-स्रुचः) प्राणों का निग्रह करके (जुह्वानासः) आत्म समर्पण करते हुए (यम् अग्निम्) जिस पाप-नाशक ज्योति की (हव्येभिः) स्तुत्य वचनों से (ईडते) स्तुति करते हैं, उसी की उपासना करनी चाहिये।

इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा।
मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥ ७ ॥

भा०—हे (मन्द्र) स्तुत्य, आनन्दघन! हे (सु-जात) सुख-स्वरूप! हे (सु-क्रतो) शुभ कर्म, प्रजा वाले! हे (अमूर) असूढ़! अहिंसक! हे (दस्म) दर्शनीय! दुष्टदलन! हे (अतिथे) व्यापक, अतिथिवत् पूज्य! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (ते) तेरी (इयं) यह (नव्यसी) अतिस्तुत्य (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत् अधायि) हमारे में स्थिर हो।

सा ते अग्ने शन्तमा चनिष्ठा भवतु प्रिया।
तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! (ते) तेरी (सा) वह (शंतमा) शान्तिदायक (चनिष्ठा) उत्तम अन्नवत् भोग्य, सुखदात्री बुद्धि (प्रिया) प्रीतिकर हो। (तया) उससे तू (सु-स्तुतः) उत्तम स्तुतियुक्त होकर (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो और हमें भी बढ़ा।

सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः। दधीत वृत्रतूर्ये ॥ ९ ॥

भा०—(सा) वह (द्युम्नैः द्युम्निनी) प्रकाशों से प्रकाश युक्त वाणी (वृत्र तूर्ये) आवरणकारी अज्ञानान्धकार को नाश के निमित्त (बृहत् श्रवः) बड़ा ज्ञान (श्रवसि) कान में (उप दधीत) धारण करावे।

अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम्।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यच्च कृष्टयः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (कृष्टयः) मनुष्यो! आप लोग (पन्यम् पन्यम्) अति-

स्तुत्य २ कार्य और (श्रवांसि) ज्ञानों, अन्नों को (तूर्वथ) प्राप्त करो, उसको (गाम्) गौ के समान मातृतुल्य (अश्वम् इव) अश्व के समान बलवान्, (रथप्राम्) महारथी के समान प्रभावशाली, (त्वेषं) सूर्य के समान तेजस्वी (इन्द्रं न) ऐश्वर्यवान् विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (सत्पतिं) सज्जनों के पालक प्रभु की उपासना करो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः।
स पावक श्रुधी हवम्॥ ११॥

भा०—हे (पावक) पवित्र करने हारे! (यं त्वा) जिस तुझको (गोपवनः) वाणी द्वारा पवित्र करने वाला और (गोप-वनः) वाणी के पालक विद्वानों का सेवन करने वाला, पुरुष (गिरा) वाणी द्वारा (चनिष्ठत्) तेरा सत्कार करता है। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (अंगिरः) तेजस्विन्! (सः) वह तू (हवम् श्रुधि) हमारे आह्वान को श्रवण कर।

यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये।
स बोधि वृत्रतूर्ये॥ १२॥

भा०—(यं त्वा) जिस तुझको (स-बाधः) बाधा-सहित दुःखी जन (वाज-सातये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ईडते) स्तुति-करते हैं। (सः) वह तू (वृत्र-तूर्ये) विघ्नादि के नाश करने में (बोधि) हमें ज्ञानवान् कर।

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम्॥ १३॥

भा०—(आर्क्षे) शत्रु को प्रताप में भून देने वाले (श्रुतर्वणि) प्रसिद्ध अश्व सैन्य के स्वामी (मदच्युति) शत्रु के मद को दूर करने में समर्थ, वीर पुरुषों के अधीन (स्तुकाविनां) बालों की ग्रन्थि, फुन्दों वाले (चतुर्णाम्) चारों वर्णों, वा चार घोड़ों, वा सेना के चारों अंगों के वीरों के (मृक्षा) अति दीप्त, (शीर्षा) शिर या प्रमुख नायक जन (शर्धांसि इव)

मानो उनके मुख्य बल हैं। अर्थात् वीरों के शिरों के बाल और मूंछ, दाढ़ी आदि वीरत्व द्योतक चिह्न हैं, मानो वे ही उनके बल हैं, वे बालों से सिंहों के समान भयानक प्रतीत होते हैं। केशान् शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि। यजु० १९। ९२॥ उनको (अहं) मैं (हुवानः) अन्न देने वा स्वीकार करने वाला होऊं।

सां च॒त्वार॑ आ॒शवः॒ शवि॑ष्ठस्य द्रवि॒त्नवः॑।
सु॒रथा॑सो अ॒भि प्रयो॒ वक्ष॒न्वयो॒ न तु॒ग्र्य॑म् ॥ १४ ॥

भा०—(शविष्ठस्य) अति बलशाली, सेनापति के (चत्वारः) चार (द्रवित्नवः) वेगवान् (आशवः) शीघ्रगामी, (सु-रथासः) उत्तम महारथी लोग (तुग्र्यम् वयः न) शत्रुहिंसक बलवान् पुरुष को वेगवान् अश्वों के समान (प्रयः अभि वक्षन्) श्रेष्ठ यानवत् धारण करते हैं।

स॒त्यमि॑त्त्वा॑ महेनदि॒ परु॒ष्ण्यव॑ देदिशम्।
नेमा॑पो अश्व॒दात॑रः॒ शवि॑ष्ठाद॒स्ति॒ मर्त्यः॑ ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (महेनदि) महानदी के समान महान् शब्द करने वाली! हे (परुष्णि) पोरु-पोरु अर्थात् छोटी २ टुकड़ियों से बनी, वा पर्व पर्व पर उष्ण अर्थात् शत्रु को दग्ध करने वाली, तेजस्विनी सेने! (त्वा) तुझको मैं (सत्यम् इत्) सत्य ही (अव देदिशम्) कहता हूँ। हे (आपः) आप्त जनो, प्रजाओ! सुनो (शविष्ठात्) अति बलशाली से दूसरा कोई (मर्त्यः) मनुष्य (अश्वदातरः न ईम् अस्ति) अश्व सैन्य को अन्न वस्त्र भृति आदि देने वाला नहीं है। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[७५]

विरूप ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, ९, ११ निचृद् गायत्री। २, ३, १५ विराड् गायत्री। ८ आर्ची स्वराड् गायत्री। षोडशर्चं सूक्तम्॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव।
नि होता पूर्व्यः सदः ॥ १ ॥

भा०—(रथीः इव अश्वान्) रथी जैसे रथ में अश्वों को जोड़ता है, वैसे हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तू (देव-हूतमान् युक्ष्व) शुभ गुणों को धारण करने वालों में श्रेष्ठ पुरुषों को, इन्द्रियों का साधकवत्, राष्ट्र में उचित पद पर नियुक्त कर और तू (होता) सब को भृति-वेतन आदि देने वाला (पूर्व्यः) सब में पूर्ण, सब से मुख्य होकर विराज।

उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः।
श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञानदातः! दानशील! तेजस्विन्! तू (विदुस्तुरः) सबसे उत्तम विद्वान् होकर (देवान् नः) विद्या की कामना करने वाले हम लोगों को (अच्छ वोचः) साक्षात् उपदेश कर। (उत) और (विश्वा वार्या श्रत् कृधि) समस्त वरण योग्य ज्ञानों को सत्य रूप में प्रकट कर।

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत। ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥३॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) युवतम! सब में अधिक जवान्, बलवान् पूज्य! हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक, उत्पादक! हे (आहुत) सब से स्वीकृत, सबों के अंशों से समृद्ध! (त्वं ह) तू ही (ऋत-वा) सत्य न्याय का पालक और (यज्ञियः भुवः) सर्व-पूजार्ह, दान योग्य पात्र हो।

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः।
मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—(अयम् अग्निः) यह ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष (सहस्रिणः शतिनः वाजस्य) सहस्रों और सैकड़ों ज्ञान, सैन्य और ऐश्वर्य का (पतिः) पालक और (कविः) क्रान्तदर्शी (रयिणाम् मूर्धा) ऐश्वर्यवानों का भी शिरःस्थानीय, प्रमुख हो। सहस्रों, सैकड़ों संख्या वाला ज्ञान, वेदादि शास्त्र, जिनकी ग्रन्थ गणना शत काण्डका, सहस्र मन्त्र व श्लोकादि और

सैन्य में भी शतपति, सहस्रपति के अधीन इतने २ भट और ऐश्वर्यों में ग्रामों की वा स्वर्णमुद्राओं की संख्या ली जाती है।

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः।

नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे (अंगिरः) विद्वान्! तेजस्विन् (ऋभवः यथा नेमिम्) शिल्पी लोग जैसे चक्र के अरों के चारों ओर नेमि या लोहपरिधि को नमाते हैं वैसे ही तू (सहूतिभिः) समान रूप से आह्वान योग्य वा समान वेतनादि देने हारे शासकों से (तं यज्ञम्) उस परस्पर संगत राष्ट्र को, (नेदीयः नमस्व) अति समीप झुका, वश कर। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया।

वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (विरूप) विशेष रूपवान्! तू (नूनम्) अवश्य ही (तस्मै) उस (अभि-द्यवे) तेजस्वी, (वृष्णे) बलवान् पुरुष के लिये (नित्यया वाचा) निश्चित वाणी द्वारा (सु-स्तुतिम् चोदस्व) उत्तम स्तुति प्रस्तुत कर। परमेश्वर की स्तुति के लिये वेद वाणी का प्रयोग कर।

कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः। पणिं गोषु स्तरामहे ॥७॥

भा०—(अस्य) इस (अपाक-चक्षसः) अनल्प दृष्टि वाले, परिपक्व बुद्धि वाले (अग्नेः) तेजस्वी ज्ञानी नायक पुरुष की (सेनया) सेना से हम (कं स्विद् उ पणिं) प्राण की शर्त्त धर कर बाजी लगाने वाले किस शत्रु को (गोषु) भूमियों के विजय के लिये (स्तरामहे) विनाश करें।

मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः।

कृशं न हासुरघ्न्याः ॥ ८ ॥

भा०—(उस्राः) सूर्य की किरणों के समान उन्नत पद की ओर जाने वाले लोग (देवानां) विद्वान् पुरुषों के बीच (प्र-स्नातीः) अच्छी स्नान करती हुई, शुद्ध आचार से रहने वाली (नः विशः) हम प्रजाओं

का (प्र-स्नातीः इव) शुद्ध पवित्र नारियों के समान (मा हासुः) परित्याग न करें। (अघ्न्याः कृशं न) जैसे गौवें अपने निर्बल बच्चे को नहीं त्यागतीं, प्रत्युत जब तक पुष्ट नहीं हो जाता उसे दूध पिलाकर पुष्ट करती हैं वैसे ही तेजस्वी जन निर्बल प्रजाओं को भी न त्यागें।

मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः।
ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥ ९ ॥

भा०—(ऊर्मिः नावं न) जलतरंग जैसे नौका को आघात करती है वैसे ही (समस्य) समस्त (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले (परिद्वेषसः) द्वेषी पुरुष की (अंहतिः) पाप-बुद्धि (नः) हमें (मा वधीत्) पीड़ित न करे।

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! (अग्ने) अग्निवत् शत्रु-संतापक! तू (ते ओजसे) तेरे पराक्रम के लिये (कृष्टयः) प्रजा के मनुष्य (नमः गृणन्ति) विनय-वचन कहते हैं। तू (अमैः) सहायकों, बलों, सैन्यों और भटों से (अमित्रम् अर्दय) शत्रु को पीड़ित कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्। उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (नः) हमें (गविष्टये) भूमियों को प्राप्त करने के लिये (कुवित् रयिम्) बहुत साधन (सं वेषिषः) प्राप्त कर। तू (उरुकृत्) बहुत धन को उत्पन्न करने वाला है। तू (नः उरु कृधि) हमारे धन और प्राप्तव्य फल को बहुत कर, उसे बढ़ा।

मा नो अस्मिन्महाधने परा वग्भारभृद्यथा।
संवर्गं सं रयिं जय ॥ १२ ॥

भा०—(यथा भारभृत्) बोझा ढोने वाला जैसे थक कर बोझे को फेंक देता है वैसे ही हे नायक! (महाधने) महासंग्राम में (नः मा परा वर्क्) हमें भार जान कर तू मत त्याग। बल्कि तू (संवर्गं) उत्तम

सहयोगी गण और (रयिं) ऐश्वर्य का गुणों और पराक्रमों से (जय) विजय कर।

अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना।
वर्धा नो अमवच्छवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक सेनापते! (इयम्) यह (दुच्छुना) दुखदायिनी सेना (अस्मत् अन्यम्) हमारे से दूसरे शत्रु को (भिया सिषक्तु) भयभीत करे। (नः अमवत्) तू हमारे बलयुक्त (शवः) सैन्य-बल को (वर्ध) बढ़ा।

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा। तं घेदग्निर्वृधावति ॥१४

भा०—(यस्य) जिस (नमस्विनः) शत्रु को नमाने वाले वीर्य से सम्पन्न (अदुर्मखस्य) दोषहीन यज्ञ, वा अदुःखदायी, निस्त्रुटि कार्यकर्त्ता के (शमीम् जुषत्) कर्म को प्रेम से स्वीकार कर लेता है, (तं घ इत्) उसकी ही (अग्निः) वह तेजस्वी नायक (वृधा अवति) वृद्धियुक्त सम्पदा से रक्षा करता है।

परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर। यत्राहमस्मि ताँ अव॥१५

भा०—(परस्याः संवतः अधि) शत्रु के सेना के उत्तम संगठनयुक्त बल के ऊपर (अवरान् अभि आतर) उनसे न्यून या डरे के हम लोगों को सम्मुख, आगे बढ़ा, उनको विजयी कर और (यत्र) जिनके बीच में, जिनके ऊपर (अहम् अस्मि) मैं हूँ (तान् अव) उनकी रक्षा कर।

विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ १६ ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रतापशालिन्! (अवसः पितुः यथा) जैसे रक्षक पिता के सुख वा धन को पुत्र चाहता है उसी प्रकार (पुरा) पूर्ववत् रक्षक पालक रूप (ते) तेरे (सुम्नम् हि) सुख को हम भी (विद्म) जानें (अध ते ईमहे) और तुझ से हम याचना करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः॥

[७६]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८—१२ गायत्री । ३, ४, ७ निचृद् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा ।
मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥ १ ॥

भा०—मैं (इमं) इस (मायिनं) बुद्धि-कौशलों से युक्त, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (ओजसा ईशानम्) पराक्रम से सबके स्वामी, (मरुत्वन्तं न) प्राणवान् आत्मा के समान, वायुवद् बली पुरुषों के स्वामी पुरुष को (वृञ्जसे) शत्रु नाश के लिये (हुवे नु) आह्वान करता हूँ ।

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ।
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

भा०—जैसे (मरुत्सखा) वायु को सहाय लेकर (इन्द्रः) सूर्य (वज्रेण शत-पर्वणा) सैकड़ों किरणों वाले तेज से (वृत्रस्य शिरः अभिनत्) मेघ के ऊपरी भाग को छिन्न-भिन्न करता है वैसे ही (अयम् इन्द्रः) यह वीर सेनापति (मरुत्-सखा) वीरों का मित्र होकर, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों दलों से बने सैन्य बल से (वृत्रस्य शिरः) बढ़ते शत्रु के शिर या मुख्य भाग को (अभिनत्) छिन्न-भिन्न करे ।

वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥ ३

भा०—(मरुत्सखा इन्द्रः) वायु को सहाय लेकर इन्द्र, विद्युत् वा सूर्य, जैसे (वावृधानः) अधिक प्रबल होकर (समुद्रियाः अपः सृजन्) अन्तरिक्षस्थ जलों को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रं) मेघ को (वि ऐरयत्) विविध दिशाओं में प्रेरित करता है वैसे ही (मरुत्सखा) वीरों और प्रजास्थ मनुष्यों का मित्र, राजा (समुद्रिया अपः) समुद्रजलों के तुल्य सेनाओं को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रम्) बढ़ते शत्रु को नष्ट करता है ।

अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ॥ ४

भा०—(येन वा इन्द्रेण) जो शत्रुहन्ता (मरुत्वता) मनुष्यों का सहाय लेकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (इदं स्वः जितम्) आकाश को सूर्य के समान, इस भूलोक का विजय करता है (अयं ह) वही निश्चय से स्तुत्य है।

मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम्।

इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥ ५ ॥

भा०—(मरुत्वन्तम्) वायुओं के बलों से सम्पन्न, प्रबल मनुष्यों के स्वामी, (ऋजीषिणम्) ऋजु, धर्ममार्ग पर औरों के सञ्चालक तथा शत्रु को भूनने में समर्थ सैन्यबल को सञ्चालित करने वाले (ओजस्वन्तं) पराक्रमशील (विरप्शिनम्) महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् की हम (गीर्भिः) वाणियों से (हवामहे) प्रार्थना करें।

इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥ २७ ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस महान् ऐश्वर्य या जगत् के पालन करने के लिये हम (प्रत्नेन) अनादिसिद्ध (मन्मना) मनन करने योग्य स्तोत्र, वेद ज्ञान से हम (मरुत्वन्तं) प्रबल मनुष्यों के स्वामी, समस्त जीवों के पालक प्रभु की (हवामहे) प्रार्थना करते हैं।

मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो।

अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत ॥ ७ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञावाले हे (पुरु-स्तुत) बहुतों के स्तुतिपात्र ! हे (मीढ्वः) सुखवर्षक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (मरुत्वान्) वीर पुरुषों का स्वामी होकर (सोमं पिब) इस ऐश्वर्य वा प्रजा-युक्त राष्ट्र का पालन उपभोग कर।

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः।

हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) बलवन् ! (तुभ्य इत् मरुत्वते) बलवान् पुरुषों के तुझ स्वामी के लिये ही (उक्थिनः) उत्तम ज्ञान के धारक (सुताः) ऐश्वर्यादि से पुरस्कृत, उत्तम पदों पर अभिषिक्त (सोमासः) ज्ञानवान्, बलवान् पुरुष (हृदा) हृदय से (हूयन्ते) बुलाये जाते और सत्कार किये जाते हैं।

पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥

भा०—तू (मरुत्सखा) मनुष्यों, वीर पुरुषों का मित्र होकर (दिविष्टिषु) सब दिनों, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ओजसा) पराक्रम से (वज्रं शिशानः) बल, वीर्य, शस्त्रबल को तीक्ष्ण करता हुआ (दिविष्टिषु) अपनी कामनाओं की प्राप्ति के निमित्त (सुतं सोमं) उत्पन्न जगत् या ऐश्वर्य का (पिब इत्) पुत्रवत् पालन और धनवत् उपभोग कर ।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (ओजसा सह) बल के साथ (उत्तिष्ठन्) ऊपर उठता हुआ (चमू-सुतम्) सेनाओं द्वारा प्राप्त (सोमम्) राष्ट्र-ऐश्वर्य को (पीत्वी) पालन करके (शिप्रे अवेपयः) जल पान से तृप्त मनुष्य के समान मुख नासिका वा ठोड़ी को कंपा, प्रसन्न हो।

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् ।
इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन् ! (यत्) जब तू (दस्युहा अभवः) दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा होता है तब (क्रक्षमाणं त्वा अनु) शत्रु को छेदन करते हुए तेरे साथ २ (उभे रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्ग (अनु कृपेताम्) बलवान् हो जाते हैं ।

वाचम॒ष्टाप॑दीम॒हं नव॑स्रक्तिमृत॒स्पृश॑म् ।
इन्द्रा॒त् परि॑ त॒न्वं॑ ममे ॥ १२ ॥ २८ ॥

भा०—(अष्टापदी) आठ पद वाली और (नव स्रक्तिम्) स्तुत्य नवीन रचना वाली, (ऋत-स्पृशम्) सत्य का स्पर्श अर्थात् दर्शन कराने वाली (तन्वम्) विस्तृत, व्यापक वाणी को (अहं) मैं (इन्द्रात्) सत्य-दर्शी पुरुष से (परि ममे) यथार्थ रूप से जानूं । कानून या शासन आठ अमात्यों से उत्पन्न होता है अतः उनकी वाणी आठ पद वाली है और वह नवस्रक्ति अर्थात् मुख्य शासक के मुख से प्रचारित होती है । वेद-विद्या के आठ विद्यास्थान आठ पद हैं । अष्टाविंशो वर्गः ॥

[६७]

* कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, ८ गायत्री ॥ २, ५, ६, ९ निचृद् गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ निचृत् पंक्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ज॒ज्ञा॒नो नु श॒तक्र॑तु॒र्वि पृ॑च्छा॒दिति॑ मा॒तर॑म् ।
क उ॒ग्राः के ह॑ शृण्वि॒रे ॥ १ ॥

भा०—(जज्ञानः) प्रकट होता हुआ (शत-क्रतुः) अनेक प्रज्ञावाला पुरुष (मातरं वि पृच्छत्) माता से बालक के तुल्य विज्ञानवान्, सत्य-ज्ञानी पुरुष वा मातृ-तुल्य प्रजा से ही (इति) इस प्रकार से (वि पृच्छात्) विशेष रूप से प्रश्न करे कि (के उग्राः) राष्ट्र में कौन बलवान् पुरुष हैं जिनसे लोग भय खाते हैं और (के ह शृण्विरे) कौन बलवान् लोग सुने जाते हैं । अर्थात् देश में ऐसे कौन २ त्रासदायी हैं ? राजा त्रासकारी लोगों का पता लगा कर उनका नाश करे ।

आदीं॑ श॒वस्य॑ब्रवीदौर्णवा॒भम॑ही॒शुव॑म् ।
ते पु॑त्र सन्तु नि॒ष्टुरः॑ ॥ २ ॥

* पुरुसुतिति प्रामादिकः ।

भा०—(आत्) अनन्तर (शयसी) बलवती प्रजा (ईम् और्णवाभम्) उस और्णवाभ, तेजस्वी दण्डधर, राजा और (अमहीशुवम्) राष्ट्र की बागडोर संभालने वाले उस शासक पुरुष के प्रति (अब्रवीत्) कहे कि हे (पुत्र) बहुत प्रजा के त्राणकर्ता राजन्! (ते) वे अमुक २ नाम वाले बहुत से हैं जो (निः-तुरः सन्तु) विनाश-योग्य हैं वा, उनको (निः-तुरः) तीव्र अश्वों को कोचवान् के समान बन्धन रज्जु और हन्टरों से दण्ड दे, वश कर। और्णवाभः—ऊर्णां वहति इति ऊर्णवाभः। भत्वं छान्दसम्। स्वार्थिको ऽण्। अथवा ऊर्णाया वस्त्रं, आहननार्थस्तोदो वा और्णं, तद्वहति वा। विशेषपरिच्छदभूषितो दण्डधरो वा। अहीशु=अभीशु। हत्वं छान्दसम्। प्रग्रहवान् उच्छृंखलानामिवाश्वानां नियन्ता।

समित्तान्वृत्रहाखिदत्खे अराँ इव खेदया।
प्रवृद्धो दस्युहाभवत्॥ ३॥

भा०—तब वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाशक वीर राजा प्रजा की अभ्यर्थना करने पर (तान्) उन दुष्टों को (खे) चक्र की नाभि में (अरान् इव) अरों के समान, (खेदया) रज्जु आदिवत् बन्धनकारिणी मर्यादा या ताड़ना से (खे) शून्य कारागारादि में (अखिदत्) धर कर पीड़ित, दण्डित करे, उनकी उग्रता को दूर करे। 'खेदया'—खिद दैन्ये, रुधादिर्दिवादिश्च। खिद परिघातने। तुदादिः। खिनत्ति खिद्यति दैन्यमापादयति आपद्यते वा स्वयं अनया सा खेदा। रज्जुः, प्रग्रहः, कशा, परिघातनसाधनं वा। खेदा कशा। खेदया रश्मिना, (ऋ० ८। ७२। ८) रज्ज्वा, (८। ७७। ३) इति सायणः।

एकया प्रतिधापिबत्साकं सरांसि त्रिंशतम्।
इन्द्रः सोमस्य काणुका॥ ४॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) सूर्य (एकया) एक ही (प्रतिधा) प्रतिधान अर्थात् अमावास्या या प्रतिपदा की विपरीत स्थिति से (सोमस्य) चन्द्र

की (काणुका) कमनीय (त्रिंशतम् सरांसि) तीसों दिन रातों की किरणों को (साकम्) एक साथ ही (अपिबत्) पान कर लेता है, अपने भीतर ले लेता है, वैसे ही (काणुका इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष भी (एकधा प्रतिधा) एक ही प्रतिधान, अर्थात् विग्रहपूर्वक आक्रमण से (सोमस्य) प्रतिपक्ष के ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (त्रिंशतम्) तीसों (सरांसि) धनों को (साकं अपिबत्) एक साथ पान कर जाता है, 'काणुका'— काणुका कान्तकानीति वा। क्रान्तकानि इति वा, कणेघातः इति वा, कणेहतः कान्तिहतः। [इच्छाकृतकानि इति वा। इन्द्रः सोमस्य कान्त इति वा प्रतिघात इति यावत्] तत्रैतद् याज्ञिका वेदयन्ते त्रिंशदुक्थपात्राणि माध्यन्दिने सवने एकदेवतानि तान्येतस्मिन् काले एकेन प्रतिधानेन पिबन्ति) तान्यत्र सरांस्युच्यन्ते। त्रिंशदपरपक्षस्याहोरात्राख्रिंशत् पूर्वपक्षस्य चेति नैरुक्ताः। तथा एताश्चान्द्रमस्या आगामिन्य आपो भवन्ति रश्मयस्ताः अपर पक्षे पिबन्ति यमक्षितिमक्षितयः पिबन्ति। तं पूर्वपक्ष आप्याययन्ति तथापि निगमा भवन्ति यथा देवा अंशुमाप्याययन्ति इति। निरु० अ० ५। ११॥

काणुका का अर्थ है कान्तियुक्त, दूरगत, वा कृतक, कृत्रिम, अथवा काणुका सूर्य का विशेषण है वह सोम (चन्द्र) का 'कान्त' प्रिय, या कान्तिप्रद है। अथवा कणेघात, कणी काटने अर्थ में अर्थात् कान्ति, वा इच्छा प्रतिघात अर्थ में 'काणुका' शब्द है। इस सम्बन्ध में याज्ञिक बतलाते हैं कि माध्यन्दिन सवन में तीस उक्थ पात्र एक ही देवता के होते हैं उनको इस अवसर पर एक ही बार में पीते हैं। वे पात्र 'सरस्' कहाते हैं। नैरुक्तों का मत है कि कृष्णपक्ष के तीस और शुक्ल पक्ष के तीस दिन रात्रि होते हैं। चन्द्रमा की आने वाली रश्मियों का नाम 'आपः' है। क्योंकि वे दूसरे से प्राप्त होती हैं। उनको कृष्ण पक्ष में सूर्य की किरणें स्वयं अपने में पुनः ग्रहण कर लेती हैं मानों पी जाती

हैं। इसी प्रकार पूर्व शुक्लपक्ष में फिर पूर्ण कर देती हैं जिस प्रकार वेद वाक्य है (यथा देवाः० इत्यादि)।

अभि गन्धर्वमतृणदबुध्नेषु रजःस्वा।
इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—(इन्द्रः) विद्युत् जैसे (अबुध्नेषु) रोक थाम न करने वाले, बन्धनरहित (रजःसु) अन्तरिक्ष के प्रदेशों में स्थित (गन्धर्वम् अभि अतृणत्) जल को धारण करने वाले मेघ को आघात करता है तो वह (ब्रह्मभ्यः) अन्नों की (वृधे इत्) वृद्धि के लिये होता है वैसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (अबुध्नेषु रजःसु) अप्रबद्ध, अनाश्रित, लोकों के, प्रजाजनों में विद्यमान (गन्धर्वम्) भूमि को अपने वश कर लेने वाले प्रबल शत्रु को (अभि अतृणत्) नष्ट करे तो वह (ब्रह्मभ्यः वृधे इत्) धनों, अन्नों और विद्वान् पुरुषों की ही वृद्धि के लिये होता है। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

निराविध्यद् गिरिभ्य आधारयत्पक्वमोदनम्।
इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य वा विद्युत् जैसे (गिरिभ्यः) मेघों से (निर् अविध्यत्) जल गिराने को उन्हें ताड़ित करता है और (ओदनं) धान्य को (पक्वम्) परिपक्व रूप में (आ धारयत्) पुष्ट करता है और (सु-आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) चमकते प्रकाश को भी फेंकता है वैसे ही (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, (गिरिभ्यः) मेघवत् अन्यों का माल निगल जाने वाले दुष्ट पुरुषों को सुधारने, उनसे सत्य निकलवाने या हड़पा हुआ माल निकलवाने के लिये (निर् अविध्यत्) उनको ताड़ना दे और उनसे (पक्वम्) पक्व (ओदनम्) वचन, शपथ, (oath) (आधारयत्) धारा या पक्की जुबान के रूप में करा लेवे कि फिर वे ऐसा न करेंगे और वह (सु आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) भयकारी, उनको भेदने फोड़ने वाला, अपना सैन्य बल भी (आ धारयत्) सर्वत्र स्थापित करे

ले। 'बुन्दं'—बुन्दो वा भिन्दो वा भयदो वा भासमानो द्रवतीति वा निरु० ६। ३४॥

शतबंध्न इषुस्तव सहस्रंपर्ण एक इत्। यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (यम् युजं चकृषे) जिसको अपना सहायक बनाता है वह (तव इषुः) तेरा बाण वा शस्त्रबल (शतब्रघ्नः) सैकड़ों आश्रयों और बन्धन-मर्यादाओं वाला और (सहस्रपर्णः) सहस्रों बलशाली, रथों वा पालक जनों से सम्पन्न और (एकः इत्) एक अद्वितीय, सबसे अधिक उत्तम हो।

तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे।
सद्यो जात ऋभुष्ठिर ॥ ८ ॥

भा०—हे (ऋभु-स्थिर) सत्य न्याय से प्रकाशित विद्वानों द्वारा स्थिर राजन्! तू (सद्यः जातः) शीघ्र राजा रूप से प्रसिद्ध होकर (तेन) उस पूर्वोक्त शासनबल से (स्तोतृभ्यः नृभ्यः नारिभ्यः) स्तुतिकर्ता विद्वान् नरों और नारियों के लिये (अत्तवे) भोजनार्थ (आ भर) अन्न दे।

एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा।
हृदा वीड्वधारयः ॥ ९ ॥

भा०—(एता) ये (च्यौत्नानि) बलशाली और (वर्षिष्ठानि) सुख, जलादि वर्षाने वाले, बलवान् सैन्य (ते कृता) तेरे ही बनाये हैं। तू उनको (वीड्डु परीणसा) महान् स्थिरतापूर्वक (हृदा अधारयः) सद्हृदय से धारण कर।

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः।
शतं महिषान्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥ १० ॥

भा०—जैसे सूर्य के ताप या प्रकाश से प्रेरित वायु महान् आकाश में विचरता समस्त मेघादि को ले आता है वैसे ही हे ऐश्वर्यवन्! (त्वा इषितः) तेरे से प्रेरित होकर (उरु-क्रमः) बड़ा पराक्रमी, (विष्णुः)

व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष (ता विश्वा इत्) उन २ समस्त पदार्थों को (आ अभरत्) प्राप्त कराता है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ही मानो (शतं महिषान्) सैकड़ों बलवान् पुरुषों को (क्षीरपाकम् ओदनम्) दूध में पके भात के समान सात्विक भाव से प्राप्त ऐश्वर्य और (एमुषं) सब तरफ से ज्ञान संग्रह करने वाले (वराहम्) उत्तम वचन के वक्ता वा यज्ञ को भी प्राप्त करे।

तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः।
इमा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा ॥११॥३०॥

भा०—हे राजन्! (ते) तेरा (धनुः) शस्त्रबल, (सु-मयं) उत्तम सुखकारक, (सु-कृतं) उत्तम कर्म करने वाला, (तुवि-क्षं) दूर तक बाणों को फेंकने वाला, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला हो। (ते बुन्दः) तेरा तेज और शत्रु का भयप्रद बाण, (साधुः) उत्तम, लक्ष्य पर लगने हारा, (हिरण्ययः) सुवर्णमय और हित, रम्य हो। (ते बाहू) तेरी बाहुएं, शत्रुबाधक सेनाएं दोनों (रण्या) रमणीय, सुन्दर एवं रणकुशल (सु-संस्कृते) उत्तम संस्कार से युक्त, उत्तम अभ्यस्त, (ऋदूपे) वेग से शत्रु को गिराने वाली और (ऋदुवृधा चित्) पीडक जनों को वेधने, उनको काटने छांटने वाली हों। इति त्रिंशो वर्गः॥

[७८]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री। २,६—९ विराड गायत्री। ४,५ गायत्री। १० बृहती॥ दशर्चं सूक्तम्॥

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर।
शता च शूर गोनाम्॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (अन्धसः) अन्न और प्राण धारक पदार्थ का बना (सहस्रम्) हजारों की संख्या में, अपरिमित वा बलकारक, (पुरोडाशं) आदरपूर्वक देने योग्य खाद्य पदार्थ

(आ भर) प्राप्त करा और स्वयं भी उसको धारण कर। ऐसे ही, हे (शूर) शूरवीर ! (गोनां शता च) भूमियों, गौवों और वाणियों के सैकड़ों, हमें देकर, तू भी उनका पोषण कर।

आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम्।
सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

भा०—तू (नः) हमें (गाम् अश्वं) गौ, अश्व और (अभ्यञ्जनम्) शत्रु पर जाने के साधन सवारी, रथ आदि और विशेष जाने के साधन विमान आदि वा (व्यञ्जनं) विशेष चमकने वाले प्रकाश के उपाय और नाना खाद्य पदार्थ (नः) हमें (आ भर) प्राप्त करा और (सचा) साथ ही (मना) मननीय (हिरण्यया) हित और मनोहर वचन श्रवण करा।

व्यञ्जनं अभ्यञ्जनं—अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। रुधादिः।

उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर।
त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (धृष्णो) शत्रुपराजयकारिन् ! तू (नः) हमें (पुरूणि) बहुत से (कर्ण-शोभना) कानों को सजाने के साधन, उत्तम वचन और अलंकरण (आ भर) प्राप्त करा और हमारे लिये तू धारण कर। हे (वसो) विद्वन् ! (त्वं हि शृण्विषे) तू ही हमारे वचन सुन और अपने सुना।

नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत।
नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! (ते अन्यः) तुझसे दूसरा (न कीं वृधीकः) कोई और न बढ़ाने हारा, (न ते सुषाः) न तुझसे दूसरा कोई उत्तम विभागकारी, (उत) और (न सुदाः) न उत्तम दाता है (उत) और हे (शूर) वीर ! हे दुर्गुणादि-नाशक ! (त्वत् अन्यः वाघतः न) तुझसे दूसरा कोई और विद्वान् वाग्मी भी नहीं है।

नकीमिन्द्रो निकर्त्तवे न शुक्रः परिशक्तवे ।
विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु, (नकीम् निकर्त्तवे) कभी अनादर और हिंसा करने योग्य नहीं । (शुक्रः) यह शक्तिमान् (न परिशक्तवे) बल द्वारा पराजय करने के भी योग्य नहीं । वह (विश्वं शृणोति) सब कुछ सुनता, (विश्वं पश्यति) सब कुछ देखता है । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते ।
पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥

भा०—(सः अदब्धः) वह अविनाशी, किसी से न मारा जाने वाला, अदण्डनीय (मर्त्यानां) मनुष्यों के (मन्युं) क्रोध को (नि चिकीषते) तुच्छ करके जानता है और (निदः) निन्दकों को (पुरा) पहले ही (नि चिकीषते) नीचा दिखा देता है ।

क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः ।
वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥ ७ ॥

भा०—उस (तुरस्य) शीघ्रकारी (विधतः) प्रजाओं को विविध प्रकार से पालन पोषण करने वाले, जगत् के कर्त्ता, (वृत्रघ्नः) विघ्नों, दुष्टों और मेघों के नाशक और (सोम-पाव्नः) जगत्, पुत्र शिष्यादि के पालक का (उदरम्) पेट, हृदय (क्रत्वः इत्) कर्म से ही (पूर्णम्) पूर्ण रहता है ।

त्वे वसूनि सङ्गता विश्वा च सोम सौभगा ।
सुदात्वपरिह्वृता ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) प्रभो ! (त्वे) तुझमें, तेरे अधीन ही (विश्वा वसूनि विश्वा च सौभगा) समस्त ऐश्वर्य और कल्याणकारी धन, (संगता) एकत्र हैं । तू उनको (अपरि-ह्वृता) अकुटिल, सुप्राप्य (सु-दातु) सुखदायक बना कर दे ।

त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः। त्वामश्वयुरेषते ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रभो ! (मम कामः) मेरा अभिलाष (यवयुः) अन्नादि का इच्छुक (गव्युः) भूमि, इन्द्रिय, रश्मि, गवादि पशु का इच्छुक और (हिरण्ययुः) हित, मनोहर वचन और सुवर्णादि का इच्छुक होकर (त्वाम् इत् एषते) तुझे ही चाहता है और (अश्वयुः) अश्वों को चाहता हुआ (त्वाम् इत् एषते) तुझे ही प्राप्त करता है।

तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे।
दिनस्य वा मघवन्त्सम्भृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना ॥१०॥३२

भा०—हे (इन्द्र) अन्नों के दातः ! (तव इत् आशसा) तेरी ही आज्ञा, आशा और कामना से मैं (हस्ते) हाथ में (दात्रं चन आददे) धान आदि खेती काटने का साधन, वा दान करने योग्य धन ग्रहण करता हूँ। हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! तू (दिनस्य) काटे हुए (वा) अथवा (संभृतस्य) एकत्र किये (यवस्य) जौ अन्न की (काशिना) मुट्ठी से (पूर्धि) पूर्ण कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[७९]

कृत्नुर्भार्गव ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृद् गायत्री। ३ विराड् गायत्री। ४,५,७,८ गायत्री ॥ ९ निचृदनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः।
ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह (कृत्नुः) जगत् का कर्त्ता, (अगृभीतः) चक्षुरादि साधनों से अग्राह्य, अविज्ञेय, (विश्वजित्) समस्त जगत् को अधीन रखने वाला, (उद्भित्) स्थावरों को पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न करने वाला, (सोमः इत्) सबका उत्पादक होने से 'सोम' है। वही (विप्रः) सब ज्ञानों, कर्मों का दाता, मेधावी (काव्येन) वेद-ज्ञान से (ऋषिः) सत्य ज्ञानों का द्रष्टा है।

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्।
प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो वह पूर्वोक्त सोम, ऐश्वर्यवान् (नग्नं अभि ऊर्णोति) नग्न, वस्त्ररहित को वस्त्रादि से आच्छादित करता है। (यत्) जो (तुरं विश्वम्) सब रोगी जन को ओषधि रसवत् (भिषक्ति) रोग से रहित करता है वह (अन्धः ईम् प्रख्यत्) सबके प्राण-जीवन का पोषण कारक होकर इस विश्व को अच्छी प्रकार देखता और उपदेश करता है। (श्रोणः निः भूत्) सर्वश्रोता होकर समर्थ रहता है। (२) (अन्धः प्र ख्यत्, श्रोणः निर्भूत्) अन्ध अर्थात् अचक्षु रह कर भी देखता और पंगु होकर भी सर्वत्र जाता है। यह योजना ईश्वर पक्ष में है 'अपाणि-पादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥ उपनिषत्।

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः।
उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक! सन्मार्ग में संचालक! ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (तनू कृद्भ्यः) राष्ट्र को क्षीण करने वाले और (अन्यकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः) अन्य, शत्रुओं से किये, उनसे प्रेरित द्वेषों से भी (वरूथं) बचाने वाले महान् बल का (उरु यन्तासि) विशाल गृहवत् नियन्ता है।

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्।
यावीरघस्य चिद् द्वेषः ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) प्रजा जनों को सन्मार्ग में चलाने हारे! हे शत्रुओं को भूनने, संतप्त करने वाले सैन्य के सञ्चालक! (त्वं) तू (तव) तेरे अपने (चित्ती) ज्ञान, बुद्धि और (दक्षैः) बलों से, (दिवः पृथिव्याः आ) आकाश और पृथिवी से आने वाले (अघस्य चित् द्वेषः यावीः) शत्रु के सब द्वेष भावों को दूर कर।

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम्।
ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥ ५ ॥ ३३ ॥

भा०—(चेद्) यदि (अर्थिनः) धन के इच्छुक लोग (अर्थयन्ति) धन को प्राप्त करते हैं तो उनको चाहिये कि वे (ददुषः रातिं गच्छान्) दानशील पुरुष की दानशीलता को भी प्राप्त हों, वे स्वयं दान भी करें। उनको चाहिये कि वे (तृष्यतः कामम् ववृज्युः) किसी पियासे अर्थार्थी की अभिलाषा को पूर्ण करें। उसकी प्यास को बुझावें। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत्। प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ॥६॥

भा०—(यत्) जो (पूर्व्यम् नष्टम्) पहले के गुप्त या नष्ट हुए को (विदत्) पाता या जान लेता है, वह (ईम्) उस ज्ञान को (ऋतायुम्) सत्य ज्ञान के अभिलाषी पुरुष के प्रति (ईरयत्) उपदेश करे। वह मानो, (ईम्) उसको (अतीर्णम्) अप्रदत्त (आयुः) नया जीवन (प्रतारीत्) प्रदान करता है।

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः। भवा नः सोम शं हृदे ॥७॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (सु-शेवः) उत्तम सुखदाता, (मृडयाकुः) दयाशील, (अदृप्त-क्रतुः) ज्ञान और कर्म पर भी गर्व न करने वाला और (अवातः) प्रचण्ड वायु के समान धक्के न लगाने वाला होकर (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय के लिये शान्तिदायक हो।

मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन्।
मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८ ॥

भा०—हे (राजन्) तेजस्विन् शासन करने हारे राजन्! हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! शासक! तू (नः मा सं वीविजः) हमें मत उद्विग्न कर, न परस्पर एक दूसरे से भय करा। (मा वि बीभिषथाः) विविध प्रकार से भी भयभीत मत कर और (त्विषा) कान्तियुक्त तीक्ष्ण शस्त्र

वा तीक्ष्णता से ही (नः हार्दि मा वधीः) हमारे हृदयों पर आघात मत कर ।

अव॒ यत्त्वे स॒धस्थे॑ दे॒वानां॑ दुर्म॒तीरीक्षे॑ ।

राज॒न्नप॒ द्विषः॑ सेध मी॒ढ्वो अप॒ स्रिधः॑ सेध ॥६॥३४॥

भा०—(यत्) जब तू (त्वे) अपने और (देवानां) मनुष्यों के (सध-स्थे) एकत्र मिलकर बैठने के लिये विचार स्थल में (दुर्मताः) दुष्टों के दुर्व्यवहारों की (अव ईक्षे) न्यायपूर्वक विवेचना करे तब, हे (राजन्) राजन् ! तू (द्विषः) द्वेष और द्वेषी जनों को और (स्रिधः अप सेध) हिंसा और हिंसकों को भी दूर कर । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[८०]

एकद्यूर्नौधस ऋषिः ॥ १—९ इन्द्रः । १० देवा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ३, ५, ८ निचृद् गायत्री । ४, ६, ७, ९, १० गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

न॒ह्य१॒॑न्यं ब॒ळाक॑रं मर्डि॒तारं॑ शतक्रतो । त्वं न॑ इन्द्र मृळय ॥१॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरमित ज्ञानवन् ! (अन्यं) तुझसे दूसरे को मैं (मर्डितारं नहि आकरम्) सुखदाता करके नहीं जानता (बडा) यह मैं सत्यपूर्वक कहता हूँ । (त्वं) तू (नः इन्द्र मृडय) हमें, हे ऐश्वर्य-वन् ! सुखी कर ।

यो नः॒ शश्व॑त्पु॒राावि॒थामृ॑ध्रो॒ वाज॑सातये ।
स त्वं न॑ इन्द्र मृळय ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (शश्वत्) सदा (पुरा) पूर्व भी, (अमृधः) स्वयं अन्यों की हिंसा न करने वाला और स्वयं अहिंसित होकर (वाज-सातये) ऐश्वर्य विभाग के लिये (नः आविथ) हमें प्राप्त होता है, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृडय) हमें सुखी कर ।

किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि ।
कुविदिस्वन्द्र णः शकः ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (रध्रचोदनः) अपने आराधक को सन्मार्ग पर चलाने हारा ही (किम्) क्यों बल्कि (सुन्वानस्य) उपासक का (अविता इत् असि) रक्षक ही है तू (नः कुवित् शकः) हमारा बहुत कुछ कल्याण करने में समर्थ है ।

इन्द्र प्र णो रथमव पुश्चाच्चित्सन्तमद्रिवः । पुरस्तादेनं मे कृधि ॥४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् तू (नः) हमारे (रथम् प्र अव) रमणकारक सुखप्रद रथवत् देह की अच्छी प्रकार रक्षा कर । (पश्चात् चित् सन्तम् मे एनं) पिछड़े हुए भी इस मेरे रथ को (पुरस्तात् कृधि) आगे कर । सफलता के मार्ग पर यदि मैं पिछड़ूं तो तू मुझे आगे बढ़ा ।

हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि ।
उपमं वाजयु श्रवः ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(हन्तो नु) भला अब (किम् आससे) क्यों विलम्ब करता है ? (नः रथं) हमारे रथ को (प्रथमं कृधि) सबसे मुख्य कर और तेरा (वाजयु श्रवः) ज्ञानयुक्त उपदेश (नः उप-मं) हमारे समीप रहे । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमारे (वाजयुं) बल, वेग, वीर्य से युक्त (रथं) रथवत् देह की (अव) रक्षा कर । (इत् परि ते सुकरं किम्) इससे अधिक तेरे लिये क्या और सुगम कार्य है ? तू (अस्मान्) हमें (जिग्युषः सु कृधि) विजयी भली प्रकार कर ।

इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् ।
इयं धीर्ऋत्वियावती ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (दृह्यस्व) दृढ़ हो और तू (भद्रा पूः असि) सुखदायी, पुर, प्रकोट या दुर्ग के समान पालक, रक्षक है ।

(ते) तेरा (इयं) यह (ऋत्वियावती) काल पर फल देने वाला (धीः) कर्म भी (निष्कृतं एति) सफलता को प्राप्त होता है।

मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम्।
अपावृक्ता अरत्नयः॥ ८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! (सीम्) सब ओर से भी (अवद्ये) निन्दा योग्य बुरे कार्य में तू हमें (मा भाग्) मत डाल। (ऊर्वी काष्ठा) सीमा बहुत दूर है, यहां (धनं हितम्) धन अर्थात् प्राप्तव्य पदार्थ रक्खा है। (अरत्नयः) दुःखदायी शत्रु (अपावृक्ताः) दूर हों।

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि।
आदित्पतिर्न ओहसे॥ ९॥

भा०—(यदा) जब तू (तुरीयं) चतुर्थ, सर्वश्रेष्ठ, (यज्ञियं) सर्वोपास्य (नाम) स्वरूप को (करः) प्रकट करता है तब हम (तत् उश्मसि) उसकी कामना करते हैं। (आत् इत्) अनन्तर ही तू (नः पतिः) हमारा पालक होकर हमें (ओहसे) अपने में ले लेता है।

अवीवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्॥१०।३६।८

भा०—हे (अमृताः देवाः) अमृतस्वरूप दीर्घायु विद्वान् (उत) और (याः च देवीः) जो आप लोग विदुषी नारियां हो। आप सबको (एक-द्यूः) एकमात्र, प्रकाशक प्रभु ही (अमन्दीत्) आनन्दित करता है और वही (वः अवीवृधत्) आपकी वृद्धि करता है। (तस्मा उ प्रशस्तं राधः कृणुत) उसकी ही सर्वोत्तम आराधना करो और (प्रातः) प्रभात में (मक्षु) शीघ्र ही, सबसे प्रथम (धियावसुः) ज्ञान और कर्म का धनी वही प्रभु (जगम्यात्) तुम्हें प्राप्त हो। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः॥

[८१]

कुसीदी काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ८ गायत्री। २, ३, ६, ७ निचृद् गायत्री। ४, ९ विराड् गायत्री। नवर्चं सूक्तम्॥

आ तू नं इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (महा-हस्ती) बड़े हाथ वाला है। तू (दक्षिणेन) दायें हाथ से (नः) हमें (क्षुमन्तं) कीर्त्तिजनक, अन्नादि से सम्पन्न (चित्रग्राभं) नाना प्रकार का ग्रहण योग्य धन (सं गृभाय) संग्रह कर।

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्।
तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

भा०—हम (त्वा) तुझे (अवोभिः) रक्षा, प्रीति आदि उत्तम गुणों करके (तुवि-कूर्मिं) बहुत कर्म करने में समर्थ, (तुवि-देष्णं) बहुत धन देने वाला, (तुवि-मात्रम्) बहुत धन राशि का स्वामी (विद्महि) जानते हैं।

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्।
भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (गां न भीमं) बड़े बैल के समान भयंकर (न हि देवाः न मर्त्तासः) न दानशील विद्वान् और न साधारण मनुष्य ही (दित्सन्तम् वारयन्ते) दान देने की इच्छा वाले (त्वा) तुझको रोक सकते हैं। तू जब देना चाहे तो तुझे रोकने वाला कोई नहीं।

एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम्।
न राधसा मर्धिषन्नः ॥ ४ ॥

भा०—(एत उ नु) आओ भाइयो ! (वस्वः ईशानं) धन के स्वामी, (स्व-राजं) स्वयं शोभित (इन्द्रं) प्रभु की (स्तवाम) स्तुति करें। कोई (राधसा) धन के कारण (नः मर्धिषत्) हमें पीड़ित न करे।

प्र स्तोषदुपं गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानम्।
अभि राधसा जुगुरत् ॥ ५ ॥ ३७ ॥

भा०—वह प्रभु ही हमें (प्र स्तोषत्) उत्तम स्तुति कराता है

(उपगासिषत्) उपासना या गान कराता है और (गीयमानं साम अवत्) गाये गये साम को सुनता है। वही (राधसा) धनैश्वर्य द्वारा हमें (अभिज्ञुगुरत्) उद्यम कराता है। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश।
इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (दक्षिणेन आ भर) दायें हाथ से ऐश्वर्य दान कर और (सव्येन अभि प्र मृश) बायें से भी उत्साहित कर। तू (नः) हमें (वसोः मा निर्भाक्) धन से वञ्चित मत कर।

उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम्।
अदाशूष्टरस्य वेदः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तू (उप क्रमस्व) उद्यम कर! हे (धृष्णो) शत्रु-पराजयकारिन्! तू (धृषता) पराजय कारक बल से, (जनानां) मनुष्यों के बीच (अदाशूः-तरस्य वेदः) अति कंजूस के धन को (आ भर) ले ले।

इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः।
अस्माभिः सु तं सनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः उ नु ते वाजः) जो तेरा धनैश्वर्य (सनित्वः अस्ति) दान योग्य है (तं) उसे तू (अस्माभिः विप्रेभिः) हम विद्वान् पुरुषों के साथ मिलकर (सु सनुहि) उत्तम कार्य में लगा।

सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः।
वशैश्च मक्षू जरन्ते ॥ ९ ॥ ३८ ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (ते वाजाः) तेरे ऐश्वर्य, (विश्वचन्द्राः) सब संसार को आह्लादित करने वाले हैं। वे (अस्मभ्यं सद्योजुवः) हमें शीघ्र प्राप्त हों। सब लोग (वशैः च मक्षु जरन्ते) नाना कामनाओं से प्रेरित होकर तेरी स्तुति करते हैं। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८२]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ९ निचृद् गायत्री । २, ५, ६, ८ गायत्री । ३, ४ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि ॥१॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! तू (प्र-भर्मणि) उत्तम ऐश्वर्य संग्रह करने वालों से युक्त इस राष्ट्र में (मध्वः प्रति) सुखकारी अन्नों की प्राप्ति के लिये (परावतः अर्वावतः च) दूर और समीप के देशों से वा उन देशों को (आ द्रव प्र द्रव) आया, जाया कर । व्यापार से आयात-निर्यात किया कर ।

तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः ।
पिबा दधृग्यथोचिषे ॥ २ ॥

भा०—(तीव्राः) वेग में तीव्र, कर्मकुशल (सोमासः) उत्तम शासक (मादयिष्णवः) प्रजा को प्रसन्न करने वाले लोग (सुतासः) अभिषिक्त हों । तू (आगहि) आ और (यथा ओचिषे) जैसे भी समवाय बना सके वैसे (दधृक्) शत्रु का पराजय करके (पिब) अपने राष्ट्र का पालन कर, उसका भोग कर ।

इषा मन्दस्वादु तेऽरं वराय मन्यवे । भुवत्त इन्द्र शं हृदे ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तु (इषा) अन्न से (मन्दस्व) तृप्ति कर । क्योंकि (वराय मन्यवे अति) श्रेष्ठ ज्ञान के लिये यह अन्न ही (अरं) अति गुणकारी है । यह अन्न (ते हृदे शम्) तेरे हृदय को शान्ति दे ।

आ त्वशत्रवा गहि न्युक्थानि च हूयसे ।
उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अशत्रो) अजातशत्रो ! शत्रुरहित ! तु (आगहि) आ ।

(दिवः उप-मे) सूर्य की उपमा योग्य (रोचने) तेजस्वी, पद पर तू (उक्थानि हूयसे) स्तुति-वचनों द्वारा आह्वान और स्तवन किया जाता है।

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम्।
प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(अद्रिभिः सुतः गोभिः श्रीतः सोमः मदाय) जैसे पाषाण-खण्डों आदि से निकाला, गोरसों से मिला हुआ सोमादि ओषधि-रस शरीर में सुखादिजनक होता है, वैसे ही (अद्रिभिः सुतः) आकाश में मेघों द्वारा उत्पादित या चक्की, ऊखलादि से अन्न रूप से, और भूमि में (अद्रिभिः) पर्वतों द्वारा उत्पादित रत्नादि रूप से, और (गोभिः श्रीतः) भूमियों या सूर्यकिरणों के विशेष गुणों से परिपक्व या मिश्रित अन्न तथा (गोभिः श्रीतः) वाणियों से प्रशंसित ज्ञान वा किरणों से युक्त मणि आदि भी (अयम्) वह (सोमः) अन्नादि वा रत्नादि ऐश्वर्य (मदाय) अधिक आनन्द या हर्ष के लिये ही (तुभ्यं प्र हूयते) तुझे सादर दिया जाता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

इन्द्र श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः।
वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (मे हवम्) मेरी प्रार्थना को (सु श्रुधि) भली प्रकार सुन। तू (अस्मे) हमारे (गोमतः सुतस्य) दुग्धादि से मिश्रित अन्न तथा भूमि-सहित उत्पन्न ऐश्वर्य का (पीतिम्) उपभोग आदि तथा (तृप्तिम्) तृप्ति को (वि अश्नुहि) विविध रूप से प्राप्त कर।

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः। पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (ते चमसेषु) तेरे पात्रों में या पात्रवत् प्रजाजनों में (सोमः) अन्न और ऐश्वर्य (आसुतः) उत्पन्न होता है और जो (ते चमूषु) तेरी सेनाओं के आश्रय पर (आ सुतः) प्राप्त होता है, (अस्य त्वम्) इसका तू (ईशिषे) स्वामी है। इसलिये तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य पालन या उपभोग कर।

यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु दद्दृशे ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो शासन बल (अप्सु चन्द्रमाः इव) अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के समान आह्लादक और (चमूषु) सेनाओं के ऊपर उनके (सोमः) शासक के समान (दद्दृशे) दिखाई देता है, तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य उपभोग कर, (त्वम् अस्य ईशिषे) तू ही उसका स्वामी है ।

यं ते श्येनः पदाभरत्तिरो रजांस्यस्पृतम् ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! (यम्) जिस सोम अर्थात् ऐश्वर्य को (श्येनः) बाज़ के समान आक्रमण करने वाला सेनापति (रजांसि तिरः) शत्रु जनों को पराजित करके (अस्पृतम्) शत्रुओं से अछूते या अनुपयुक्त रूप में ही (पदा) पदाति सैन्य द्वारा (ते आ भरत्) तेरे लिये ले आता है (अस्य त्वम् ईशिषे) उसका तू ही स्वामी है । तू ही उसका (पिब इत्) उपभोग कर । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[८३]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ विश्वे देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९ गायत्री । ३ निचृद् गायत्री । ४ पादनिचृद गायत्री । ७ आर्ची स्वराड गायत्री । ८ विराड् गायत्री ।

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥१॥

भा०—(वयम्) हम लोग (वृष्णाम्) जलों के वर्षक (देवानाम्) किरणों के समान (वृष्णाम्) बलवान्, सुखदायक और (देवानाम्) विजयेच्छुक वीरों और ज्ञानप्रकाशक विद्वानों के (इत्) ही (महत् अवः) बड़े भारी ज्ञान, रक्षा, बल, प्रेम आदि को (अस्मभ्यम् ऊतये) हमारी अपनी रक्षा के लिये (वृणीमहे) चाहते हैं, उसे ही सबसे अच्छा मानते हैं ।

ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
वृधासंश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) वरण योग्य, वृत राजा वा सभापति, (मित्रः) प्रजा का स्नेही, (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता, न्यायशील वे सब (प्रचेतसः) उत्तम चित्त वाले, ज्ञानसम्पन्न और (वृधासः च) बढ़ाने और दुष्टों का मूलोच्छेद करने वाले (युजः सन्तु) सहायक हों ।

अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ । यूयमृतस्य रथ्यः ॥३॥

भा०—हे (ऋतस्य रथ्यः) महारथियोंवत् सत्य ज्ञान और न्याय के प्राप्त कराने वाले जनो ! आप लोग (नः) हमें (नौभिः अपः न) नौकाओं से जलों के समान (विष्पिता) विविध रूपों से प्राप्त शत्रुओं के बलों वा कर्म-बन्धनों से (अति पर्षथ) पार करो ।

वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (अर्यमन्) दुष्टों के नियन्तः न्यायकारिन् ! हे (वरुण) सबसे वरणीय ! (नः वामं अस्तु) हमारा उत्तम धन हो और (वामं शंस्यं अस्तु) हमारा धन प्रशंसनीय हो और हम (वामं हि आवृणीमहे) उत्तम, सेवन करने योग्य धन वा सुख की ही याचना करते हैं ।

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः ।
नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट चित्त वालो ! हे (रिशादसः) हिंसक जनों को उखाड़ फेंकने वाले वीरो ! आप लोग (वामस्य) सेवने योग्य धन के ही (ईशानासः) स्वामी हो । हे (आदित्याः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा वा माता तुल्य भूमि के पुत्रवत् जनो ! (यत्) जो धन (अघस्य) पाप का है (न ईम् ईशानासः) आप लोग उसके स्वामी न हों । इति तृतीयो वर्गः ॥

व॒यमि॑द्धः सुदानवः क्षि॒यन्तो॒ यान्तो॒ अध्व॒न्ना ।
दे॑वा॑ वृ॒धाय॑ हूमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील (देवाः) नाना उत्तम कामनाओं वाले, व्यवहारकुशल पुरुषो ! (वयम् इत्) हम ही (क्षियन्तः) निवास करते हुए और (अध्वन् यान्तः) मार्ग में जाते हुए भी (नः) आप लोगों की (वृधाय) वृद्धि के लिये (हूमहे) बुलाते हैं ।

अधि॑ न इन्द्रैषां विष्णो॑ सजा॒त्या॑नाम् । इ॒ता मरु॑तो॒ अश्वि॑ना ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले ! हे (अश्विना) उत्तम अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामियो ! हे (मरुतः) वायुवत् बलवान्, विद्वान्, वा व्यापारी जनो ! (सजात्यानां एषां) समान जाति वाले इनमें से (नः) हमें भी (अधि इत्) जानो और अधीन लेवो ।

प्र भ्रा॑तृ॒त्वं सु॑दान॒वोऽध॑ द्वि॒ता स॑मा॒न्या । मा॒तुर्गर्भे॑ भरामहे ॥८॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानदाता पुरुषो ! हम लोग (मातुः गर्भे) माता के गर्भ में रहकर जैसे (भ्रातृत्वं) भाईपन और (समान्या द्विता) समान रूप से आदर योग्य 'द्विता' अर्थात् युगल भाव को प्राप्त करते हैं वैसे ही (मातुः) ज्ञानोपदेष्टा ब्रह्म-ज्ञान के दाता, विद्या जन्म द्वारा उत्पादक आचार्य और सर्वोत्पादक सर्वपोषक माता भूमि के (गर्भे) शासन, विद्या-ग्रहणकाल में रहते हुए परस्पर के (भ्रातृत्वं) भ्रातृत्व और (समान्या द्विता) समानों के योग्य दो-पन या युगल भाव को (प्र भरामहे) उत्तम रीति से धारण करें ।

यू॒यं हि ष्ठा सु॑दानव॒ इन्द्र॑ज्येष्ठा अ॒भिद्य॑वः ।
अधा॑ चि॒द्ध उ॒त ब्रु॑वे ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (इन्द्र-ज्येष्ठाः) अन्नदाता, शत्रुनाशक और ज्ञानदर्शी को अपना ज्येष्ठ मानने वाले और (अभि-द्यवः) स्वयं तेजस्वी, (स्थहि) अवश्य होवो ।

(अध चित् उत) और मैं भी (वः ब्रुवे) आप लोगों को उपदेश करूं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[८४]

उशना काव्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, पादनिचृद् गायत्री । २ विराड् गायत्री । ३, ६ निचृद् गायत्री । ४, ५, ७—९ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् ॥१॥

भा०—मैं (वः) आप लोगों के प्रति, आप में से (प्रेष्ठं) सबसे अधिक प्रिय, (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (मित्रम् इव) मित्र के समान (प्रियम्) प्रीतिकारक, (रथं न) रथ के समान (वेद्यम्) धन जन, देशान्तर प्राप्त करने के उत्तम साधन, रम्य, ज्ञानप्रद (अग्निं) अग्रणी, विद्वान् की (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ।

कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥२॥

भा०—(यम्) जिस (कविम् इव प्रचेतसम्) विद्वान् पुरुष के समान उत्तम ज्ञानवान् को (देवासः) विद्वान् जन (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (द्विता नि आदधुः) दो प्रकार से स्थापित करें । पूज्य रूप से और सञ्चालक रूप से । हे मनुष्यो ! (अध) उसे स्वीकार करो ।

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥

भा०—हे (यविष्ठ) युवतम, उत्तम, युवा पुरुष ! बलवन् ! (त्वं) तू (दाशुषः) जीवन, धन, ज्ञानादि देने वाले (नॄन्) मनुष्यों को (पाहि) पालन कर और उनकी (गिरः) वाणियों को (शृणुधिः) सुना (तोकम्) पुत्र आदि सन्तति की (त्मना) अपने सामर्थ्य से (रक्ष) रक्षा कर ।

कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।
वराय देव मन्यवे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (अंगिरा) अंग-देह में रसवत् बलशालिन् ! हे (ऊर्जः नपात्) वीर्य से उत्पन्न पुत्रवत् बल से उत्पन्न, वा बल, वीर्य का पतन या नाश न होने देने वाले ! हम लोग (वराय) वरण-योग्य (मन्यवे) तेजस्वी, मननशील (ते) तुझ पुरुष का (उपस्तुतिम्) गुणवर्णन (कया) कैसी वाणी से करें।

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो।
कदु वोच इदं नमः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) शत्रु विजयी बल से उत्पन्न ! हम लोग (कस्य) किस (यज्ञस्व) पूज्य, सत्संगयोग्य के (मनसा) ज्ञान वा मन से युक्त होकर (दाशेम) दान करे, अपने को सौंपे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः।
वाजद्रविणसो गिरः ॥ ६ ॥

भा०—(अध) और (त्वं ही) तू ही (नः) हम (विश्वाः सुक्षितीः) समस्त प्रजाओं को उत्तम (करः) बना और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वाजद्रविणसः सुक्षितीः करः) अन्न, ऐश्वर्य सम्पन्न भूमियां कर और हमारे लिये(गिरः वाज-द्रविणसः)ज्ञानसम्पन्न वाणियों का उपदेश कर।

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दम्पते।
गोषाता यस्य ते गिरः ॥ ७ ॥

भा०—हे (दम्पते) गृहपते ! हे दमन, शासन, दण्ड व्यवस्थादि के पालक ! (यस्य ते) जिस तेरी (गिरः) वाणियां (गो-साता) हमें ज्ञान वाणियों और भूमियों के विभाग या दान के लिये हैं वह तू (कस्य परीणसः) किस महान् पुरुष के निमित्त (धियः जिन्वसि) नाना कर्म करता है, किसके प्रति बहुत स्तुतियों, बुद्धियों को प्रेरित करता है।

तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु।
स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—(तं) उस (सु-क्रतुं) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले (आजिषु) संग्रामों में (पुरः-यावानं) आगे प्रयाण करने हारे और (स्वेषु क्षयेषु) अपने ऐश्वर्यों वा गृहों में भी (वाजिनम्) बल, ज्ञान और वेग से अनालसी होकर कार्य करने वाले को (मर्जयन्त) सादर अलंकृत करो।

क्षेति॒ क्षेमे॑भिः सा॒धुभि॒र्नकि॒र्यं घ्नन्ति॒ हन्ति॒ यः।
अग्ने॑ सु॒वीर॑ एधते ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (क्षेमेभिः) कल्याणकारी,(साधुभिः) उत्तम कार्य-साधक पुरुषों और उपायों सहित (क्षेति) रहता और ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, (यं नकिः घ्नन्ति) जिसको कोई भी मार नहीं सकते हैं। वह हे (अग्ने) अग्निवत् ज्ञानिन्, तेजस्विन्, प्रतापशालिन्! तू (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान् होकर (एधते) वृद्धि को प्राप्त करता है। इति षष्ठो वर्गः॥

[८५]

कृष्ण ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ६ विराड् गायत्री। २, ५, ७ निचृद् गायत्री। ३, ४, ६, ८, गायत्री॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

आ मे॒ हवं॑ नास॒त्याश्वि॑ना॒ गच्छ॑तं यु॒वम्।
मध्वः॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य आचरणों से रहित, सदा सत्यभाषी हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के वशी स्त्री पुरुषो! (युवम्) तुम दोनों, (मे हवम्) मेरे यज्ञ को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर अन्न रस पान करने के लिये (आ गच्छतम्) आइये।

इ॒मं मे॒ स्तोम॑मश्विने॒मं मे॑ शृणु॒तं हव॑म्।
मध्वः॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (मे इमं स्तोमं हवम्) मेरा यह स्तुति योग्य आह्वान वा उपदेश को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के पान के लिये (शृणुतम्) श्रवण करो।

अयं वां कृष्णो अश्विना हवंते वाजिनीवसू।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों वालो! हे (वाजिनीवसू) बलयुक्त सेना के धनी सैन्य और सेनापते! (मध्वः सोमस्य पीतये) बलयुक्त शत्रु को कंपाने में समर्थ 'सोम' ऐश्वर्य और बल के पालन करने के लिये (अयं) यह (कृष्णः) शत्रु को कर्षण या पीड़ित करने वाला राजा (वां हवते) तुम दोनों को अपने पास बुलाता है।

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नर-नारियो! आप (मध्वः सोमस्य पीतये) सुखदायक सोम, बल वीर्य के पालन करने के लिये (स्तुवतः जरितुः) उपदेश करने वाले विद्वान्, (कृष्णस्य) संशयों के उच्छेदन में समर्थ विद्वान् के (हवं) आह्वान या वचन का (शृणुतं) श्रवण करो।

छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) आनन्दप्रद ज्ञान रस के पान के लिये (स्तुवते विप्राय) उपदेष्टा विद्वान् को हे (नरा) उत्तम पुरुषो! (अदाभ्यं छर्दिः यन्त) अहिंसक, सुखदायक गृह प्रदान करो। इति सप्तमो वर्गः ॥

गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) ज्ञान-रस का पान करने और आनन्दकारी वीर्य की रक्षा के लिये, हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो! आप दोनों वर्ग (इत्था स्तुवतः) सत्य के उपदेष्टा विद्वान् (दाशुषः गृहम्) ज्ञानदाता गुरु के गृह को (गच्छतम्) जाओ।

४० प.

युञ्जाथां रासभं रथे वीडुवङ्गे वृषण्वसू ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् ब्रह्मचारी जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) सुखकारक 'सोम' विद्या माता के गर्भ में उत्पन्न होने वाले शिष्य-रूप पुत्र के पालन और उसको ज्ञान-रस-पान कराने के लिये (वीडु-अंगे रथे) दृढांग रथ में (रासभं) उत्तम ध्वनि से अलंकृत अश्व के समान (वीडु-अंगे) दृढ़ अंगों को करने में समर्थ (रथे) उत्तम उपदेश-योग्य आश्रम, ब्रह्मचर्य काल में (रासभं) उत्तम उपदेश से अलंकृत आचार्य को (युंजाथाम्) नियुक्त करो ।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥

भा०—(अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर वेदज्ञान के पान और वीर्य-पालन के लिये (त्रि-वन्धुरेण) तीन बन्धनों वाले, (त्रिवृता) तीन बार बटे, तीन प्रकार से अभ्यस्त (रथेन) स्थिर होकर रहने योग्य, ब्रह्मचर्य-आश्रम के धर्म-पालन से (आयातम्) आगे बढ़ो ।

नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥ ८ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के ग्रहण के लिये हे (नासत्या) सदा सत्य के धारण करने वाले ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो (नू) शीघ्र ही (मे गिरः युवं प्रावतम्) मेरी उपदिष्ट वेदवाणियों का आप उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८६]

कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः । ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् १

भा०—हे (दस्रा) रोगादि के नाशक (उभा) आप दोनों (भिषजा) प्रेमपूर्वक मिलने-जुलने वाले, वा रोगों को दूर करने वाले (मयः-भुवा) सुखदाता और (उभा) दोनों (दक्षस्य वचसः) बलयुक्त कर्म-समर्थ वचन के बोलने वाले (बभूवथुः) होवो। (ता वां) आप दोनों को (विश्वकः) समस्त मनुष्य (तनू-कृथे) देह-रक्षा के निमित्त (हवते) बुलाते हैं। आप दोनों (सख्या) मित्रता से (नः) हमें (मा वि यौष्टं) पृथक् न करो, प्रेम से रक्खो और (नः मा मुमोचत्) हमें त्याग न करो।

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्य इष्टये। ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥२॥

भा०—(नूनं) निश्चय ही (वि-मनाः) विपरीत ज्ञान वाला अज्ञानी मनुष्य (वां) तुम दोनों की (कथा उपस्तुवत्) कैसे स्तुति कर सकता है ? (युवम्) तुम दोनों (इष्टये) इच्छा पूर्ति के लिये (धियं वस्यः ददथुः) बुद्धि और धन देते हो। (ता वां) उन आप दोनों को (तनू-कृथे विश्वकः हवते) अपने देह के सुखार्थ सभी बुलाते हैं। तुम दोनों (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमें मित्र भाव से पृथक् मत करो और (वि मुमोचतम्) विविध दुःखों से छुड़ाओ।

युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्य इष्टये। ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥३॥

भा०—हे (पुरु-भुजा) बहुतों को पालन करने में समर्थ पुरुषो ! आप दोनों (विष्णाप्वे) व्यापक शक्तिमान् प्रभु को प्राप्त करने वाले को (इष्टये) यज्ञ के निमित्त (वस्यः) उत्तम धन और (एधतुं ददथुः स्म) वृद्धि के साधन देते रहो। (ता वां० इत्यादि पूर्ववत्)

उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (त्यं वीरं) उस वीर, बलवान् (धनसा) धन के दानी और धन प्राप्त करने में कुशल, (ऋजीषिणं) धर्म मार्ग में सञ्चालक और शत्रुनाशक सैन्य के चालक ऐसे (दूरे चित् सन्तं) दूर देश में रहते हुए पुरुष को भी हम (अवसे) रक्षा और ज्ञान लाभ के लिये (हवामहे) बुलावें। (यस्य) जिसकी (स्वादिष्ठा सुमतिः) अति सुखदायिनी प्रज्ञा (यथा पितुः) पिता के समान हित करे, हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! (नः मा वियौष्टं) पूर्ववत्।

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे।
ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(देवः सविता) सूर्य के समान तेजस्वी, प्रभु (ऋतेन) सत्य ज्ञान वेद से (शम् आयते) सबको शान्ति देता है और वह (ऋतस्य शृङ्गम्) अन्धकारनाशक प्रकाश के समान असत्य, अविद्या के नाशक सत्य के प्रकाश को (उर्विया पप्रथे) बहुत अधिक फैलाता है। (ऋतं) सत्य ही (महि चित् पृतन्यतः) बड़े २ शत्रुओं को भी (सासाह) पराजित करता है। शेष पूर्ववत्। इति नवमो वर्गः ॥

[८७]

कृष्णो द्युम्नी द्युम्नीको वा वासिष्ठ आंगिरसः प्रियमेधो वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ बृहती। ५ निचृद् बृहती। २, ४, ६ निचृत् पंक्तिः। षड्‌चं सूक्तम् ॥

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम्।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥ १ ॥

भा०—(सेके क्रिविः न) सेचन के लिये प्रचुर जल वाला कूप जैसे (घृम्नी) उत्तम अन्नोत्पादक होता है वैसे ही (वां) आप दोनों का (स्तोमः घृम्नी) स्तुति-वचन, उपदेश ज्ञान देने वाला है। हे (अश्विना) विद्यावान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (आ गतम्) आइये। (सः) वह (दिवि प्रियः) ज्ञान-प्राप्ति के निमित्त पूर्ण है। हे (नरा) उत्तम पुरुषो! दोनों (मध्वः सुतस्य) मधुर ज्ञान का (इरिणे गौरौ इव) जलाशय में दो गौर नाम मृगों के समान (पातं) पान करो।

पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः॥ २॥

भा०—हे (अश्विना) अश्ववत् राष्ट्र में नियुक्त जनों के स्वामी जनो! आप दोनों (नरा) नायक जन (बर्हिः) आसनवत् इस राष्ट्र प्रजाजन पर (आ सीदतम्) अध्यक्षवत् विराजो और (मधुमन्तं) बलयुक्त (घर्मं) तेज और रस का मधुयुक्त ओषधिवत् (पिबतम्) उपभोग करो। (मनुषः दुरोणे) मनुष्य के आश्रय रूप गृह के समान उत्तम रक्षास्थानवत् (मनुषः दुरोणे) साधारण मनुष्य के लिये दुष्प्राप्य राजपद पर (मन्दसाना) हर्ष लाभ करते हुए (ता) वे आप दोनों (वेदसा) धन के द्वारा (वयः) राष्ट्र के बल और समृद्धि की (निपातम्) रक्षा करो।

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु॥ ३॥

भा०—हे उत्तम नायको! जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! (प्रियमेधाः) यज्ञ, युद्ध आदि के प्रियजन (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार की प्रीतियों तथा रक्षा-साधनों सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को बुलाते हैं। (ता) वे आप दोनों (वृक्तबर्हिषः) कुशाओं के समान संशयों, शत्रुओं का मानसिक दुर्विचार, क्रोधादि रिपुओं को उच्छेद करने वाले के (वर्तिः) गृह पर (उप-यातम्) उपस्थित होवो और (दिविष्टिषु) प्रति प्रातः के

अवसरों में वा उत्तम कामनाओं की पूर्त्ति के लिये (यज्ञं) यज्ञ, सत्-संगादि को (उप जुष्ट) सेवन करो।

पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत्।

ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ॥४॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो! आप दोनों (सुमत् बर्हिः सीदतम्) उत्तम आसन और प्रजा पर अध्यक्षवत् विराजो और (मधुमन्तं सोमं पिबतम्) मधुर आनन्द-युक्त ऐश्वर्य का अन्नवत् उपभोग करो। (ता) वे आप दोनों (वावृधाना) वृद्धि प्राप्त करते हुए (दिवः सु-स्तुतिं) ज्ञान के उत्तम उपदेश को (इरिणं गौरौ इव) जलाशय को मृगयुगल के समान (उप गन्तम्) प्राप्त होवो।

आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः।

दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) शीघ्रगामी अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी, नायक जनो! आप दोनों (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध, पूर्ण वा जलादि से सिक्त अभिषेचित रूप वाले (अश्वेभिः) विद्यावान् पुरुषों-सहित (नूनं आयातम्) अवश्य आवो। आप दोनों (दस्रा) बाह्य, अन्तः-शत्रुओं के नाशक, (हिरण्य-वर्त्तनी) सुवर्ण के रथ वाले, वा हितरमणीय मार्ग के अवलम्बक, (शुभः-पती) उत्तम कल्याण के पालक, (ऋत-वृधा) ज्ञान के वर्धक आप दोनों (सोमम् पातम्) ऐश्वर्य का उपभोग करो।

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये।

ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गतम् ॥६॥१०॥

भा०—हे (अश्विना) हे अश्वादि साधनों के स्वामी जनो! (वां हि विपन्यवः) हम स्तुतिकर्त्ता और विविध व्यवहार-कुशल (विप्रासः) विद्वान् जन (वाज-सातये) ऐश्वर्य और ज्ञान-प्राप्ति के लिये (वां हि हवामहे) आप दोनों को बुलाते हैं। (ता) वे आप दोनों (वल्गू) कुशल

आचरण वाले, (दस्रा) दुष्ट कर्मों के नाशक (पुरु-दंससा) बहुत से उत्तम कर्मों के कर्त्ता होकर (धिया) कर्म और ज्ञान-बल से (श्रुष्टी आ गतम्) शीघ्र ही उद्देश्य को प्राप्त होवो। इति दशमो वर्गः ॥

[८८]

नोधा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ बृहती। ५ निचृद् बृहती। २, ४ पंक्तिः। ६ विराट् पंक्तिः। षड्ऋचं सूक्तम् ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो! (अन्धसः) अन्नवत् उपभोग्य (वसोः) राष्ट्र में बसे प्रजा जन और (वसोः) धन राशि से (मन्दानम्) हर्षित (तं) उस (दस्मम्) शत्रुनाशक और (ऋति-सहं) शत्रुओं के पराजयकारी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति की हम लोग (स्वसरेषु) सुख से बीतने वाले दिनों में, गोष्ठों में (अभिवत्सं न धेनवः) बच्छे के प्रति गौओं के समान (गीर्भिः नवामहे) वाणियों से स्तुति करें।

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (द्युक्षं) दीप्ति-युक्त (सु-दानुं) उत्तम दानशील, (तविषीभिः आवृतं) नाना सेनाओं से घिरे (गिरिं न) मेघ के समान (पुरु-भोजसं) बहुतों के पालक, स्वामी से (क्षुमन्तं) अन्नादि से युक्त (शतिनं सहस्रिणं) सौ हजार-आदि से युक्त, (गोमन्तं वाजं) भूमि, पशु धनों आदि से समृद्ध ऐश्वर्य की याचना करें और प्राप्त भी करें।

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥३॥

भा०—(बृहन्तः) बड़े २ (वीडवः) बलशाली, (अद्रयः) पर्वतों के तुल्य बाधक जन भी (त्वा न वरन्ते) तुझे निवारण नहीं करते। (यत्)

जो तू (मावते स्तुवते) मुझ सदृश स्तुतिकर्त्ताओं को (वसु दित्ससि) धन देना चाहता है (ते तत् न किः आमिनाति) तेरे उस संकल्प का कोई भी नाश नहीं कर सकता ।

योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥ ४ ॥

भा०—(यम्) जिस (त्वा) तुझको (अर्कः) स्तोता वा तेरे गुण बतलाने वाला वेदमन्त्र (ऊतये आववर्तति) रक्षा के लिये अपने अभिमुख करता है, (यं गोतमाः अजीजनन्) जिसको वेदवाणियें, वा विद्वान् प्रकट करते हैं वह तू (क्रत्वा) ज्ञान, (शवसा) बल (उत दंसना) और कर्म और (मज्मना) आज्ञापक प्रभाव से (विश्वा जातानि अभि) सब पदार्थों के प्रति (योद्धा असि) शत्रुओं से लड़ने हारा, उन पर प्रहार करने, पछाड़ने में समर्थ है ।

प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (ओजसा) बल पराक्रम से (दिवः अन्तेभ्यः परि) आकाश और पृथिवी के परले छोरों तक भी (प्र रिरिक्षे हि) सबसे अधिक बलशाली है । तू (पार्थिवम् रजः अनु स्वधां ववक्षिथ) पृथिवी लोक पर जलवत् जीवन तत्त्व को प्राप्त कराता है, तू महान् है और (न त्वा विव्याच) तुझे कोई व्याप नहीं सकता ।

नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥६॥११॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (दशस्यसि) देता है उस (ते) तेरे (मघस्य) धन का (परिष्टिः) बाधक (नकिः) कोई नहीं । तू (वाज-सातये) अन्न, ऐश्वर्य, बल, ज्ञान-दान करने में (मंहिष्ठः) अति दानी और (चोदिता) सन्मार्ग में प्रेरक है । तू (अस्माकं उचथस्य बोधि) हमारे वचन, स्तुति को जान । इत्येकादशो वर्गः ॥

[८९]

नृमेधपुरुमेधावृषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ बृहती । ३ निचृद् बृहती । २ पादनिचृत् पंक्तिः । ४ विराट् पंक्तिः । ५ विराडनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥

भा०—हे (मरुतः) परिमित भाषण वाले, विद्वान् पुरुषो ! (येन) जिससे (ऋत-वृधः) सत्य के बढ़ाने वाले, (देवाय) प्रकाशस्वरूप, प्रभु को जानने के लिये (देवं जागृवि ज्योतिः अजनयन्) प्रकाशक, सदा जागृत ज्ञानज्योति को प्रकट कर लेते हैं उस (वृत्र-हन्तमम्) विघ्न-बाधा-रूप, अन्तःकरण के आवरण को नाशक (बृहत्) बड़े उत्तम बृहत् नाम स्तोम का (इन्द्राय) उस प्रभु की स्तुति के लिये (गायत) गान करो ।

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥

भा०—(अशस्तिहा इन्द्रः) अपकीर्त्तियों का नाशक वह ऐश्वर्यवान्, (अभिशस्तीः अप अधमत्) हिंसकों के आक्रमणों को परे कर देता है, (अथ) और वह (द्युम्नी अभवत्) ऐश्वर्यवान् हो जाता है । हे (बृहद्-भानो) महान् तेजस्विन् ! (मरुद्-गण) बलवान् गणों के स्वामिन् ! (देवाः) विजयेच्छुक जन (ते सख्याय येमिरे) तेरे सख्यभाव के लिए अपने को नियम में बांधते हैं ।

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुहन्ता जनो ! आप लोग (बृहते इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्यवान् प्रभु के (ब्रह्म अर्चत) महान् सामर्थ्य की स्तुति करो ।

यह (वृत्रहा) दुष्टों का हन्ता (शत-क्रतुः) अपरमित ज्ञानी, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों पर्वों से युक्त वज्र, बल, सैन्य वा ज्ञान से (वृत्रं) दुष्ट शत्रु और अज्ञान का (हनति) नाश करता है। 'वज्र'—अज्ञान का वर्जन करने से ज्ञान वज्र है।

अभि प्र भंर धृषता धृंषन्मनः श्रवंश्चित्ते असद् बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवंसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वंः ॥ ४ ॥

भा०—हे (धृषन्-मनः) शत्रुओं और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने में समर्थ मन वा ज्ञान वाले जन! (ते) तेरा (बृहत् श्रवः असत्) बड़ा भारी यश और ज्ञान हो। तू उस ज्ञान वा यश को (धृषता) बाह्य और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने वाले बल से (अभि प्र भर) धारण कर। (मातरः) माताओं के समान, सर्वप्रिय (आपः) आप्तजन (वि अर्षन्तु) मेघ से जल धाराओं के समान विविध प्रकार से प्राप्त हों और तू (वृत्रं हनः) दुष्ट का नाश कर और (स्वः जय) सबका विजय कर।

यज्जायंथा अपूर्व्य मघंवन्वृत्रहत्यांय।
तत्पृंथिवीमंप्रथयस्तदंस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व विद्यमान (यत्) जो तू (वृत्र-हत्याय) बढ़ते शत्रुवत् अज्ञान के नाश के लिये (अभि प्र जायथाः) समर्थ होता है, (तत्) वह तू (पृथिवीम् अप्रथयः) पृथिवी को विस्तृत करता, (उत) और (द्याम् अस्तभ्नाः) आकाश वा सूर्य को स्थिर करता है।

तत्ते॑ यज्ञो अंजायत तदर्क उत हस्कृंतिः।
तद्विश्वंमभिभूरंसि यज्जातं यच्च जन्त्वंम् ॥ ६ ॥

भा०—तब ही हे प्रभो! (ते यज्ञः अजायत) तेरा महान् यज्ञ होता है (तत् ते अर्कः) वही तेरा स्तुति योग्य ज्ञान है। (उत हस्कृतिः) वही तेरा आह्य दिनवत् हर्ष का विलास है। (तत्) वह तू (विश्वम्

अभि भूः असि) समस्त विश्व का उत्पादक है (यत् जातं यत् जन्त्वम्) जो उत्पन्न हुआ और जो उत्पन्न होगा, उस सबका उत्पादक तू ही है।

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥७॥१२॥

भा०—हे प्रभो! तू (आमासु) मृदु भूमियों में (पक्वं) परिपाक योग्य, शक्ति को (ऐरयः) देता है और (दिवि) आकाश में (सूर्यं आरोहयः) सूर्य को स्थापित करता है। (गिर्वणसे) वाणी से सेवन योग्य उस प्रभु के (जुष्टं) प्रिय (बृहत्) बड़े भारी (घर्मं) तेज को (सामन्) सामस्तुति (सु-वृक्तिभिः) और उत्तम स्तुतियों द्वारा (घर्मं न) सूर्य-प्रकाशवत् (तपत) तपो, सेवन कर तपश्चर्या से उसके तेज को धारण करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[९०]

नृमेधपुरुमेधावृषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती । ३ विराड् बृहती । ५ पादनिचृद् बृहती । २,४ पादनिचृत् पंक्तिः । ६ निचृत् पंक्तिः ॥

षडृचं सूक्तम् ॥

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ १ ॥

भा०—(हव्यः इन्द्रः) सबसे संकटों के समय पुकारने, बुलाने योग्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमारे (विश्वासु समत्सु) समस्त संग्रामों में (आ भूषतु) सदा सज्ज रहे। वह (वृत्र-हा) बढ़ते शत्रु का नाशक, (परम-ज्याः) बड़ी प्रबल डोरी वाला, शत्रुओं का बड़ा नाशक और (ऋचीषमः) यथार्थ गुण-स्तुति के अनुरूप होकर (सवनानि) समस्त ऐश्वर्यों (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को (उप भूषतु) प्राप्त हो।

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २

भा०—(त्वं) तू (राधसां प्रथमः दाता) ऐश्वर्यों का सर्वोत्कृष्ट दाता है, तू (सत्यः) सत्यस्वरूप, (ईशान-कृत्) सबका स्वामी, जगत् का कर्त्ता है। (तुवि-द्युम्नस्य) बहुत से धनों, ऐश्वर्यों से सम्पन्न (महः शवसः पुत्रस्य) बड़े भारी बल के कारण बहुतों की रक्षा करने में समर्थ तेरे ही (युज्या) सहयोगों, मित्रताओं और सहायताओं की (वृणीमहे) याचना करते हैं।

ब्रह्मा॑ त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता।
इमा जु॑षस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अम॑न्महि॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे लिये (अनतिद्भुता) यथार्थ गुणानुरूप (ब्रह्मा) स्तुतिवचन, अन्नादि सत्कार (क्रियन्ते) किये जावें। हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (हर्यश्व) अश्वोंवत् मनुष्यों के स्वामिन्! हम (या ते) तेरे लिये या जिन भी (योजना) उचित गुण भोगों की (अमन्महि) चिन्तना करते हैं तू (इमा जुषस्व) इनको स्वीकार कर।

त्वं हि सत्यो म॑घवन्ननान॑तो वृत्रा भूरि॑ न्यृञ्जसे॑।
स त्वं श॑विष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं॑ रयिमा कृ॑धि॥ ४॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (अनानतः) किसी से भी नहीं झुकता, (त्वं हि सत्यः) तू सत्य-रूप है। तू (भूरि-वृत्रा) बहुत से विघ्नों, दुष्ट पुरुषों को (नि-ऋञ्जसे) वश करने में समर्थ है। हे (शविष्ठ) अति बलशालिन्! हे (वज्र-हस्त) हाथ में बल, वीर्य और खड्ग धारण करने हारे! (त्वं) तू (दाशुषे) दानशील को (रयिम् अर्वाञ्चं कृधि) ऐश्वर्य प्राप्त करा।

त्वमि॑न्द्र यशा अ॑स्यृजीषी श॑वसस्पते।
त्वं वृत्राणि॑ हंस्यप्रतीन्येक॒ इदनु॑त्ता चर्षणीधृता॑॥ ५॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के हन्तः! (त्वं यशाः असि) तू यशस्वी

है। हे (शवसः पते) बलों के पालक! (त्वं ऋजीषी असि) तू सबको सत्य मार्ग में चलाने हारा है। (त्वं) तू (अप्रतीनि) वे मुकाबले के (वृत्राणि) मेघस्थ जलोंवत् अति बाधक शत्रुओं को भी (एकः इत्) अकेला ही (हंसि) दण्डित करता है, तू (चर्षणीधृता) समस्त मनुष्यों के धारक बल से (अनुत्ता) अपराजित शत्रुओं को भी पराजित करता है।

तमु॑ त्वा नूनम॑सुर॒ प्रचे॑तसं॒ राधो॑ भा॒गमि॑वेमहे।

म॒हीव॒ कृत्तिः॑ शर॒णा त॑ इन्द्र॒ प्र ते॑ सु॒म्ना नो॑ अश्नवन् ॥६॥१३॥

भा०—हे (असुर) बलशालिन्! (प्र-चेतसं) उत्कृष्ट चित्त वाले (त्वा) तुझसे (भागम् इव राधः ईमहे) पिता से प्राप्तव्य भाग के समान हम धन-याचना करते हैं। (ते) तेरी (कृत्तिः) श्रमपूर्वक काट कर संग्रह-योग्य खेती (ते शरणा) तेरी शरणदायिनी सम्पदा (मही इव) बड़ी भारी भूमिवत् है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते सुम्ना नः प्राश्नवन्) तेरे दिये सुख हमें प्राप्त हों। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[९१]

अपालात्रेयी ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। २ पंक्तिः। ३ निचृदनुष्टुप्। ४ अनुष्टुप्। ५, ६ विराडनुष्टुप्। ७ पाद-निचृदनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

क॒न्या॒३ वार॑वाय॒ती सोम॒मपि॑ स्रु॒ताऽवि॑दत्।

अस्तं॒ भर॑न्त्यब्रवी॒दिन्द्रा॑य सुनवै त्वा श॒क्राय॑ सुनवै त्वा ॥१॥

भा०—जैसे (स्रुता) बहती (अवयती) नीचे की ओर जाती (वाः) जलधारा (सोमम् अपि विदत्) ओषधि वर्ग को प्राप्त होती है, वैसे ही (वाः) वरण करने वाली वरवर्णिनी, (अवयंती कन्या) समझती बूझती हुई कन्या (सोमम्) पुत्रोत्पादन में समर्थ पुरुष को (स्रुता) उसके प्रति प्रेमाकृष्ट होकर (अपि विदत्) पति रूप से प्राप्त करे; विवाह करे। वह (अस्तं भरन्ती) गृह-आश्रम को धारण करती हुई (अब्रवीत्) कहे

कि मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी स्वामी होने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा आदर करती हूँ, ऐसे ही (शक्राय) शक्तिशाली स्वामी को प्राप्त करने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा पूजन करती हूँ।

असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत्।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ॥२॥

भा०—(असौ) वह दूर देश का (यः) जो (वीरकः) वीर्य-युक्त पुरुष (एषि) प्राप्त होता है वह तू (गृहं-गृहं) प्रत्येक गृह को (विचाकशत्) चमकाता है। हे विद्वन्! तू (इमं) इस (जम्भ-सुतं) जाया, स्त्री और उसके भरणकर्त्ता पति दोनों से उत्पन्न (धानावन्तं) आधान संस्कार से युक्त (करम्भिणम्) क्रियाकुशल और (अपूपवन्तं) गृह से दूर और गुरु आदि के पास जाने वाले (उक्थिनं) उत्तम बालक का (पिब) पालन कर।

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष (त्वा आ चिकित्सामः) हम तुझे जानना चाहते हैं। (त्वा चन न अधि इमसि) हम तुझे अभी नहीं पहचान रहे हैं। हे (इन्दो) गुरु के पास से नवागत सोम्य! तेजस्विन् युवक! तू (शनैः इव शनकैः इव) शनैः-शनैः (इन्द्राय) स्वामी पद पाने के लिये आगे बढ़। बालक को आचार्य मातावत् अपने गर्भ में रखता और स्वीकार करता है वैसे ही माता भी 'इन्दु या सोम' अर्थात् द्रुत वीर्य को गर्भ में धारती है। वह 'इन्द्र' अर्थात् पति के ही निमित्त उसे धारती है। वह गर्भाशय में शनैः शनैः परिस्रवण करता कमल तक पहुँचता है। यह आशय भी मन्त्र में उपमित रूप में निहित है।

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत्।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सङ्गमामहै ॥ ४ ॥

भा०—जो पुरुष विवाह करना चाहता है वह (कुवित् शकत्)

स्वयं बहुत समर्थ हो। वह (कुवित् करत्)बहुत से कार्य करने में समर्थ हो और वह (नः) हमें भी (कुवित्) बहुत प्रकार से (वस्यसः करत्) धनादि ऐश्वर्य से सम्पन्न करे। (कुवित्) बहुतसी (पतिद्विषः) बन्धु आदि पालक जनों से प्रीति न करती हुई हम स्त्रियां (यतीः) घरों से पृथक् होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, अन्न देने में समर्थ पुरुष से ही (संगमामहै) सम्बद्ध होती हैं। इसलिये स्त्रियों के साथ विवाह करने वाले को चाहिये कि वह अपनी पत्नी को अधिक समर्थ करे, स्वयं श्रमशील हो, स्त्रियों को उत्तम वस्त्र-आभूषणादि से भी सन्तुष्ट करे, जिससे वह अपने निर्धनता से खिन्न होकर द्रव्यवानों के प्रलोभन में न जावें।

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् पुरुष! (इमानि) ये (त्रीणि) तीनों पदार्थ (वि-तपा) संताप से रहित हों, (तानि) उन तीनों को तू (वि रोहय) विशेष रूप से वृद्धियुक्त, सफल होने दे, (१) (ततस्य शिरः) पिता के शिर को ऊंचा कर। अर्थात् विवाह करने वाला प्रथम अपने व कन्या के माता पिता के शिर पर के भार को कम करे। (२) (उर्वराम् वि रोहय) जैसे 'इन्द्र', मेघ उर्वरा भूमि पर बरस कर उसे अन्नादि से सम्पन्न करता है वैसे ही विवाहित युवक उर्वरा कन्या के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे। (३) (आत् इदं मे उप-उदरे) और यह जो मुझ कन्या के पेट के समीप स्थित बीज गर्भ हो, हे (इन्द्र) वपन-योग्य भूमि रूप स्त्री के गर्भ में इरा अर्थात् अन्नवत् बीज आधान करने हारे पुरुष! तू उसको भी (वि रोहय) विशेष पुष्ट कर, सन्तान को अधबीच में नष्ट न होने दे।

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं मम।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि॥ ६ ॥

भा०—(असौ च) और वह (या) जो (नः) हममें से (उर्वरा) उत्तम अन्न-उत्पादक भूमिवत् सन्तान-उत्पादक नारी हो, उसको (रोमशा कृधि) पूर्ण यौवनचिह्नों से युक्त होने दे। (मम) और मेरे (इमां तन्वं) इस शरीर को (रोमशा) रोमाञ्चित वा पुष्टांग युक्त (कृधि) कर। (अथो) और (ततस्य) पिता का (यत् शिरः) जो शिर इस समय चिन्ताग्रस्त है उसको (रोमशं कृधि) पुलकित, चिन्तारहित कर।

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥ १४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्म-सामर्थ्य वाले! तू (रथस्य खे) रथ के आकाश में, फिर (अनसः खे) शकट के अवकाश में और (युगस्य खे) युग नामक यान के मध्य में इस प्रकार क्रम से (अपालां) अप्राप्तपति, कुमारी कन्या को (त्रिः पूत्वी) तीन प्रकार से लाकर (सूर्यत्वचम् अकृणोः) सूर्य के समान उज्वल रंग-बिरंगे वस्त्रों से आच्छादित कर।

सूक्त-समीक्षा

इस सूक्त में कई समस्याएं हैं—(मन्त्र १ म०) 'अपाला' वह कन्या है जिसको पालक पति नहीं मिला इस प्रकार प्रत्येक कुमारी कन्या 'अपाला' है। ब्रह्मचारी युवा 'सोम' है। इसका स्पष्टीकरण अथर्ववेद में का० १—सू० ११ में देखो। 'स्रुता' वह कन्या है जो रजस्वला होकर स्नान कर लेती है। गुरुगृह में स्नातिका हो। इसी प्रकार 'सोम' शब्द वीर्यवान् पुरुष वा विद्या और व्रत द्वारा स्नातक दोनों अर्थों को कहता है। 'विदत्'—कन्या जब पति को प्राप्त करती है वह 'पति का वेदन' करती है। 'विदत्' पद विवाह द्वारा पति के वेदन को बतलाता है। (अस्तं) 'अस्त' गृह-आश्रम का वाचक है। उसको धारण करती कन्या पुरुष का सेवन करे, आदर करे। क्यों? उसको अपना

स्वामी और शक्तिमान् रक्षक बनाने के लिये। अर्थात् 'इन्द्र' और 'शक्र' ये दोनों 'पति' के पद की योग्यता को बतलाते हैं। (मं० २) वही पुरुष 'वीरक' है। वही गृह २ को उज्ज्वल करता हुआ प्राप्त होता है। अर्थात् वही पुत्र होकर कुलदीपक होता है। आगे कन्या पति के कर्त्तव्य बतलाती है कि वह दोनों से उत्पन्न पुत्र का पालन करे। 'जम्भ-सुतं'— जाया च पतिश्च जम्पती। जायतेऽस्यां, जनयति इति वा जाया, बिभर्त्ति इति भः उभौ जम्भौ। ताभ्यामुत्पन्नो जम्भसुतः तं। (धानवन्तं) धानम् आधानं, गर्भाधानसंस्कारवन्तं। स्वयं विधिवद् आहितम्। 'करम्भिणं'— करम्भः, करम्भः। करोते रम्भच्। क्रियावान् कर्मकुशलः। (अपूपवन्तं) अप दूरे आचार्यगृहे उपवन्तं उपवीतवन्तं। मध्यमपदलोपः। 'उक्थिनं'— उक्थो वेदो गुरूपदेशो वा तद्वन्तम्।

(मं० ३) पहले दोनों अपरिचित हैं, वे दोनों परिचय प्राप्त करें। कन्या का पुरुष और पुरुष का कन्या परिचय प्राप्त करे फिर वे पति-पत्नी होने योग्य हैं। 'इन्दुः'—नव स्नातक कन्या के पति प्रेमार्द्र दशा में 'इन्दु' है, ऐश्वर्यवान् होने से भी 'इन्दु' है। परिचित होकर बाद में वह उसका पति अर्थात् 'इन्द्र' होने के लिये आवे।

(मन्त्र ४) विवाहेच्छुक वर क्रियाकुशल हो, जो वधू को भी पर्याप्त वस्त्रालंकार दे सके। जिसकी शक्ति, कमाई और धन-सम्पदा से आकृष्ट होकर कन्या अपने पालक माता-पिता का मोह छोड़ 'इन्द्र' अर्थात् पति से संगत हो, उसी से हृदय मिलाकर रहे।

(पति-द्विषः)—यहां पति शब्द लौकिक पति का वाचक नहीं, प्रत्युत सामान्य पालक (Gardian) का वाचक है। वह सब बन्धु बान्धवों के प्रेम या मोह को त्याग कर भी पति के साथ हो लेती है। ऐसी दशा में यदि माता पितादि बाधक होते हैं तो वह उनके प्रति प्रेम त्याग देती है और वर के साथ ही प्रेम बांधती है। वही 'अप्रीति'

४१ प.

यहां 'द्विष' पद का वास्तविक अर्थ है। 'द्विष् अप्रीतौ' द्विष, का अर्थ अप्रीति है। लोक में वैर अर्थ में द्वेष पद रूढ़ हो गया है।

(मन्त्र ५) विष्टपा=वि-तपा। तप या संतापरहित। तपरहित अपरिपक्व 'ततस्य शिरः' यहां 'तत' वा तात शब्द प्रिय अर्थ में भी हैं। इसी से 'पिता' 'पुत्र' दोनों के लिये भी प्रयुक्त होता है। अथवा तनोति सन्ततिम् इति ततः। जो सन्तान उत्पन्न करे वह 'तत' है। इससे यहां प्रिय पति का वाचक होकर वर-योग्य पुरुष के लिये कहा है। शिर शब्द मुख के लिये उपलक्षण है, उसका मूंछरहित मुख न हो; विवाहेच्छुक के प्रति कन्या की तरफ से यह प्रथम शर्त्त है कि वह सम्बन्ध करने से पूर्व अपने मुख पर बाल आने दे, वेद में 'खलति' आदि शब्द नहीं हैं, अतः पिता का गंजा शिर अर्थ करना असंगत है। दूसरी शर्त्त है 'उर्वरा' कन्या जिसमें अभी गर्भ-ग्रहण की शक्ति नहीं है, उसे उस योग्य अर्थात् 'उर्वरा' होने दे। (उर्वरा=उरु-वरा विशाल-वराङ्गदेशा। नितम्बिनीत्यर्थः) अर्थात् स्त्री का नितम्ब भाग अच्छा पुष्ट हो। तीसरी शर्त्त है वधू के उदर के समीप के भाग में भी यौवन चिह्न-रूप रोम (Pubes) उत्पन्न हो जावें। अंग्रेज़ी भाषा में स्त्री की यौवन दशा को 'Puberty' कहा जाता है। उन रोमों से ही यौवन की दशा को बतलाने का प्रकार वेद से लिया है। अथवा—विवाह में बंधने वाली समझदार कन्या वर से तीन याचना करे, तीनों बातें 'विष्टप' दुःखरहित हों। (१) (ततस्य शिरः) पिता का शिर संताप रहित हो, कन्या के विवाह के कारण पिता का शिर ऋणादि से ग्रस्त न हो, (२) 'उर्वरा' यदि पिता की भूमि उर्वरा नहीं अर्थात् उसके गोत्र में कोई पुत्र नहीं तो अभ्रातृमती कन्या के पेट से उत्पन्न नाती ही उसके वंश का चलाने वाला हो। (मनु का पुत्र-पुत्रिकाविधान) (३) 'मे उपोदरे' मेरे उदर के पास गर्भाशय में रहे पुत्र का विशेष पालन करना पति का

कर्त्तव्य हो अर्थात् जो कन्या का हाथ पकड़े उसे उसके गर्भस्थ सन्तान को पालना होगा।

(मन्त्र ६) ५ वें मन्त्र में कही बातों को ही पुनः कहा है, वे अत्यन्त आवश्यक होने से उन पर बल दिया गया है।

(मन्त्र ७) 'रथस्य खे', 'अनसः खे' :युगस्य खे'—यहां रथ, अनस, और युग तीन प्रकार के स्थानों के नाम हैं। वेगवान् यान रथ है, शकट या बैलगाड़ी अनस् है और इसके साहचर्य में युग भी अवश्य कोई रथ है। पाणिनी ने भी 'युग्यं च पत्रे' रथ या वाहनार्थ में युग्य पद निपातन से साधा है। कदाचित् जिसमें स्त्री पुरुष की जोड़ी ही बैठ सके वह रथ 'युग' हो। 'ख' का अर्थ छिद्र यहां नहीं। यहां 'ख' का अर्थ अवकाश भाग है। प्रथम पितृगृह से विदा होते समय कन्या रथ में चढ़े, फिर लम्बा रास्ता बैलगाड़ी में और पति-गृह के समीप आकर स्वागत पूर्वक तीसरे यान 'युग' में चढ़े। इस स्वागत के अवसर पर वधू को रंगा हुआ उज्ज्वल वस्त्र पहन कर ही बैठना होता था, इस प्रकार यान द्वारा वधू का आगमन इन्द्र द्वारा कुमारी कन्या का त्रिःपवन करना है।

अथवा—पुरुष स्त्री की तीन प्रकार की परीक्षा ले, तीनों में शुचि पवित्र अर्थात् निर्दोष हो तो ग्रहण करे। 'रथस्य खे' रमण योग्य इन्द्रिय के छिद्र, वे पवित्र हों उनमें रोग न हो गुह्यांगों के रोग सिफ़लिस, सुजाक, प्रमेह, प्रदर सोमरोगादि न हों. (२) 'अनसः खे' अन् प्राणधारणे धातुः। प्राण-ग्रहण के छिद्र नाक, मुंह, फेफड़ा, उनमें पीनस रोग, मुखपाक, वैरस्य और भ्रष्ट राग की फुन्सियां और फेफड़ों में राजयक्ष्मा आदि न हो, (३)'युगस्य खे' शरीर में जो युग अर्थात जोड़ा-जोड़ा इन्द्रिय हैं उनके छिद्रों में दोष, जैसे नाक दो हैं, उनमें गन्धादि न होना या दुर्गन्ध होना या छोटी बड़ी टेढ़ी नाक न होना आंखे दो हैं उनकी विकृति न हो, काणी या छोटी, बड़ी न हो, मुख के जबाड़े, हाथ पैर

आदि विकृत लंगड़े लूले न हों। इस प्रकार तीनों में कन्या को पवित्र, शुचि जानकर वह पुरुष उसको सूर्य के समान उज्ज्वल वस्त्र देता है मानो उज्ज्वल त्वचा अर्थात् आच्छादन वाला करता है। 'अपाला' अत्रिसुता कहाती है। उसका तात्पर्य है कि स्मृतियों में आत्रेयी पद रजस्वलार्थ में रूढ़ है। वस्तुतः 'अत्रि' ही आत्रेयी है। स्वार्थ में तद्धित है। जो प्रथम रजस्वला होकर जिसके वर-प्राप्त्यर्थं तीन वर्ष व्यतीत न हुए हों वह 'अत्रि' है 'नवयौवना' रजोधर्म युक्त।

[९२]

श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् २, ४, ८—१२, २२, २५—२७, ३० निचृद् गायत्री। ३, ७, ३१, ३३ पादनिचृद् गायत्री। ५ आर्ची स्वराड् गायत्री। ६, १३—१५, २८ विराड् गायत्री। १६—२१, २३, २४, २९, ३२ गायत्री॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

भा०—आप लोग (वः) आपके (अन्धसः पान्तम्) खाद्य पदार्थों के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् की (अभि प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो और (विश्व-साहं) सबको जीतने वाले, (शत-क्रतुं) सैकड़ों कर्मों वाले, (चर्षणीनां) मनुष्यों के बीच (मंहिष्ठं) सबसे अधिक दानी पुरुष की (अभि प्रगायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो।

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं१ सनश्रुतम्।
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (पुरु-हूतं) बहुतों के पुकारने योग्य, (पुरु-स्तुतं) बहुतों से प्रशंसित (गाथान्यं) गुण गान योग्य, वा 'गाथा' वेदवाणी में प्रसिद्ध, (सन-श्रुतम्) सनातन काल से श्रवण योग्य, वा

सनातन ज्ञान वेद के बहुश्रुत प्रसिद्ध पुरुष को (इन्द्रः इति ब्रवीतन) 'इन्द्र' इस प्रकार कहो, उसका नाम 'इन्द्र' रक्खो।

इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः। महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३

भा०—(इन्द्रः इत्) वह ऐश्वर्यवान् ही (नः महानां) बड़े पूज्य गुणों का और (वाजानां) ऐश्वर्यों का (दाता) देने वाला और (महान् नृतुः) बड़ा भारी नेता, संचालक है वह (अभिज्ञु) उत्तम ज्ञानसम्पन्न होकर (नः आ यमत्) हमें सद् व्यवस्था में रक्खे।

अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥

भा०—(शिप्री) मुकुट धारी, नासिकादि में सुन्दर, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सु-दक्षस्य) उत्तम ज्ञान और बल से युक्त (प्रहोषिणः) उत्तम रीति से बलादि देने वाले, (यवाशिरः) यवादि अन्नों से मिलाकर पकाये, (इन्दोः) दीप्ति-तेजोदायक (अन्धसः) स्वादु अन्न को (अपात्) पान करे, उसकी रक्षा करे। ऐसे ही वह (सु-दक्षस्य) उत्तम बलशाली (प्र-होषिणः) उत्तम दानी (इन्दोः) आर्द्र-हृदय, (यवाशिरः) शत्रुनाशक जनों के प्रमुख (अन्धसः) अन्नादि के भोक्ता, जन को (अपाद्-उ) पालन करे।

तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये।
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य अन्नादि के पान और पालन या रक्षा के निमित्त (तम् इन्द्रम् अभि प्रार्चत) उसी ऐश्वर्यवान् की स्तुति करो, (तत् इत् हि अस्य वर्धनम्) वह ही उसको बढ़ाने वाला है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा विश्वाभि भुवना भुवत् ॥६

भा०—(मदानां देवस्य) हर्ष, तृप्ति और सुख देने वाले (अस्य)

इस उत्तम अन्न, प्रजाजन व जगत् का (पीत्वा) पान, उपभोग और पालन करके (देवः) वह तेजस्वी पुरुष स्वामी (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा भुवना अभि भुवत्) समस्त लोकों को वश करता है।

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्। आ च्यावयस्यूतये ॥७॥

भा०—हे विद्वन्! (त्यम् उ) उस ही (सत्रासाहं) समवाय और सत्य बल से सबको पराजित करने वाले (विश्वासु गीर्षु) समस्त वाणियों वा विद्याओं में (आयतम्) प्रसिद्ध, कुशल, व्यापक पुरुष को (वा ऊतये) अपनी रक्षा, ज्ञान-प्राप्ति आदि के निमित्त (आच्यावयसि) प्राप्त कर।

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम्।
नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥

भा०—(युध्मं) युद्धकुशल, (सन्तम्) सत्स्वरूप, (अनर्वाणं) अद्वितीय, (सोमपाम्) जगत्-पालक, (अनपच्युतम्) अपने स्वरूप या स्थान से च्युत न होने वाले (अवार्य-क्रतुम्) अन्यों से न हटाये जाने योग्य वा अकाट्य युक्ति वाले (नरम्) सर्वनायक पुरुष को हे विद्वन्! तू प्राप्त करा।

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम।
अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (ऋचीषम) यथार्थ गुण स्तुति वाले! तू (नः) हमें (पुरु रायः शिक्ष) बहुत धन प्रदान कर। तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (पार्ये धने) पालन योग्य, वा शत्रुओं के धन के निमित्त, वा संग्राम में (अव) रक्षा कर, वहां तक पहुँचा।

अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया।
इषा सहस्रवाजया ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अतः) इसी कारण (नः) हमें तू (शत-वाजया सहस्र-वाजया) सैकड़ों, सहस्रों बल, ज्ञान, अन्न वेगादि से युक्त (इषा) इच्छा शक्ति, प्रेरणा और अन्न सेनादि के साथ (उप आ याहि) प्राप्त हो । इति षोडशो वर्गः ॥

अयाम धीवतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे ।

जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! शक्ति देने हारे ! हम (धीवतः) कर्म और ज्ञानवान् पुरुष के (धियः) कर्मों और ज्ञानों को (अयाम) प्राप्त करें । हे (गो-दरे) गौ भूमि के विदारण-कार्य में कुशल ! कृषि करने वाले ! हे (गो-दरे) वाणी के मर्मों को खोल २ कर बतलाने हारे, हे (वज्रिवः) बलशालिन् ! हम (अर्वद्भिः) अश्वों, वीर सैनिकों द्वारा (पृत्सु जयेम) संग्रामों में विजय करें ।

वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि ॥१२

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्म वाले ! (वयम् उ) हम (त्वा) तुझे (उक्थेषु) उत्तम वचनों से (यवसेषु गावः न) भुस आदि के निमित्त गौ के समान (त्वा रणयामः) तुझे प्रसन्न करते हैं ।

विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो ।

अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥ १३ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अमित ज्ञानवन् ! हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! शस्त्रबल के स्वामिन् ! हम (विश्वा हि) समस्त (मर्त्यत्वना) मनुष्योचित (अनुकामा) कामनाओं और (आशसः) आशाओं को (अगन्म) प्राप्त करें ।

त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन् कामकातयः ।

न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १४ ॥

भा०—(शवसः पुत्र) बल के द्वारा बहुतों के रक्षक ! (कामकातयः) अपने नाना अभिलाषाओं को कहने वाले लोग (त्वे सु अवृत्रन्) तेरे अधीन सुख से रहते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वाम् न अतिरिच्यते) तुझसे कोई बढ़कर नहीं है।

स नो॑ वृष॒न्त्सनि॑ष्ठया॒ सं घो॒रया॑ द्र॒वि॒त्न्वा ।

धि॒याऽवि॑ड्ढि॒ पुर॑न्ध्या ॥ १५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन् ! (सः) वह तू (सनिष्ठया) उत्तम विभाजक, दानशील, (घोरया) शत्रु को भय देने वाली, (द्रवित्न्वा) वेग से जाने वाली (पुरन्ध्या) बहुतों की पालक (धिया) बुद्धि और क्रिया वा नीति से (नः अवि ढि) हमारा पालन कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

यस्ते॑ नू॒नं श॑तक्रत॒विन्द्र॑ द्यु॒म्नित॑मो॒ मदः॑ ।

तेन॑ नू॒नं मदे॑ मदेः ॥ १६ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अमित बलशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नूनं) निश्चय ही (ते) तेरा (यः) जो (द्युम्नि-तमः) अति यशो-जनक (मदः) हर्ष है (तेन) उससे (मदे) सबको हर्षित करने में तू (मदेः) स्वयं हर्षित हो।

यस्ते॑ चि॒त्रश्र॑वस्तमो॒ य इ॑न्द्र वृत्र॒हन्त॑मः ।

य ओ॑जो॒दात॑मो॒ मदः॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) जो (ते) तेरा (चित्र-श्रवस्तमः) आश्चर्यकारक श्रवण करने योग्य अद्भुत और (यः वृत्रहन्तमः) शत्रुओं को खूब दण्डित करने वाला और (यः ओजो-दातमः) पराक्रम को देने वाला (मदः) आनन्द वा हर्ष है तू उससे हमें भी सुखी कर।

वि॒द्मा हि यस्ते॑ अद्रिव॒स्त्वाद॑त्तः सत्य सोमपाः ।

विश्वा॑सु दस्म कृ॒ष्टिषु॑ ॥ १८ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार जनों और पाषाणवत् शत्रु-नाशक जनों के स्वामिन् ! हे (सत्य) न्यायनिष्ठ ! हे (दस्म) शत्रु-नाशन ! हे (सोमपाः) प्रजावत् ऐश्वर्य के पालक ! (यः त्वादत्तः) जो तेरे द्वारा दिया हुआ (विश्वासु कृष्टिषु) समस्त मनुष्यों में ऐश्वर्य है, हम (ते विद्महि) उसे तेरा ही जानें।

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १९ ॥

भा०—(मद्वने) हर्ष से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये (नः गिरः सुतं परि स्तोभन्तु) हमारी वाणी उसके ऐश्वर्य की स्तुति करें। (कारवः) विद्वान् शास्त्री लोग (अर्कम् अर्चन्तु) पूज्य की अर्चना करें।

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—(यस्मिन् अधि) जिसके आश्रय (विश्वाः श्रियः रणन्ति) सब सम्पदायें वा प्रजाएं शोभा और सुख पाती हैं और जिसके अधीन (सप्त संसदः) साथ बैठने वाले सात सचिव (रणन्ति) उत्तम ज्ञानो-पदेश करते हैं उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को (सुते हवामहे) अभिषेक युक्त राज्य पर आह्वान करते हैं। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥२१॥

भा०—(त्रि-कद्रुकेषु) तीनों लोकों में (चेतनं यज्ञम्) सबको चेतना देने वाले पूज्य पुरुष को (देवासः अत्नत) विद्वान् गण, आत्मा को इन्द्रियों के समान प्राप्त करते हैं, (तम् इत् नः गिरः वर्धन्तु) उसको ही हमारी वाणियां बढ़ाती हैं, उसी का गुण गान करती हैं।

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥

भा०—(समुद्रम् इव सिन्धवः) नदियां जिस प्रकार समुद्र में

प्रवेश करती हैं उसी प्रकार (इन्दवः त्वा आविशन्तु) समस्त ऐश्वर्य और विद्वान् जीवगण प्रभो! तुझमें प्रवेश करें। हे (इन्द्र न त्वाम् अतिरिच्यते) ऐश्वर्यवन्! तुझसे कोई बढ़ कर नहीं है।

वि॒व्यक्थ॑ महि॒ना वृ॑षन्भ॒क्षं सोम॑स्य जागृवे।

य इ॑न्द्र ज॒ठरे॑षु ते ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो तेरे (जठरेषु) उदरों में, तेरे अधीन है, हे (जागृवे) जागरणशील! हे (वृषन्) बलशालिन्! तू उस (सोमस्य भक्षं) महान् ऐश्वर्य के सेवनीय अंश को (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (विव्यक्थ) व्याप्त है।

अरं॑ त इन्द्र कु॒क्षये॒ सोमो॑ भवतु वृत्रहन्।

अरं॒ धाम॑भ्य॒ इन्द॑वः ॥ २४ ॥

भा०—हे (वृत्र-हन्) पाप-नाशक! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (सोमः) ऐश्वर्य (ते कुक्षये अरं भवतु) तेरे कोश के लिये बहुत हो। (इन्दवः धामभ्यः अरं भवन्तु) ऐश्वर्य और वेगवान् सैन्य तेरी तेजोवृद्धि के लिये बहुत हों।

अर॒मश्वा॑य गायति श्रु॒तक॑क्षो॒ अरं॒ गवे॑।

अर॒मिन्द्र॑स्य॒ धाम्ने॑ ॥ २५ ॥

भा०—(श्रुत-कक्षः) श्रुत, वेद को, अवगाहन करने वाला, वा कक्षा अर्थात् वेदवाणी का श्रवण करने वाला विद्वान् जन, (अश्वाय गवे धाम्ने) उसके अश्व, गौ और तेज की (अरं अरं गायति) खूब खूब स्तुति करता है अर्थात् उस प्रभु का बल, वाणी और तेज बहुत है।

अरं॒ हि ष्मा॑ सु॒तेषु॑ णः॒ सोमे॑ष्विन्द्र॒ भूष॑सि।

अरं॑ ते शक्र दा॒वने॑ ॥ २६ ॥ १९ ॥

भा०—(नः सुतेषु सोमेषु) हमारे उत्पन्न ऐश्वर्यों के आधार पर तू ही (अरं भूषसि हि स्म) बहुत समर्थ हो। हे (शक्र) शक्तिशालिन्!

(ते दावने अरम्) तुझ दाता के लिये भी ऐश्वर्य बहुत अधिक प्राप्त हों।
इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

परा॒कात्ता॑च्चिदद्रिव॒स्त्वां न॑क्षन्त नो॒ गिरः॑ ।

अरं॑ गमाम ते व॒यम् ॥ २७ ॥

भा०—(पराकात्तात् चित्) दूर से भी दूर हे (अद्रिवः) शक्तिमन्! (नः गिरः त्वां नक्षन्त) हमारी वाणियां तुझ तक पहुँचती हैं। (वयम् ते अरं गमाम) हम तुझसे बहुत कुछ प्राप्त करें।

ए॒वा ह्यसि॑ वीर॒युरे॒वा शूर॑ उ॒त स्थि॒रः ।

ए॒वा ते॒ राध्यं॒ मनः॑ ॥ २८ ॥

भा०—तू (वीर-युः एव हि असि) वीरों को चाहने वाला है। हे (शूर) शूरवीर! (उत त्वं स्थिरः एव हि असि) और तू स्थिर ही है। (ते मनः एव राध्यं) तुझे मन को भी वश करना चाहिये।

ए॒वा रा॒तिस्तु॑वीमघ॒ विश्वे॑भिर्धायि धा॒तृभिः॑ ।

अधा॑ चिदिन्द्र मे॒ सचा॑ ॥ २९ ॥

भा०—हे (तुवि-मघ) बहुत धन के स्वामिन्! (रातिः एव) तेरा दान ही (विश्वेभिः धातृभिः धायि) सब पोषक जन धारण करते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अधचित् मे सचा) और तू ही मेरा सहायक है।

मो षु ब्र॒ह्मेव॑ तन्द्र॒युर्भुवो॑ वाजानां पते ।

मत्स्वा॑ सु॒तस्य॒ गोम॑तः ॥ ३० ॥

भा०—हे (वाजानां पते) ज्ञानों, ऐश्वर्यों, बलों और सेनाओं के पालक! हे ज्ञानों के पालक! (ब्रह्मा इव) चतुर्वेदवित् ब्राह्मण विद्वान् यज्ञ के ब्रह्मा के समान तू (तन्द्रयुः मो सु भुवः) आलस्य से युक्त मत हो। तू (गोमतः सुतस्य) गो दुग्ध से युक्त अन्नादि से (मत्स्व) तृप्त हो।

मा न॑ इन्द्रा॒भ्या॒३ दिशः॒ सूरो॑ अ॒क्तुष्वा य॑मन् ।
त्वा यु॒जा व॑नेम॒ तत् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! (नः) हमें (आदिशः) आदेष्टा शासक और (सूरः) विचरणशील तेजस्वी लोग (अक्तुषु) रात्रि-काल में (मा आयमन्) मत बांधे। (त्वा युजा) तुझ सहायक से हम (तत् वनेम) उन दुष्ट जनों का नाश करें।

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥

भा०—(त्वया इत् युजा) तुझ सहायक से ही (वयं) हम (स्पृधः) स्पर्धा करने वालों का (प्रति ब्रुवीमहि) उत्तर दे सकें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम् अस्माकम्) तू हमारा है और हम (तव स्मसि) तेरे हैं।

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान्।
सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥ २० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (कारवः) स्तुतिकर्त्ता (सखायः) मित्र (त्वायवः) तुझे चाहते हुए और (त्वाम् इत् हि अनु नो नुवतः) तुझे ही प्रतिदिन स्तुति करते हुए (चरान्) विचरण करें। इति विंशो वर्गः ॥

[९३]

सुकक्ष ऋषिः ॥ १—३३ इन्द्र। ३४ इन्द्र ऋभवश्च देवताः ॥ छन्दः—१, २४, ३३ विराड् गायत्री। २–४, १०, ११, १३, १५, १६, १८, २१, २३, २७–३१ निचृद् गायत्री। ५–९, १२, १४, १७, २०, २२, २५, २६, ३२, ३४ गायत्री। १९ पादनिचृद् गायत्री ॥

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्यवत् तेजस्विन्! तू (श्रुत-मघं) उत्तम धन में प्रसिद्ध, (वृषभं) बलवान् (नर्यापसं) मनुष्यों के हितकारी कार्य करने वाले, (अस्तारम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले मनुष्य को तू (घ इत् उत् एषि) प्राप्त होकर अवश्य उदय को प्राप्त हो।

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा। अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २

भा०—(यः) जो (बाह्वोजसा) बाहु के पराक्रम से (नव-नवतिं) ९९ (पुरः) प्रकोटों को (बिभेद) तोड़ने में समर्थ है, वह (वृत्र-हा) शत्रुनाशक राजा (अहिं च अवधीत्) सूर्य को मेघ के समान सम्मुख आये शत्रु को नष्ट करे।

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद्यवमत्।
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (शिवः) कल्याणकारक, (सखा) मित्रवत् प्रिय (अश्वावत् गोमत्, यवमत्) अश्व, गौ और यव से सम्पन्न ऐश्वर्य (उरुधारा इव) बहुतों की पोषक भूमि, वा बहुत धारा वाली गौ के समान (दोहते) हमें सुख ज्ञानादि दे।

यद्द्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक! (अद्य यत् कत् च अभि उत् अगाः) जिस किसी को भी लक्ष्य कर तू आज वा कभी उठ खड़े होने में समर्थ है वह जब चाहे, तू किसी भी पदार्थ को उत्तम रीति से प्राप्त कर सकता है। (तत् सर्वं ते वशे) वह सब कुछ तेरे ही वश में है।

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे।
उतो तत्सत्यमित्तव ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सत् पते) सज्जनों के पालक स्वामिन्! हे (प्रवृद्ध) महान्! (यद् वा न मरै इति मन्यसे) जो तू समझता है कि मैं कभी नहीं मर सकता सो (तत्) वह समझना (तव सत्यम् इत्) तेरा सत्य ही है। तू अविनाशी, अमृत, अजर, नित्य आत्मा है। इत्येकविंशो वर्गः॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे।
सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (परावति) दूर देश में और ये (अर्वावति) समीप

देश में भी (सोमासः) अन्न, ओषधि वर्ग, रत्नादि ऐश्वर्य (सुन्विरे) उत्पन्न हों, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सबको प्राप्त कर।

तमिन्द्रं वाजयामसि मुहे वृत्राय हन्तवे।

स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ७ ॥

भा०—(तम् इन्द्रम्) उस शत्रुहन्ता, सूर्यवत् तेजस्वी को हम (वृत्राय हन्तवे) बड़े भारी, बढ़ते शत्रु वा वपन नाश करने के लिये (वाजयामसि) अधिक बलवान् करते हैं। (सः वृषाः) वह बलवान् पुरुष ही (वृषभः भुवत्) सब सुखों, ऐश्वर्यों का दाता सर्वश्रेष्ठ है।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः।

द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह शत्रुहन्ता पुरुष (ओजिष्ठः) सर्वाधिक पराक्रमी होकर ही (दामने कृतः) सबको भृति वृत्ति देने और प्रजा को दमन करने के कार्य पर नियुक्त होता है। (सः मदे हितः) वही सबको हर्षित करने के लिये स्थापित है, वह (द्युम्नी) यशस्वी, (श्लोकी) कीर्त्तिमान्, (सः सोम्यः) वह सोम अर्थात् अन्न, ऐश्वर्यादि से सत्कार-योग्य है।

गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः।

ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥

भा०—(वज्रः न) शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण (गिरा सम्भृतः) वाणी द्वारा अच्छी प्रकार धारित, (स-बलः) बलशाली, (अनपच्युतः) शत्रुओं से अपराजित, (अस्तृतः) अबाधित, (ऋक्षः) महान् (ववक्ष) समस्त ऐश्वर्य को धारण करता है।

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः।

त्वं च मघवन् वशः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय! तू (गृणानः) स्तुति किया जाता हुआ हे विद्वन्! (नः) हमारे लिये (दुर्गे) दुर्गम स्थान में भी (सुगं कृधि) सुगम मार्ग कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (त्वं च नः वशः) और तू सदा हमें प्रेम से चाह। इति द्वाविंशो वर्गः॥

यस्य॑ ते॒ नू चि॑दा॒दिशं॒ न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म्।
न दे॒वो नाध्रि॑गु॒र्जनः॑॥ ११॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (आदिशं) आदेश को और (स्वराज्यम्) तेरे अपने राज्य को (नूचित्) भी (न मिनन्ति) कोई भंग नहीं करते, (न देवः) न सूर्यवत तेजस्वी और (न अध्रिगुः जनः) न वे रोक जाने वाला, पराक्रमी ही तेरे आदेश को भंग करता है।

अधा॑ ते॒ अप्र॑तिष्कुतं दे॒वी शुष्मं॑ सपर्यतः। उ॒भे सु॑शिप्र॒ रोद॑सी॥१२

भा०—(अध) और हे (सुशिप्र) उत्तम बलशालिन्! (उभे रोदसी) दोनों सूर्य-पृथ्वीवत्, स्व, पर सेनाएं, (देवीः) विजयेच्छुक होकर भी (ते) तेरे (अप्रतिष्कुतं) अनुपम, (शुष्मं) बल की (सपर्यतः) सेवा, आदर करती हैं।

त्वमे॒तद॑धारयः कृ॒ष्णासु॒ रोहि॑णीषु च। परु॑ष्णीषु॒ रुश॒त् पयः॑॥१३

भा०—(कृष्णासु) काली (रोहिणीषु च) और रक्त वर्ण की (परुष्णीषु) गौओं में (त्वम् एतत् रुशत् पयः अधारयः) तू ही इस चमकते दूध को धारण कराता है।

वि यद॒हेरध॑ त्वि॒षो विश्वे॑ दे॒वासो॒ अक्र॑मुः।
वि॒दन्मृ॒गस्य॒ ताँ अमः॑॥ १४॥

भा०—(अध) और (यद्) जब (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, तेजस्वी लोग (अहेः त्विषः) मेघ की विद्युत् कान्तियों वा (अहेः त्विषः) सूर्य की कान्तियों के सदृश (अहेः त्विषः) आगे बढ़ते वीर के तेजों को

(भक्षुः) प्राप्त करते हैं अब (तान्) उनको (मृगस्य) सिंह के समान वीर, शुद्ध तैजस्वी प्रभु का (भमः) बल (विदत्) प्राप्त होता है।

आदु मे निवरो भुवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यम्।
अजातशत्रुरस्तृतः॥ १५॥ २३॥

भा०—(आत् उ) अनन्तर ही वह (मे निवरः) मुझ प्रजागण के समस्त कष्टों का निवारक (भुवत्) होता है। वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाशक वीर, मेघों के छेदक भेदक विद्युत् वा सूर्य के समान (पौंस्यम् अदिष्ट) पराक्रम को करता है। (अजात-शत्रुः अस्तृतः) तब उसका कोई शत्रु नहीं रहता और फिर वह विनष्ट नहीं होता। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्।
आ शुषे राधसे महे॥ १६॥

भा०—(वः) आप लोगों में से आपके (वृत्रहन्तमम्) सब विघ्नों के नाशक (चर्षणीनां) मनुष्यों में (श्रुतं) प्रसिद्ध (शर्धं) बलवान् पुरुष को (शुषे) शत्रुओं के शोषण और (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्त करने के लिये (प्र आ) अच्छी प्रकार प्राप्त करो।

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत।
यत्सोमेसोम आभवः॥ १७॥

भा०—हे (पुरु-नामन्) बहुत से नामों वाले! बहुतों को नमाने हारे! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति-योग्य! (यत्) जो तू (सोमे-सोमे) प्रत्येक 'सोम', ऐश्वर्य प्रत्येक जीव और प्रत्येक बल पर (आभवः) सामर्थ्यवान् है, उस तुझसे हम (अया) इस (गव्यया धिया च) वाणी से युक्त क्रिया द्वारा तेरी सेवा करते हैं।

बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।
शृणोतु शक्र आशिषम्॥ १८॥

भा०—(वृत्र-हा) शत्रुओं और विघ्नों का नाशक (शक्रः) शक्तिशाली

पुरुष (नः) हमारे बीच (बोधित्-मनाः) ज्ञान से युक्त चित्त वाला और (भूरि-आसुतिः) बहुत अन्नों का स्वामी (इत् अस्तु) हो। वह (नः आशिषम्) हमारी कामना को (शृणोतु) श्रवण करे।

कया त्वन्न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।

कया स्तोतृभ्य आ भर॥ १९॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन्! तू (नः कया ऊत्या) हमें किस रक्षण-नीति से (प्र मन्दसे) पाल कर अधिक हर्षित होता है? और (कया) किस नीति से (स्तोतृभ्यः आ भर) विद्वानों को सुख देता है?

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत्।

वृत्रहा सोमपीतये॥ २०॥ २४॥

भा०—(नियुत्वान्) हजारों अश्व सैन्यों का स्वामी, (वृषभः) बलवान् (वृत्र-हा) शत्रुहन्ता, (वृषा) प्रबन्धकर्त्ता, (कस्य सुते) किसके ऐश्वर्य पर (सचा) और किसके सहयोग में (सोम-पीतये) ऐश्वर्य प्राप्ति और रक्षा कार्य में (रणत्) रण करे और आनन्द लाभ करे। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम्।

प्रयन्ता बोधि दाशुषे॥ २१॥

भा०—(त्वं नः) तू हमें (मन्दसानः) अति हर्षित होकर (सहस्रिणं रयिम्) सहस्रों का धन (अभि सु) अच्छी प्रकार आदरपूर्वक (प्रयन्ता) प्रदान करने हारा हो और तू (दाशुषे) दानशील के हित को भी (अभि सु बोधि) अच्छी प्रकार जान।

पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये।

अपां जग्मिर्निचुम्पुणः॥ २२॥

भा०—(अपां जग्मिः) जैसे समुद्र में समस्त जलधाराएं आकर मिलती हैं, वह जलधाराओं के प्राप्त होने का एकमात्र आधार है और

जैसे वह समुद्र ही (नि-चुम्पुणः) जलों को अपने भीतर लेकर ही पूर्ण होता है, वैसे ही राजा भी (अपां जग्मिः) सब आप्त प्रजाओं का शरण जाने योग्य और (निचुम्पणः) समुद्रवत् उनसे ही करादि लेकर तृप्त या पूर्ण होने वाला है। हे राजन्! (पत्नीवन्तः) पालनकारिणी शक्ति या नीति से वा पत्नीयुक्त वाले गृहस्थ जन और (सुताः) अभिषिक्त वा पुत्रवत् प्रजा रूप (इमे) ये (उशन्तः) धनादि कामनावान् जन, (वीतये) रक्षा प्राप्त करने के लिये (यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं।

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे।

अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥

भा०—(ओजसा) बल और शौर्य से (अव-भृथम्) पूर्ण (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (अध्वरे) हिंसारहित प्रजापालन-कार्य में (इष्टाः) एकत्र संगत होकर (होत्राः) अधिकार देने वाले (वृधासः) उसके बलादि के बढ़ाने वाले जन ही (अच्छ) सबके समक्ष (असृक्षत) इसे अपना प्रभु बनाते हैं।

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या।

वोळहामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥

भा०—(इह) राष्ट्र में (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द लाभ करने वाले, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान प्रदीप्त तेज को केशवत् धारण करने वाले (हरी) अश्वों के तुल्य अग्रगामी स्त्री पुरुष वा दो नेता जन (हितम् प्रयः) हितकारक मार्ग की ओर (अभि वोढाम्) ले जावें।

तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो।

स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (विभावसो) विशेष दीप्तियुक्त ऐश्वर्य के स्वामिन्! (इमे सुताः सोमाः) ये उत्पन्न प्रजाजन और ऐश्वर्यवान् शासकगण (तुभ्यम्)

तेरे ही हितार्थ हैं, (वर्हिः) यह बृहत् राष्ट्र वा उत्तम आसन भी (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (स्तीर्णम्) विस्तृत है। तू (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इन्द्रम् आ वह) ऐश्वर्य प्राप्त करा। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे।
स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥ २६ ॥

भा०—(दाशुषे ते) दानशील तेरा ही (दक्षं) तेज और ज्ञानसामर्थ्य (आ) सब ओर है। वह ऐश्वर्यवान् (रोचना रत्ना विदधत्) रुचिकर, तेजोयुक्त नाना उत्तम रत्न, ऐश्वर्य (स्तोतृभ्यः) विद्वानों को विशेष रूप से देता है। आप लोग, हे विद्वानो! उसी (इन्द्रम् अर्चत) ऐश्वर्यवान् पुरुष की स्तुति करो।

आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित बल और ज्ञान से सम्पन्न स्वामिन्! मैं (ते) तेरे लिये (विश्वा उक्था) समस्त स्तुति वचन और (इन्द्रियम्) राजादि से सेवनीय ऐश्वर्य (आदधामि) रखता हूँ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (स्तोतृभ्यः मृडय) गुण प्रशंसकों को सुखी कर।

भद्रम्भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है, वह तू हे (शत-क्रतो) अमित बलशालिन्! (नः भद्रं-भद्रम्) हमें अतिसुखकारक, (इषम् ऊर्जम्) अन्न, रस, आदि (आ भर) दे।

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत् नः मृडयासि) जो तू हमें सुखी करता है। हे (शत-क्रतो) अमित ज्ञानवन्! (सः) वह तू (विश्वानि सुवितानि) समस्त सुखजनक पुण्य पदार्थ वा साधन (आ भर) प्राप्त करा।

त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—(यत्) जो तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है, हे (वृत्रहन्तम) दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार दण्ड देने हारे! (सुतावन्तः) ऐश्वर्यवान् हम लोग (त्वाम् इत् हवामहे) तुझे ही रक्षार्थ प्रार्थना करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मदानां पते) हर्ष और तृप्तिजनक ऐश्वर्यों, अन्नों के पालक स्वामिन्! तू (हरिभिः) विद्वान् मनुष्यों द्वारा (नः) हमारे बीच (सुतं उप याहि) अभिषेक या ऐश्वर्य पद को प्राप्त हो और (नः हरिभिः सुतम् उप याहि) हमारे जनों के सहाय्य से उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कर।

द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वृत्रहन्तमः) दुष्ट पुरुषों को अति अधिक दण्ड देने हारा और (शत-क्रतुः) अमित बलशाली, इस प्रकार (द्विता) दो प्रकार का जाना जाता है, वह (हरिभिः) विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्य सहित (नः सुतम्) हमारे ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (उप) प्राप्त हो।

त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३३ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक! (त्वं हि) तू निश्चय करके (एषां) इन (सोमानां पाता असि) ऐश्वर्यों और प्रजाजनों का पालक है। तू (नः सुतं हरिभिः उप याहि) हमारे इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को विद्वान् जनों और वीर पुरुषों सहित प्राप्त हो।

इन्द्रं इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ३४ ॥ २७ ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नः) हमें (इषे) अन्न, सेना आदि प्राप्त करने के लिये (ऋभुक्षणं) ज्ञान से चमकने और 'ऋभु' शिल्पी जनों को बसाने वाला महान् (ऋभुं) ज्ञान, सत्यादि से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य (नः ददातु) हमें दे । (वाजी) वह बलवान् पुरुष (नः) हमें (वाजिनम्) अश्वादि सैन्य (ददातु) दे । इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[६४]

बिन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ४, ६, १०—१२ निचृद् गायत्री ॥

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥१

भा०—जब (रथानाम्) वेग से जाने वाले रथादि सैन्यों वा महारथी जनों के (वह्नी युक्ता) घोड़े वा बैल, युद्धरथ वा अन्नकरादि-संग्रहार्थं युद्धार्थं जुत जाते हैं, तब (मघोनां मरुताम्) ऐश्वर्यवान् मनुष्यों की (माता) माता के समान पूज्य (श्रवस्युः) अन्न, बल और कीर्तिप्रद होकर पृथिवी (गौः धयति) गौ के समान सबको अन्न देती है ।

यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते ।
सूर्यामासा दृशे कम् ॥ २ ॥

भा०—(यस्याः) जिसकी (उपस्थे) गोद में, (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (व्रता धारयन्ते) नाना कर्म, व्रत और अन्न धारण करते, प्राप्त करते हैं, उसी आश्रय पर (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्र दोनों ही (दृशे) प्रकाश द्वारा दर्शन कराने के लिये रहते हैं ।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—(विश्वे कारवः) सब कर्मकुशल, शिल्पी, (मरुतः) बलवान् मनुष्य एवं व्यापारी जन, (सोम-पीतये) स्वयं अन्नवत् ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, (सदा) सदैव (तत् नः सु अर्यः) वह हमारा उत्तम पूज्य स्वामी है, इस प्रकार (आ गृणन्ति) कहते, उसकी स्तुति करते हैं।

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।
उत स्वराजो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अयं सोमः सुतः अस्ति) यह ऐश्वर्य उत्पन्न है, (अस्य मरुतः पिबन्ति) इसका बलवान् पुरुष उपभोग करते हैं और (उत अस्य स्वराजः) इसका स्वयं तेजस्वी लोग उपभोग करते हैं और (अश्विना) जितेन्द्रिय लोग इसका उपभोग करते हैं।

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः।
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ ५ ॥

भा०—(तना पूतस्य) विस्तृत ऐश्वर्य वा यज्ञ से पवित्र, (त्रिसध स्थस्य) तीनों स्थानों पर विराजमान (जावतः) जाया के पुत्र प्रजा या भूमि से युक्त राष्ट्र का (मित्रः) स्नेही जन, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता और (वरुणः) संकटनिवारक जन (पिबन्ति) उपभोग और पालन करते हैं।

उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः।
प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य गोमतः सुतस्य) इस भूमि-युक्त ऐश्वर्य के साथ (जोषम्) प्रेम करके (इन्द्रः) तेजस्वी पुरुष (प्रातः) प्रातःकाल में (होता इव) आहुति दाता विद्वान् के तुल्य (मत्सति) बड़ा सुख अनुभव करता है।

कदत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः।
अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥ ७ ॥

भा०—(सूरयः आप इव तिरः) सूर्य की किरणें जैसे मेघस्थ जलों को छिन्न भिन्न कर चमकते हैं वैसे ही (पूत-दक्षसः) पवित्र ज्ञान-कर्म वाले, (स्त्रिधः) दुष्ट शत्रु-सैन्यों को (तिरः) दूर करके, (सूरयः) तेजस्वी जन (कत् अत्विषन्त) कितना चमकते हैं और (कत् अर्षन्ति) कितना आगे बढ़ते हैं, यह दर्शनीय है।

कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे।

त्मनां च दुस्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥

भा०—(त्मना च) अपने आत्मसामर्थ्य से (दस्म-वर्चसाम्) दर्शनीय और शत्रुनाशक तेज वाले, (महानां देवानां) पूज्य विद्वानों और (वः) आप विजिगीषु जनों के (अवः) रक्षा वा प्रीति को मैं (कत् वृणे) किस प्रकार प्राप्त करूं, यह बतलाइये।

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिवः।

मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो बलवान् मनुष्य (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के पालन और प्राप्ति के लिये (दिवः) आकाश या भूमि के (विश्वा) समस्त (पार्थिवानि रोचना) पृथिवी पर के रुचिकर पदार्थों को (पप्रथन्) विस्तारित करते हैं—

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य की रक्षार्थ मैं (पूतदक्षसः) पवित्र कर्म वाले, आचारवान्, (मरुतः) बलवान् (त्यान्) उन पुरुषों को (दिवः) उनकी इच्छा अनुसार (हुवे) स्वीकार करता हूं।

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो वीर पुरुष (रोदसी तस्तभुः) आकाश,

पृथिवी के समान स्वपक्ष, परपक्ष, स्त्री-पुरुष, शास्य-शासक दोनों वर्गों को (वितस्तभुः) विशेष रूप से थामते, वश करते हैं उनको मैं (अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य के पालनार्थ बुलाता, स्वीकार करता हूँ।

त्वं नु मारुत गुणं गिरिष्ठां वर्षणं हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये॥ १२ ॥ २९ ॥

भा०—और (अस्य सोमस्य पीतये) इस राज्य-ऐश्वर्य के पालन के लिये मैं (त्वं नु) उस (गिरिष्ठां) वाणी में स्थित वा कुशल (वृषणं) ज्ञानादि की वर्षा करने वाले वा बलवान् (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह को (हुवे) बुलाता हूँ। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

[९५]

तिरश्चा ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१—४, ६, ७ विराडनुष्टुप्। ५, ९ अनुष्टुप्। ८ निचृदनुष्टुप्॥

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।
अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः॥ १ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जैसे अपने बच्चे को लक्ष्य कर (सम् अनूषत) अच्छी प्रकार उसकी स्तुति करती हैं, वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तवन करने हारे! (गिरः) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन (त्वा अभि सम् अनूषत) तुझे लक्ष्य कर तेरी स्तुति करते हैं। (रथीः इव) रथवान् क्षिप्रगामी पुरुष के समान (सुतेषु) अन्नादि के प्राप्त्यर्थ (त्वा) तेरी ओर ही (गिरः) सब विद्वान् एवं सब वाणियां (आ अस्थुः) आ रही हैं।

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः।
पिबा त्वस्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम्॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति-योग्य! (शुक्राः सुतासः) कान्तियुक्त, पदाभिषिक्त जन (त्वा आ

अचुच्यवुः) तुझे सब ओर से प्राप्त हों। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे योग्य (विश्वासु हितम्) समस्त प्रजाओं में नियत भाग है। तू (अस्य अन्धसः) उस खाने योग्य पदार्थ का (पिब तु) उपभोग कर।

पिबा सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम्।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं हि) तू ही (शश्वतीनां विशाम्) बहुत सी प्रजाओं का (पतिः असि) पालक, स्वामी है। तू (मदाय) आनन्द के लिये (श्येनाभृतं सुतं) बाज के समान शत्रु पर आक्रमणकर्ता, आचारवान् पुरुषों से प्राप्त वा प्रदत्त (सोमं) ज्ञान वा ऐश्वर्य को (पिब) प्राप्त कर।

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः त्वा) जो तेरी (सपर्यति) सेवा करता है उस (तिरश्च्याः) समीप प्राप्त शरणागत की (हवं श्रुधि) पुकार को तू सुन और तू (महान् असि) महान् है। तू (सु-वीर्यस्य) उत्तम बलयुक्त (गोमतः) गवादि सम्पन्न (रायः) धन को हमें (पूर्धि) पूर्ण कर, दे।

इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत्।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (ते) तेरी (नवीयसीं) अति स्तुतियोग्य, (मन्द्राम्) हर्षजनक (गिरम् अजीजनत्) वाणी को प्रकट करता है और जो तेरे लिये (चिकित्वित्-मनसं) विद्वानों के मनन-योग्य, (प्रत्नां) पुरानी और (ऋतस्य पिप्युषीम्) ज्ञान को बढ़ाने वाली (धियं) वेदमयी वाणी, विद्या वा यज्ञ कर्म को करता है, तू उसे भूमि आदि से युक्त धन प्रदान कर। इति त्रिंशो वर्गः ॥

तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ६ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य के स्वामी को (गिरः ववृधुः) सब वाणियां बढ़ाती हैं, हम भी (तम् उ स्तवाम) उसकी स्तुति करें। (अस्य पुरूणि) उसके बहुत से (पौंस्या) ऐश्वर्यों को (सिसासन्तः) प्राप्त करना चाहते हुए (वनामहे) हम उसका भजन करते हैं।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥ ७ ॥

भा०—(एतो नु) हे विद्वान् जनो ! आओ। हम लोग (शुद्धेन) शुद्ध, (साम्ना) साम गायन द्वारा (शुद्धं) शुद्ध (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें। (शुद्धैः उक्थैः वावृध्वांसं) शुद्ध वचनों से बढ़ने वाले उसको (शुद्धः आशीर्वान्) शुद्ध हृदय होकर ही (ममत्तु) प्रसन्न करें।

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (शुद्ध) शुद्ध स्वरूप (आ गहि) प्राप्त हो और तू (शुद्धाभिः ऊतिभिः) शुद्ध ज्ञान-वाणियों, रक्षाओं और प्रीतियों से (शुद्ध) शुद्धरूप से ही प्राप्त हो। तू (शुद्धः) शुद्ध रूप ही (रयिम्) बल, वीर्य और ऐश्वर्य को धारण कर और तू (शुद्धः) शुद्धस्वरूप (सोम्यः) ऐश्वर्यवान् होकर (ममद्धि) आनन्द युक्त हो।

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ ९ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (शुद्धः हि) सदा शुद्ध रूप (नः रयिं सिसाससि) हमें ऐश्वर्य देना चाहता है। (दाशुषे रत्नानि)

दानशील प्रजा-जन को सुखजनक पदार्थ देता है और (शुदूधः वृत्राणि जिघ्नसे) शुद्ध, निष्पक्षपात होकर ही दुष्टों को दण्डित करता और (शुदूधः वाजं सिसाससि) शुद्ध चित्त होकर ही ज्ञान और ऐश्वर्य अन्यों को देता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[९६]

तिरश्चीद्युतानो वा मरुत ऋषिः ॥ देवता:१-१४, १६-२१ इन्द्रः। १४ मरुतः। १५ इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—१, २, ५, १३, १४ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ६, ७, १०, ११, १६ विराट् त्रिष्टुप्। ८,९,१२ त्रिष्टुप्। १,५,१८,१९ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ४, १७ पंक्तिः। २० निचृत् पंक्तिः। २१ विराट् पंक्तिः। एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अस्मा उषास आतिरन्त याममिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुर्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥१

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) तेजस्वी पुरुष के लिये (उषासः) कामनायुक्त प्रजाएं (यामम् आतिरन्त) नियम व्यवस्था वा मर्यादा का पालन करती हैं और वे ही (ऊर्म्याः) उत्साहित और उत्कण्ठित होकर (नक्तम्) रात्रिकाल में (सुवाचः) उत्तम वाणियां बोलती हैं। (अस्मै) इसी के प्रेम में (मातरः) माताओं के समान (सप्त आपः) सर्पणशील, शरण-प्राप्त प्रजाएं (तस्थुः) आज्ञा पालनार्थ खड़ी रहती हैं और इसी के शासन में (सिन्धवः) बड़े २ महानद (नृभ्यः तराय) मनुष्यों के पार उतारने के लिये (सुपाराः) सुखपूर्वक पार जाने योग्य होते हैं।

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम्।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ २ ॥

भा०—(विथुरेण चित् अस्त्रा) व्यथादायी और इतस्ततः सञ्चालन में समर्थ शक्ति द्वारा (अतिविद्धा) खूब पीड़ित होकर (सप्त त्रिः)

इक्कीसों तत्त्व (गिरीणाम्) मत्स्य एक दूसरे को निगल जाने वाले, वा पर्वत मेघादिवत् भारी और (सानु) शिखर-स्वरूप (संहिता) एकत्र संबद्ध हो जाते हैं। (तत्) उनको (न देवः) न कोई अन्य तेजस्वी तत्त्व (न मर्त्यः) न जीव ही (तुतुर्यात्) इस प्रकार कर सकता है, (यानि) जिनको (प्रवृद्धः) बड़ा, शक्तिशाली और (वृषभः) बलवान् प्रभु (चकार) कर लेता है।

इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ॥ ३ ॥

भा०—जैसे राजा या सेनापति का (आयसः वज्रः) लोह का खड्ग होता है और (निमिश्लः) खूब कठोर होता है वैसे ही (इन्द्रस्य) उस प्रभु का (वज्रः) बल (आयसः) सर्वत्र ब्रह्माण्डों में सूर्यादि को भ्रमण कराने में समर्थ (निमिश्लः) और खूब सम्बद्ध होता है और (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (बाह्वोः) बाहुओं में, उसके शासन में भी (भूयिष्ठम् ओजः) बड़ा पराक्रम है। (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शीर्षन्) शिर में (क्रतवः) अनेक ज्ञान (निरेके) सबसे बढ़कर विद्यमान हैं और (आसन्) मुख में विद्यमान वाणियों को भी सुनने के लिये (उपाके) अति समीप बहुत से जन (ईषन्त) प्राप्त होते हैं।

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम्।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां यज्ञियं मन्ये) दानियों में दानी, पूज्यों में पूज्य, सत्संग योग्यों में सर्वश्रेष्ठ करके जानता हूँ और (अच्युतानां च्यवनम्) स्वयं गतिरहित जड़ पदार्थों को चलाने वाला जानता हूँ। (सत्वनां केतुं मन्ये) बलशालियों में ध्वजा के समान वा सत्वयुक्त चित्त वाले जीवों में ज्ञानप्रद और (चर्षणीनां वृषभं त्वा मन्ये) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ मैं तुझे जानता हूँ।

आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्सें मदच्युतमहंये हन्तवा उं। प्र पर्वता अनंवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—(यद्) जब हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्! तू (बाह्वोः) बाहुओं में (अहये) अभिमुख आये शत्रु को (हन्तवा) नाश करने के लिये (मदच्युतं वज्रं) शत्रुओं के मद को दूर करने वाले प्रजा के (मद-च्युतं) हर्ष प्रापक बल वीर्य को (धत्से) धारण करता है तब (पर्वताः) मेघवत् पालन शक्ति से युक्त शासक जन और (गावः) भूमिवासी समस्त प्रजाएं (प्र अनवन्त) खूब हर्ष ध्वनि करते हैं और (अभिनक्षन्तः ब्रह्माणः) प्राप्त होते हुए विद्वान् जन (इन्द्रम् प्र अनवन्त) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता की स्तुति करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

तमुं ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात्। इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥ ६ ॥

भा०—(तम् उ स्तवाम) उसी की स्तुति करें (यः इमा) जो इन (अस्मात्) उससे (अवराणि) पीछे (विश्वा जातानि) उत्पन्न, समस्त पदार्थों को (जजान) उत्पन्न करता है। हम लोग (इन्द्रेण) उस प्रभु के साथ (मित्रं दिधिषेम) मित्र भाव रक्खें। (नमोभिः गीर्भिः) नमस्कार वचनों से हम उस (वृषभं) सुखों के दाता को (उपो विशेम) प्राप्त होवें।

वृत्रस्यं त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः। मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (वृत्रस्य श्वसथात् ईषमाणाः विश्वे देवाः सखायः अजहुः) बढ़ते शत्रु के श्वासमात्र से भी भय खाते हुए सब मित्र मनुष्य भी राज्य को छोड़ देते हैं वैसे ही हे प्रभो! (विश्वे देवाः) समस्त जीवगण, (सखायः) तेरे मित्र समान आख्या वाले आत्मा होकर भी (वृत्रस्य) आवरणकारी देह के (श्वसथात् ईषमाणाः) श्वास-प्रश्वास द्वारा

गति करते हुए (त्वा अजहुः) तुझे भूल जाते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते मरुद्भिः सख्यम् अस्तु) जीवगण से तेरा सदा सख्य, मित्रभाव रहे। (अथ) और तू (इमा विश्वाः पृतनाः जयासि) इन सब प्रजाओं को अपने वश कर।

त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥ ८ ॥

भा०—(त्रिः षष्टिः मरुतः) ६३ प्रकार के मनुष्य और देह में प्राण (वावृधानाः) बढ़ते हुए (उस्राः इव) सूर्य की किरणों के समान (राशयः) संघ होकर (यज्ञियासः) आदर योग्य हैं। वे हम (त्वा उप इमाः) तुझे प्राप्त होते हैं। (नः भाग-धेयं कृधि) हमारा भाग नियत कर। हम (ते शुष्मं) तेरे बल को (एना हविषा) इस प्रकार के कर और उपाय से (विधेम) बनावें। त्रिःषष्टि गणों का परि-संख्यान यजुर्वेद अ० २२ में देखो।

तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष।
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तिग्मम् आयुधम्) शत्रु पर प्रहार करने के तीक्ष्ण साधन, (मरुताम् अनीकम्) वीर पुरुषों की सेना रूप (ते वज्रं) तेरे महान् बल को (कः प्रति दधर्ष) कौन पराजित कर सकता है। (असुराः) बड़े बलशाली लोग भी (अनायुधासः) आयुधों से रहित और (अदेवाः) अतेजस्वी हों, (तान्) उनको हे (ऋजीषिन्) शत्रुभर्जक सेनाओं के स्वामिन्! तू (अप वप) दूर ही खण्डित कर डाल।

मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥१०॥२३॥

भा०—(महे उग्राय) बड़े बलवान् (तवसे) शक्तिशाली, (शिव-तमाय) अति सुखदायक (पश्वः च शिवतमाय) पशु तक के कल्याण-

कारी (गिर्वाहसे) वाणियों और स्तुतियों को स्वीकार करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये, (अङ्ग) हे विद्वन्! तू (सुवृक्तिं प्रेरय) उत्तम स्तुति कर, उसी के लिये (पूर्वीः गिरः धेहि) पूर्व की, नित्य वाणियों को धारण कर। वही (तन्वे) हमारे शरीर और राष्ट्र के लिये (कुवित् वेदत्) बहुत सुखैश्वर्य देता है। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

उ॒क्थवा॑हसे वि॒भ्वे॑ मनी॒षां द्रुणा॒ न पा॒रमी॑रय न॒दीना॑म्।
नि स्पृ॑श धि॒या त॒न्वि॑ श्रु॒तस्य॒ जुष्ट॑तरस्य कु॒विद॒ङ्ग वेद॑त्॥ ११॥

भा०—(उक्थ-वाहसे विभ्वे) उत्तम स्तुति-वचनों को स्वीकार करने वाले विभु, महान् परमेश्वर के लिये (मनीषां) चित्त, बुद्धि को प्रेरित कर। हे प्रभो! तू (द्रुणा न नदीनाम्) नदियों के पार नौका के समान हमें (पारम् ईरय) पार ले चल। हे विद्वन्! (जुष्टतरस्य श्रुतस्य) अति सेवनीय श्रवण योग्य ज्ञान को (तन्वि) पुत्र में धनवत् (निस्पृश) दे। वह प्रभु (अङ्ग) हे मनुष्य! (कुवित् वेदत्) बहुत कुछ देता है।

तद्वि॑वि॒ड्ढि यत्त॒ इन्द्रो॒ जुजो॑ष॒त्स्तु॒हि सु॑ष्टु॒तिं नम॒सा वि॑वास।
उप॑ भूष जरित॒र्मा रु॑वण्यः श्रा॒वया॒ वाचं॑ कु॒विद॒ङ्ग वेद॑त्॥ १२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (यत् जुजोषत्) जिसे प्रेम करे तू (तत् विविड्ढि) उसी पदार्थ को प्राप्त करा, उसकी (सु-स्तुतिं स्तुहि) उत्तम स्तुति कर। (नमसा) विनय से (विवास) उसकी सेवा कर। हे (जरितः) विद्वन्! तू (उप भूष) उसके समीप रह और (मा रुवण्यः) रो मत। तू अपनी (वाचं) वाणी को (श्रावय) उसे सुना और (अङ्ग कुविद् वेदत्) हे मनुष्य! वह बहुत २ ऐश्वर्य देने वाला है।

अव॑ द्र॒प्सो अं॑शु॒मती॑मतिष्ठदिया॒नः कृ॒ष्णो द॒शभिः॑ स॒हस्रैः॑।
आव॒त्तमिन्द्रः॒ शच्या॒ धम॑न्त॒मप॒ स्नेहि॑तीर्नृ॒मणा॑ अधत्त॥ १३॥

भा०—(द्रप्सः) वेग से प्रयाण करने में समर्थ, (कृष्णः) प्रजा को

कर्षण करने वाला, (दशभिः सहस्रैः) दस सहस्र सैन्यों सहित (अंशुमतीम्) अन्न वाली भूमि पर (अतिष्ठत्) स्थिर हो, तो भी (शच्या धमन्तम्) शक्ति से प्रजा को पीड़ित करने वाले दुष्ट शत्रु को (इन्द्रः) ऐश्वर्य युक्त उत्तम राजा (शच्या आवत्) शक्ति से आक्रमण करे और वध करे और (नृमणाः) मनुष्यों के हित में चित्त देकर वह (स्नेहितीः) हिंसक सेनाओं को (अप अधत्त) दूर करे।

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥१४॥

भा०—सेनापति सैन्यगण से कहे—मैं (अंशुमत्याः नद्यः) कर देने वाली, सम्पन्न प्रजा के (उप-ह्वरे) समीप (विषुणे चरन्तं) विस्तृत देश में विचरते (द्रप्सम्) द्रुतगामी शत्रु को (अपश्यम्) देखता हूँ और (अवतस्थिवांसम्) आसन पर बैठे हुए (कृष्णम्) प्रजा के पीड़क जन को (नभः) आकाश में मेघवत् व्यापता जानता हूँ। हे (वृषण) बलवान् पुरुषो! मैं (इष्यामि) चाहता हूँ कि (वः) आप लोग (आजौ युध्यत) संग्राम में शत्रु से युद्ध करो, मारो।

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥१५॥३४

भा०—(द्रप्सः) वेग से जाने वाला शत्रु (अंशुमत्याः उपस्थे) समृद्ध प्रजा के समीप, (तित्विषाणः) तेजस्वी होकर (तन्वं अधारयत्) विस्तृत शक्ति को धारता है और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा (युजा बृहस्पतिना) बड़ी सेना के पालक सेनापति के सहाय से; (अदेवीः) अकरप्रद, (अभि आचरन्तीः) विपरीत आक्रमणकारिणी (विशः) प्रजाओं को (ससहे) पराजित करे। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः १६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्यत् त्वं) वह तू (जायमानः) प्रकट होकर (अशत्रुभ्यः सद्भ्यः) शत्रुरहित स्वयं विचरने वालों का (शत्रुः अभवः) नाश करने में समर्थ हो। (गूढे द्यावापृथिवी) संवृत, सुरक्षित, आकाश पृथिवीवत् शासन-शास्य दोनों को (अनु अविन्दः) अपने अनुकूल, वश कर और (विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः) बड़े ऐश्वर्य से युक्त देशों की प्राप्ति के लिये (रणं धाः) रण कर।

त्वं ह॒ त्यद॑प्रतिमा॒नमोजो॒ वज्रे॑ण वज्रिन्धृषि॒तो ज॑घन्थ।
त्वं शुष्ण॒स्याव॑ति॒रो व॒धत्रै॒स्त्वं गा इ॑न्द्र॒ शच्येद॑विन्दः॥ १७॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन्! (त्वं ह) तू ही (वज्रेण) अपने शस्त्रबल से (धृषितः) शत्रु-पराजय में समर्थ होकर (अप्रतिमानम् यत् ओजः) उस अमित शत्रु के बल को (जघन्थ) विनष्ट कर। (त्वं) तू (वधत्रैः) वध करने के साधनों से (शुष्णस्य अवातिरः) प्रजा के शोषक दुष्ट का नाश कर और (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (शच्या इत्) शक्ति और आज्ञा के बल से ही (गाः अविन्दः) सब भूमियों को अपने अधीन कर।

त्वं ह॒ त्यद्वृ॑षभ चर्षणी॒नां घ॒नो वृ॒त्राणां॑ तवि॒षो ब॑भूथ।
त्वं सिन्धूँ॑रसृजस्तस्तभा॒नान् त्वम॒पो अ॑जयो दा॒सप॑त्नीः॥ १८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे (चर्षणीनां वृषभ) प्रजाओं के बीच सर्वश्रेष्ठ! (त्वं ह) तू (तविषः) बलवान् होकर (वृत्राणां) दुष्टों और विघ्नों का (घनः अभवः) दण्ड देने, नाश करने वाला हो। (त्वं) तू (तस्तभानान्) शत्रु नाश करने वाले (सिन्धून्) वेग से जाने वाले वीरों और तट आदि के नाशक महानदों को भी (असृजः) सञ्चालित कर और (त्वम्) तू (दासपत्नीः) प्रजा नाशक शत्रु के आधिपत्य में विद्यमान (अपः) भूमियों, सेनाओं और प्रजाओं को (अजयः) जीत।

स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्वनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान्।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥ १९ ॥

भा०—(सः सुक्रतुः) वह उत्तम ज्ञान और कर्म-सामर्थ्यवान् है। (यः) जो (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों और ऐश्वर्यादि अभिषेक कर्मों में (रणिता) रमने हारा, रणकुशल है। (यः) जो (अहा इव रेवान्) दिन वा सूर्य के समान तेज, बल और धन से युक्त और (अनुत्त-मन्युः) अपराजित बल वाला, (यः एक इत्) जो अकेला ही (नरि अपांसि कर्त्ता) नायक पद पर रहकर नाना कर्मों को करने हारा है (सः) वह (वृत्रहा) शत्रु और विघ्नों का नाशक हो, उसको ही (अन्यं प्रति इत् आहुः) शत्रु के प्रति प्रबल करके जानते और कहते हैं।

स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत्तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम।
स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ॥२०

भा०—(सः वृत्रहा) वह दुष्टनाशक पुरुष ही (चर्षणीधृत्) मनुष्यों को धारण करता है (तं हव्यम्) उस स्तुत्य पुरुष को हम (सु-स्तुत्या) उत्तम गुण स्तवन द्वारा (हुवेम) प्राप्त करें। (सः) वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् (नः प्राविता) हमारा उत्तम रक्षक हो और (सः) वह (नः अधिवक्ता) हमारा अध्यक्ष, शासक और (सः वाजस्य श्रवस्यस्य दाता) कीर्त्ति, अन्नादिप्रद, ऐश्वर्य बल और ज्ञान का दाता है।

स वृत्रहेन्द्र ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव। कृण्वन्नपांसि नर्या पुरूणि सोमो न पीतो हव्यः सखिभ्यः ॥ २१ ॥ ३५ ॥

भा०—(सः) वह (वृत्र-हा) दुष्टों और विघ्नों का नाशक, (ऋभुक्षाः) बल और गुणों से महान्, तेजस्वी, शिल्पी आदि जनों का आश्रय दाता, (जज्ञानः) होकर (सद्यः हव्यः बभूव) शीघ्र ही स्तुत्य हो जाता है। वह (पुरूणि नर्या अपांसि कृण्वन्) नायक योग्य, प्रजाजन के हितार्थ बहुत कर्मों को करता हुआ (पीतः सोमः न) पाने वा पालन

योग्य सोम रस, ऐश्वर्य वा पुत्रादि के समान ही (सखिभ्यः हव्यः) मित्रों के लिये स्तुत्य होता है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[९७]

रेभः काश्यप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११ विराड् बृहती। २, ६, ६, १२ निचृद् बृहती। ४, ५, ८ बृहती। ३ भुरिगनुष्टुप्। ७ अनुष्टुप्। १० भुरिग्जगती। १३ अतिजगती। १५ ककुम्मती जगती। १४ विराट् त्रिष्टुप्। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (स्वर्वान्) सूर्यतुल्य तेजस्वी पुरुषों का स्वामी होकर (असुरेभ्यः) प्राण वाले जीवों के हितार्थ (याः भुजः आभर) जिन योग्य पदार्थों को देता है, (अस्य) इस धन से तू (स्तोतारम् इत्) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् को ही, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (वर्धय) बढ़ा और उनको भी बढ़ा (ये च तव) जो तेरे लिये (वृक्त-बर्हिषः) आसन बिछाते, तेरे अधीन शत्रु को कुशतृणवत् काटते हैं।

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम्।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (यम् अश्वम्) जिस अश्व को, (गां) भूमि व पशु को और (अव्ययं भागम्) अक्षय सैन्य को (दधिषे) धारण करता है, (तं) उसको (सुन्वति) यज्ञ करने वाले और (दक्षिणावति) दान दक्षिणा देने वाले (तस्मिन् यजमाने धेहि) उस यजमान के निमित्त धर। (मा पणौ) धन के व्यवहारी के निमित्त मत दे।

य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वापमदेवयुः।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत्पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) दुष्टों को दण्ड देने हारे ! (यः अव्रतः) जो व्रत-हीन होकर (सस्ति) आलस्य में सोता है और जो (अनुस्वापं) निद्रा आलस्य के साथ २ (अदेवयुः) अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखता वा विद्वानों, शुभ गुणों को नहीं चाहता, (सः) वह (स्वैः एवैः) अपने ही आचरणों से (पोष्यं रयिं युयुवत्) पोषण-योग्य ऐश्वर्य का नाश करता है। (ततः) उससे हे ऐश्वर्यप्रद ! तू (तं रयिं) उस ऐश्वर्य को (सनुतः धेहि) कार्य और फल से वञ्चित कर।

यच्छ॑क्रासि॑ परा॒वति॒ यद॑र्वा॒वति॑ वृत्रहन्।
अत॑स्त्वा गी॒र्भिर्द्यु॒गदि॑न्द्र के॒शिभि॑ः सु॒तावाँ॒ आ वि॑वासति ॥४॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) शत्रु-नाशक ! (यत्) जो तू (परावति) दूर और (अर्वावति) समीप देश में भी (असि) है, तो भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (अतः) इस अपने स्थान से ही, (सुतवान्) ऐश्वर्ययुक्त होकर तेरा प्रतिनिधि (द्युमत् केशिभिः) भूमिगामी अश्वों और तेजस्वी पुरुषों द्वारा (त्वा आ विवासति) तेरी ही सेवा करता है।

यद्वासि॑ रोच॒ने दि॒वः स॑मु॒द्रस्याधि॑ वि॒ष्टपि॑।
यत्पार्थि॑वे॒ सद॑ने वृत्रहन्तम॒ यद॒न्तरि॑क्ष॒ आ ग॑हि ॥५॥३६॥

भा०—(यद् वा) तू चाहे (दिवः रोचने) भूमि के किसी अति रुचिकर देश में भी (असि) हो, चाहे तू (समुद्रस्य अधि विष्टपि) वा समुद्र के किसी निस्ताप प्रदेश में भी हो, चाहे तू (यत् पार्थिवे सदने) या पृथिवी के किसी गृह में वा (यत् अन्तरिक्षे) वा अन्तरिक्ष में भी हो तो भी हे (वृत्रहन्तम) विघ्नों के नाशक स्वामिन् ! तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

स नः॒ सोमे॑षु सोमपाः सु॒तेषु॑ शवसस्पते।
मा॒दय॑स्व॒ राध॑सा सू॒नृता॑व॒तेन्द्र॑ रा॒या परी॑णसा ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (शवसः पते) बल-पालक ! हे (सोमपाः) ऐश्वर्य पालक ! तू (सोमेषु सुतेषु) ऐश्वर्यों के उत्पन्न होने पर (नः) हमें (सूनृतावता) उत्तम वचन से युक्त (राधसः) दान योग्य धन से और (परीणसा) बहुत से (राया) ऐश्वर्य से (मादयस्व) तृप्त कर।

मा नं इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्यः।
त्वं नं ऊती त्वमिन्न आप्यं मा नं इन्द्र परा वृणक् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! प्रभो ! तू (नः) हमें (मा परा वृणक्) मत त्याग। तू (नः सधमाद्यः भवः) हमारे साथ आनन्द युक्त हो। (त्वं नः ऊती) तू ही हमारी रक्षा है। (त्वम् इत् नः आप्यं) तू ही हमारा बन्धु है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः मा परा वृणक्) हमें मत छोड़।

अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु।
कृधी जंरित्रे मंघवन्नवो महदस्मे इन्द्र सचा सुते ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मधु पीतये) अन्नादि के उपभोग के लिये (अस्मे सुते) हमारे द्वारा अभिषिक्त पद पर, तू (नि सद) विराज। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जरित्रे) उपदेष्टा के हितार्थ (अस्मे सुते सचा) हमारे ऐश्वर्य पर स्थिर रहकर (महत् अवः कृधि) बड़ी भारी रक्षा कर।

न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः।
विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! (त्वा देवासः न आशत) तुझे विद्वान् गण वा इन्द्रिय गण भी नहीं पा सकते और (न मर्त्यासः) न साधारण मनुष्य ही तुझे पा सकते हैं। तू (शवसा) बल से (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न पदार्थों को (अभिभूः असि) वश किये है। इसलिये भी (त्वा देवासः न आशत) तुझे दिव्य पदार्थ सूर्यादि, एवं विद्वान् जन भी नहीं पा सकते।

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् १०।३७

भा०—(विश्वाः पृतनाः) समस्त मनुष्य, (अभि-भूतरं नरं) शत्रु को खूब पराजित करने वाले नायक (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (सजूः) प्रेमपूर्वक मिलकर (राजसे जजनुः) राज्य करने के लिये प्रधान पद पर स्थापित करते हैं और वे (क्रत्वा वरिष्ठं) ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ (आ-मुरिम्) शत्रुओं के नाशक, (उग्रम्) भयंकर, (ओजिष्ठं) अति पराक्रमी, (तरस्विनं) बलवान्, (तवसं) शक्तिशाली, पुरुष को (इन्द्रम् जजनुः) ऐश्वर्यवान् राजा रूप से नियुक्त करें। इति सप्तत्रिंशो वर्गः॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः॥ ११॥

भा०—(रेभासः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता जन (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालनार्थ (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (स्वः-पतिम्) सुखों के स्वामी की (ईम्) सब प्रकार से (सम् अस्वरन्) मिलकर स्तुति करें और (यत् ईं वृधे सम् अस्वरन्) जब वे इसको अपनी वृद्धि के लिये प्रार्थना करें तब वह (ऊतिभिः) अपने रक्षा-साधनों और (ओजसा) बल से (धृत-व्रतः) व्रतों, नियमों को धारण करने वाला हो और उनको (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार शासन करे।

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः॥ १२॥

भा०—(विप्राः) विद्वान् पुरुष (नेमिम्) शत्रुओं को नमाने वाले बलवान् (मेषं) सुखों के दाता, राजा का (चक्षसा) दर्शन कर (अभि-स्वरा) उत्तम स्वर से (नमन्ति) आदर करते हैं। हे विद्वान् लोगो! आप भी (सु-दीतयः) उत्तम दीप्ति युक्त (अद्रुहः) परस्पर द्वेष से रहित और (कर्णे तरस्विनः) करने योग्य कर्त्तव्य कर्म में शीघ्रता करने वाले

होकर (ऋक्भिः) उत्तम ऋचाओं से उस स्वामी की (सं) मिलकर स्तुति करो ।

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १३ ॥

भा०—मैं (तम्) इस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (मघवानम्) उत्तम धनों के स्वामी (उग्रम्) बलवान्, (सत्रा शवांसि दधानम्) सच्चे बलों का धारक (अप्रतिष्कुतं) जिसके बल को कोई रोकने वाला नहीं उसको (जोहवीमि) बुलाता हूं। वही (मंहिष्ठः) सबसे बड़ा दानी (यज्ञियः च) और पूज्य है। वह (गीर्भिः आववर्त्तत्) उत्तम वाणियों से शासन करता है। वह (वज्री) शक्तिमान् स्वामी, (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (विश्वा) सब प्रकार के (सुपथा) उत्तम मार्ग (कृणोतु) करे।

त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।
त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन् द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (शविष्ठ) सर्वाधिक शक्तिमान्! हे (शक्र) शक्ति देने हारे! तू (ओजसा) बल पराक्रम से (पुरः नाशयध्यै चिकित्) शत्रुओं नगरियों, गाढ़ियों को विनाश करना भली प्रकार जान। हे (वज्रिन्) वीर्यवन्! (विश्वानि भुवना द्यावा पृथिवी च) समस्त भुवन, सूर्य और पृथिवी सब (त्वद् भीषा रेजेते) तेरे भय से चल रहे हैं।

तन्म ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन्दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा न इन्द्र राय आ दशस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन्
॥ १५ ॥ ३८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (तत् ऋतम्) वह सत्य ज्ञान (मे पातु) मेरी रक्षा करे। हे (चित्र) पूज्य! हे अद्भुत! हे (वज्रिन्) बल-

वन् ! (अपः न) जलों के समान तू (भूरि दुरिता अति पर्षि) बहुत से दुःखों से पार कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (विश्वप्स्न्यस्य) सब प्रकार के (स्पृहयाय्यस्य) चाहने योग्य (रायः) धन को, हे (राजन्) तेजस्विन् ! तू (नः कदा आ दशस्ये) हमें कब देगा। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽध्यायः।

अथ सप्तमोऽध्यायः

[६८]

नृमेध ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५ उष्णिक्। २, ६ ककुम्मती उष्णिक्। ३, ७, ८, १०—१२ विराडुष्णिक्। ४ पादनिचृदुष्णिक्। ९ निचृदुष्णिक्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे॥ १॥

भा०—(बृहते) महान् (विप्राय) मेधावी, (धर्म-कृते) समस्त धर्मों, प्रबन्धों को करने वाले, (विपश्चिते) विद्वान्, (पनस्यवे) स्तुति चाहने वाले, वा वाणी और सद्-व्यवहारों के पालक (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त (बृहत् साम) बृहत् साम का (गायत) गान करो।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (अभिभूः असि) सर्वत्र विद्यमान है (त्वम् सूर्यम् अरोचयः) तू सूर्य को प्रकाशित करता है। तू (विश्व-कर्मा) समस्त जगत् का बनाने वाला और (विश्व-देवः) सब देवों का देव, सबका दाता, प्रकाशक और (महान् असि) बड़ा है।

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥

भा०—तू (ज्योतिषा) तेज से (स्वः विभ्राजन्) विश्व को प्रकाशित करता हुआ (दिवः) सूर्य और आकाशस्थ प्रकाशमान पिण्डों को भी (रोचनं) तेज (आगच्छः) प्राप्त कराता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (देवाः) प्रकाशित लोक और विद्वान्, हे (इन्द्र) तेजस्विन्! (ते सख्याय) तेरे मित्र भाव के लिये (येमिरे) अपने को नियम में बांधते हैं।

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः प्रियः) हमारा प्रिय, (सत्राजित्) सत्य बल से सबको विजय करने वाला, (अगोह्यः) अगोप्य, सर्वत्र प्रकाशित, (गिरिः) मेघ वा पर्वत के समान (विश्वतः पृथुः) सबसे बड़ा (दिवः पतिः) सूर्यादि तेजस्वी जगत् का और हमारी कामनाओं का भी स्वामी, पालक है। तू (नः आ गधि) हमें प्राप्त हो।

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सत्य) सत्यरूप! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (उभे रोदसी) आकाश-पृथिवी दोनों पर (अभि बभूथ) वश करता है। तू (सुन्वतः वृधः) उपासक का वृद्धिकर्त्ता (दिवः पतिः) कामनाओं का स्वामी है।

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(त्वं) तू अवश्य (शश्वतीनां पुराम्) बहुत सी, अनादि काल से बनी (पुराम्) नगरियों का (दर्ता असि) तोड़ने हारा है। तू (दस्योः हन्ता) दुष्टों को दण्ड देने वाला और (मनोः वृधः) उपासक का बढ़ाने वाला और उसका (दिवः पतिः) कामनाओं का पालक, वा (दिवः पतिः) भूमि और आकाशादि का भी पालक है। इति प्रथमो वर्गः ॥

अधा हीन्द्र गिर्वणः उप त्वा कामान्महः ससृज्महे ।
उदेव यन्त उदभिः ॥ ७ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अध हि) और हम (त्वा उप) तेरे ही पास रहकर (महः कामान्) बड़ी अभिलाषाओं को (ससृज्महे) पूर्ण करें (उदा इव यन्तः उदभिः) जैसे नदी से जाते हुए यात्री जल से ही अपनी आवश्यकता पूर्ण करते हैं, वैसे ही तुझसे उन्नत होकर हम तुझसे ही सब अभिलाषाएं पूर्ण करें।

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ ८ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (वाः न) जल जिस प्रकार (यव्याभिः) नदियों द्वारा समुद्र को बढ़ाते हैं उसी प्रकार हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्य और स्तुतिवचन (दिवे दिवे) प्रति दिन (वावृध्वांसं) बढ़ते हुए (त्वा वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते हैं।

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे ।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥

भा०—(इषिरस्य) बड़ी इच्छा वाले राजा के (उरुयुगे) बड़े जुए वाले, (उरौ रथे) बड़े रथ में जैसे विद्वान् जन (इन्द्र-वाहा) ऐश्वर्य-प्राप्ति कारक (वचोयुजा) वाणी मात्र से जुड़ने वाले (हरी युञ्जन्ति) दो अश्वों को नियुक्त करते हैं, वैसे ही (गाथया) गान-योग्य स्तुति और गाथा अर्थात् वेद-वाणी द्वारा (इषिरस्य) सबके सञ्चालक, उसके (उरौ) विशाल (उरु-युगे रथे) महान् योजनावान् रमणीय रूप में विद्वान् जन, (वचः-युजा) वाणी से उसमें योग देने वाले (इन्द्र-वाहा) इन्द्र आत्मा को धारण करने वाले (हरी) स्त्री-पुरुषों वा आत्मा और मन को (युञ्जन्ति) योग द्वारा समाहित करते हैं।

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १० ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञानवन्! हे (विचर्षणे) समस्त विश्व को देखने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं नः ओजः नृम्णं आ भर) तू हमें बल, पराक्रम और ऐश्वर्य प्रदान कर और (पृतना-सहं वीरं आभर) संग्राम विजयी वीर को प्राप्त करा।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे॥ ११॥

भा०—हे (वसो) सबके पिता, सबको बसाने हारे, सर्वव्यापक! हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान, कर्मों वाले! (त्वं हि नः पिता) तू निश्चय से हमारा पिता और (त्वं माता बभूविथ) तू ही हमारी माता है। (अध) इसी कारण हम (ते सुम्नम् ईमहे) तेरे से सुख की याचना करते हैं।

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो।
स नो रास्व सुवीर्यम्॥ १२॥ २॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन्! हे (शतक्रतो) अमित कर्म-सामर्थ्य-सम्पन्न! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रेमपूर्वक बुलाये गये! (वाजयन्तं त्वा) ऐश्वर्य और ज्ञान-प्रदान की कामना वाले तुझसे मैं प्रार्थना करता हूँ, (सः) वह तू (नः सुवीर्यम् रास्व) हमें उत्तम बल दे। इति द्वितीयो वर्गः॥

[९९]

नृमेध ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराड् बृहती॥ २ बृहती। ३, ७ निचृद् बृहती। ५ पादनिचृद् बृहती। ४, ६, ८ पंक्तिः॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि॥ १॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन्! (भूर्णयः) प्रजाओं के पालक

(नरः) नायक जन (इदा ह्यः) अब तब, अब और आगे भी, (त्वाम् अपीप्यन्) तुझे बढ़ावें। (सः) वह (स्तोमवाहसाम्) स्तुति-धारक की प्रार्थना को (इह श्रुधि) इस अवसर में श्रवण कर और (स्वसराम् उप आ गहि) गृहवत राष्ट्र को तू प्राप्त हो।

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन्! (त्वे) तेरे अधीन (वेधसः आ भूषन्ति) विद्वान् जन सब ओर से आकर रहते हैं, (तत् ईमहे) इसी से हम तेरी याचना करते हैं। हे (सुशिप्र) हे सौम्य! तू (मत्स्व) आनन्द लाभ कर और सबको सुखी कर। हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तवन-योग्य! (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों, ऐश्वर्यों में (तव) तेरे (उक्थ्या उपमानि) प्रशंसनीय, उपमा योग्य, (श्रवांसि) यश, ज्ञान और कर्म हैं।

श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजास्थ जनो! (श्रायन्तः) आश्रय लेते हुए आप लोग आश्रित जनों के तुल्य ही (सूर्यम्) सूर्यवत् तेजस्वी, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (विश्वा वसूनि) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (भक्षत) सेवन करो। (जाते) उत्पन्न और (जनमाने) उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य में भी हम लोग (ओजसा) बल के द्वारा (भागं) अपना अंश (प्रति दीधिम) ग्रहण करें।

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ ४

भा०—हे मनुष्य! तू (अनर्श-रातिम्) सात्विक, पवित्र दान देने वाले, (वसु-दाम्) ऐश्वर्य-दाता प्रभु की (उप स्तुहि) उपासना किया

कर। क्योंकि (इन्द्रस्य रातयः) ऐश्वर्यवान् के सब दान (भद्राः) कल्याणकारक हैं। (सः) वह (विधतः अस्य) परिचर्या करने वाले इस भक्त के (कामं न रोषति) अभिलाषा को नष्ट नहीं करता, प्रत्युत (दानाय मनः चोदयन्) दान देने के लिये मन वा ज्ञान की प्रेरणा किया करता है।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (प्रतूर्त्तिषु) संग्रामों में (विश्वाः स्पृधः) स्पर्धालु पर-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करने में समर्थ है। तू (अशस्ति-हा) निन्दकों का नाशक, (जनिता) सबका पितावत् जनक (विश्वतूः असि) सब शत्रुओं का नाशक वा विश्व का चालक है। (त्वं) तू (तरुष्यतः) हिंसक, पीड़कों को (तूर्य) विनष्ट कर।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६॥

भा०—(मातरा शिशुं न) माता पिता जैसे शिशु के समीप प्रेम-पूर्वक प्राप्त होते हैं, वैसे ही (ते) तेरे (तुरयन्तं शुष्मम् अनु) संचालक बल के पीछे २ आकृष्ट होकर (क्षोणी) आकाश-भूमि गत सब पदार्थ उसके पीछे चलते हैं। (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्धाकारी भी (श्नथयन्त) शिथिल हो जाते हैं (यद् इन्द्र) जब तू, हे शत्रुनाशक! (वृत्रं) दुष्ट, बाधक को (तूर्वसि) नाश करने को तैयार होता है।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ७ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (अजरम्) अविनाशी (प्र-हेतारं) सबके प्रेरक, शत्रुनाशक और (अप्र-हितम्) स्वयं किसी से प्रेरित न

होने वाले, (आशुम्) वेगवान्, (जेतारं) सर्वविजयी, (हेतारं) दुष्टों के नाशक, (रथि-तमम्) विश्वमात्र में महारथी के तुल्य, (अतूर्तम्) अबाधित, (तुग्र्य-वृधम्) दुष्टों के नाश करने की शक्ति को बढ़ाने वाले, परमेश्वर को आप लोग (ऊती) प्रेमपूर्वक (इतः) आगे करो।

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम्।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—(इष्कर्त्तारम्) सबके सञ्चालक, (अनिष्कृतं) अन्यों से अप्रेरित, (सहस्कृतम्) बलों के उत्पादक, (शतम्-ऊतिं) अमित रक्षा-साधनों से युक्त (शत-क्रतुम्) अमित प्रज्ञा वाले, (समानं) सबके प्रति समान, (वसवानं) सबको आच्छादित करने वाले (वसूजुवम्) ऐश्वर्यों, लोकों के प्रेरक, (इन्द्रम्) प्रभु को हम (अवसे) रक्षार्थ (हवामहे) प्रार्थना करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१००]

नेमो भार्गवः । ४, ५ इन्द्र ऋषिः ।। देवताः—१–६, १२ इन्द्रः । १०, ११ वाक् ।। छन्दः—१, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, १२ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप । ६ निचज्जगती । ७, ८ अनुष्टुप् । ९ निचृदनुष्टुप् ।। द्वादशर्चं सूक्तम् ।।

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात्।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते पुरस्तात्) तेरे आगे (अयं) यह मैं (तन्वा ऐमि) अपने देहसहित आता हूँ और इसी प्रकार (मा पश्चात्) मेरे पीछे (विश्वे देवाः) समस्त कामनावान् जीवगण, (त्वा पुरस्तात् अभियन्ति) तेरे समक्ष आते हैं। तू (यदा) जब (मह्यं भागम् दीधरः) मेरे लिये सेवन-योग्य अंश कर्मफल वा ग्राह्य विषय को रखता है, बनाता है, (आत् इत्) अनन्तर ही (मया) मुझ द्वारा (वीर्याणि कृणवः) नाना बलयुक्त कार्य करता है। जैसे स्वामी अधीनस्थ भृत्य

जन के लिये उसका वेतनादि अंश प्रथम नियत कर देता है और उससे बड़े २ काम भी करा लेता है वैसे ही परमेश्वर की व्यवस्था में भी सुकृतों के उत्तम फल प्राप्त होने नियत हैं। उनको लक्ष्य कर जीव द्वारा कर्म होते हैं।

दधा॑मि ते॒ मधु॑नो भ॒क्षमग्रे॑ हि॒तस्ते॑ भा॒गः सु॒तो अ॑स्तु॒ सोमः॑।
असश्च॒ त्वं द॑क्षिण॒तः सखा॒ मेऽधा॑ वृ॒त्राणि॑ जङ्घनाव॒ भूरि॑ ॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे दिये (मधुनः भक्षम्) मधुर अन्न के भोग्य फल को मैं (अग्रे दधामि) आगे लक्ष्य रूप से रखता हूँ और (ते भागः) तेरा भाग (सुतः सोमः ते हितः अस्तु) उत्पादित ऐश्वर्य सब तेरा ही दिया, तेरे अर्पण हो और तू (च मे) यदि मेरा (दक्षिणतः सखा असः) दायें ओर, सबसे बड़ा, प्रबल सखा, हो (अध) तो तू और मैं दोनों मिलकर (भूरि वृत्राणि) बहुत से विघ्नों को (जंघनाव) नष्ट करें।

'च' अत्र चण् इति णितः प्रयोगश्चेदर्थे वर्त्तते।

प्र सु स्तोमं॑ भरत वाज॒यन्त॒ इन्द्रा॑य स॒त्यं यदि॑ स॒त्यमस्ति॑।
नेन्द्रो॑ अ॒स्तीति॒ नेम॑ उ त्व आह॒ क ईं॑ ददर्श॒ कम॒भि ष्ट॑वाम ॥३॥

भा०— हे मनुष्यो! (वाजयन्तः) ज्ञान और बल की कामना वाले आप सब (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् की उपासनार्थ (स्तोमं प्र सु भरत) स्तुतियों का अच्छी प्रकार प्रयोग करो। (यदि सत्यं) यदि संदेह है कि वह सत्य है तो जानो वह (सत्यम् अस्ति) अवश्य सत्य है। क्योंकि (उ त्वः नेमः) कोई २ मनुष्य (न इन्द्रः अस्ति इति आह) ऐश्वर्यवान् विघ्ननाशक प्रभु नहीं है ऐसा कहता है (कः ईं ददर्श) उसको कौन देखता है? फिर हम (कम् अभि स्तवाम) किसकी स्तुति करें?

अ॒यम॑स्मि जरितः॒ पश्य॑ मे॒ह विश्वा॑ जा॒तान्य॒भ्य॑स्मि म॒ह्ना।
ऋ॒तस्य॑ मा प्र॒दिशो॑ वर्धय॑न्त्यादर्दि॒रो भुव॑ना दर्दरीमि ॥ ४ ॥

भा०—संनिग्ध हृदय वाले स्तोताजन के प्रति साक्षात् प्रभु का

सन्देह निवृत्त्यर्थं वचन—हे (जरितः) स्तुतिकर्त्तः ! (अयम् अस्मि) मैं यह हूँ। (पश्य मा इह) मुझे तू यहां इस जगत् में देख। मैं (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (विश्वा जातानि अभि अस्मि) समस्त पदार्थों को वश किये हूं। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (प्र-दिशः) उत्तम कोटि के दिखाने वा उपदेश करने वाले शास्ता गुरुजन (मा वर्धयन्ति) मुझे ही बढ़ाते, मेरी ही महिमा का विस्तार करते हैं। मैं ही (आदर्दिरः) सबको छिन्न-भिन्न करने वाला हूँ। (भुवना) समस्त लोकों को भी (दर्दरीमि) प्रलय रूप से परमाणु २, छिन्न भिन्न करता हूँ।

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥

भा०—(हर्यतस्य) इस सुन्दर (ऋतस्य) गतिमान् सत् कारण-रूप, प्रकृतिरूप तत्व के (पृष्ठे) पीठ पर (आसीनं) विराजे हुए (एकम्) अद्वितीय (मा) मुझे (वेनाः) चाहने वाले विद्वान् जन (मा अरुहन्) मुझ तक पहुँचते हैं, तब (मनः) मननशील अन्तःकरण ही (मे हृदे आ प्रति अवोचत्) मेरे हृदय को प्राप्त करने के लिये मुझ हृदयस्थ सुहृद् के लिये वचन-प्रतिवचन करता है और वे (सखायः) मेरे मित्र होकर (अन्तः शिशुम्) भीतर अन्तःकरण में व्यापक मुझको लक्ष्य करके (अचिक्रदन्) स्तुति किया करते हैं।

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते ।
पारावतं यत्पुरुसम्भृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥६॥४

भा०—हे (मघवन्) धनयुक्त ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (सवनेषु) स्तुति के अवसरों में, या (सवनेषु) निर्माण किये लोकों में, (या) जो (प्र-वाच्या) उत्तम रूप से वर्णन-योग्य (ता) उन (विश्वा) समस्त कार्यों को (चकर्थ) करता है और उनको तू (सुन्वते) अपने उपासक के लिये (अप अवृणोः) स्पष्ट खोल देता है और (यत्) जो (पारावताम्)

परम रक्षास्थान, मोक्षमय लोक का (वसु) परमैश्वर्य (पुरु-सम्भृतम्) बहुत एकत्र है उसको भी (ऋषि-बन्धवे शरभाय) जगद्द्रष्टा के बन्धु-स्वरूप एवं उसको प्राप्त होने वाले भक्त के सुखार्थ (अप अवृणोः) खोल देता है।

प्र नूनं धावता पृथङ्नेह यो वो अवावरीत्।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥ ७ ॥

भा०—हे उपासक जीवो! (नूनं) तुम निश्चयपूर्वक (प्र पृथक् धावत) उत्तम मार्ग पर स्वतन्त्र होकर चलो और अपने आपको स्वच्छ करो। (यः) जो परमेश्वर (इह) इस जगत् में (वः) आप लोगों को (न अवावरीत्) नहीं रोकता वह ही (सीम्) सब प्रकार से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (वृत्रस्य) विघ्नकारी अज्ञान के (मर्मणि) मर्म पर (वज्रम्) ज्ञान रूप वज्र को (नि अपीपतत्) गिराता है, उसका नाश करता है।

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम्।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥ ८ ॥

भा०—(मनोजवा) मन के वेग वाला (अयमानः) आगे बढ़ता हुआ आत्मा (आयसीम्) लोहे की बनी (पुरम्) प्रकोट के समान प्राणों से बनी इस पञ्चकोशमय देहपुरी को (अतरत्) पार करता है। ज्ञान बल से ज्ञानी देहबन्धन से छूट जाता है। वह (सुपर्णः) ज्ञानी आत्मा (दिवं गत्वाय) तेजःस्वरूप को प्राप्त होकर (वज्रिणे सोमम्) सर्वशक्तिमान् प्रभु के प्रेरक बल, आनन्द को (आभरत्) प्राप्त करता है। 'वज्रिणे' षष्ठ्यर्थे चतुर्थी।

समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरः प्रस्रवणा बलिम् ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (वज्रः) विद्युत् रूप बल, (उद्ना अभीवृतः) जल से आवृत, जल में छिपा (समुद्रे अन्तः शेते) समुद्र के भीतर व्याप रहा

४४ प.

है (अस्मै बलिम्) उस बलशाली विद्युत् के बल को (संयतः) अच्छी प्रकार नियमित (प्रस्रवणाः) बहती जल-धाराएं (पुरः भरन्ति) पूर्व ही धारण किये रहती हैं। वैसे ही (वज्रः) अज्ञान-निवारक ज्ञान का प्रकाश और बल (उद्ना) उत्तम रीति से (अभि-वृतः) सर्वत्र विद्यमान (अन्तः समुद्रे) समुद्रवत् व्यापक, आनन्दमय प्रभु में (शयते) व्यापक है। (पुरः प्रस्रवणाः) आगे जाने वाले, विनीत जन (सं-यतः) संयम से रहते हुए, (अस्मै) इस प्रभु के (वलिम्) बलयुक्त ज्ञान को (भरन्ति) धारण करते हैं।

यद्वाग् वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम॥ १०॥

भा०—(यत्) जो (वाक्) वाणी (राष्ट्री) तेजस्विनी प्रभुशक्ति के समान (मन्द्रा) अति सुखप्रद, (अविचेतनानि) अविज्ञेय, गूढ़ तत्त्वों को (वदन्ती) प्रकाश करती हुई (देवानां मध्ये नि-ससाद) विद्वानों के बीच विराजती है। वह (चतस्रः) चारों दिशाओं, चारों आश्रमों, चारों वर्णों की प्रजाओं के प्रति (पयांसि) मेघस्थ विद्युत् जैसे जलों को प्रदान करता है वैसे ही नाना ज्ञानों को (दुदुहे) प्रदान करती है और (ऊर्जं दुदुहे) जैसे भूमि अन्न को उत्पन्न करती है वैसे वह भी बल को पूर्ण करती है। (अस्याः) इस वेदमयी वाणी का (परमं) परम रूप (क्व स्वित् जगाम) कहां विद्यमान है, यह नहीं ज्ञात होता।

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥ ११॥

भा०—(देवम्) अर्थों की प्रकाशिका (वाचम्) वाणी को (देवाः) विद्वान् जन (अजनयन्त) प्रकट करते हैं और (तां) उसको (विश्व-रूपाः) सब प्रकार के (पशवः) द्रष्टा जीवगण, (वदन्ति) व्यक्त और अव्यक्त रूप से बोलते हैं। (सा) वह (मन्द्रा) सुखदायिनी (धेनुः) गौ

के समान (इषम् ऊर्जं दुहाना) अन्तरिक्ष में मेघस्थ विद्युत् के तुल्य अन्न, जलवत्, प्रेरणा देती हुई (वाक्) वाणी (सु-स्तुता) उत्तम रीति से स्तुत होकर (अस्मान् आ एतु) हमें प्राप्त हो।

सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः॥१२॥५

भा०—हे (विष्णो) व्यापक शक्तिशालिन्! (सखे) मित्र! तू (वितरं विक्रमस्व) खूब विक्रम कर। हे (द्यौः) पृथिवी! हे मूर्धस्थ राजसभे! (वज्राय विष्कभे) शस्त्र-बल, सैन्यादि के विशेष रूप से छावनी बनाकर बैठने के लिये (लोकं देहि) स्थान दे। हम दोनों मिलकर (वृत्रं हनाव) बढ़ते शत्रु का मेघ को वायु-विद्युत्वत् नाश करें और (सिन्धून् रिणचाव) मेघस्थ जलों के तुल्य शत्रु को वा अपने ही तीव्रगामी सैन्य पंक्तियों को स्वतन्त्र रूप से जाने दें। वे (इन्द्रस्य प्रसवे) सेनापति के शासन में (विसृष्टाः) विशेषरूप से गति करते हुए (यन्तु) जावें। इति पञ्चमो वर्गः॥

[१०१]

जमदग्निर्भार्गव ऋषिः॥ देवताः—१–५ मित्रावरुणौ। ५,६ आदित्याः। ७, ८ अश्विनौ। ९, १० वायुः। ११, १२ सूर्यः। १३ उषाः सूर्यप्रभा वा। १४ पवमानः। १५, १६ गौः॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती। ६,७, ९, ११ विराड् बृहती। १२ भुरिग्बृहती। १० स्वराड बृहती। ५ आर्ची स्वराड बृहती। १३ आर्ची बृहती। २,४,८ पंक्तिः। ३ गायत्री। १४ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। १५ त्रिष्टुप्। १६ विराट् त्रिष्टुप्। षोडशर्चं सूक्तम्॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये॥१॥

भा०—(यः) जो (नूनं) शीघ्र ही (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण,

प्राण और अपान दोनों को (अभिष्टये) अभिमत फल प्राप्त करने और (हव्य-दातये) उत्तम अन्न ग्रहण के लिये (आचक्रे) अपने अनुकूल कर लेता है, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (देव-तातये) इन्द्रियों को वश करने के लिये (ऋधक् इत्था) सचमुच इस प्रकार से (शशमे) शम की साधना करता है।

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

भा०—मित्र और वरुण (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) अति बलशाली, वर्षा लाने वाले वीर्य जलादि से युक्त (उरु-चक्षसा) विशाल दर्शन वाले (नरा) दो नायकों के तुल्य (राजाना) तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) बहुश्रुत हैं। (ता) वे दोनों (बाहुता न) दो बाहुओं के समान (दंसना) नाना कर्म (रथर्यतः) करते हैं। वैसे ही वायु और मेघ दोनों मित्र और वरुण हैं। वे (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) प्रचुर वर्षा लाने वाले बल और जल से युक्त, (उरु-चक्षसा) बहुत रूपों में दीखने वाले, (नरा) सुख प्राप्त कराने वाले (राजाना) विद्युद् आदि से प्रदीप्त (दीर्घश्रुत्तमा) दूर से ही गर्जन रूप में सुनाई देने वाले हैं, वे मानो (बाहुता न) प्रजापति की दो बाहुओं के समान (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्य की किरणों के साथ (दंसना रथर्यतः) बहुत से कर्म करते हैं। उन दोनों से वृष्टि, अन्नोत्पत्ति और ऋतु परिवर्त्तन आदि होते हैं।

प्र यो वां मित्रावरुणाजिरो दूतो अद्रवत्।
अयःशीर्षा मदेरघुः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) मित्र अर्थात् दिनवत् प्रजा के रक्षक और वरुण अर्थात् रात्रिवत् सुख देने वाले राजा शासकादि जनो! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (अजिरः) तीव्रगामी, (दूतः) दूत (प्र अद्रवत्) देश-देशान्तर जाता हो वह (अयः-शीर्षा) लोहे के शिर वाला, दृढ

विचार और (मदे रघुः) हर्षादि से प्रफुल्लगति हो। शिर लोहे का हो अर्थात् उसके विचार दृढ़ और रहस्यों के छिपाने में कठोर हो।

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (संपृच्छे न रमते) अच्छी प्रकार पूछने पर प्रसन्नता से उत्तर नहीं देता, (न पुनः हवीतवे रमते) न बुलाने पर ही प्रसन्न होता है और (न संवादाय रमते) न संवाद के लिये ही हर्ष से अनुमति देता है, (तस्मात् सम् ऋतेः) उस शत्रु के साथ संग्राम से (नः अद्य उरुष्यतम्) हमें आज बचाओ और (बाहुभ्यां नः उरुष्यतम्) उसके बाहुओं से हमें बचाओ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो।
वरूथ्यं वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे (ऋत-वसो) सत्य के धनी! तू (मित्राय) स्नेही जन, (अर्यम्णे) शत्रुनियन्ता और (वरुणे) श्रेष्ठ जन के लिये (सचथ्यम्) सेवा-योग्य, मेल मिलाप के और (वरुथ्यम्) दुःखवारक तथा (छन्द्यं) चित्त के अनुकूल (वचः) वचन का (प्र) प्रयोग कर और, हे मनुष्यो! आप लोग (राजसु) तेजस्वी जनों में (स्तोत्रं) स्तुति वचन का (गायत) गान करो।

ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम्।
ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥ ६ ॥

भा०—(ते) वे (अरुणं) तेजस्वी, (जेन्यं) विजयशील (वसु) सबको सुखपूर्वक बसाने वाले, (तिसृणां) तीनों लोकों के अद्वितीय सूर्य के समान उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं के बीच (एकं) अद्वितीय (पुत्रं) बहुतों के रक्षक को (हिन्विरे) बढ़ावें। (ते) वे

(अमृताः) अविनाशी (अदब्धाः) किसी से भी न मारे जाकर (मर्त्यानां धामानि) मनुष्यों के स्थानों का (अभि चक्षते) निरीक्षण करते हैं ।

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (मे) मेरे (उद्यता) उपस्थित (द्युमत्-तमानि) ज्ञान-प्रकाश से युक्त (कर्त्वा) करने योग्य (वचांसि) वचनों को (आयातम्) प्राप्त करो और (उभा सजोषसा) दोनों प्रेम से युक्त होकर (हव्यानि वीतये प्रति यातम्) उत्तम अन्न खाने के लिये लौट जाया करो ।

रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्ताविंतं नरा गृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न आदि से युक्त कृषि सैन्यादि कार्यों से सम्पन्न जनो ! युवाभ्याम्) तुम दोनों के हम (अरक्षसं) दुष्ट पुरुषों से रहित (रातिम्) अविघ्नित दान राशि की (वाम् हवामहे) आप दोनों से याचना करते हैं । आप दोनों (नरा) उत्तम नर नारी, (जमदग्निना गृणाना) प्रज्वलित अग्नि वाले आचार्य द्वारा उपदेश युक्त होकर (प्राचीं होत्रां) प्राक्तनी, प्रकृष्ट ज्ञान और आदर से युक्त वेद वाणी को (प्रतिरन्तौ) बढ़ाते हुए (इतं) आओ ।

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्रं उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! बलवन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमारे (दिवि-स्पृशं) मनःकामनागत, वा ज्ञान सम्बन्धी, (यज्ञं) परस्पर के सत्संग को (सुमन्मभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (आ याहि) प्राप्त हो । (अयं) यह मैं (पवित्रे उपरि श्रीणानः) पवित्र व्रत पर आश्रय लेता हुआ (शुक्रः) शुद्ध आचारवान् होकर (ते अन्तः अयामि) तेरे अन्तःकरण में स्थान प्राप्त करूं । वा तेरे अन्तःकरण को बांधता हूँ ।

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥१०।७

भा०—हे (नियुत्वः) नियुक्त शिष्यों के स्वामिन् गुरो ! (अध्वर्युः) अपनी रक्षा को चाहता हुआ शिष्य (रजिष्ठैः) अति तेजस्वी (पथिभिः) सन्मार्गों से (हव्यानि) ग्रहण-योग्य ज्ञानों को (वीतये) प्राप्त करने के लिये (प्रति वेति) तुझे प्राप्त होता है। तू (नः) हम में से (उभयस्य) दोनों का (पिब) पालन कर। (शुचिं) शुद्ध, व्रतचारी और (गवाशिरं सोमम्) गौ, वाणी के ऊपर विद्याभ्यासी दोनों प्रकार के शिष्यों की पालना कर। इति सप्तमो वर्गः ॥

बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सूर्य) जगदुत्पादक, सूर्यवत् प्रकाशक ! तू (बट् महान् असि) सचमुच महान् है। हे (आदित्य) सबको अपने वश में लेने हारे ! तू (बट् महान् असि) सचमुच महान् है। (ते महः सतः) तुझ महान् सत्स्वरूप का (महिमा पनस्यते) बड़ा भारी सामर्थ्य वर्णन किया जाता है। हे (देव) सुखों के दातः ! तू (अद्धा महान् असि) सचमुच महान् है।

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! परमेश्वर ! तू (बट्) सत्य ही (श्रवसा महान् असि) अपने ज्ञान और यश से महान् है। हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! तू (सत्रा) सत्य के बल से (महान् असि) महान् है। तू (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (असुर्यः) प्राणों में रमण करने वाले जीवों का हितकारी, (पुरोहितः) समक्ष साक्षिवत् विराजमान है। तू (विभु) सर्वव्यापक, (अदाभ्यम्) अविनाशी (ज्योतिः) प्रकाश है।

इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्यन्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥

भा०—(इयं) यह (या) जो (नीची) नीचे की ओर मुख किये, विनयशील कन्या के समान झुकी, (अर्किणी) स्तुतियुक्त, वा अर्क, मन्त्रादि को जानने वाली अर्किणी, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष की (रूपा) रूपवती (रोहिण्या) सूर्य-कान्ति के समान उज्ज्वल (कृता) उत्तम अलंकारों से सुसज्जित, (चित्रा इव) अद्भुत रूप वाली के समान (दशसु बाहुषु) दशों दिशाओं में बाहुओं के बल पर (आयती) विस्तृत राज-शक्ति है वह (प्रति अदर्शि) सबको दीखे ।

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्य१न्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥१४॥

भा०—(तिस्रः प्रजाः) तीन प्रकार की प्रजाएं (अति-आयम्) अतिक्रमण करके विराजमान प्रभु को ही (ईयुः) प्राप्त होती हैं। अथवा—तीन प्रजाएं (अत्यायम् ईयुः) अतिक्रमण कर गति करती हैं जैसे—पक्षी गण, भूमि को छोड़कर आकाश से विचरते हैं वे तीन प्रकार के हैं, जैसे—वक, गृध्र और चेरपाद और (अन्याः) दूसरी प्रजाएं (अर्कम् अभितः) सूर्यवत् अन्न का आश्रय लेकर (विविश्रे) स्थित हैं। (भुवनेषु अन्तः) लोकों में (बृहत् पवमानः) बड़ा भारी परम पावन, प्रभु (तस्थौ) विराजता है, वह ही (हरितः आ विवेश) सब दिशाओं में वायुवत् व्यापक है।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥१५॥

भा०—(रुद्राणां माता) दुष्टों को रुलाने वाले, वीर पुरुषों को दूध पिलाकर पुष्ट करने वाली, रोगों के नाशक घृत आदि पदार्थों की उत्पादक माता वह गौ है; और वीरों की उत्पादक और रोग नाशक

ओषधियों की उत्पादक जननी गौ भूमि है। वह (वसूनां दुहिता) राष्ट्र में वा जगत् में बसे समस्त जीवों को सुख देने वाली, (आदित्यानां स्वसा) दान-आदान करने वाले व्यापारी वैश्य जनों की (सु-असा) सर्व सुखदात्री, भगिनी के समान है और (अमृतस्य नाभिः) अमृत, दीर्घ जीवन को देने वाली, मानो आश्रय है। मैं (चिकितुषे) इन तथ्यों को जानने वाले को (नु प्रवोचं) निश्चय, बलपूर्वक कहता हूँ कि ऐसी (अनागां गाम्) अपराध-रहित गौ को और (अदितिम्) भूमिवत् माता-पितावत् गौ का (मा वधिष्ट) हनन मत करो।

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम्।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥१६॥८॥

भा०—(वचः-विदम्) परस्पर बातचीत का ज्ञान कराने वाली, (वाचम् उदीरयन्तीम्) वाणी को उन्नत करने वाली, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त कर्मों-सहित (उपतिष्ठमानाम्) उपस्थित होती हुई (देवेभ्यः मा परि एयुषीम्) विद्वान् जनों से मुझको प्राप्त होने वाली (देवीं गाम्) ज्ञान का प्रकाश देने वाली, 'गौ', वाणी को (दभ्रचेताः) अल्पज्ञानी (मर्त्यः) मनुष्य (परि आ अवृक्त) परित्याग करता है और उदार-चित्त पुरुष उस वेदवाणी का आश्रय लेता, ज्ञानरस का दोहन करता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१०२]

प्रयोगो भार्गवोऽग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ। तयोर्वान्यतर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३—५, ८, ९, १४, १५, २०—२२ निचृद् गायत्री। २, ६, १२, १३, १६ गायत्री। ७, ११, १७, १९ विराड् गायत्री। १०, १८ पादनिचृद् गायत्री।

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे। कविर्गृहपतिर्युवा ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे (देव) दानशील (दाशुषे) देने वाले को (त्वम्) तू (बृहत् वयः) बड़ी आयु, प्रचुर अन्न और ज्ञान (दधासि) देता है। तू (कविः) क्रान्तदर्शी, (गृहपतिः) गृहस्वामी, (युवा) बलवान् है।

स नु इळानया सह देवा अग्ने दुवस्युवा। चिकिद्विभानवा वह ॥२

भा०—हे (विभानो) विशेष कान्तियुक्त! तू (चिकित्) ज्ञानवान् है। (नः) हमें (अनया इडा) इस स्तुति, (दुवस्युवा) सेवा-शुश्रूषा के (सह) साथ २ (देवान् आ वह) शुभ गुण और विद्वान् जनों को हमें प्राप्त करा।

त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य।
अभि ष्मो वाजसातये ॥ ३ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अति बलशालिन्! (त्वया युजा स्वित्) तुझ सहयोगी के साथ ही (वयम्) हम (वाज-सातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि प्राप्त करने के लिये (अभि स्मः) सबको वश करें।

और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे। अग्निं समुद्रवाससम् ॥४॥

भा०—(समुद्र-वाससम्) समुद्र को वस्त्र के समान धारण करने वाले (और्व-भृगुवत्) भूमि के भीतर सब पदार्थों को भर्जन वा परिपाक करने वाले, तेज से युक्त और (शुचिम्) पवित्र (अप्नवानवत्) जल के जाल से युक्त (अग्निम्) अग्नि के तुल्य बलवान् मैं भी (समुद्र-वाससम्) महान् अन्तरिक्ष में व्यापक प्रभुरूप (अग्निं), ज्ञानमय तेजस्वी को (और्व-भृगुवत्) भूमि के समस्त पदार्थों को संतप्त और परिपाक करने के सामर्थ्य से युक्त सूर्यवत् (शुचिम्) पवित्र और (अप्नवानवत्) सुख प्राप्ति के समस्त साधनों वाले सामर्थ्य से युक्त प्रभु को (आ हुवे) बुलाता हूँ, प्रार्थना करता हूँ। 'अप्नवानवत्'—अप्न इति रूप नाम, अपत्यनाम, पदनाम च। आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा। अप्नः।

अपः । आपः । उणादि० ॥ आप्यते सुखं येन तत् अप्नः, अपत्यं सुकर्म वा ।

हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यं सहः ।

अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(समुद्र-वाससम् अग्निम्) समुद्र के गर्भ में विद्यमान आग (वातस्वनः पर्जन्य-क्रन्द्यं) जैसे प्रचण्ड वात वा शब्दकारी मेघ के समान गर्जन करने वाला होता है वैसे ही (समुद्र-वाससम्) महान् आकाश में व्यापक, (वात-स्वनं) वायु आदि द्वारा समस्त जीवों को प्राण देने वाले (कविं) क्रान्तदर्शी, (पर्जन्य-क्रन्द्यं) सब मेघों को भी गर्जन कराने वाले विद्युत् के समान, सब रसों और बलों का आश्रय कहाने योग्य (सहः) सब कुछ सहने वाले, (कविं) क्रान्तदर्शी अन्तर्यामी प्रभु को (हुवे) स्मरण करता हूँ । इति नवमो वर्गः ॥

आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ६

भा०—(सवितुः सवं यथा) सूर्यप्रकाश के तुल्य सत्यप्रकाश करने वाले (भगस्य इव भुजिं) ऐश्वर्य के भोक्ता या पालक राजा के समान तेजस्वी, (समुद्र-वाससं अग्निं) वड़वानल के समान विशाल आकाश में व्यापक वा जगत् को समुद्रवत् आच्छादित करने वाले (अग्निम्) तेजोमय परमेश्वर की (हुवे) स्तुति करता हूँ ।

अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।

अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ ७ ॥

भा०—(वः वृधन्तम्) आप सब मनुष्यों को बढ़ाने वाले, (अध्वराणां) अविनाशी पदार्थों के बीच (पुरु-तमम्) महान् पालक, (अग्निं) प्रकाशरूप को मैं (हुवे) पुकारता हूँ (नप्त्रे) सबको प्रेम से बांधने वाले, (सहस्वते) बलवान् प्रभु की प्राप्ति के लिये मैं (अच्छ हुवे) साक्षात् उसकी स्तुति करता हूँ ।

अयं यथा न आभुवस्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ ८ ॥

भा०—(त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव आभुवत्) बढ़ई जैसे छील-छाल कर पदार्थों को बनाता है वैसे ही (अयं) यह प्रभु भी (त्वष्टा) जगत् का बनाने वाला, (नः आभुवत्) हमें भी बनाता है। (अस्य यशस्वतः क्रत्वा) इसी कीर्त्ति वाले प्रभु के ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से हम यशस्वी हों।

अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि जैसे (देवेषु) सब भूतों में (श्रियः अभि पत्यते) कान्तियों को धारण करता है वैसे ही यह (अग्निः) नायक, प्रभु (विश्वाः श्रियः) समस्त आश्रय लेने वालों का (अभि पत्यते) साक्षात् पालक होता है और (देवेषु) सब दिव्य पदार्थों वा दाताओं में भी सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् है। वह (वाजैः) ज्ञानों और ऐश्वर्यों-सहित (उप गमत्) हमें प्राप्त हो।

विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमम् ।
अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(विश्वेषाम् होतॄणाम्) सब दाताओं से (यशस्तमं) अधिक यशस्वी, (पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान, पूर्ण, प्रभु की (इह यज्ञेषु) यहां यज्ञों, सत्संगों में (स्तुहि) स्तुति कर। इति दशमो वर्गः ॥

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा । दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ॥ ११

भा०—(यः) जो (दीर्घश्रुत्-तमः) दीर्घ काल तक गुरु-मुखों से खूब श्रवण करने योग्य, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, प्रशंसनीय; (दमेषु) सब घरों में दीपक के समान, (आ दीदाय) सर्वत्र प्रकाशमान है, सब भुवनों में प्रकाश करता है, उस (शीरं) सर्वव्यापक (पावक-शोचिषं) अग्नि के समान पवित्रकारक ज्योति वाले प्रभु की यज्ञादि में स्तुति कर।

तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम् ।
मित्रं न यातयज्जनम् ॥ १२ ॥

भा० हे (विप्र) बुद्धिमान् मनुष्य! तू (तम्) उस (अर्वन्तम्) अश्व के समान (सानसिम्) जीवन मार्ग के परम सुखदायक, (शुष्मिणम्) उत्तम बलों से युक्त, (मित्रं) मित्र के समान (यातयत्-जनम्) समस्त मनुष्यों को प्रेम से प्रयत्न, उद्योग कराने वाले प्रभु की (गृणीहि) स्तुति कर।

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १३ ॥

भा०—(हविष्कृतः) हवि, चरु आदि देने वाले यज्ञशील पुरुष की (गिरः) वाणियां (त्वा देदिशतीः) तेरा वर्णन करती हुई (जामयः) बन्धु भगिनियों के समान (वायोः अनीके) वायु के समीप अग्निवत्, प्राणों के बल पर (त्वा अस्थिरन्) तुझको हृदय में स्थिर करती हैं। भगवत्-स्तुतियां परमेश्वर के भाव को हृदय में दृढ़ करती हैं।

यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसंदिनम् ।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ १४ ॥

भा०—जैसे अग्नि तत्त्व के लिये (त्रिधातु बर्हिः) तीनों प्रकार के लोक आश्रय हैं, वैसे ही (त्रिधातु) तीनों प्रकार के (अवृतं) क्रिया-रहित (बर्हिः) लोक (असंदिनम्) असम्बद्ध होकर भी (यस्य) जिसके आश्रय पर सम्बद्ध हैं और जिसमें (आपः चित्) प्रकृति आदि पदार्थ और जीव (पदं नि दध) स्थिति प्राप्त करते हैं उसे तू हृदय में स्थान दे।

पदं देवस्य मीळ्हुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(मीढुषः देवस्य) सुखों के वर्षक, लोकों के प्रकाशक प्रभु का (पद) स्वरूप (अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) किसी से न पराजित होने

वाली रक्षाकारिणी सेनाओं से राजा के पद के समान, अधर्षणीय शक्तियों से युक्त है। वह स्वयं भी (सूर्यः इव) सूर्य के समान (भद्रा) कल्याणकारक (उपदृक्) समीप स्थित चक्षु के समान ज्ञान का प्रकाशक है। इत्येकादशो वर्गः ॥

अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १६ ॥

भा०—जैसे सूर्य (घृतस्य धीतिभिः) तेज की धारक शक्तियों से (देवान्) किरणों को धारण करता और (तेपानः) तपता है और जैसे घृत की आहुतियों से अग्नि (देवान्) सुगन्ध आदि गुणों को धारण करता है वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (देव) ज्ञान के दातः ! (तेपानः) तप करता हुआ तू (शोचिषा) तेज से (घृतस्य धीतिभिः) ज्ञान वाणियों द्वारा (देवान्) ज्ञानेच्छुक शिष्यों को (आ वक्षि) ज्ञान करा और (यक्षि च) ज्ञान दे ।

तं त्वाजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः ।
हव्यवाहममर्त्यम् ॥ १७ ॥

भा०—(तं त्वा) उस तुझको (मातरः देवासः) विद्वान् जन माता के तुल्य (कविं अजनन्त) कवि क्रान्तदर्शी रूप से प्रकट करते हैं। (हव्यवाहं) ग्राह्य ज्ञान-वचनों को धारण करने वाले (अमर्त्यम्) अमरणशील तुझको वे (मातरः अजनन्त) माता के समान उत्पन्न करते हैं।

प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम् ।
हव्यवाहं नि षेदिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (कवे) दीर्घदर्शन, उपदेष्टा ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (प्रचेतसं) उत्तम ज्ञान वाले, (दूतं) उत्तम ज्ञान देने वाले (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (हव्यवाहं) उत्तम वचन श्रवण करने वाले (त्वा) तुझको आदरपूर्वक (निषेदिरे) आसन पर बैठाते हैं।

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति ।
अथैतादृग्भरामि ते ॥ १९ ॥

भा०—(मे अघ्न्या नहि अस्ति) मेरे पास न मारने योग्य अघ्न्या गौ भी नहीं और (न) नहीं (स्वधितिः) कुल्हाड़ी काष्ठ (वनन्वति) काटती है, तो भी (एतादृग्) ऐसा (ते) तेरे निमित्त (भरामि) लाया हूँ । तू इसे ही स्वीकार कर । अर्थात् न मेरे पास दुग्ध देने वाली गौ है, न काष्ठों को काटने की कुल्हाड़ी है, मैं यज्ञ के स्थूल साधन उपस्थित नहीं कर सकता तो भी भगवन् ! भावनामय यज्ञ के साधन उपस्थित हैं ।

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २० ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् (यत्) जो हम (कानि कानिचित्) कई २ प्रकार के (दारूणि) नाना काष्ठ (आदध्मसि) आधान करते हैं हे (यविष्ठ्य) सर्वशक्तिमन् ! तू (ता) उन २ को (जुषस्व) स्वीकार कर । जैसे अग्नि फरसे से काटी हुई, छोटी २ समिधाओं को सुगमता से जला देता है वैसे ही विद्वान् आचार्य भी गर्भाशय आदि संस्कारों से संस्कृत आत्माओं को सहज ही ज्ञानवान् कर देता है ।

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतम ॥ २१ ॥

भा०—(यद् उपजिह्विका अत्ति) जिसे दीमक खा जाती है और (यद् वम्रः अति सर्पति) जिसे वल्मीक लग जाता है वह काष्ठ भी अग्नि में पड़कर (घृतम् अस्तु) चमकने लगता है वैसे ही हे विद्वन् ! (यत्) जिस बालक को (उपजिह्विका) जीभ की चञ्चल प्रकृति (अत्ति) लग जाती है और (यद् वम्रः) वमनशील होकर जो पढ़े ग्रन्थ भूल जाय, ऐसा विद्यार्थी (अतिसर्पति) आवारा घूमता है (तत् सर्वं) वह सब भी

(ते) तेरे समीप (घृतम् अस्तु) घृत के समान ज्ञान दीप्ति का साधन हो जाता है।

अ॒ग्निमि॒न्धानो॒ मन॑सा॒ धियं॑ सचेत॒ मर्त्यः॑ ।
अ॒ग्निमी॑धे वि॒वस्व॑भिः ॥ २२ ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निम् इन्धानः मर्त्यः) अग्नि को प्रज्वलित करता हुआ मनुष्य (मनसा धियं सचेत) मन वा ज्ञान से (धियं) बुद्धि वा कर्म को युक्त करे। इसी प्रकार मनुष्य (विवस्वभिः) विद्वानों द्वारा (अग्निम् इधे) ज्ञानवान् प्रभु को हृदय में प्रज्वलित करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०३]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ १—१३ अग्निः । १४ अग्निर्मरुतश्च देवताः ॥ छन्दः—१, ३, १३ विराड् बृहती । २ निचृद् बृहती । ४ बृहती । ६ आर्ची स्वराड् बृहती । ७, ६ स्वराड् बृहती । ६ पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः । १० आर्ची भुरिग् गायत्री । ८ निचृदुष्णिक् । १२ विराडुष्णिक् ।

अद॑र्शि गातु॒वित्त॑मो॒ यस्मि॑न्व्र॒तान्या॑द॒धुः ।
उपो॒ षु जा॒तमार्य॑स्य॒ वर्ध॑नम॒ग्निं नक्ष॑न्त नो॒ गिरः॑ ॥ १ ॥

भा०—(गातुवित्-तमः) ज्ञान आदि को जानने, अन्यों को जनाने हारा, वेद वाणी को प्रकाशित करने वाला प्रभु, गुरु (अदर्शि) सबके दर्शन योग्य है। (यस्मिन्) जिसके अधीन रहकर सब (व्रतानि आदधुः) व्रतों को धारण करते हैं। (आर्यस्य वर्धनम्) श्रेष्ठ जनों को बढ़ाने वाले (जातम्) सबको प्रकट, विदित, (अग्निम्) तेजस्वी, ज्ञाता, ज्ञापक प्रभु, सर्व-गुरु को (नः गिरः उपो सु नक्षन्त) हमारी वाणियां अच्छी प्रकार प्राप्त हों।

प्र दैवो॑दासो अ॒ग्निर्दे॒वाँ अच्छा॒ न म॒ज्मना॑ ।
अनु॑ मा॒तरं॑ पृथि॒वीं वि वा॑वृते त॒स्थौ नाक॑स्य॒ सान॑वि ॥२॥

भा०—(देवःदासः=दिवःदासः) प्रकाश देने वाले सूर्य की (अग्निः)

अग्नि (देवान्) अपने किरणों वा प्रकाशों को (मातरं पृथिवीं अनु) सबकी जननी, माता पृथिवी की (अच्छ) ओर (मज्मना न प्र वावृते) मानो बड़े बल से भेजता है और (पृथिवीं मातरम् अनु) माता भूमि के रचनादि के अनुसार (वि वावृते) उसमें विविध कार्य करता है। वह पत्रों को हरा, पुष्पों को नाना रंगों का, जड़ों को दृढ़ इत्यादि जंगम स्थावरादि संसार को अद्भुत प्रकार से परिणत करता है। वह स्वयं (नाकस्य सानवि) आकाश के उच्च भाग पर (तस्थौ) स्थिर रहता है। वैसे ही वह सर्वज्ञ प्रभु भी (नाकस्य सानवि) आनन्दमय दशा में स्थिर है, तो भी मातृवत् जननी-प्रकृति को बहुत भारी बल से नहीं चलाता, प्रत्युत अनायास ही उसमें (प्र वावृते) प्रथम स्पन्द उत्पन्न करता है और (अनु वि वावृते) अनन्तर उसी को विविध रूपों में जगत् रूप से बदल देता है।

यस्मा॒द्रेज॑न्त कृ॒ष्टय॑श्च॒र्कृत्या॑नि कृण्व॒तः।
स॒ह॒स्र॒सां मे॒धसा॑ताविव॒ त्मना॒ग्निं धी॒भिः स॑पर्यत ॥ ३ ॥

भा०—(चर्कृत्यानि कृण्वतः यस्मात्) अपने कर्त्तव्य, सर्ग, स्थिति, प्रलय आदि नाना कर्मों का सम्पादन करते हुए जिससे (कृष्टयः) मनुष्य मानो अपने देह में कर्म बीज की कृषि करते और कर्मफल का संचय और उपभोग करते हुए (रेजन्ते) कांपते और सञ्चालित होते हैं मानो उस (मेधसातौ इव) पवित्र अन्नवत् अवश्य प्राप्य फल प्राप्ति के काल में, हे जनो! (सहस्र सां) एक बीज का सहस्रों गुणा फल देने वाले (अग्निं) उस ज्ञानी प्रभु की (धीभिः सपर्यत) स्तुतियों से शुश्रूषा करो।

प्र यं रा॒ये निनी॑षसि॒ मर्तो॒ यस्ते॑ वसो॒ दाश॑त्।
स वी॒रं ध॑त्ते अग्न उक्थशं॒सिनं॒ त्मना॑ सहस्रपो॒षिण॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने वाले! (यं) जिसको तू (राये निनीषसि) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये सन्मार्ग से ले जाता है और (यः मर्त्तः ते दाशत्) जो मरणशील जीव अपने को तुझे सौंप देता है, हे (अग्ने) सर्वज्ञ! (सः) वह (त्मना) अपने आप, (उक्थ-शंसिनम्) वेद वचनों के वक्ता (सहस्र-पोषिणं) सहस्रों के पोषक (वीरं) वीर-पुत्र, विविध विद्योपदेष्टा, तुमको (धत्ते) हृदय से धारण करता है।

स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वही पुरुष जो अपने आपको तुझ पर वार देता है, (दृढे चित्) दृढ़ शत्रु पर भी (अर्वता) अपने बल से (अभि वाजं) संग्राम में (तृणत्ति) शत्रु का नाश करता है, (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश, ज्ञान धारण करता है। हे (पुरु-वसो) बहुत धन के स्वामिन् ! (त्वं देवत्रा) तुझ दानी के आश्रय से हम भी (विश्वा वामानि धीमहि) समस्त उत्तम धन प्राप्त करें।

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वा वसु दयते) समस्त जीवगणों की रक्षा करता है वह (होता) दानी, (जनानां आनन्दः) जनों को आनन्द देने वाला है। (अस्मै अग्नये) उस ज्ञानमय के लिये (मधोः पात्रा न प्रथमानि) मधुर पदार्थ से पूर्ण सर्व प्रथम देने योग्य पात्रों के समान (स्तोमाः प्रयन्ति) उत्तम स्तुति-मन्त्र आदर पूर्वक हृदय से बाहर आते हैं।

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(रथ्यम् अश्वम्) रथ योग्य अश्व के समान देह के भोक्ता आत्मा को (सुदानवः) उत्तम दानशील, (देवयवः) प्रभु के उपासक, लोग (मर्मृज्यन्ते) सदा स्वच्छ करते रहते हैं। हे (विश्पते) समस्त प्रजाओं के पालक (हे दस्म) दर्शनीय ! (उभे तोके तनये) दोनों, पुत्र पौत्रादि के पालनार्थ (मघोनां राधः पर्षि) धनवानों का धन प्रदान कर।

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ ८ ॥

भा०—हे (उप-स्तुतासः) उपासक स्तुतिकर्त्ता जनो ! आप लोग (मंहिष्ठाय) अति दानशील, (बृहते) महान् (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेजः

स्वरूप (अग्नये) ज्ञानवान् सर्वपूज्य सर्वव्यापक (ऋतावने) सत्य ज्ञान-मय प्रभु की (प्र गायत) उत्तम स्तुति करो।

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ ९ ॥

भा०—(मघवा) पूजित ऐश्वर्य युक्त, (द्युम्नी) तेजस्वी, प्रभु (आहुतः) आदरपूर्वक प्रार्थित और (समिद्धः) हृदय में सुप्रकाशित होकर (वीरवत् यशः आ वंसते) पुत्रों से युक्त अन्न, यश आदि सब देता है। (अस्य कुवित् सुमतिः) इसकी बहुत उत्तम मति (नवीयसी) उत्तम उपदेशदात्री, (वाजेभिः) ज्ञानों सहित (नः अच्छ आगमत्) हमें भली प्रकार प्राप्त हो।

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम्।
अग्निं रथानां यमम् ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (आसाव) आदरपूर्वक स्तुति करने हारे, अग्नि आदि के उत्पन्न करने में समर्थ ज्ञानवन्! तू (प्रियाणां प्रेष्ठम्) प्रियों में सर्व प्रिय, (अतिथिम्) सबसे ऊपर विद्यमान, सर्वपूज्य, (रथानाम् यमम्) रथों के नियामक विद्युत् के समान सब देहों में वा सूर्यादि लोकों के नियन्ता (अग्निं) तेजस्वी सञ्चालक आत्मा की (स्तुहि) स्तुति, उपदेश कर।

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (यज्ञियः) पूजायोग्य स्वामी, (उदिता) उन्नत और (निदिता) निन्दित अच्छे और बुरे सबका (वेदिता) ज्ञान कराने वाला होकर, (वसु आववर्तति) ऐश्वर्य प्रदान करता है। (धिया) ज्ञानपूर्वक, कर्मानुसार (वाजं सिषासतः) ऐश्वर्य, वेगादि को सबमें विभक्त करने वाले (यस्य) जिसके (ऊर्मयः) शासन (प्रवणे ऊर्मयः न) नीचे की ओर जाते हुए बृहत् जल तरंगों के (दुस्तराः) अपार हैं।

मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः।
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (सु-होता) सुख देने वाला, दानी, (सु अध्वरः) उत्तम मार्गप्रद, हिंसा से रहित, दयालु है, वह (अतिथिः) सर्वोपरि पूज्य (वसुः) सबमें बसा, (अग्निः) ज्ञानी, सर्वप्रकाशक, सन्मार्ग में प्रवर्त्तक है (एषः) वह (पुरु-प्रशस्तः) बहुत स्तुति योग्य है।

मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदेवैः।
कीरिश्चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसे! (अग्ने) ज्ञान-प्रकाशक! (ये) जो (अच्छोक्तिभिः) उत्तम वचनों और (केभिः-चित् एवैः) किसी प्रकार के भी साधनों से (त्वाम्) तेरी उपासना करते हैं (ते मो रिषन्) वे पीड़ित नहीं होते। (कीरिः चित् हि) उत्तम स्तुति करने हारा ही (दूत्याय) स्तुति कर्म के लिये (रातहव्यः सु-अध्वरः) अन्नादि चरु देता, यज्ञ करता हुआ (त्वाम् ईडे) तेरी उपासना करता है।

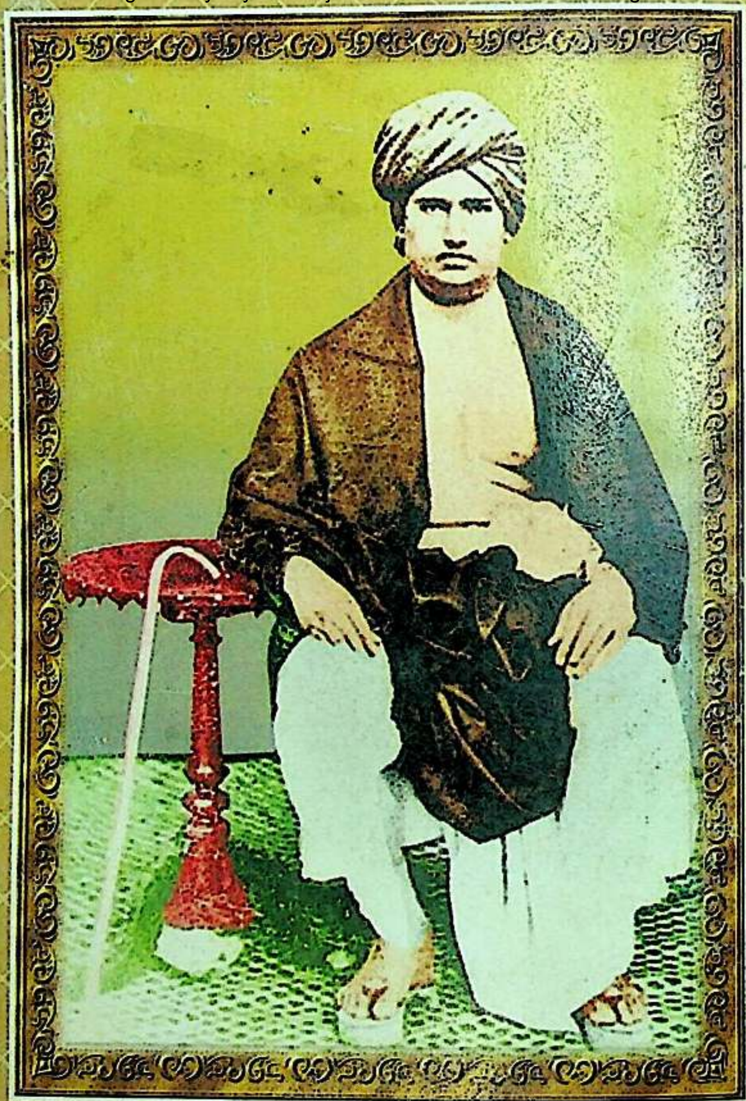
आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये।
सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥१४॥१५॥१०॥८॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वज्ञ! तू (मरुत्सखा) विद्वान् जनों का मित्र होकर (रुद्रेभिः) समस्त प्रजाओं के दुःखों को दूर करने वाले, वायु जलादि पदार्थों द्वारा (सोमपीतये) आनन्द रस, ऐश्वर्यादि कर्म फलों का उपभोग, पानादि कराने वा उत्पन्न जगत् का पालन करने के लिये (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (सोभर्याः) अर्चना करने वाले जन की (स्वः-नरे) सबके नायक तुझमें प्रयुक्त (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति को श्रवण कर। (उप मादयस्व) स्वयं प्रसन्न हो, सबको प्रसन्न कर।

इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले दशमोऽनुवाकः ॥

॥ इति प्रागाथमष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति श्री-विद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थ-विरुदोपशोभित-श्रीपण्डित जयदेव-शर्मणा विरचिते ऋग्वेदाऽऽलोकभाष्येऽष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥



महर्षि दयानन्द सरस्वती

1824 - 1883